संसार के महान गणितज्ञ

गुणाकर मुले

संसार के महान गणितज्ञ

गुणाकर मुले

संसार के महान गणितज्ञ

मूल्य : रु. 250.00

प्रथम संस्करण : फरवरी 1992

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग,
नई दिल्ली—110002

लेजर टाइपसैटर : शगुन कम्पोजर्स,
सफदरजंग एन्क्लेव, नई दिल्ली—110029

मुद्रक : अभिषेक प्रिंटिंग सर्विस,
अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली—110002

आवरण : नरेंद्र श्रीवास्तव

SANSĀR KE MAHĀN GANITAJNA
by Gunākar Muley

ISBN : 81-7178-229-9

यह कृति समर्पित है
हमारे परिवार के परम हितैषी
तीर्थस्वरूप **श्री लक्ष्मण आत्माराम काटदरे** *(कॉ. के आर)*
को, जो सतासी साल की दीर्घायु में आज भी
उच्चतर बीजगणित व कलन-गणित का
अध्ययन करते रहते हैं और निश्चय ही एक अच्छे गणितज्ञ
या सफल इंजीनियर बनने में
पूर्ण समर्थ थे,
परंतु भारत के साम्यवादी आंदोलन में
उन्होंने अपना सर्वस्व होम कर दिया!

प्रकाशकीय

दो वर्ष पहले कुछ महत्वपूर्ण इतिहास-ग्रंथों के प्रकाशन के साथ राजकमल की प्रकाशन-प्रवृत्तियों में वैविध्य लाने के अपने संकल्प को कार्यरूप देने की दिशा में हमने पहला कदम उठाया था। आज न केवल इतिहास-ग्रंथों की हमारी सूची में कुछ और कालजयी कृतियां शामिल हो गई हैं बल्कि **संसार के महान गणितज्ञ** के प्रकाशन के साथ हम हिंदी-प्रकाशन की एक सर्वथा नई दिशा में प्रवेश कर रहे हैं, जो हमारे लिए प्रसन्नता की बात है। हम आश्वस्त हैं कि हिंदी-जगत में हमारे इस प्रयास का स्वागत होगा।

हिंदी-जगत के लिए गुणाकर मुले का नाम सुपरिचित है। वे न केवल अपने विषय के अधिकारी विद्वान हैं, बल्कि अपने लेखन में प्रामाणिकता के लिए प्रतिबद्ध भी हैं और उनकी यही प्रतिबद्धता उन्हें विशिष्ट बनाती है। पांडुलिपि तैयार करने से लेकर पुस्तक के छपने तक हर स्तर पर वे सक्रिय रुचि लेते हैं और इस बात के लिए सतत जागरूक रहते हैं कि पुस्तक में कहीं कोई भूल न चली जाए। किसी भी पुस्तक की छपाई के दौरान संबंधित लेखक से सतत सहयोग के ऐसे उदाहरण हमारे प्रकाशकीय जीवन में विरल रहे हैं, लेकिन विरल रहे हैं वे कड़वे क्षण भी, जो गुणाकर मुले की, प्रकाशकीय अधिकारों में हस्तक्षेप की हद तक, अति सक्रियता के कारण बार-बार उपस्थित हुए। कई बार तो ऐसा भी लगा कि गुणाकर मुले से हमारे संबंधों की इति हो गई है और अब यह पुस्तक राजकमल से प्रकाशित नहीं हो पाएगी। लेकिन उनकी सारी व्यग्रता और उनका सारा अधैर्य अंततः पुस्तक की प्रामाणिकता की रक्षा के लिए ही था, जो हमारा भी अभीष्ट था। अतः उन कड़वे क्षणों ने हमारे प्रकाशकीय और लेखकीय संबंधों को स्थायित्व ही प्रदान किया है।

हिंदी-जगत को यह पुस्तक इस विश्वास के साथ सौंपी जा रही है कि वह हमें इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए आवश्यक संबल देगा, जिससे भविष्य में हम वैज्ञानिक विषयों पर अधिकाधिक पुस्तकें प्रकाशित कर सकें।

प्राक्कथन

मैं गणित का विद्यार्थी रहा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में। शुद्ध गणितीय अन्वे षणके क्षेत्र में तो आगे नहीं बढ़ पाया, मगर गणित के इतिहास में और गणितज्ञों की जीवनियों में मेरी शुरू से ही गहरी दिलचस्पी रही है। ई.टी. बेल की **मेन आफ मैथेमेटिक्स** (दो भाग) और डेविड यूजेन स्मिथ का **हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स** (दो खंड) जैसी सुप्रसिद्ध पुस्तकें विश्वविद्यालय के दिनों से ही मेरे पास रहीं, और मुझे इस क्षेत्र के अध्ययन को अधिकाधिक समृद्ध बनाने की सतत प्रेरणा देती रही हैं।

सोचा था, मेरी पहली पुस्तक महान गणितज्ञों के जीवन और कृतित्व के बारे में होगी। मगर वैसा नहीं हुआ। शायद अच्छा ही हुआ। पिछले करीब तीन दशकों में मेरी करीब तीस पुस्तकें प्रकाशित हुईं। उनमें कई पुस्तकें गणित के इतिहास और गणितज्ञों के जीवन व कृतित्व से संबंधित हैं—**भारतीय अंक-पद्धति की कहानी, आर्किमीदीज, पास्कल, केपलर, आर्यभट, भास्कराचार्य** आदि।

कुछ दिन पहले की बात है : भोपाल के एक वरिष्ठ आई. ए. एस. अफसर श्री मोतीसिंहजी, जो इलाहाबाद विश्वविद्यालय के गणित विभाग में मेरे सहपाठी थे और जिन्होंने जहां-तहां मेरे कुछ लेख देखे थे, पुराने स्नेह-संबंध को याद करके मुझसे मिलने आए। बातचीत के दौरान मैंने उनसे पूछा—आपने भी विश्वविद्यालय में उच्चतर गणित का अध्ययन किया है, मगर आगे जाकर आपने उसका क्या उपयोग किया? उनका सपाट उत्तर था—कुछ भी नहीं।

मगर मैंने, किसी स्थायी नौकरी की सुख-सुविधाएं या अकादमिक वातावरण की प्रेरणाएं उपलब्ध न होने पर भी, गणित के अपने अध्ययन को जीवित रखा। मेरे ग्रंथ-संग्रह में गणित के इतिहास और गणितज्ञों के जीवन व कृतित्व से संबंधित पुस्तकों की संख्या बढ़ती गई। मगर, चाहने पर भी, इस तरह के ग्रंथ-लेखन को हाथ में लेने का साहस नहीं जुटा पा रहा था। मेरी आर्थिक परिस्थिति भी ऐसी नहीं थी कि, फुटकर लेखन के अन्य तमाम काम स्थगित रखकर, कम से कम पूरे एक साल तक इसी ग्रंथ के लेखन में लगा रहूं।

अंततः संयोग से, एक सुविधाजनक उपाय निकल आया। सन् 1987 का साल—महान गणितज्ञ श्रीनिवास रामानुजन् की जन्म-शताब्दी का साल : 'विज्ञान-प्रगति' के संपादक श्री श्यामसुंदर शर्मा ने पत्रिका का 'रामानुजन् विशेषांक' निकालने का निर्णय लिया और उसके लिए मुझसे सहयोग मांगा। मुझसे जो कुछ बन सकता था, मैंने किया और रामानुजन् के गणित पर एक लंबा लेख भी लिखा।

उसी समय श्यामसुंदरजी ने मुझसे आग्रह किया कि मैं 'विज्ञान-प्रगति' के लिए संसार के महान गणितज्ञों के जीवन व कृतित्व के बारे में एक लेखमाला लिखूं। प्रस्ताव मेरे अनुकूल था, मैंने स्वीकार कर लिया।

'विज्ञान-प्रगति' में 'संसार के महान गणितज्ञ' लेखमाला के अंतर्गत लगातार करीब ढाई साल तक यूक्लिड (300 ई. पू.) से लेकर डेविड हिल्बर्ट (1862-1943 ई.) तक के गणितज्ञों के बारे में मेरे 28 लेख प्रकाशित हुए। इस लेखमाला में मैंने पांच भारतीय गणितज्ञों को भी शामिल किया और दो स्वतंत्र लेखों में सात गणितज्ञ महिलाओं का भी परिचय दिया। संपादक भाई श्यामसुंदर शर्मा, सहायक संपादक (अब संपादक) श्रीमती दीक्षा बिष्ट, कला अधिकारी श्री दलवीर सिंह वर्मा तथा 'विज्ञान-प्रगति' के अन्य सहकर्मियों से मुझे भरपूर सहयोग मिला।

सबसे सुखद बात यह रही कि पाठकों ने मेरे लेखों को बेहद पसंद किया। संपादक को, और मुझे भी, सैकड़ों पाठकों के पत्र मिले। गणित जैसे 'शुष्क' विषय की जानकारी के लिए पाठकों के मन में इतनी अधिक जिज्ञासा और तीव्र पिपासा है, यह देखकर मैं चकित रह गया। अनेक पाठकों ने मुझसे अनुरोध किया कि मैं इस लेखमाला को एक ग्रंथ के रूप में प्रकाशित कर दूं।

मगर यह आसान काम नहीं था। लेखमाला की अपनी कतिपय सीमाएं होती हैं। इस ग्रंथ को देखकर पाठक सहज ही समझ जाएंगे कि लेखमाला को यह रूप और यह विस्तार प्रदान करने में मुझे क्या-क्या और कितना-कुछ करना पड़ा है। विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक या अकादमिशियन ऐसे कार्य प्रायः अपने सहयोगियों की मदद से ही पूरा कर पाते हैं।

मुझे वैसा कोई अकादमिक सहयोग नहीं मिला। फिर भी मैं यह नहीं कहूंगा कि इस ग्रंथ का प्रणयन मेरे अकेले के सामर्थ्य से संभव हुआ है। राजकमल प्रकाशन के संयुक्त प्रबंध निदेशक भाई मोहन गुप्त ने इस ग्रंथ के सृजन में जो सहयोग दिया है वह आज के हिंदी प्रकाशन जगत में शायद ही किसी को नसीब हो। उन्होंने इसे अपनी कृति समझा, मेरे साथ बैठकर इसके प्रूफ देखे, इसके चित्र सजाए, इसके लिए खुद आर्टिस्ट बने। मगर इससे भी बड़ी बात यह है कि उन्होंने आज के प्रकाशन व्यवसाय से संबंधित कई प्रकार की कठिनाइयों के लिए स्वयं को ही जिम्मेवार मानकर मेरे उन आवेशपूर्ण

शब्दों को भी निर्मल मन से सुना जिन्हें निश्चय ही शालीन नहीं कहा जा सकता।

इस ग्रंथ में जो कुछ भी सुसज्ज है, सुंदर है, उसका सारा श्रेय भाई मोहनजी को है।

इस ग्रंथ के लिए 'संदर्भ और टिप्पणियां' तैयार करने का काम बड़ा जटिल था। जो जानकारी लेखमाला में नहीं जा सकी थी वह मैंने विस्तृत टिप्पणियों में प्रस्तुत कर दी है। इन टिप्पणियों में उन अनेक गणितज्ञों का भी परिचय है जिन्हें लेखमाला में स्थान नहीं मिला था। इन टिप्पणियों में पाठकों को विषय का विस्तार भी देखने को मिलेगा। कुल मिलाकर अब यह ग्रंथ एक प्रकार से गणित के इतिहास का भी ग्रंथ बन गया है।

सहायक ग्रंथ-सूची के करीब अस्सी प्रतिशत ग्रंथ मेरे अपने संग्रह में हैं। शेष सहायक ग्रंथ-सामग्री मुझे मुख्यतः इंडियन नेशनल सायंस एकैडेमी (नई दिल्ली) के ग्रंथालय से उपलब्ध हुई। ग्रंथपाल महोदय श्री ब्रह्मदत्त उक्खल से मुझे भरपूर मदद मिली, जिसके लिए मैं उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूं।

ग्रंथ में करीब 150 चित्र हैं, जिनका संयोजन भाई मोहनजी के सहयोग से ही संभव हो सका। ये चित्र अनेकानेक स्रोतों से जुटाए गए हैं। इस ऋण के लिए मैं सबके प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूं।

विदेशी नामों और शब्दों को, उनके सही रूपों में, देवनागरी में प्रस्तुत करना आसान काम नहीं था। इसमें मुझे डे. यू. स्मिथ के ग्रंथ और 'चैम्बर्स बायोग्राफिकल डिक्शनरी' से बड़ी मदद मिली है। अनुक्रमणिकाएं तैयार करते समय नामों और तिथियों से संबंधित कतिपय भूलों का पता चला, जिन्हें वहां ठीक कर दिया गया है। सुविधा के लिए, नामानुक्रमणिका में गणितज्ञों के पूरे नाम रोमन में भी प्रस्तुत कर दिए गए हैं।

पिछले करीब दो साल से मैं भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद (नई दिल्ली) का सीनियर फैलो हूं, जिसके अंतर्गत मेरे अध्ययन का विषय है—भारतीय विज्ञान और टेक्नालॉजी का इतिहास (प्राचीन काल)। फैलोशिप की अध्ययन-सुविधा के कारण ही इस ग्रंथ में शामिल किए गए पांच भारतीय गणितज्ञों को और भारतीय गणित से संबंधित अन्य जानकारी को मैं कुछ अधिक बेहतर रूप में प्रस्तुत कर पाया हूं। वस्तुतः फैलोशिप की आर्थिक सुविधा के कारण ही मैं कुछ निश्चिंत होकर इस ग्रंथ को इसका यह रूप दे पाया हूं।

यदि मैं अध्ययन और लेखन के लिए ही पूर्णतः समर्पित हूं, और अपेक्षाकृत काफी अधिक लिख पाता हूं, तो इसका सारा श्रेय मेरी पत्नी शांति को है। उन्होंने भी विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा हासिल की है। मगर अब हमारी गृहस्थी की सारी जिम्मेवारी उन्होंने संभाल ली है। एक स्वतंत्र लेखक के लिए यह सहयोग सचमुच एक वरदान ही है। अब मेरा बेटा अंशुमान और मेरी बेटियां मंदाकिनी व देवयानी भी मुझे काफी सहयोग देते हैं।

देवयानी, जो अब बी.एस-सी. (ऑनर्स) की छात्रा है, मुझे ग्रंथालय से पुस्तकें लाकर देती है, स्रोत-सामग्री और चित्रों की फोटो-कापियां करके लाती है।

राजकमल प्रकाशन की अध्यक्षा श्रीमती शीला संधू का शुरू से ही मेरे प्रति स्नेह रहा है और मेरे लेखन के प्रति वे पूर्णतः आश्वस्त रही हैं। प्रकाशन व्यवसाय के वर्तमान कठिन दौर में भी इतिहास और विज्ञान के ग्रंथों को सुसज्जित रूप में प्रकाशित करने की जो साहसी योजना उन्होंने हाथ में ली है वह सचमुच ही स्पृहणीय है।

राजकमल प्रकाशन से जुड़े हुए जिन-जिन व्यक्तियों का इस ग्रंथ के प्रकाशन में सहयोग मिला है उन सबके प्रति मैं अपना आभार व्यक्त करता हूं। श्री गजराज सिंह ने इसके प्रूफ देखे। मगर कम से कम एक बार मैंने भी देखे, इसलिए भूल-चूक की जिम्मेवारी मैं ही स्वीकार करता हूं। प्रमादवश तथ्य-संबंधी कुछ गलतियां चली गई हों तो उनके लिए पूर्णतः मैं ही दोषी हूँ। विज्ञ पाठक सूचित करेंगे, तो आगे संशोधन हो सकेगा।

गुणाकर मुले

'अमरावती'
सी-210, पांडव नगर, दिल्ली-110092
26 जनवरी 1992.

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा ।
तद्वद् वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम् ।।

—याजुष-वेदाङ्ग ज्योतिष

—जिस प्रकार मयूरों की शिखाएं और नागों की मणियां सर्वोच्च स्थान पर रहती हैं, उसी प्रकार वेदांग शास्त्रों में गणित का स्थान सर्वोपरि है।

लौकिके वैदिके वापि तथा सामायिकेऽपि यः । ···
बहुभिर्विप्रलापैः किं त्रैलोक्ये सचराचरे ।
यत्किंचिद्वस्तु तत्सर्वं गणितेन विना न हि ।।

—गणितसार-संग्रह, महावीराचार्य (लगभग 850 ई.)

—सांसारिक, वैदिक, धार्मिक आदि सब कार्यों में गणित उपयोगी है।··· अधिक कहने से क्या लाभ? इस समूचे विश्व में जो कुछ भी चल-अचल है, उन सबका अस्तित्व गणित से पृथक् नहीं है।

यह सचाई है कि कोई भी गणितज्ञ, जब तक वह थोड़ा-बहुत कवि भी न हो, एक परिपूर्ण गणितज्ञ कदापि नहीं हो सकता।

—कार्ल वायरस्ट्रास (1815-1897 ई.)

अनुक्रम

यूक्लिड

दुनिया में पुस्तकें तो बहुत छपती हैं, परंतु इनमें से अधिकांश पुस्तकों के एक-दो से ज्यादा संस्करण प्रकाशित नहीं होते । गणित की पाठ्य-पुस्तकें आमतौर पर ज्यादा समय तक चलती हैं और उनके अनेक संस्करण प्रकाशित होते हैं । महावीराचार्य (ईसा की नौवीं सदी) के **गणितसार-संग्रह** का पाठ्य-ग्रंथ के रूप में कई सदियों तक उपयोग हुआ । भास्कराचार्य (1150 ई.) की अंकगणित की **लीलावती** पुस्तक अभी हाल तक संस्कृत-पाठशालाओं में पढ़ाई जाती रही । पिछले करीब आठ सौ वर्षों में 'लीलावती' पर 30 से भी अधिक टीकाएं लिखी गईं ।

लेकिन गणित का जो ग्रंथ सबसे अधिक समय तक पाठ्य-पुस्तक बना रहा और जिसके सबसे अधिक संस्करण प्रकाशित हुए, वह है—सिकंदरिया (अलेक्जेंड्रिया, मिस्र) के यूनानी गणितज्ञ यूक्लिड का **मूलतत्व** । **बाइबल** ही शायद एकमात्र ऐसा ग्रंथ है जिसकी यूक्लिड के 'मूलतत्व' से अधिक प्रतियां छपी हैं । परंतु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि 'बाइबल' और **गीता**-जैसे धार्मिक ग्रंथों की प्रतियां मुफ्त में भी बांटी जाती हैं ।

लेकिन यूक्लिड का ग्रंथ आंख मूंदकर श्रद्धापूर्वक यकीन कर लेने के लिए नहीं है । यह एक वैज्ञानिक ग्रंथ है और इसे तर्कशास्त्र के कठोर नियमों के अनुसार रचा गया है । और फिर, यूक्लिड का ज्यामिति का ग्रंथ 'बाइबल' या 'गीता' से कम प्राचीन भी नहीं है । ज्यामिति के 'मूलतत्व' की रचना करीब 2300 साल पहले हुई थी ।

पिछली करीब तेईस सदियों में बहुत सारे युद्ध हुए, क्रांतियां हुईं, राजनीतिक उथल-पुथल हुई, पर यूक्लिड के ज्यामिति के 'मूलतत्व' की पढ़ाई जारी रही । अभी पिछली सदी तक यूरोप में 'मूलतत्व' अपने मूल रूप में ही पढ़ाए जाते थे । आज भी दुनियाभर के स्कूलों में जो प्रारंभिक ज्यामिति पढ़ाई जाती है, वह यूक्लिड के ग्रंथ पर आधारित है ।

पंद्रहवीं सदी में यूरोप में छापाखाने स्थापित हुए, तो जो पुस्तकें सबसे पहले कागज पर छापी गईं, उनमें से एक थी यूक्लिड की ज्यामिति या रेखागणित की पुस्तक । जानकारी मिलती है कि लैटिन भाषा में 'मूलतत्व' का पहला संस्करण 1482 ई. में वेनिस से प्रकाशित हुआ था । तब से 1800 ई. तक इस ग्रंथ के

460 संस्करण प्रकाशित हो चुके थे ![1]

ऐसा अद्‌भुत है यूक्लिड के ज्यामिति के ग्रंथ का इतिहास । ज्यामिति और यूक्लिड एक-दूसरे के पर्याय बन गए हैं । ज्यामिति का अर्थ है यूक्लिड, और यूक्लिड का अर्थ है ज्यामिति । संसार में ऐसा अपूर्व सम्मान शायद ही किसी दूसरे रचनाकार को मिला होगा ।

Preclarissimus liber elementorum Euclidis perspi-
cacissimi: in artem Geometrie incipit quā foelicissime:

Punctus est cuius ps nō est. C Linea est
lōgitudo sine latitudine cuiꝰ quidē ex-
tremitates sūt duo pūcta. C Linea recta
ē ab vno pūcto ad aliū brevissima exte-
sio i extremitates suas vtrūqꝫ eoꝝ reci-
piens. C Superficies ē q̄ lōgitudinē ꝛ lati-
tudinē tm̄ hꝫ cuiꝰ termi quidē sūt linee.
C Superficies plana ē ab vna linea ad a-
liā extēsio i extremitates suas recipiēs
C Angulus planus ē duarū linearū al-
ternus contactus: quaꝝ expāsio ē sup sup-
ficiē applicataqꝫ nō directa. C Quādo aūt angulum cōtinēt due
linee recte rectilineꝰ angulus noīat. C Qñ recta linea sup rectā
steterit duoqꝫ anguli vtrobiqꝫ fuerit eq̄les: eoꝝ vterqꝫ rectꝰ erit
C Lineaqꝫ linee supstās ei cui insistat ppendicularis vocat. C An-
gulus vo qui recto maior ē obtusus dicit. C Angulꝰ vo minor re-
cto acutꝰ appellat. C Terminꝰ ē qd vniuscuiusqꝫ finis ē. C Figura
ē q̄ termino vl terminis ptinet. C Circulꝰ ē figura plana vna qdem li-
nea ptēta: q̄ circūferentia noīatur: in cuiꝰ medio pūctꝰ ē: a quo oēs
linee recte ad circūferētiā exeūtes sibiinuicē sūt equales. Et hic
quidē pūctꝰ cētrū circuli dr̄. C Diameter circuli ē linea recta que
sup eiꝰ centꝝ trāsiens extremitatesqꝫ suas circūferētie applicans
circulū i duo media diuidit. C Semicirculus ē figura plana dia-
metro circuli ꝛ medietate circūferentie ptenta. C Portio circu-
li ē figura plana recta linea ꝛ parte circūferētie ptēta: semicircu-
lo quidē aut maior aut minor. C Rectilinee figure sūt q̄ rectis li-
neis cōtinent quarū quedā trilatere q̄ tribꝰ rectis lineis: quedā
quadrilatere q̄ qtuor rectis lineis. q̄da mltilatere que pluribus
q̄ꝫ quatuor rectis lineis continētur. C Figurarū trilaterarū: alia
est triangulus hn̄s tria latera equalia. Alia triangulus duo hn̄s
eq̄lia latera. Alia triangulus triū inequalium laterū. Haꝝ iterū
alia est orthogoniū: vnū. s. rectum angulum habens. Alia ē am-
bligonium aliquem obtusum angulum habens. Alia est oxigoni-
um: in qua tres anguli sunt acuti. C Figurarū autē quadrilateraꝝ
Alia est q̄dratum quod est equilaterū atqꝫ rectangulū. Alia est
tetragonꝰ longꝰ: q̄ est figura rectangula: sed equilatera non est.
Alia est helmuaym: que est equilatera: sed rectangula non est.

वेनिस से 1482 ई. में प्रकाशित यूक्लिड के 'मूलतत्व' के
प्रथम लैटिन संस्करण का प्रथम पृष्ठ

यूक्लिड के ग्रंथ का इतना गौरवशाली इतिहास होने पर भी स्वयं यूक्लिड के जीवन के बारे में हमें कोई ठोस जानकारी नहीं मिलती। यकीन के साथ केवल इतना ही कहा जा सकता है कि 300 ई. पू. के आसपास वे सिकंदरिया में रह रहे थे और वहीं पर उन्होंने ज्यामिति के अपने ग्रंथ की रचना की।

यूक्लिड का यूनानी नाम **यूक्लिडेस्** था। गणित की शिक्षा उन्होंने संभवतः एथेन्स में प्लेटो (अफलातून : 427-347 ई. पू.) की प्रसिद्ध एकाडेमी में प्राप्त की थी। ईसा पूर्व चौथी सदी में यूनानी जगत में प्लेटो की एकाडेमी गणितीय शिक्षा के लिए सर्वोत्तम विद्याकेंद्र था। यही एकमात्र विद्याकेंद्र था जहां यूक्लिड गणित का विस्तृत ज्ञान अर्जित कर सकते थे।
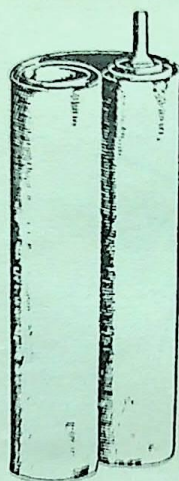
चर्मपट की एक कुंडली-नुमा पुस्तक

लेकिन जब राजनीतिक उथल-पुथल और युद्धों के कारण एथेन्स में काम करना यूक्लिड के लिए कठिन हो गया, तो वह सिकंदरिया चले गए। सिकंदर ने मिस्र पर विजय प्राप्त करके नील नदी के मुहाने पर 332 ई. पू. में सिकंदरिया (अलेक्जेंड्रिया) नगर की स्थापना की थी। 323 ई. पू. में बेबीलोन (बाबुल) में सिकंदर की मृत्यु हो जाने पर उसका राज्य उसके सेनापतियों ने आपस में बांट लिया। मिस्र का राज्य **तालेमाइओस् सोतेर** को मिला। उसे तालेमी-प्रथम भी कहा जाता है।

तालेमी-प्रथम एक विद्यानुरागी शासक था। उसने सिकंदरिया में एक संग्रहालय (म्यूजियम) की स्थापना की।[2] यह संग्रहालय एक प्रकार का शोध-संस्थान था। राजा ने यहां कवियों, कलाकारों, ज्योतिषियों और गणितज्ञों को आमंत्रित किया। उन्हें स्वतंत्र चिंतन और गवेषणा की पूरी छूट थी। राज्य की ओर से उन्हें वेतन मिलता था।

सिकंदरिया के संग्रहालय के समीप धीरे-धीरे एक विशाल ग्रंथालय स्थापित हो गया था। विद्वानों का अनुमान है कि ईसा पूर्व पहली सदी में सिकंदरिया के ग्रंथालय में करीब 7,00,000 पुस्तकें जमा हो गई होंगी। पेपीरस और चर्मपटों पर लिखी गई यूनानी ज्ञान-विज्ञान की वे पुस्तकें कुंडलियों के आकार की थीं। बाद में वह समूचा ग्रंथालय नष्ट हो गया। ईसा की पांचवीं सदी में सिकंदरिया की विदुषी गणितज्ञा **हाइपेशिया** को ईसाइयों की भीड़ ने जिंदा जला दिया (415 ई.)। उसके साथ ही सिकंदरिया के संग्रहालय का अवसान हो गया।[3]

सिकंदरिया में आकर बसने के बाद यूक्लिड का वहां के संग्रहालय तथा ग्रंथालय से क्या संबंध था, इसके बारे में कोई स्पष्ट सूचना नहीं मिलती।

जानकारी मिलती है कि महान यूनानी गणितज्ञ **एपोलोनियस** (लगभग 225 ई. पू.) को यूक्लिड के शिष्यों ने गणित पढ़ाया था ।[4] इसलिए स्पष्ट है कि यूक्लिड सिकंदरिया के संग्रहालय में या अपने घर पर कुछ शिष्यों को गणित पढ़ाते थे । यह भी स्पष्ट होता है कि ईसा पूर्व तीसरी सदी के पूर्वार्ध में सिकंदरिया में यूक्लिड का निवास था । मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि 300 ई. पू. के आसपास यूक्लिड सिकंदरिया में पहुंच गए थे ।

यूक्लिड के जीवन के बारे में कुछ भी जानकारी नहीं मिलती । पर उनके बारे में दो किस्से मशहूर हैं । ये किस्से काफी बाद के दो यूनानी लेखकों के ग्रंथों में देखने को मिलते हैं । किस्से भले ही सच न हों, परंतु इनसे यूक्लिड के व्यक्तित्व के बारे में जानकारी मिलती है ।

यूक्लिड (लगभग 300 ई.पू.)

एक बार राजा तालेमी-सोतेर ने यूक्लिड से पूछा—''क्या ज्यामिति को जल्दी सीखने का कोई आसान तरीका नहीं है ?''

यूक्लिड ने बेझिझक जवाब दिया—''राजन् ! ज्यामिति के लिए कोई राजमार्ग नहीं है।'' यानी, ज्यामिति को झट-पट सीखने का कोई आसान तरीका नहीं है। सच्चाई भी यही है।

दूसरा किस्सा भी ऐसी ही सच्चाई व्यक्त करता है। किसी शिष्य ने यूक्लिड से ज्यामिति पढ़नी आरंभ कर दी थी। पहला ही प्रमेय पढ़ने के बाद उसने यूक्लिड से पूछा—''लेकिन ज्यामिति के ये प्रमेय पढ़ने से मुझे क्या लाभ होगा?'' यूक्लिड ने अपने दास (नौकर) को बुलाकर कहा—''इसे एक ओबोल (सिक्का) दे दो, क्योंकि यह विद्या से धन कमाने की कामना रखता है।''
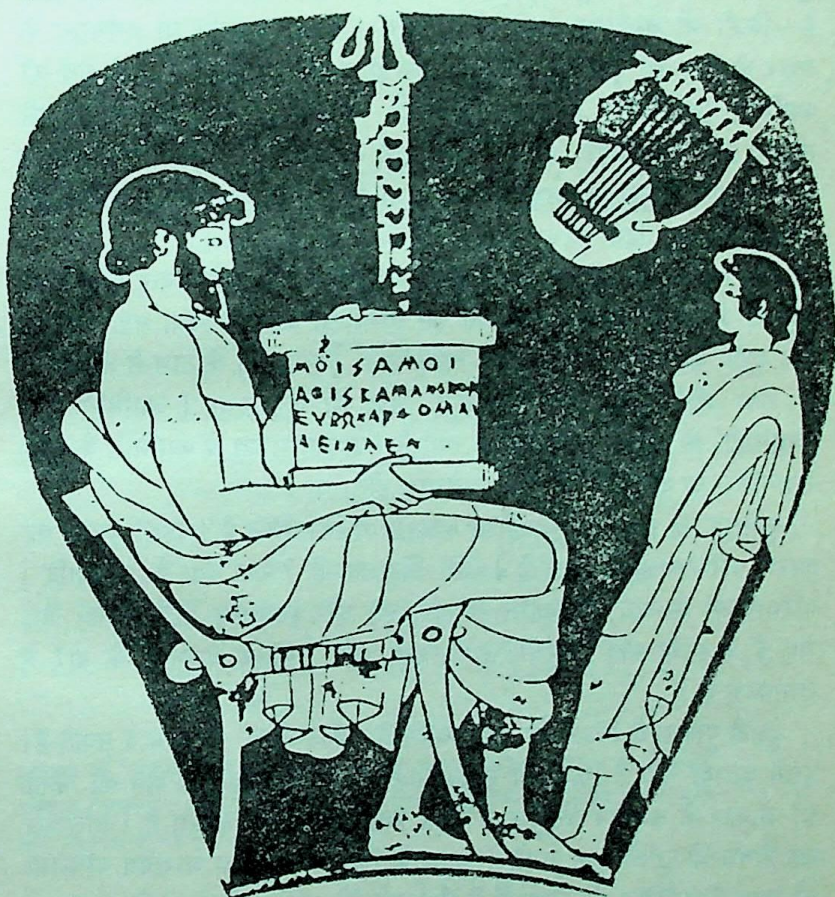
ईसा पूर्व पांचवीं सदी के एक कटोरे पर अंकित
यूनानी शिक्षा-पद्धति का एक दृश्य

बस, यूक्लिड के बारे में केवल यही दो किस्से मालूम हैं। यूक्लिड की तरह ही भारत के भी अनेक महापुरुषों के जीवन के बारे में हमें कोई जानकारी नहीं मिलती। केवल उनका कृतित्व ही उपलब्ध है। जैसे, यदि पूछा जाए कि आर्यभट-प्रथम कौन थे, तो उत्तर होगा—23 साल की छोटी उम्र में कुसुमपुर में 'आर्यभटीयम्' की रचना करनेवाले महान गणितज्ञ-ज्योतिषी। यूक्लिड कौन थे? 300 ई. पू. के आसपास सिकंदरिया में ज्यामिति के मूलतत्व की रचना करनेवाले महान यूनानी गणितज्ञ। इसलिए अब हम यूक्लिड के महान ग्रंथ 'मूलतत्व' पर ही विचार करेंगे।

यूक्लिड के ग्रंथ का यूनानी नाम **स्टोइकेइया** था। इस शब्द का अर्थ होता है—किसी भी वस्तु का सबसे छोटा घटक। सरलतम ध्वनि या वर्णमाला के अक्षर के लिए भी इस शब्द का इस्तेमाल होता था। यूक्लिड ने अपने ग्रंथ को **ज्यामिट्री** (ज्यामिति) इसलिए नहीं कहा, क्योंकि इस शब्द का अर्थ काफी सीमित है। **'ज्या-मिट्री'** का अर्थ है—'भूमि का मापन'। यूक्लिड ने रेखागणित के अपने ग्रंथ में मूलभूत तत्वों पर बल दिया है, इसीलिए उन्होंने इसे **स्टोइकेइया** (मूलतत्व) नाम दिया।

ईसा की 12वीं सदी में एक अरबी हस्तलिपि से जब पहली बार यूक्लिड के ग्रंथ का लैटिन में अनुवाद हुआ, तो इसे **एलिमेंट्स** का नाम दिया गया। उसके बाद यूरोप की भाषाओं में यह ग्रंथ 'एलिमेंट्स' (मूलतत्व) के नाम से ही प्रसिद्ध हो गया और उसके साथ 'ज्यामिट्री' शब्द भी जुड़ गया। ज्यामिति शब्द 'ज्यामिट्री' के अनुकरण पर बनाया गया है। प्राचीन भारत में ज्यामिति के लिए रेखागणित या क्षेत्रमिति शब्द का इस्तेमाल होता था।

यूक्लिड का ग्रंथ 13 पुस्तकों या अध्यायों में विभाजित है। पहली पुस्तक का आरंभ **परिभाषाओं** से होता है। जैसे, बिंदु क्या है? रेखा क्या है? इत्यादि। परिभाषाओं के बाद **अभिगृहीत** (पोस्टुलेट्स) और **स्वयंतथ्य** (एक्सियम्स) दिए गए हैं। इनके बाद त्रिभुजों, समांतरकों और समांतर चतुर्भुजों के बारे में जानकारी है।

दूसरी पुस्तक के विषय को हम 'ज्यामितीय बीजगणित' का नाम दे सकते हैं। इसमें बताया गया है कि सीधी रेखाओंवाले किसी भी आकार के क्षेत्र को किसी भी आकार के समांतर चतुर्भुज में किस प्रकार बदला जा सकता है। आजकल यह विषय बीजगणित के दायरे में आता है। यूनानी गणितज्ञ भारतीय गणितज्ञों की तरह बीजगणित की क्रियाओं में दक्ष नहीं थे; इसलिए वे बीजगणित के सूत्रों को ज्यामितीय कृत्यों की सहायता से ही व्यक्त करते थे।

तीसरी पुस्तक वृत्त की ज्यामिति से संबंधित है। चौथी पुस्तक में वृत्त के

यूक्लिड के 'मूलतत्व' का ताबित इब्न कुर्रा द्वारा अरबी में किए गए संशोधित अनुवाद (लगभग 890 ई.) का एक पृष्ठ, जिसमें पाइथेगोरस के प्रमेय की आकृति और उपपत्ति दी गई है ।

भीतर और बाहर, परिधि को स्पर्श करती हुई, बनाई गई बहुभुजाकृतियों के बारे में कृत्य हैं।

पांचवीं पुस्तक में **अनुपात-सिद्धांत** (थ्योरी आफ प्रोपोर्शन) की जानकारी है। यह सिद्धांत परिमेय तथा अपरिमेय, दोनों ही परिमाणों पर लागू होता है। यूक्लिड के करीब सौ साल पहले के यूनानी गणितज्ञ **यूदोक्सु** ने अनुपात-सिद्धांत को जन्म दिया था।[5] यूनानी गणित के प्रसिद्ध इतिहासकार **थॉमस हीथ** ने इस सिद्धांत को 'यूनानी गणित का मुकुट' कहा है। छठी पुस्तक में अनुपात-सिद्धांत का समतल ज्यामिति में उपयोग समझाया गया है।

यूक्लिड के 'मूलतत्व' के लैटिन अनुवाद (हस्तलिपि : लगभग 1204 ई.) का एक पृष्ठ, जिसमें संख्या-सिद्धांत से संबंधित नौवीं पुस्तक के कुछ साध्य दिए गए हैं

सातवीं, आठवीं और नौवीं पुस्तकों का विषय अंकगणित है । इनमें विभिन्न किस्म की संख्याओं की, यानी संख्या-सिद्धांत की जानकारी है । दसवीं पुस्तक में अपरिमेय परिमाणों की विशद व्याख्या की गई है । ग्यारहवीं, बारहवीं तथा तेरहवीं पुस्तकें ठोस ज्यामिति से संबंधित हैं । समठोसों—घन, पिरामिड, अष्टफलक, द्वादशफलक तथा विंशतिफलक—की चर्चा के साथ तेरहवीं पुस्तक अर्थात् संपूर्ण ग्रंथ समाप्त होता है । यूक्लिड के ग्रंथ के यूनानी टीकाकार **प्रोक्लुस** (410-85 ई.) ने लिखा है कि यूक्लिड अपनी तेरहवीं पुस्तक को, अर्थात् समठोसों की ज्यामिति को ज्यामितीय ज्ञान की चरमोन्नति मानते थे । प्लेटो ने भी इन समठोसों को बड़ा महत्व दिया था, पर यूक्लिड प्लेटो के दार्शनिक विचारों के अनुयायी नहीं थे ।

यूक्लिड के 'मूलतत्व' में 13 पुस्तकें ही थीं । मगर कुछ पुराने संस्करणों में दो और पुस्तकें—चौदहवीं और पंद्रहवीं—देखने को मिलती हैं । इनकी रचना यूक्लिड के बाद के दो अन्य गणितज्ञों ने की थी ।

कुछ लेखक यूक्लिड को 'ज्यामिति का पितामह' मानते हैं, पर यह कथन सही नहीं है । यूक्लिड के ग्रंथ में सजाई गई ज्यादातर जानकारी उनके काफी पहले खोजी गई थी । प्राचीन मिस्र के पंडितों ने ज्यामिति के बारे में काफी तथ्य एकत्र किए थे । 'मूलतत्व' में दिए गए कई प्रमेय यूक्लिड के पहले के यूनानी गणितज्ञों ने खोजे थे और उनमें से कुछ ने 'ज्यामिति के मूलतत्व' नाम से पुस्तकें भी लिखी थीं । उदाहरण के लिए, यूक्लिड ने अपने 'मूलतत्व' में थेलस्, पाइथेगोरस, किओस के हिप्पोक्रेटस्, थियोडोरस, यूदोक्सु आदि कई पूर्ववर्ती गणितज्ञों की खोजों का समावेश किया है । वस्तुतः यूक्लिड की ज्यामिति की अनेक चीजें यूनानियों के भी काफी पहले भारत, मिस्र, बेबीलोन और चीन में खोजी जा चुकी थीं । तथाकथित 'पाइथेगोरस का प्रमेय', पाइथेगोरस के भी काफी पहले, भारत, चीन और बेबीलोन के गणितज्ञों को ज्ञात था । यह प्रमेय हमारी **शुल्वसूत्र** नामक पुस्तकों में भी देखने को मिलता है।[6]

तात्पर्य यह कि यूक्लिड का ग्रंथ करीब एक हजार साल के ज्यामितीय ज्ञान की चरमोन्नति है । लेकिन यह सोचना भी गलत होगा कि यूक्लिड के ग्रंथ में सबकुछ दूसरों का ही है । इसमें स्वयं यूक्लिड का भी काफी अनुसंधान शामिल है।

यूक्लिड के 'मूलतत्व' को महज एक पाठ्य-पुस्तक समझना भी गलत है । आजकल स्कूलों में रेखागणित की जो पाठ्य-पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं, उनके लेखकों को हम यथार्थ में गणितज्ञ नहीं मान सकते । लेकिन यूक्लिड को हमें गणितज्ञ ही मानना चाहिए । एक तो उनके ग्रंथ की अनेक चीजें स्वयं उन्होंने खोजी हैं । दूसरे, उन्होंने उस समय तक ज्ञात समूचे ज्यामितीय ज्ञान को एक

काफी कठोर तार्किक ढांचे में प्रस्तुत किया । परिणामतः यूक्लिड के पहले के ज्यामितिकारों की पुस्तकें अनुपयोगी हो गईं और केवल यूक्लिड के 'मूलतत्व' ही आगे की 22 सदियों तक पाठ्य-ग्रंथ के रूप में उपयोग में लाए गए ।

यूक्लिड के 'मूलतत्व' की सबसे अद्‌भुत चीज है इसका तार्किक ढांचा । यूक्लिड ने सबसे पहले कुछ परिभाषाएं दी हैं । जैसे, बिंदु वह है जिसका न कोई अंश होता है और न परिमाण; चौड़ाई रहित लंबाई को रेखा कहते हैं; इत्यादि । उसके बाद यूक्लिड ने कुछ अभिगृहीत (पोस्टुलेट्स) दिए हैं । इन्हें देने के पहले उन्होंने लिखा है—"हम इसे मान लेंगे कि…"; अर्थात्, इन्हें हमें, बिना किसी उपपत्ति के, स्वीकार कर लेना है । यूक्लिड ने पांच अभिगृहीत दिए हैं ।

كتاب تحرير اصول لاوقليدس
من تاليف خوجه
نصير الدين الطوسي

यूक्लिड के 'मूलतत्व' के नसीर अल्-दीन अल्-तूसी (तेरहवीं सदी) के संशोधित अरबी संस्करण का मुखपृष्ठ

अभिगृहीतों के बाद यूक्लिड ने कुछ स्वयंतथ्य (एक्सियम्स) दिए हैं । यूनानी भाषा में 'एक्सियम' का अर्थ होता है 'सम्मान करने योग्य' । इन्हें सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं होती। इन्हें बेहिचक स्वीकार कर लिया जाता है । जैसे, यूक्लिड का एक स्वयंतथ्य है—"यदि समान वस्तुओं में से समान वस्तुएं निकाल ली जाएं, तो समान वस्तुएं ही शेष रहती हैं ।"

अधिकांश विद्वानों का मत है कि परिभाषाओं, अभिगृहीतों और स्वयंतथ्यों की नींव पर ज्यामिति का भवन खड़ा करने की प्रेरणा यूक्लिड को यूनान के महान दार्शनिक **अरस्तू** (अरिस्टॉटल : 384-322 ई. पू.) से मिली थी । लेकिन यूक्लिड ने जिस निगमनात्मक (डिडक्टिव) विधि में ज्यामिति को प्रस्तुत किया है, वह उनकी अपनी खोज है ।

यूक्लिड के 'मूलतत्व' के प्रचार-प्रसार का इतिहास काफी दिलचस्प है । रोमन राजनीतिज्ञ **सिसरो** (106-43 ई. पू.) ने यूक्लिड के 'मूलतत्व' का उल्लेख किया है । ईसा की छठी सदी में इस ग्रंथ का सीरियाई भाषा में अनुवाद हुआ था। फिर आठवीं सदी में, बगदाद के खलीफाओं के शासनकाल में, सीरियाई भाषा से अरबी में इस ग्रंथ के दो अनुवाद हुए । अरबी गणितज्ञ यूक्लिड के 'मूलतत्व' से भली-भांति परिचित थे ।

'मूलतत्व' का अरबी से लैटिन भाषा में पहला पूर्ण अनुवाद इंग्लैंड के बाथ-निवासी एडेलार्ड ने 1120 ई. में किया । उसके बाद लैटिन में और भी कुछ अनुवाद हुए । 'मूलतत्व' का लैटिन अनुवाद पहली बार 1482 ई. में वेनिस में छपा । उसके ग्यारह साल बाद ही पहली बार यूनानी भाषा से लैटिन में अनुवाद संभव हुआ । 'मूलतत्व' का पहला अंग्रेजी अनुवाद लंदन से 1570 ई. में छपा । उसके बाद यूरोप की अनेक भाषाओं में इस ग्रंथ के अनुवाद प्रकाशित हुए ।

यूक्लिड के 'मूलतत्व' का अनुवाद हमारे देश में भी हुआ । जयपुर के राजा सवाई जयसिंह-द्वितीय के दरबार के ज्योतिषी **जगन्नाथ पंडित** ने 1719 ई. में रेखागणित पर एक ग्रंथ की रचना की । इसमें 15 पुस्तकें हैं । जगन्नाथ पंडित ने यूक्लिड के 'मूलतत्व' का यह अनुवाद किसी अरबी हस्तलिपि से किया था । बाद में इस संस्कृत अनुवाद का पं. शशिपाल शर्मा ने हिंदी में अनुवाद किया और वह प्रकाशित हुआ ।

यद्यपि यूक्लिड अपनी महान कृति 'मूलतत्व' के लिए ही सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं, पर उन्होंने कुछ और ग्रंथ भी लिखे थे । उनमें से कुछ ग्रंथ आज उपलब्ध नहीं हैं। उपलब्ध ग्रंथों में एक है **डेटा**, जिसमें 'मूलतत्व' की पहली छह पुस्तकों की ज्यामिति को 94 साध्यों में समझाया गया है । दूसरी कृति आकृतियों के विभाजनों से संबंधित है । **फेनोमेना** नामक कृति में गोलीय ज्यामिति का विवरण है । यूक्लिड की प्रकाशिकी (आप्टिक्स) पर भी एक पुस्तक उपलब्ध है । उन्होंने **संगीत के मूलतत्व** नामक पुस्तक की भी रचना की । कई यूनानी गणितज्ञों ने संगीत पर भी पुस्तकें लिखी हैं ।

यूक्लिड की **शांकव** तथा **तल-बिंदुपथ** पर पुस्तकें लुप्त हो गई हैं । उनके **सिउडारिया** ग्रंथ के लुप्त हो जाने से प्रारंभिक ज्यामिति के विद्यार्थियों का बड़ा नुकसान हुआ है । यूक्लिड ने उस ग्रंथ में समझाया था कि ज्यामिति के प्रमेयों तथा कृत्यों को हल करते समय किस प्रकार की और कहां-कहां गलतियां होती हैं । यूक्लिड की और भी कुछ कृतियां लुप्त हो गई हैं ।

यूक्लिड के महान ग्रंथ 'मूलतत्व' ने, न केवल 22 सदियों तक ज्यामिति का प्रचार-प्रसार किया, बल्कि आधुनिक काल में कुछ नई ज्यामितियों के निर्माण में भी योग दिया है । ये हैं **अ-यूक्लिडीय ज्यामितियां** । अपने 'मूलतत्व' में यूक्लिड

ने 5 अभिगृहीत दिए हैं। इनमें पांचवां अभिगृहीत समांतर रेखाओं के बारे में है। यूक्लिड की तरह हम भी आमतौर पर यह स्वीकार कर लेते हैं कि समांतर रेखाएं एक-दूसरे से अनंत दूरी पर जाकर ही मिलती हैं।

यूक्लिड के बाद दर्जनों गणितज्ञों ने उनके इस पांचवें अभिगृहीत पर गंभीरता से विचार किया। कइयों ने इसे सिद्ध करना जरूरी समझा, पर सिद्ध नहीं कर पाए। आधुनिक काल में कुछ गणितज्ञों ने यूक्लिड के पांचवें अभिगृहीत को बदलकर या अस्वीकार करके नई **अ-यूक्लिडीय ज्यामितियों** को जन्म दिया। हंगेरी के गणितज्ञ **जेनोस बोल्याई** (1802-60 ई.) ने यूक्लिड के इस पांचवें अभिगृहीत को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने एक नए अभिगृहीत के आधार पर एक नई ज्यामिति का निर्माण किया। बोल्याई की इस अ-यूक्लिडीय ज्यामिति में एक रेखा के समांतर किसी बाहर के बिंदु से अनेक समांतर रेखाएं खींची जा सकती हैं। इसी प्रकार, रूसी गणितज्ञ **लोबाचेवस्की** (1793-1856 ई.) ने एक नई अ-यूक्लिडीय ज्यामिति का सृजन किया। महान जर्मन गणितज्ञ **रीमान** (1826-66 ई.) ने किसी भी समांतर का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया और इसी मान्यता के आधार पर एक नई अ-यूक्लिडीय ज्यामिति की रचना कर डाली।

महान **आइंस्टाइन** ने एक अ-यूक्लिडीय ज्यामिति का उपयोग करके ही अपने आपेक्षिकता-सिद्धांत का प्रतिपादन किया था। उनका विश्वास था कि अ-यूक्लिडीय ज्यामिति ही विशाल विश्व की वास्तविक ज्यामिति है। लेकिन जहां तक हमारे सीमित भौतिक जीवन का सवाल है, इसमें यूक्लिड की ज्यामिति ही उपयोगी है।

यूक्लिड का योगदान चिरस्थायी बना रहेगा। आइंस्टाइन ने यूक्लिड की प्रतिभा के बारे में लिखा है—"उसने (यूनान ने) पहली बार एक तार्किक योजना के बौद्धिक चमत्कार को जन्म दिया। इस चमत्कार के कथन एक-दूसरे से इतनी दृढ़ता से फलित होते हैं कि एक भी उपपत्ति पर यत्किंचित भी संदेह नहीं किया जा सकता—ऐसी है यूक्लिड की ज्यामिति!"

सहायक ग्रंथ

1. इस्तेल्ले ए. डेलेसी—**यूक्लिड एंड ज्यामिट्री**, लंदन 1965
2. वी. स्मिल्गा—**इन द सर्च फार ब्यूअटी**, मास्को 1970
3. आइजेक टॉढंटर (संपा.)—**यूक्लिड्स एलिमेंट्स** (पुस्तकें : 1 से 6, 11 और 12), लंदन 1961
4. जार्ज सार्टन—**ए हिस्ट्री आफ साइंस** (खंड 2), न्यूयार्क 1965

5. डेविड यूजेन स्मिथ—**हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स** (दो खंड), डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1953
6. गुणाकर मुले—**ज्यामिति की कहानी**, नई दिल्ली 1990

संदर्भ और टिप्पणियां

1. **इन द सर्च फार ब्यूअटी**, पृ. 40
2. यह म्यूजियम (यूनानी : मौसेइयोन) आरंभ में म्यूजेस का मंदिर था। जेउस की नौ पुत्रियां म्यूजेस कहलाती थीं और ज्ञान-विज्ञान की अधिष्ठात्री समझी जाती थीं। सिकंदरिया का म्यूजियम इतना प्रसिद्ध हो गया कि कालांतर में कला और पुरातत्व की वस्तुओं के संग्रह के लिए यह शब्द प्रयुक्त होने लगा।
3. देखिए इस पुस्तक में 'गणितज्ञ महिलाएं' प्रकरण के अंतर्गत हाइपेशिया के बारे में विस्तृत जानकारी।
4. पेरगा (क्षुद्र एशिया)-निवासी एपोलोनियस (लगभग 262-190 ई. पू.) यूक्लिड के करीब सौ साल बाद हुए। एपोलोनियस का क्रांतिकारी कृतित्व शांकव-गणित (कोनिक्स) से संबंधित है। तीन प्रकार के शंकु-काटों (कोनिक सेक्शन्स) के लिए उन्होंने इलिप्स (दीर्घवृत्त), पैराबोला (परवलय) तथा हाइपरबोला (अतिपरवलय) नाम सुझाए और इन वक्रों के लिए व्यापक ज्यामितीय नियम प्रस्तुत किए।
5. क्निदुस-निवासी यूदोक्सु (408-355 ई. पू.) अफलातून (प्लेटो) की एकाडेमी के विद्यार्थी थे। वह इतने गरीब थे कि एकाडेमी के आसपास की घनी बस्ती में न रहकर एथेन्स के बंदरगाह की झोपड़पट्टी में रहते थे और वहां से एकाडेमी में पढ़ने आते थे। ज्यामिति और खगोल-विज्ञान के क्षेत्र में यूदोक्सु का योगदान बड़ा महत्वपूर्ण है।
6. शुल्व का अर्थ है रस्सी। प्राचीन भारत में रस्सी से मापकर ज्यामितीय आकृतियां बनाई जाती थीं। संस्कृत की जिन कृतियों में वेदियों के निर्माण के लिए सूत्र दिए गए हैं, उन्हें शुल्वसूत्र कहते हैं। आज बौधायन, आपस्तंब, कात्यायन आदि के शुल्वसूत्र उपलब्ध हैं। विस्तृत जानकारी के लिए देखिए मेरी 'ज्यामिति की कहानी' पुस्तक।

आर्किमीदीज़

घटना 1906 ई. की है। डेनमार्क के एक विद्वान जोहान लुडविग हाइबर्ग प्राचीन यूनान के वैज्ञानिकों के ग्रंथों की खोजबीन में जुटे हुए थे। वे टर्की के इस्तांबुल (कॉन्स्टेंटिनोपल) नगर पहुंचे। इस प्राचीन नगर में ईसा की पंद्रहवीं सदी तक यूनानी ग्रंथ सुरक्षित थे। प्राचीन यूनान में पुस्तकें पेपीरस या चर्मपट पर लिखी जाती थीं। उस समय तक आज-जैसे कागज की खोज नहीं हुई थी।

हाइबर्ग ने इस्तांबुल में ईसाइयों के एक पुराने पुस्तक-भंडार में एक नई हस्तलिपि की खोज की। वह हस्तलिखित पुस्तक चर्मपट पर लिखी गई थी। हाइबर्ग ने जब पुस्तक को पढ़ना शुरू किया, तो पता चला कि उसमें ईसाई धर्म से संबंधित पूजा-पाठ की चर्चा है। वे बड़े निराश हुए। उन्हें तो प्राचीन यूनान के खोए हुए वैज्ञानिक ग्रंथों की तलाश थी।

हाइबर्ग ने उस हस्तलिखित पुस्तक को पुनः गहराई से देखा। तब उन्हें लगा कि उस चर्मपट पर पहले कोई दूसरी पुस्तक लिखी गई थी। उस पुरानी पुस्तक के अक्षरों को मिटाकर ईसाइयों ने उसी चर्मपट पर दूसरी पुस्तक लिख दी थी। हाइबर्ग यह सब देखकर चकित रह गए।

हाइबर्ग जानते थे कि पुराने समय में पेपीरस[1] या चर्मपट प्राप्त करना कठिन होता था। इसलिए अक्सर चर्मपट पर लिखी गई पुरानी पुस्तक के अक्षरों को मिटाकर उसी पर नई पुस्तक लिख दी जाती थी। उस चर्मपट के साथ भी ऐसा ही हुआ था।

हाइबर्ग खोजबीन में जुट गए कि उस चर्मपट पर पहले लिखी गई पुस्तक कौन-सी थी। लेकिन मिटाए गए अक्षरों को कैसे पढ़ा जाए? तब तक वैज्ञानिकों ने उपाय खोज लिया था कि यदि चर्मपट पर कुछ खास रसायन लगाए जाएं, तो पुराने अक्षर पुनः साफ नजर आ जाते हैं।

उस चर्मपट पर पुराने अक्षर जब साफ नजर आने लगे, तो हाइबर्ग ने उन्हें पढ़ना शुरू किया। लेकिन यह क्या? यह तो यूनानी भाषा में लिखी गई गणित की पुस्तक है! यह तो महान यूनानी गणितज्ञ आर्किमीदीज़ की पुस्तक है! हाइबर्ग को यह भी पता चला कि वह आर्किमीदीज़ की एक ऐसी पुस्तक है जिसकी दुनिया को कोई जानकारी नहीं थी। पुस्तक का यूनानी नाम था
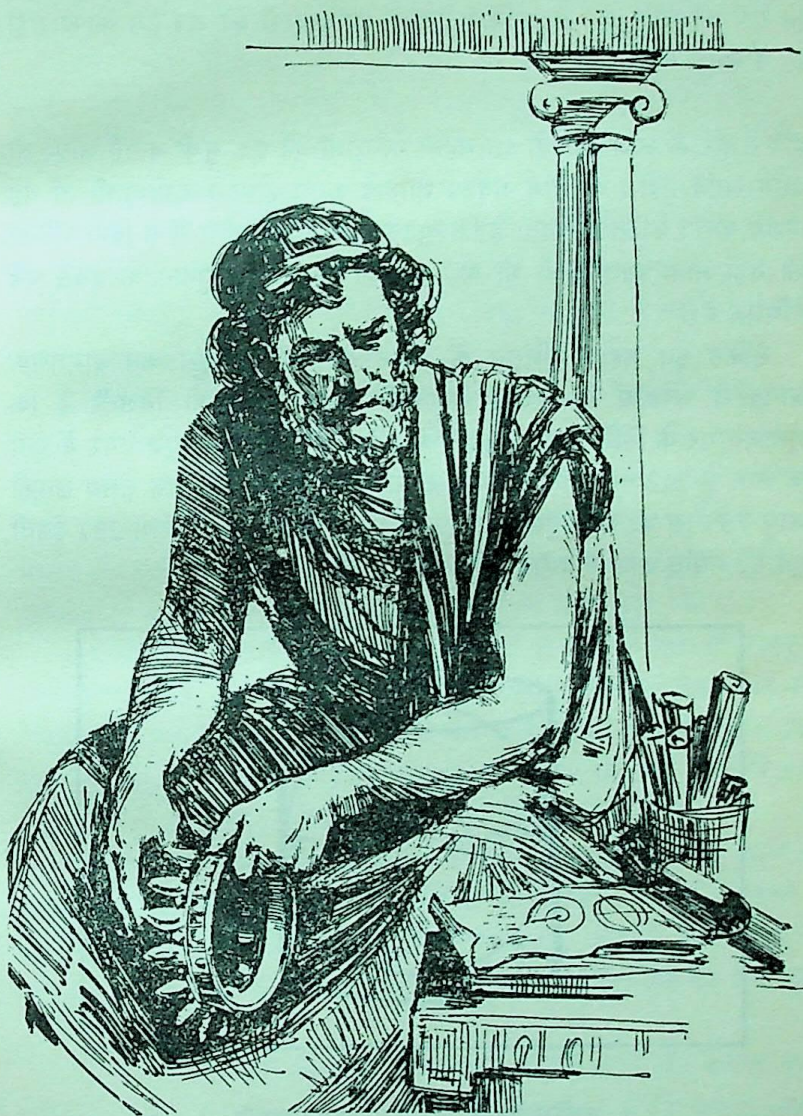
आर्किमीदीज (283-212 ई. पू.)

यूफोडोस यानी 'विधि' ।

यह एक महान खोज थी । संसार के एक महान गणितज्ञ का एक नया ग्रंथ खोजा गया था । आर्किमीदीज़ ने इस ग्रंथ में जानकारी दी है कि उन्होंने गणित और यांत्रिकी के अपने आविष्कार किन विधियों या तरीकों से किए हैं । अतः आर्किमीदीज़ की खोजों को ठीक से समझने के लिए इस ग्रंथ का बड़ा महत्त्व है। इस ग्रंथ की खोज होने से आर्किमीदीज़ के आविष्कारों को अब हम काफी सही ढंग से समझ सकते हैं ।

यदि संसार के आज तक के दस महान गणितज्ञों की एक सूची बनाई जाए, तो उसमें आर्किमीदीज़ का नाम अवश्य शामिल करना होगा । कभी-कभी तो यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि न्यूटन और आर्किमीदीज़ में से किस प्रतिभा को बड़ा माना जाए । जो भी हो, आर्किमीदीज़ प्राचीन यूनान के सबसे बड़े गणितज्ञ थे ।

लेकिन इस महान गणितज्ञ के जीवन के बारे में बहुत कम प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध है । ठोस जानकारी केवल इतनी ही मिलती है कि भूमध्यसागर के सिसिली द्वीप (इटली के दक्षिण में) के साइराक्यूज नगर में ईसा के जन्म से 212 वर्ष पूर्व आर्किमीदीज़ की मृत्यु हुई थी और उस समय उनकी आयु 75 साल की थी । इस प्रकार, पता चलता है कि उनका जन्म 287 ईसवी पूर्व में, अर्थात् आज से करीब तेईस सौ साल पहले हुआ था ।
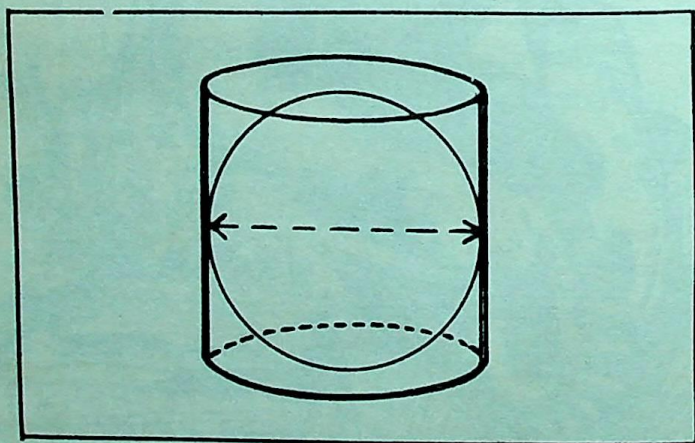
आर्किमीदीज की समाधि पर अंकित आकृति :
बेलन (सिलिंडर) के भीतर गोल

आर्किमीदीज़ के पिता का नाम **फाइदियस** था और वे ज्योतिष के जानकार थे। स्पष्ट है कि बालक आर्किमीदीज़ को गणित व ज्योतिष के अध्ययन की प्रेरणा अपने पिता से ही मिली होगी। साइराक्यूज के तत्कालीन शासक, हीरोन-द्वितीय, आर्किमीदीज़ के मित्र और रिश्तेदार थे। आर्किमीदीज़ ने सिकंदरिया के प्रसिद्ध विद्याकेंद्र में कुछ साल गुजारे थे। आर्किमीदीज़ ने अपनी कुछ पुस्तकें सिकंदरिया के गणितज्ञ इराटोस्थनीज और डोसिथिओस को समर्पित की हैं।[2]

आर्किमीदीज़ को प्रायः उनके यांत्रिक आविष्कारों के लिए ही ज्यादा याद किया जाता है, परंतु वास्तव में वे एक महान ज्यामितिकार भी थे। आर्किमीदीज़ ने अपने मित्रों से अनुरोध किया था कि वे उनकी समाधि पर एक ज्यामितीय आकृति खुदवा दें। आर्किमीदीज़ ने बेलन और गोले के आयतनों और इनकी सतहों के अनुपातों की खोज की थी।[3] अपनी इस खोज को वह बड़ा महत्व देते थे, इसलिए उनकी समाधि पर बेलन के भीतर स्थापित किए गए गोले की आकृति अंकित कर दी गई थी। आधुनिक काल में आर्किमीदीज़ के समाधि-स्थल को पुनः खोज लिया गया है।[4]

आर्किमीदीज़ के देहावसान की घटना बड़ी दर्दनाक है। सेनापति मार्सेलुस के नेतृत्व में रोम के जहाजी बेड़े ने 212 ई. पू. में साइराक्यूज नगर पर हमला किया था। अपने नगर की रक्षा के लिए आर्किमीदीज़ ने भी भरपूर सहयोग दिया। आर्किमीदीज़ के यंत्रों ने शत्रु के जहाजों पर भारी गोले बरसाकर उनमें से बहुतों को डुबो दिया था। आर्किमीदीज़ द्वारा बनाए गए कटोरेनुमा शीशों से सूर्य-किरणों को केंद्रित करके शत्रु के कई जहाजों को जला दिया गया।

आर्किमीदीज़ के इन यंत्रों के कारण रोमन सेना काफी समय तक साइराक्यूज पर अधिकार नहीं कर पाई। परंतु अंत में छल-कपट से रोमन सेना नगर पर कब्जा करने में सफल हुई। आर्किमीदीज़ उस समय गणित का एक सवाल हल करने में खोए हुए थे। वे अक्सर बालू या धूल पर रेखाएं खींचकर सवाल के हल ढूंढ़ते रहते थे। उस समय भी वह बालू पर कुछ रेखाएं खींच रहे थे।

उसी समय एक रोमन सैनिक उनके पास पहुंचा। आर्किमीदीज़ को देखते ही उसने म्यान से तलवार निकाल ली। आर्किमीदीज़ ने कहा—"थोड़ी देर रुको। मैं अभी इस सवाल को हल कर लेता हूं···।" परंतु क्रोध से अंधे सैनिक ने इंतजार नहीं किया और तलवार के एक ही वार से आर्किमीदीज़ का सिर उड़ा दिया!

आर्किमीदीज़ की दर्दनाक मृत्यु, उनके यांत्रिक आविष्कारों और स्वभाव तथा विचारों के बारे में सारी जानकारी ईसा की पहली सदी के प्रसिद्ध यूनानी लेखक **प्लुटार्क** के एक ग्रंथ में मिलती है। प्लुटार्क ने रोमन सेनापति मार्सेलुस की जीवनी लिखी और उसी में प्रसंगवश आर्किमीदीज़ के बारे में भी कुछ जानकारी
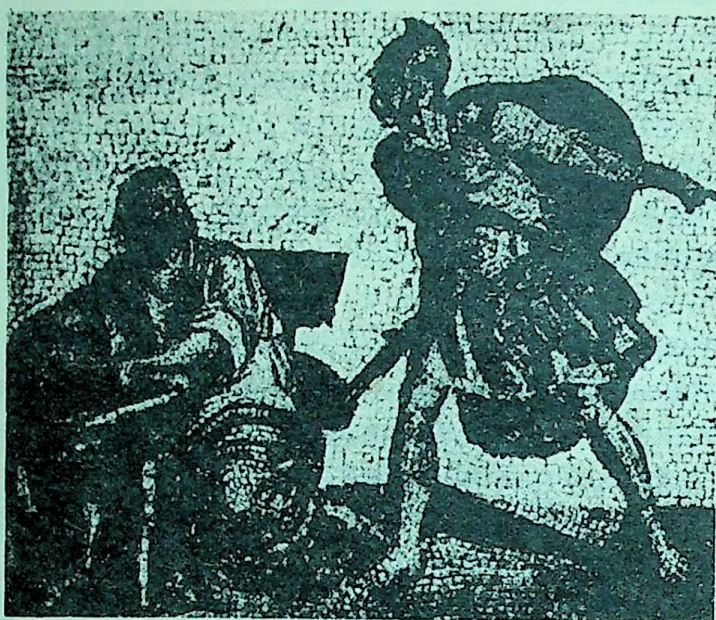
हर्क्यूलेनेयम से प्राप्त एक मोजेक, जिसमें आर्किमीदीज की हत्या को दर्शाया गया है

दे दी । मगर आज आर्किमीदीज़ के संदर्भ में ही मार्सेलुस को स्मरण किया जाता है ।

आज आर्किमीदीज़ की करीब एक दर्जन पुस्तकें उपलब्ध हैं । इनमें सबसे महत्व की ज्यामिति से संबंधित पुस्तकें हैं । **गोल और सिलिंडर** नामक पुस्तक में आर्किमीदीज़ ने गोलों तथा सिलिंडरों के क्षेत्रफलों तथा आयतनों का विवेचन किया है । आर्किमीदीज़ ने एक अन्य पुस्तक में दीर्घवृत्त और परवलय को घुमाने पर बननेवाले ठोसों की चर्चा की है । उन्होंने कुछ सर्पिल वक्रों का भी विवेचन किया है । इनमें से एक वक्र आज भी 'आर्किमीदीज़ का सर्पिल' कहलाता है।[5]

हम जानते हैं कि वृत्त की परिधि और उसके व्यास के अनुपात का मान एक सुनिश्चित संख्या नहीं है । इस अनुपात को हम यूनानी अक्षर π(पाई) से व्यक्त करते हैं और इसका कामचलाऊ मान लेते हैं $3\frac{1}{7}$ या 3.1416 । प्राचीन काल में इस अनुपात का मान ज्ञात करने में गणितज्ञों को बड़ी कठिनाइयां हुई हैं । आर्किमीदीज़ ने इस अनुपात का एक काफी सही मान खोज निकाला । उन्होंने कहा कि π का मान $3\frac{1}{7}$ और $3\frac{10}{71}$ के बीच का होना चाहिए । इतना शुद्ध मान खोजनेवाले वे पहले यूनानी गणितज्ञ थे ।

आर्किमीदीज़ ने एक खास विधि से वृत्त का क्षेत्रफल तथा π का मान ज्ञात
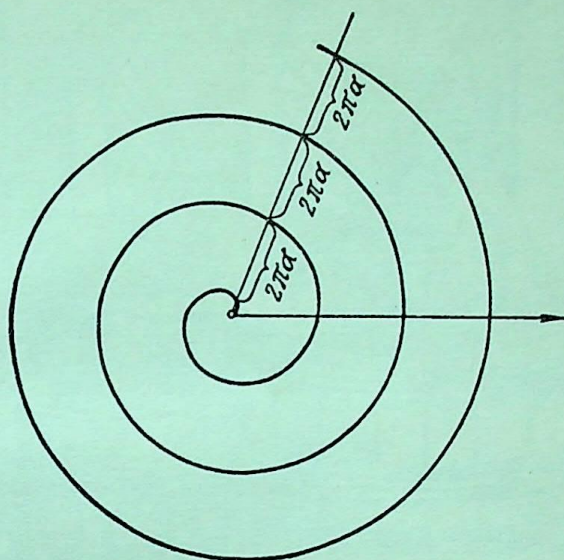
आर्किमीदीज का सर्पिल

किया था ।[6] न्यूटन के समय में विकसित किया गया समाकलन गणित (इंटेग्रेशन) इसी विधि पर आधारित है ।

उस समय तक शून्य पर आधारित **दाशमिक स्थानमान अंक-पद्धति** की खोज नहीं हुई थी । आज सारे संसार में प्रचलित यह अंक-पद्धति भारत की खोज है । यूनानी लोग अपनी वर्णमाला के अक्षरों का अंक लिखने में उपयोग करते थे । इसलिए बड़ी-बड़ी संख्याएं लिखने में उन्हें बड़ी कठिनाई होती थी । आर्किमीदीज़ ने घातांकों का उपयोग करके बड़ी-बड़ी संख्याओं को 10^8, 10^{16}, 10^{32}, 10^{64} आदि के रूप में व्यक्त करने का एक नया तरीका खोज निकाला । इसी के बल पर उन्होंने घोषणा की थी कि वे समूचे विश्व के समस्त बालू-कणों की गिनती करने में समर्थ हैं ।[7]

आर्किमीदीज़ के यांत्रिकी से संबंधित आविष्कार भी बड़े महत्व के हैं । किस्सा मशहूर है कि राजा हीरोन ने आर्किमीदीज़ को मामला सौंपा था कि वह सोने के मुकुट में की गई मिलावट का पता लगाएं । एक दिन आर्किमीदीज़ एक हौज में स्नान कर रहे थे, तो कुछ पानी बाहर उछला । उन्हें लगा कि समस्या का हल मिल गया है और वह नंगे बदन ही साइराक्यूज की सड़क पर यह चिल्लाते हुए दौड़ पड़े—''ह्यूरेका···ह्यूरेका···'' (मिल गया··· मिल गया···) !

आज हम भलीभांति जानते हैं कि आर्किमीदीज़ ने कौन-सी बड़ी चीज खोजी थी । उन्होंने जाना था कि जब कोई वस्तु किसी द्रव में डुबोई जाती है, तो
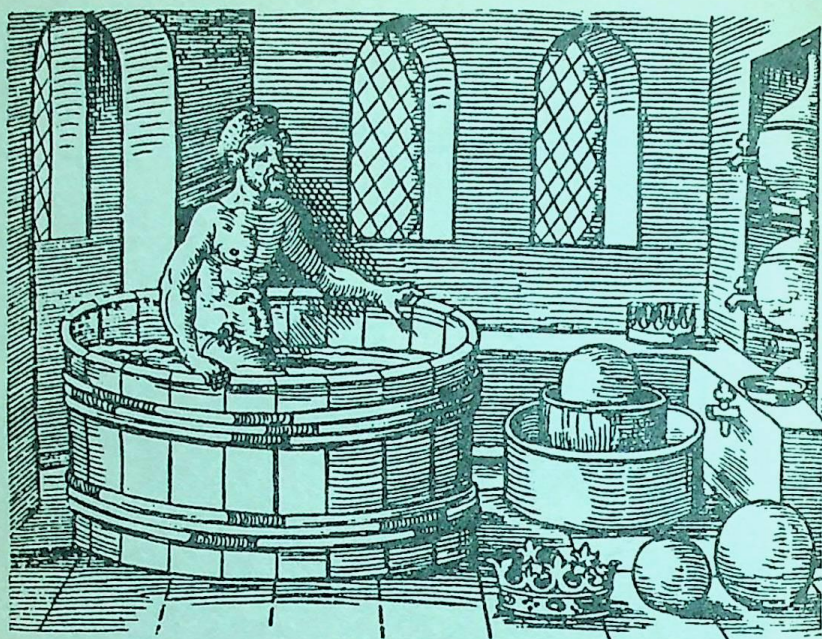
''ह्यूरेका ...ह्यूरेका...'' (मिल गया ...मिल गया...)
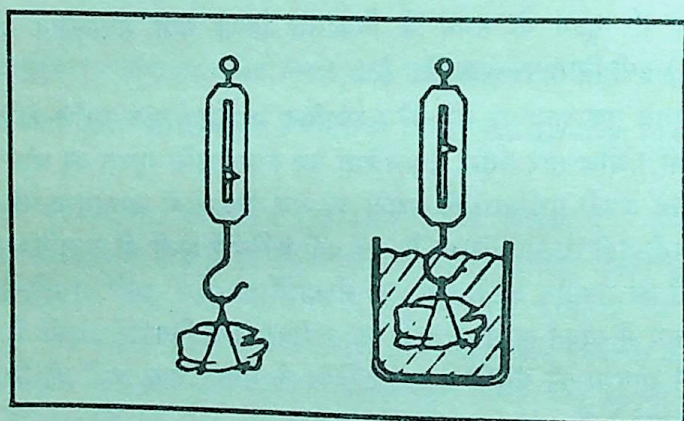
द्रव में डुबोई गई वस्तु का भार उतना कम हो जाता है, जितना कि उससे विस्थापित हुए द्रव का होता है ।

उसका भार कम हो जाता है, जो हटाए गए द्रव के भार के बराबर होता है । आर्किमीदीज़ ने इस बुनियादी सिद्धांत के आधार पर द्रवों के बारे में अनेक नियम खोज निकाले और इस प्रकार **द्रव-स्थिति-विज्ञान** की स्थापना की ।

आर्किमीदीज़ ने घिरनियों और उत्तोलकों के बारे में भी एक पुस्तक लिखी । उत्तोलकों के सिद्धांत को ठीक से समझ जाने के कारण ही आर्किमीदीज़ ने घोषणा की थी कि ''जहाजों को हटाना तो बहुत आसान काम है । यदि पृथ्वी के

बाहर पैर रखने को जगह मिल जाए, तो मैं पृथ्वी को भी इसके स्थान से हटा सकता हूं ।''

आर्किमीदीज़ ने अपने नगर की रक्षा के लिए कई युद्धयंत्रों का आविष्कार किया था । इन्हीं आविष्कारों के कारण उन्हें एक 'यांत्रिक जादूगर' माना जाता रहा । लेकिन प्लुटार्क के अनुसार, अपने इन यांत्रिक आविष्कारों में आर्किमीदीज़ को कोई दिलचस्पी नहीं थी । वे चाहते थे कि उनके इन यांत्रिक आविष्कारों को कोई याद भी न करे । आर्किमीदीज़ को सबसे ज्यादा लगाव ज्यामिति से था । इसीलिए उन्होंने इच्छा जाहिर की थी कि उनकी मृत्यु के बाद उनकी समाधि पर एक ज्यामितीय आकृति अंकित कर दी जाए ।

आर्किमीदीज़ ने, न केवल युद्धोपयोगी यंत्रों का आविष्कार किया था, बल्कि जनसाधारण के लिए उपयोगी यंत्रों का भी आविष्कार किया था । पानी को नीचे के तल से ऊपर उठाने के लिए उन्होंने एक अद्‌भुत यंत्र की खोज की थी । यह यंत्र 'आर्किमीदीज़ का स्क्रू' नाम से प्रसिद्ध है ।
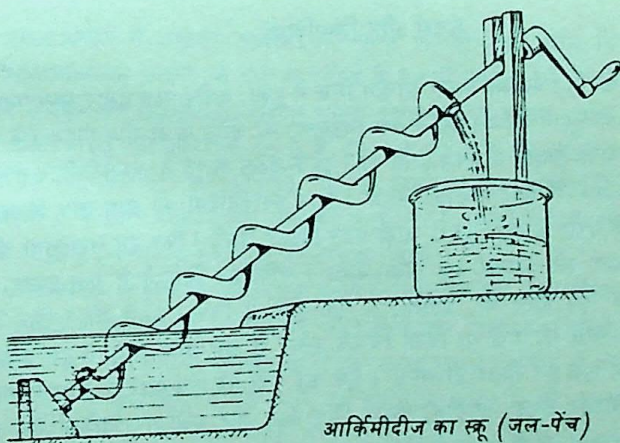
आर्किमीदीज का स्क्रू (जल-पेंच)

आर्किमीदीज़ द्वारा खोजी गई बातें आज स्कूलों और कालेजों में पढ़ाई जाती हैं, इसलिए ये हमें काफी सरल प्रतीत होती हैं, परंतु आज से करीब तेईस सौ साल पहले प्रथम बार सिलिंडरों, गोलों, वक्रों, परवलयों आदि के गुणधर्म खोजना, π (पाई) का काफी शुद्ध मान प्राप्त करना, द्रवों की स्थितियों के बारे में सिद्धांत स्थापित करना, उत्तोलकों और घिरनियों की क्षमताओं के बारे में नियम खोजना और अनेक यंत्रों की खोज करना एक महान मस्तिष्क के लिए ही संभव था।

यही कारण है कि आर्किमीदीज़ की प्रतिभा को महान न्यूटन की प्रतिभा के तुल्य माना जाता है। यह भी स्मरण रखना जरूरी है कि आर्किमीदीज़ के करीब दो हजार साल बाद न्यूटन हुए थे। निस्संदेह, आर्किमीदीज़ प्राचीन जगत के सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ थे।

सहायक ग्रंथ

1. ई. टी. बेल—**मेन आफ मैथेमेटिक्स** (खंड 1), पेलिकन बुक, लंदन 1953
2. डेविड यूजेन स्मिथ—**हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स** (खंड 1), डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1953
3. जार्ज सार्टन—**ए हिस्ट्री आफ साइंस** (खंड 2), न्यूयार्क 1965
4. मार्शल ग्लागेट—**ग्रीक साइंस इन एंटिक्विटी**, लंदन 1957
5. चार्लेस सिंगेर—**ए शार्ट हिस्ट्री आफ साइंटिफिक आइडियाज टु 1900**, लंदन 1959
6. गुणाकर मुले—**आर्किमीदीज़**, नई दिल्ली 1963
7. अल्फ्रेड हूपर—**मेकर्स आफ मैथेमेटिक्स**, न्यूयार्क 1948

संदर्भ और टिप्पणियां

1. पेपीरस (कागज) का आविष्कार प्राचीन मिस्र में हुआ, करीब पांच हजार साल पहले। नील नदी के मुहाने की दलदलों में बरू (नरकुल) की जाति के दो-तीन मीटर ऊंचे एक पौधे की काफी तादाद में उपज होती थी। इसके डंठल के 15 से 30 सेंटीमीटर तक के टुकड़े काटकर चिंदियां निकाली जातीं। फिर इन चिंदियों को साथ-साथ बिछाकर इनकी एक परत के ऊपर दूसरी आड़ी परत बिछाई जाती। फिर इस चटाईनुमा चीज को भिगोकर इसे दबाकर रख दिया जाता। चूंकि इन चिंदियों में एक प्रकार का स्वाभाविक गोंद होता था, इसलिए ये एक-दूसरे से चिपक जाती थीं। फिर इस चटाईनुमा चीज को शंख या किसी चिकने पत्थर से खूब घोंटा जाता। इस प्रकार, पेपीरस का एक पत्र तैयार हो जाता। ऐसे कई पत्रों को एक-दूसरे के साथ जोड़कर और चिपकाकर खरड़ (दीर्घपट्ट) तैयार किए जाते और इन्हीं पर विभिन्न रंगों की स्याही से नरकुल की ही कलम से लिखा जाता था।

2. आर्किमीदीज़ ने अपनी दो पुस्तकें—'विधि' और 'मवेशी प्रश्न'—इराटोस्थनीज को समर्पित की थीं । इराटोस्थनीज का जन्म साइरेनी में संभवतः 273 ई. पू. में हुआ । एथेन्स में अध्ययन किया और सिकंदरिया के विद्यापीठ में अध्यापक एवं ग्रंथपाल बने । वहां उन्हें **बीटा** (यूनानी वर्णमाला का दूसरा अक्षर) उपनाम मिला, जो उनके प्राचीन यूनान के दूसरे नंबर के बुद्धिमान व्यक्ति होने का सूचक है । सिकंदरिया में ही 194 ई. पू. के आसपास इराटोस्थनीज का देहांत हुआ ।

इराटोस्थनीज की 'छलनी' : 1 से 100 तक की कुल 26 अभाज्य संख्याओं को चौखुटों में दिखाया गया है ।

इराटोस्थनीज ने अभाज्य संख्याओं को चुनने की जो विधि खोज निकाली वह 'इराटोस्थनीज की छलनी' के नाम से प्रसिद्ध है । सभी पूर्णांकों को क्रमशः रखिए । उनमें से पहले सम संख्याओं को काटिए । बची संख्याओं में से क्रमशः प्रत्येक के गुणजों को काटते जाइए, इस प्रकारः 3, 5, 7, ~~9~~, 11, 13, ~~15~~, 17, 19, ~~21~~, 23, 25, ~~27~~, 29, 31, ~~33~~, ~~35~~, 37, ~~39~~, 41, 43, ···। शेष संख्याएं अभाज्य सख्याएं हैं । अभाज्य संख्याओं से संबंधित अनेक सवाल आज भी अनुत्तरित हैं । सभी अभाज्य संख्याओं की खोज के लिए एक व्यापक सूत्र आज भी उपलब्ध नहीं है ।

इराटोस्थनीज ने पृथ्वी के आकार को जानने के लिए एक सही प्रयास किया था ।

पेलुसिओन (स्वेज नहर के पूर्व में) के डोसिथिओस (लगभग 230 ई. पू.) को आर्किमीदीज़ ने ज्यामिति से संबंधित अपनी चार प्रमुख पुस्तकें समर्पित की थीं ।

3. आर्किमीदीज़ ने सिद्ध किया था कि समान अर्धव्यास और समान ऊंचाई वाले बेलन और गोल के आयतनों में और उनकी सतहों में 3 : 2 का अनुपात रहता है ।

4. इटली के प्रसिद्ध वक्ता-विधिवेत्ता सिसरो (106-43 ई. पू.) सिसिली में कोषाध्यक्ष नियुक्त हुए थे, तो 75 ई. पू. में उन्होंने साइराक्यूज में आर्किमीदीज़ की समाधि को जीर्णावस्था में देखा था । स्थानीय निवासी उस स्थल को भूल गए थे । सिसरो ने समाधि

का पुनरुद्धार किया और उसके बारे में लिखा।

उसके बाद समाधि-स्थल पुनः लुप्त हो गया। सार्टन ने अपने ग्रंथ में लिखा भी कि समाधि-स्थल अज्ञात है (पृ. 71)।

मगर अब आर्किमीदीज़ की समाधि का पता चल गया है। 1965 ई. में साइराक्यूज में एक नए होटल के निर्माण के लिए नींव खोदी जा रही थी, तो एक समाधि-शिला मिली, जिस पर बेलन से आवृत गोल की आकृति अंकित है। वह निश्चय ही आर्किमीदीज़ का समाधि-स्मारक था (**साइंस टुडे**, मई 1990, पृ. 56)।

5. दूरी OA (= r) और कोण θ में एक-समान वृद्धि होती जाए, तो बिंदु A द्वारा जो वक्र बनेगा उसे 'आर्किमीदीज़ का सर्पिल' कहते हैं। आज इसे हम समीकरण $r = a\theta$ से व्यक्त करते हैं, जहां a स्थिरांक है।
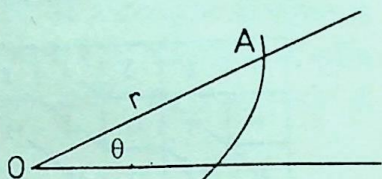
आर्किमीदीज का सर्पिल

6. आर्किमीदीज़ ने एक ही वृत्त के भीतर और बाहर 96 भुजाओंवाले दो समबहुभुज स्थापित करके और उनके क्षेत्रफल ज्ञात करके अंततः π के लिए सन्निकट मान खोजे थे।
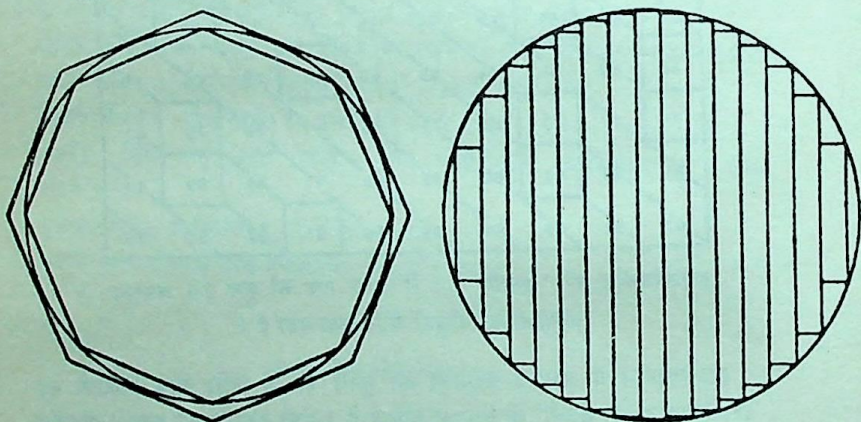
वृत्त का क्षेत्रफल प्राप्त करने की आर्किमीदीज की विधि

7. आर्किमीदीज़ ने यह जानकारी अपनी पुस्तक **बालू-गणक** (सामाइटेस) में दी है। इस प्रकार की बड़ी-बड़ी संख्याएं प्रस्तुत करते जाने का कोई उपयोग नहीं था। यह महज एक दिमागी कसरत थी। आर्किमीदीज़ की महान प्रतिभा एक बेहतर अंक-पद्धति का सृजन नहीं कर पाई। यूनानी गणितज्ञ अपनी बोझिल वर्णांक पद्धति का ही इस्तेमाल करते रहे।

आर्किमीदीज़ की 'बालू-गणक' पुस्तक का महत्व इस बात में अधिक है कि इसमें हमें सामोस-निवासी अरिस्टार्कस (लगभग 310-230 ई. पू.) के सूर्यकेंद्रवादी सिद्धांत के बारे में जानकारी मिलती है।

इधर के वर्षों में आर्किमीदीज़ की एक लुप्त कृति के बारे में जानकारी मिली है। 'तराजू' से संबंधित यह संक्षिप्त कृति अरबी अनुवाद में उपलब्ध हुई है (**द हिन्दू**, 17 सितंबर, 1989)।

आर्यभट

रेखागणित का एक शब्द है—**जीवा** । वृत्त की परिधि के एक खंड को चाप कहते हैं और चाप के दोनों सिरों को जोड़नेवाली सीधी रेखा को **जीवा** या **ज्या** कहते हैं । चाप और उसकी जीवा से एक धनुष के आकार की आकृति बनती है, इसलिए जीवा का एक अर्थ 'धनुष की डोर' भी है ।

जीवा या ज्या संस्कृत भाषा के शब्द हैं । पिछले करीब दो हजार वर्षों से भारतीय क्षेत्रमिति (प्राचीन भारत में रेखागणित को प्रायः क्षेत्रमिति कहा जाता था) में इन शब्दों का इस्तेमाल होता आ रहा है । भारतीय त्रिकोणमिति में भी विशिष्ट अर्थों में जीवा, ज्या तथा अर्धज्या शब्दों का इस्तेमाल हुआ है ।

परंतु यदि कहा जाए कि आज पाश्चात्य त्रिकोणमिति में जिस **साइन** शब्द का खूब इस्तेमाल होता है वह संस्कृत के 'जीवा' शब्द से बना है, तो किसी को सहसा यकीन नहीं होगा । पर सचाई यही है । संस्कृत के 'जीवा' शब्द के यूरोप के 'साइन' शब्द में रूपांतरण की दास्तान बड़ी दिलचस्प है ।

प्राचीन भारत के आर्यभट, ब्रह्मगुप्त आदि गणितज्ञ-ज्योतिषियों के ग्रंथों में जीवा, ज्या तथा अर्धज्या शब्दों का उपयोग हुआ है । ईसा की आठवीं सदी से गणित तथा ज्योतिष के ये भारतीय ग्रंथ बगदाद पहुंचने लगे और अरबी में इनका अनुवाद होने लगा । अरबी अनुवादकों के सामने जब संस्कृत का यह जीवा शब्द आया, तो वे कुछ सोच में पड़ गए । वे यह तो जानते थे कि यह जीवा शब्द किस चीज का द्योतक है, पर इसके लिए अरबी में उन्हें कोई समानार्थी शब्द नहीं मिल रहा था ।

अंत में, इस जीवा शब्द को अरबी मे ज्यों-का-त्यों ग्रहण कर लेना ही उन्होंने ठीक समझा । अरबी में स्वराक्षर नहीं लिखे जाते । इसलिए व्यंजनाक्षरों से उन्होंने जीवा को अरबी में 'ज-ब' के रूप में व्यक्त किया । अरबी गणितज्ञ जानते थे कि 'ज-ब' भारतीय मूल का शब्द है और इसे वे 'जीवा' के रूप में ही पढ़ते थे ।

आठवीं सदी के पूर्वार्ध में अरबों (मूरों) का शासन पश्चिमी यूरोप के स्पेन देश तक फैल गया, तो वहां अरबी ज्ञान-विज्ञान के कई विद्याकेंद्र स्थापित हुए । उन विद्याकेंद्रों में अरबी में अनूदित भारतीय तथा यूनानी ग्रंथों का बढ़िया संग्रह

था । बाद में, ईसा की ग्यारहवीं सदी से, यूरोप के ईसाई पंडित स्पेन के उन विद्याकेंद्रों में पहुंचने लगे और उन्होंने गणित से संबंधित अनेक अरबी ग्रंथों का लैटिन भाषा में अनुवाद किया ।

अनुवाद करते समय जब अरबी ग्रंथों का 'ज-ब' शब्द उनके सामने आया तब वे काफी सोच में पड़ गए । वे नहीं जानते थे कि यह भारतीय मूल का शब्द है । 'ज-ब' के बीच में स्वराक्षर 'ए' स्थापित करके इसे 'जेब' के रूप में भी पढ़ा जा सकता है । अरबी में 'जेब' का अर्थ होता है—खीसा या पाकेट, जो कुरते में भीतर की ओर छाती के ऊपर बनाया जाता था । इसलिए यूरोप के अनुवादकों ने 'ज-ब' को 'जेब' यानी 'छाती' के अर्थ में ग्रहण करके लैटिन में इसका अनुवाद किया—सिनुस् (छाती) । बाद में इसी 'सिनुस्' से आधुनिक त्रिकोणमिति का 'साइन' शब्द बना ।[1] त्रिकोणमिति के अध्ययन के साथ आज सारे संसार में प्रचलित यह 'साइन' शब्द अब भारतीय भाषाओं में भी इस्तेमाल होने लगा है ।

इस प्रकार, न केवल भारतीय मूल के शब्द, बल्कि भारतीय गणित की अनेक विधियां भी यूरोप में पहुंचीं । आधुनिक त्रिकोणमिति जिस बुनियादी ढांचे पर खड़ी है, उसकी खोज आज से करीब डेढ़ हजार साल पहले महान भारतीय गणितज्ञ **आर्यभट** ने की थी । मिस्री-यूनानी ज्योतिषी **तालेमी** (लगभग 150 ई.) की त्रिकोणमिति का मूल ढांचा भिन्न था ।

अतः स्पष्ट है कि जिसे हम आज पाश्चात्य गणित कहते हैं वह पूर्णतः यूनानी परंपरा का गणित नहीं है । उसमें भारतीय गणित की भी अनेक विधियों का, अरबी गणित के माध्यम से, समावेश हुआ है । भारत में खोजी गई शून्य पर आधारित दाशमिक स्थानमान अंक-पद्धति अरबों ने ही यूरोप में पहुंचाई थी । तात्पर्य यह कि गणितीय अनुसंधान के मामले में प्राचीन भारत किसी भी अन्य देश से पीछे नहीं था । आर्यभट अपने समय में दुनिया के एक सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ थे ।

आर्यभट के पहले भारत में गणित का काफी विकास हो चुका था । सिंधु सभ्यता की लिपि को पढ़ पाना अभी संभव नहीं हुआ है, पर हड़प्पा संस्कृति के पुरावशेषों के आधार पर यकीन के साथ कहा जा सकता है कि उनका गणित-ज्ञान, विशेषकर क्षेत्रमिति का ज्ञान, काफी उन्नत रहा होगा । जान पड़ता है कि सिंधु सभ्यतावालों के क्षेत्रमिति-ज्ञान को बाद में आर्यभाषियों ने अपनी वेदियों के निर्माण के लिए अपनाया । **शुल्वसूत्र** नामक पुस्तकों में उस समय की क्षेत्रमिति के बारे में जानकारी मिलती है । 'पाइथेगोरस का प्रमेय' शुल्वसूत्रों में भी देखने को मिलता है ।[2] वैदिक साहित्य में बड़ी-बड़ी संख्याओं के उल्लेख हैं । **वेदांग-ज्योतिष** में त्रैराशिक आदि की विधियां दी गई हैं ।[3]

ईसा की प्रथम सदी तक भारत में गणित का काफी विकास हो चुका होगा, पर उस समय तक के किसी भारतीय गणितज्ञ या उसकी कृति के बारे में आज हमें कोई स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती । प्राचीन भारत के जिस ज्योतिषी-गणितज्ञ के बारे में पहली बार हमें ठोस जानकारी मिलती है, वह है आर्यभट । आर्यभट की उपलब्ध कृति का नाम है—**आर्यभटीय** । 'आर्यभटीय' भारतीय गणित-ज्योतिष का पहला 'पौरुषेय' ग्रंथ है । इसका अर्थ सिर्फ इतना ही है कि आर्यभट के पहले के ज्योतिषी-गणितज्ञों के बारे में हमें कोई स्पष्ट सूचना नहीं मिलती । उदाहरणार्थ, आर्यभट के कम-से-कम चार-पांच सौ साल पहले शून्य पर आधारित स्थानमान अंक-पद्धति का आविष्कार हो चुका था । पर हम नहीं जानते कि यह महान खोज किस भारतीय पंडित ने की । **भक्षाली हस्तलिपि** के नाम से गणित की जो पुस्तक मिली है, वह संभवतः आर्यभट के पहले रची गई थी, परंतु उसके रचनाकार के बारे में भी हमें कोई जानकारी नहीं मिलती ।[4] आर्यभट के पहले ज्योतिष के कई सिद्धांत-ग्रंथ रचे गए थे, पर उनके भी रचनाकारों के बारे में स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती ।

'आर्यभटीय' गणित और ज्योतिष का एक विशुद्ध वैज्ञानिक ग्रंथ है । भारतीय विज्ञान का यह पहला ग्रंथ है जिसमें रचनाकार ने अपने जन्मकाल के बारे में स्पष्ट जानकारी दी है ।

आर्यभट को आज भी बहुत-से लोग 'आर्यभट्ट' लिखते हैं । शायद यह सोचकर कि ब्राह्मण रचनाकार 'भट्ट' ही हो सकता है, भट नहीं ! पर 'आर्यभटीय' के रचनाकार ने अपना नाम आर्यभट ही लिखा है । प्राचीन भारत के दूसरे सभी गणितज्ञ-ज्योतिषियों ने आर्यभट नाम से ही उनका उल्लेख किया है । 'भट' का एक अर्थ है 'योद्धा' ।

आर्यभट ने अपने ग्रंथ में जानकारी दी है कि वह जब 23 वर्ष के थे, तब कलियुग के प्रारंभ से 3600 वर्ष बीत चुके थे । भारतीय ज्योतिषियों की मान्यता रही है कि कलियुग के प्रारंभ के 3179 वर्ष बाद शक-काल का प्रारंभ हुआ । 3179 + 421 = 3600 । इस तरह शक संवत् 421 में आर्यभट 23 वर्ष के थे । शक वर्ष में 78 जोड़ने पर ईसवी सन् का वर्ष मिलता है । अतएव आर्यभट 499 ई. में 23 वर्ष के थे, और 476 ई. में उनका जन्म हुआ था ।

उसी साल (476 ई.) गुप्त सम्राट **बुधगुप्त** राज्य का उत्तराधिकारी बना था । बुधगुप्त की मृत्यु 500 ई. के आसपास हुई । उसके बाद बुधगुप्त के भाई नरसिंह गुप्त और पुत्र-पौत्र ने शासन किया—570 ई. तक । साथ ही हम बंगाल से 507 ई. में वैन्यगुप्त को और एरण (मध्य प्रदेश) से 510 ई. में भानुगुप्त को शासन करते देखते हैं । श्वेत-हूणों के हमले हो रहे थे और वह गुप्त साम्राज्य के

भक्षाली हस्तलिपि के तीन खंडित भोजपत्रों का पाठ

विघटन का काल था । आर्यभट ने अपनी कृति में किसी राजा या सामंत का उल्लेख नहीं किया है ।

आर्यभट ने केवल इतनी ही सूचना दी है कि कलि वर्ष 3600 (499 ई.) में वे 23 वर्ष के थे ।[5] इससे अनेक विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि उन्होंने अपने 'आर्यभटीय' ग्रंथ की रचना 23 साल की उम्र में की थी । बात असंभव भी नहीं है । संसार के अनेक महान गणितज्ञों ने अपना श्रेष्ठतम अनुसंधान-कार्य 25-30 साल की आयु तक पूरा कर लिया था । आर्यभट कितने साल जीवित रहे, इसके बारे में हमें कहीं कोई जानकारी नहीं मिलती । उनके माता-पिता के बारे में भी कोई जानकारी नहीं मिलती ।

आर्यभट ने अपने बारे में एक और महत्व की सूचना दी है । 'आर्यभटीय' में वह लिखते हैं—

आर्यभटस्त्विह निगदति कुसुमपुरेऽभ्यर्चितं ज्ञानम् ।। 1 ।।

गणितपाद

अर्थात्, आर्यभट इस कुसुमपुर में अतिशय पूजित ज्ञान का वर्णन करता है ।

पाटलिपुत्र (पटना) को प्राचीन काल में कुसुमपुर भी कहा जाता था।[6] इसलिए अनेक विद्वानों ने निष्कर्ष निकाला है कि आर्यभट ने, न केवल पाटलिपुत्र में पूजित ज्ञान का वर्णन किया, बल्कि उनका निवास-स्थल भी पाटलिपुत्र ही था।

लेकिन 'आर्यभटीय' के प्रख्यात टीकाकार **भास्कर-प्रथम** (629 ई.) ने आर्यभट को **आश्मक**, उनके ग्रंथ को **आश्मक-तंत्र** तथा **आश्मकीय** और उनके अनुयायियों को **आश्मकीयाः** कहा है ।[7] एक अन्य टीकाकार **नीलकंठ सोमसुत्वन्** (1465-1545 ई.) ने उन्हें **अश्मकजनपदजात** कहा है ।[8] प्राचीन भारत का यह अश्मक जनपद दक्षिण में गोदावरी के तट पर था । दक्षिण भारत में 'आर्यभटीय' का खूब प्रचार रहा है और इस ग्रंथ की हस्तलिपियां भी दक्षिण भारत से ही मिली हैं । इसलिए कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि आर्यभट का जन्म दक्षिण भारत में हुआ था और ज्ञानार्जन के लिए वह कुसुमपुर (पाटलिपुत्र) पहुंचे थे ।

आर्यभट का केवल एक ही ग्रंथ मिला है— 'आर्यभटीय' । इस ग्रंथ का खूब प्रचार रहा है, विशेषकर दक्षिण भारत में; पर आधुनिक काल में इसकी प्रतियां सहजता से उपलब्ध नहीं थीं । महाराष्ट्र के प्रख्यात विद्वान **डा. भाऊ दाजी** (1822-74 ई.) ने 1864 ई. में केरल से 'आर्यभटीय' की ताड़पत्र प्रतियां प्राप्त कीं और इस ग्रंथ का विवरण प्रकाशित किया, तभी जाकर आर्यभट के कृतित्व पर नए सिरे से खोजबीन शुरू हुई ।

'आर्यभटीय' ग्रंथ संस्कृत में है और सूत्र रूप में पद्यबद्ध है। चार **पादों** या भागों में विभक्त इस ग्रंथ में कुल 121 श्लोक हैं। ये चार भाग हैं— **दशगीतिकापाद, गणितपाद, कालक्रियापाद** और **गोलपाद**। 'गीतिकापाद' में गीतिका छंद के 10 श्लोकों के अलावा 3 श्लोक और हैं। शेष तीन पादों में आर्या छंद के कुल 108 श्लोक हैं ('गणितपाद' में 33, 'कालक्रियापाद' में 25 और 'गोलपाद' में 50)। इसलिए इन तीन पादों को **आर्याष्टाशत** के नाम से भी जाना जाता है। जैसी कि प्राचीन भारत में परंपरा रही है, ग्रंथ में गणित और ज्योतिष, दोनों की साथ-साथ जानकारी दी गई है। यहां प्रमुख रूप से हम गणित की ही चर्चा करेंगे।

'आर्यभटीय' पद्यबद्ध ग्रंथ है, इसलिए इसमें संख्याओं को अंक-संकेतों से व्यक्त करना संभव नहीं था। अंक-संकेत सम्राट अशोक के शिलालेखों में भी देखने को मिलते हैं, पर प्राचीन भारत के ग्रंथों में ज्यादातर संख्याओं के लिए शब्दों का ही प्रयोग हुआ है। जैसे **चक्षु** या **कर्ण** का अर्थ होगा 2, और **ऋतु** या **रस** का अर्थ होगा 6।[9] पद्यबद्ध ग्रंथों में इन शब्दांकों का उपयोग करने में सुविधा तो थी, पर इनसे संख्या-शब्द काफी बड़े हो जाते थे।

आर्यभट को कम-से-कम शब्दों में अपने नियम प्रस्तुत करने थे, इसलिए उन्होंने संस्कृत के वर्णाक्षरों को संख्यामान देकर एक नई वर्णांक पद्धति प्रस्तुत कर दी। संस्कृत के व्याकरण के नियमों का उपयोग करके 'दशगीतिका' के केवल एक श्लोक में ही उन्होंने अपनी इस अक्षरांक पद्धति को स्पष्ट कर दिया है। यह अद्भुत श्लोक है—

वर्गाक्षराणि वर्गेऽवर्गेऽवर्गाक्षराणि कात् ङ्मौ: य: ।
खद्विनवके स्वरा नव वर्गेऽवर्गे नवान्त्यवर्गे वा ॥

इस श्लोक के अनुसार 25 वर्ग-अक्षरों के मान—

क् = 1	ज् = 8	ण् = 15	फ् = 22	व् = 60
ख् = 2	झ् = 9	त् = 16	ब् = 23	श् = 70
ग् = 3	ञ् = 10	थ् = 17	भ् = 24	ष् = 80
घ् = 4	ट् = 11	द् = 18	म् = 25	स् = 90
ङ् = 5	ठ् = 12	ध् = 19	य् = 30	ह् = 100
च् = 6	ड् = 13	न् = 20	र् = 40	
छ् = 7	ढ् = 14	प् = 21	ल् = 50	

प्रणिपत्यैकमनेकं सत्यां देवतां परं ब्रह्म॥ आर्यभटस्त्रीणि गदति
गणितं कालक्रियां तथा गोलं॥१॥ वर्गाक्षराणि वर्गे: वर्गे
वर्गाक्षराणि कात् ङ्मौ य:॥ खद्विनवके स्वरा नव वर्गे वर्गे
नवान्त्यवर्गे वा॥२॥ युगरविभगणा: ख्युघृ ४३२००००
शशि चयगियिङुशुछ्लृ ५७७५३३३६ कु ङिशिबुण्लृ
१५८२२३७५०० प्राक्॥ शनि ढुङ्विघ्व १४६५६४ गुरु
ख्रिच्युभ ३६४२२४ कुज भद्लिझ्नुखृ २२९६८२४ भृगु
बुधसौरा:॥३॥ चन्द्रोच्चर्जुष्ध ४८८२१९ बुध सुगु
शिन १७९३७०२० भृगु जषबिखुछृ ७०२२३८८ शे
षार्का:॥ बुफिनच २३२२२६ पातविलोमा बुधाह्न्यजार्को
दयाच्च लङ्कायां॥४॥ काह्नो मनवो ढ १४ मनुयुग स्ख ७२
गतास्ते च ६ मनुयुग छ्ना २७ च॥ कल्पादेर्युगपादा ग ३
च गुरुदिवसाच्च भारतात्पूर्वं॥५॥ शशिराशय ठ १२
चक्रं ते अंशकला योजनानि य ३० व ६० ञ १० गुणा:॥ प्राणे
नैति कलां भं खयुगांशे ग्रहजवो भवांशोऽर्क:॥६॥ नृषि
८० योजनं ञिला १०५० भूव्यासोऽर्केन्दोर्घ्रिञ ४४१० गि
ण ३१५ कं १ मेरो:॥ भृगु गुरु बुध शनि भौमा: शशि ङ ५
ञ १० ण १५ न २० मां ३० शका: समार्कसमा ४३२०००००
॥७॥ भा २४ ग्रहांशा: शशिविक्षेपोपमण्डला झार्द्धं ४॥
शनि गुरु कुज ख २ क १ गार्द्धं भृगुबुध ख २ स्वा
ला य ४ हस्तांना॥८॥ बुधभृगुकुजगुरुशनि न २० व
र ४० षा ८० ह १०० गत्वांशकान् प्रथम पाता:॥ सवितुरमी
षां च तथा द्रा ७८ अखि २१० सा ९० ह्रा ११० ल्य
खिच्य २३० मन्दोच्चं॥९॥ झार्द्धानि मन्दवृत्तं शशि न छ
७ ग ३ घ ४ ढ १४ छ ७ झ ९ यथोक्तेभ्य:॥ झ ९ ग ३ ल
५३ ञ्ल ५० ढु ३१ तथा शनिगुरुकुजभृगुबुधोच्चशीघ्रे
भ्य:॥१०॥ मन्दात् ङ ५ ख २ द १८ ज ८ डा २० वक्रिणां

आर्यभटीय के 'दशगीतिकापाद' के आरंभिक दस श्लोक। यहां दूसरे श्लोक में आर्यभट ने अपनी वर्णांक-पद्धति के नियम स्पष्ट किए हैं। छठे श्लोक में बदला गया अशुद्ध पाठ है : प्राणेनैति कलां भं। यहां भं (तारामंडल) के स्थान पर भूः (पृथ्वी) होना चाहिए।

(हस्तलिपि : मुंबई विश्वविद्यालय)

और, नौ स्वरों के मान—

अ = 1
इ = 100
उ = 10000
ऋ = 1000000
लृ = 100000000
ए = 10000000000
ऐ = 1000000000000
ओ = 100000000000000
औ = 10000000000000000

इस अक्षरांक पद्धति में ह्रस्व और दीर्घ स्वरों में भेद नहीं किया गया है। जहां व्यंजन के साथ स्वर मिला हुआ है वहां समझना चाहिए कि व्यंजनांक के साथ स्वरांक का गुणन हुआ है। जैसे, कु = क् + उ = 1 × 10000 = 10000 और ङि = ङ् + इ = 5 × 100 = 500।

जहां संयुक्त व्यंजन के साथ स्वर मिला हो, वहां समझना चाहिए कि वह स्वर उस संयुक्त व्यंजन के प्रत्येक घटक के साथ मिला हुआ है। जैसे,
ख्षृ = (ख्+ऋ) + (ष्+ऋ) = (2 × 1000000) + (80 × 1000000)
= 82000000।

इस अक्षरांक पद्धति का एक उदाहरण लीजिए। माना गया है कि एक महायुग में सूर्य पृथ्वी के 43,20,000 चक्कर लगाता है। आर्यभट की पद्धति के अनुसार इस संख्या के लिए वर्णांक बनते हैं—ख्युघृ, इस प्रकार—

ख्युघृ = खु + यु + घृ
खु = 2 × 10000 = 20000
यु = 30 × 10000 = 300000
घृ = 4 × 1000000 = 4000000
ख्युघृ = 4320000

इसी प्रकार, आर्यभट ने अन्य पिंडों के भगण (चक्कर-संख्या) दिए हैं—
चयागियिङुशुछ्लृ = 57753336,
ङिशिबुण्लृख्षृ = 1582237500 इत्यादि।

यहां आर्यभट के अनुसार कु यानी पृथ्वी एक महायुग में **ङिशिबुण्लृख्षृ** (= 1,58,22,37,500) बार घूमती है।

आर्यभट की यह अक्षरांक पद्धति अत्यंत संक्षिप्त तो है, पर इसके व्यवहार में कई कठिनाइयां थीं। इसलिए बाद के भारतीय गणितज्ञ-ज्योतिषियों ने नई

अक्षरांक पद्धतियों का सृजन किया ।

'आर्यभटीय' के 'गणितपाद' में कुल 33 श्लोक हैं, पर इतने में ही उन्होंने अंकगणित, रेखागणित और बीजगणित के प्रमुख नियम संक्षेप में स्पष्ट कर दिए हैं । इस पाद के दूसरे श्लोक में **बृंद** (अरब) तक की संख्या-संज्ञाएं[10] देकर आगे के श्लोकों में आर्यभट ने वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल, वर्गक्षेत्र, त्रिभुज का क्षेत्रफल, वृत्त का क्षेत्रफल, गोल का घनफल आदि जानने के नियम दिए हैं । आर्यभट ने षडश्रि (छह किनारोंवाला ठोस, त्रिकोणीय पिरामिड) का जो घनफल दिया है, वह अशुद्ध है । उन्होंने गोल के घनफल का जो मान दिया है वह भी अशुद्ध है, स्थूल है । बाद में भारतीय गणितज्ञों ने अधिक शुद्ध सूत्र दिए ।

लेकिन आर्यभट ने वृत्त की परिधि और व्यास का जो अनुपात दिया है, वह चार दशमलव स्थानों तक शुद्ध है । वह लिखते हैं कि, $(4 + 100) 8 + 62000 = 62832$ उस वृत्त की परिधि का **आसन्न** मान है जिसका व्यास 20,000 है ।[11]

अर्थात्, $$\frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}} = \frac{62832}{20000} = 3.1416$$

और, इसे भी उन्होंने सन्निकट मान माना है । आज भी स्कूल-कालेजों में इसी मान का इस्तेमाल करते हैं । परिधि/व्यास के अनुपात का इतना शुद्ध मान देनेवाले आर्यभट पहले भारतीय गणितज्ञ हैं । उनके बाद के गणितज्ञ **ब्रह्मगुप्त** ने भी इतना शुद्ध मान नहीं दिया ।

आर्यभट ने वृत्त, त्रिभुज और चतुर्भुज खींचने की रीतियां, श्रेढियों के नियम, वर्ग-समीकरण को हल करने का नियम तथा शंकु और छाया से छायाकर्ण जानने की रीति समझाई है । आर्यभट ने तथाकथित 'पाइथेगोरस का प्रमेय' भी दिया है । भास्कर-प्रथम ने अपनी टीका में इस प्रमेय के कुछ आकर्षक उदाहरण दिए हैं । एक उदाहरण है—"एक पूर्ण प्रस्फुटित कमल की नाल जल से ठीक 8 अंगुल ऊपर है । वायु के झोंके से वह एक हाथ जल में डूब जाती है, तो जल की गहराई क्या है ?" (उत्तर : जल की गहराई = 32 अंगुल) ।

आर्यभट की त्रिकोणमिति की चर्चा हम आरंभ में कर चुके हैं । आर्यभट ने 0^0 से 90^0 तक $3^0\ 45'$ के अंतर से सब कोण लेकर उनकी अर्धज्या (साइन) मालूम करने का नियम दिया है । उन्होंने $3^0\ 45'$ की अर्धज्या का मान $225'$ माना है । त्रिज्या का मान $3438'$ लेकर उन्होंने ज्याओं की एक सारणी प्रस्तुत कर दी है । 'गणितपाद' में अंतिम दो श्लोकों में कुट्टक गणित की जानकारी दी गई है। **कुट्टक** का अर्थ है कूट-कूटकर हल करना । यहां आर्यभट ने बीजगणित के अनिर्धारित समीकरणों (अक्ष − बय = क) को हल करने की विधि दी है । इस तरह के समीकरणों का हल देनेवाले आर्यभट संसार के पहले गणितज्ञ हैं ।

कुछ विशेषज्ञों का मत है कि कुट्टक की इस विधि का एक अलगोरिथम के रूप में आधुनिक कंप्यूटरों की तीव्र गणनाओं के लिए भी उपयोग हो सकता है। कुट्टक से संबंधित एक सवाल है : वह कौन-सी संख्या है जिसमें 7509 से भाग देने से 13 शेष आता है और 5301 से भाग देने से 25 शेष आता है ? (उत्तर : 21993874) । बाद में भारतीय गणितज्ञों ने इस कुट्टक गणित का खूब विकास किया ।[12]

आर्यभट ने अपने समय तक ज्ञात गणित की अत्यंत संक्षिप्त जानकारी दी है। इसमें उनकी अपनी गणितीय गवेषणाएं भी शामिल हैं ।

आर्यभट ने ज्योतिष के क्षेत्र में भी पहली बार कई क्रांतिकारी विचार प्रस्तुत किए । वे पहले भारतीय वैज्ञानिक हैं जिन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है और नक्षत्रों का गोल स्थिर है ।[13] पौराणिक मान्यता इसके विपरीत थी । इसलिए बाद के ब्रह्मगुप्त, वराहमिहिर आदि ज्योतिषियों ने उनकी इस सही मान्यता को भी स्वीकार नहीं किया । यहां तक कि लोकभय के कारण 'आर्यभटीय' के अनेक टीकाकारों ने उनके **भू** (पृथ्वी) शब्द को **भं** (खगोल) में बदल दिया ।[14]

आर्यभट विश्व की सृष्टि और इसके प्रलय के चक्र में विश्वास नहीं करते थे । उन्होंने काल को अनादि एवं अनंत माना है (*कालोऽयमनाद्यन्तो*)। उन्होंने कृत, त्रेता, द्वापर और कलि युगों को समान कालावधि का माना है । उनके अनुसार—

ब्रह्मा का एक दिन या कल्प = 14 मनु या 1008 युग

1 मनु = 72 युग

1 युग = 43,20,000 वर्ष

आर्यभट ने ग्रहणों के सही कारण बताए हैं । वह कहते हैं— ''सूर्य को चंद्रमा ढक लेता है तो सूर्य-ग्रहण होता है और पृथ्वी की छाया चंद्रमा को ढक लेती है तो चंद्र-ग्रहण होता है ।[15]

आर्यभट के इस तरह के विचार सही थे, पर पौराणिक मतों के प्रतिकूल थे । इसलिए लोकभय के कारण बाद के अनेक ज्योतिषियों ने उन्हें स्वीकार नहीं किया । फिर भी आर्यभट के मतों में कई भारतीय ज्योतिषियों की आस्था कायम रही । 'आर्यभटीय' का पठन-पाठन जारी रहा और इस ग्रंथ पर अनेक टीकाएं लिखी गईं । पता चलता है कि 800 ई. के आसपास इस ग्रंथ का **ज़ीज अल् अर्जबहर** के नाम से अरबी में अनुवाद भी हुआ था । अनेक विद्वानों का मत है कि आर्यभट ने कम-से-कम एक और ग्रंथ ('आर्यभट-सिद्धांत') लिखा था, लेकिन आज वह उपलब्ध नहीं है ।

आर्यभट नाम के एक और ज्योतिषी ईसा की दसवीं सदी में हुए। उनका **महासिद्धांत** ग्रंथ उपलब्ध है। ग्रंथ में 18 अध्याय हैं। एक अध्याय **कुट्टक** के बारे में भी है। मगर ये दूसरे आर्यभट परंपरागत विचारों के समर्थक थे।

आर्यभट-प्रथम निश्चय ही एक क्रांतिकारी विचारक थे। श्रुति-स्मृति और पुराणों की परम्परा के विरोध में सही विचार प्रस्तुत करके उन्होंने बड़े साहस का परिचय दिया था और भारत में वैज्ञानिक अनुसंधान की एक स्वस्थ परंपरा स्थापित की थी। आर्यभट ने अपने ग्रंथ में किसी अन्य गणितज्ञ या ज्योतिषी या शासक का जिक्र नहीं किया। 'आर्यभटीय' भारतीय गणित और ज्योतिष की एक विशुद्ध वैज्ञानिक कृति है।

परंपरावादियों ने आर्यभट के मतों का भले ही विरोध किया हो, मगर उनका महान कृतित्व विद्वज्जगत में सदैव आदृत रहा। एक कवि का श्लोक है—

सूर्यः स्वयं कुसुमपुर्यभवत् कलौ तु
भूगोलवित् कुलप आर्यभटाभिधानः ॥

अर्थात्, स्वयं सूर्य ज्योतिषाचार्य कुलप (कुलपति) आर्यभट के रूप में कुसुमपुर में अवतरित हुआ है।

सहायक ग्रंथ

1. **आर्यभटीय** (मूल संस्कृत और हिंदी अनुवाद)—रामनिवास राय
2. **आर्यभटीय** (मूल और अंग्रेजी अनुवाद)—कृपाशंकर शुक्ल तथा के. वी. शर्मा
3. **आर्यभटीय** (भास्कर-प्रथम और सोमेश्वर की टीका सहित)—कृपाशंकर शुक्ल
4. **आर्यभटीय** (सूर्यदेव यज्वन् की टीका)—संपादक : के. वी. शर्मा
   [उपर्युक्त चारों ग्रंथ भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी, नई दिल्ली, ने प्रकाशित किए हैं।]
5. **आर्यभटीयम्**—व्याख्याकार : बलदेव मिश्र
6. के. एन. मेनन—**आर्यभट** (अंग्रेजी), नई दिल्ली 1977
7. दत्त और सिंह (अनु. कृपाशंकर शुक्ल)—**हिंदू गणितशास्त्र का इतिहास**, भाग 1, लखनऊ 1956
8. शंकर बालकृष्ण दीक्षित—**भारतीय ज्योतिष**, लखनऊ 1963
9. दत्त और सिंह—**हिस्ट्री आफ हिंदू मैथेमेटिक्स** (भाग 1, 2), बंबई 1962
10. बोस, सेन और सुब्बरयप्पा—**ए कंसाइज हिस्ट्री आफ साइंस इन इंडिया**, नई दिल्ली 1971
11. ब. ल. उपाध्याय—**प्राचीन भारतीय गणित**, नई दिल्ली 1971
12. गुणाकर मुले—**आर्यभट**, नई दिल्ली 1991
13. गुणाकर मुले—**भारतीय विज्ञान की कहानी**, नई दिल्ली 1991

14. गुणाकर मुले—**भारतीय अंक-पद्धति की कहानी** , नई दिल्ली 1991
15. **इंडियन जर्नल आफ हिस्ट्री आफ साइंस**, खंड 12, अंक 2 (आर्यभट की 1500वीं जयंती के अवसर पर आयोजित संगोष्ठी का निबंध-संकलन)

संदर्भ और टिप्पणियां

1. अल्फ्रेड हूपर, **मेकर्स आफ मैथेमेटिक्स**, पृ. 127-128
2. **बौधायन शुल्वसूत्र** का एक सूत्र है— *दीर्घचतुरस्रस्याक्ष्णयारज्जुः पार्श्वमानी तिर्यङ्मानी च यत्पृथग्भूते कुरुतस्तदुभयं करोति ।*

   लगभग इसी तरह के सूत्र **कात्यायन** और **आपस्तंब** के शुल्वसूत्रों में भी देखने को मिलते हैं । इनका भावार्थ है—किसी आयत के विकर्ण पर खींचा गया वर्ग, क्षेत्रफल में उन दोनों वर्गों के योग के बराबर होता है, जो दोनों भुजाओं पर खींचे जाएं ।
3. **वेदांग-ज्योतिष** के दो पाठ हैं—ऋक्-ज्योतिष (36 श्लोक) और यजुः-ज्योतिष (43 श्लोक) । दोनों पाठों के अधिकतर श्लोक समान हैं । वेदांग-ज्योतिष की रचना 800 ई. पू. के आसपास महात्मा **लगध** ने की थी *(कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः) ।*
4. इस हस्तलिपि की खोज मरदान (पाकिस्तान) जिले के भक्षाली या बक्षाली गांव के पास के टीले को खोदते समय एक किसान ने 1881 ई. में की थी। इसमें भोजपत्र के 70 पत्र थे, जिनमें कई खंडित स्थिति में हैं । सर्वप्रथम डॉ. हार्नले ने इस हस्तलिपि के बारे में विवरण प्रकाशित किया । फिर जी. आर. काए ने तीन भागों में इस हस्तलिपि को प्रकाशित किया ।

   भक्षाली हस्तलिपि 11वीं-12वीं सदी की शारदा लिपि के अक्षरों में लिखी गई अंकगणित व बीजगणित की पुस्तक है । इसे किसी प्राचीन मूल पुस्तक के आधार पर लिपिक (छजक-पुत्र) ने तैयार किया था । मूल पुस्तक संभवतः ईसा की चौथी सदी में लिखी गई होगी । हस्तलिपि की संस्कृत भाषा व्याकरण-शुद्ध नहीं है ।.

   हस्तलिपि में सूत्र हैं, उदाहरण हैं, मगर उपपत्तियां नहीं हैं । महत्व की बात यह है कि इस हस्तलिपि में शून्ययुक्त दाशमिक स्थानमान अंक-पद्धति के अंक-संकेतों का इस्तेमाल हुआ है (विस्तृत जानकारी के लिए देखिए, द **बक्षाली मैन्यूस्क्रिप्ट**, स्वामी सत्यप्रकाश व डा. उषा ज्योतिष्मती, इलाहाबाद 1979) ।
5. *षष्ट्यब्दानां षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः ।*
   त्र्यधिका विंशतिरब्दास्तदेह मम जन्मनोऽतीता ।। 10 ।।

   कालक्रियापाद, आर्यभटीय

   अर्थात्, साठ वर्षों की साठ अवधियां तथा युगों के तीन पाद जब व्यतीत हो गए थे, तब मेरे जन्म के पश्चात 23 वर्ष हो चुके थे ।
6. कवि विशाखदत्त, जिनका समय ईसा की छठी सदी है, अपने नाटक **मुद्राराक्षस** में सूचना देते हैं कि कुसुमपुर (पाटलिपुत्र) में राजा तथा धनी-मानी लोगों का निवास था (प्रथम और षष्ठ अंक) । विशाखदत्त को पाटलिपुत्र के आसपास के क्षेत्र का अच्छा ज्ञान था । महत्व की बात यह है कि विशाखदत्त या तो आर्यभट के समकालीन थे या उनके कुछ ही साल बाद हुए ।

पटना के नजदीक के कुम्हरार या कुमरार स्थान से जो पुरावशेष मिले हैं, वे संभवतः प्राचीन कुसुमपुर के ही अवशेष हैं ।

7. भास्कर-प्रथम स्वयं अश्मक जनपद में पैदा हुए थे और वलभी (सौराष्ट्र) में रहते थे । **आर्यभटीय भाष्य** के अलावा उनकी दो मौलिक कृतियां हैं—**महाभास्करीय** और **लघुभास्करीय** ।

8. मलाबार क्षेत्र के नीलकंठ की, **आर्यभटीय भाष्य** के अलावा, प्रमुख मौलिक कृति है **तंत्र-संग्रह**, जिसमें उन्होंने त्रिकोणमितीय श्रेणी का विवेचन किया है।

9. प्राचीन ग्रंथों में प्रयुक्त प्रमुख शब्दांक (भूतसंख्याएं)—

0 = अनंत, ख, पूर्ण, रंध्र, शून्य, अंबर
1 = आदि, चंद्र, पितामह, पृथ्वी, शशि, सोम
2 = अश्विन्, कर, चक्षु, नेत्र, पक्ष, बाहु, युगल
3 = काल, गुण, त्रिनेत्र, रत्न, लोक, अग्नि
4 = अब्धि, आश्रम, जलधि, दिश्, युग, वर्ण
5 = इंद्रिय, तत्व, पर्व, पांडव, प्राण, बाण
6 = अंग, ऋतु, दर्शन, द्रव्य, रस, शास्त्र, राग
7 = ऋषि, ग्रह, द्वीप, मुनि, वार, स्वर
8 = नाग, भूति, मातंग, सर्प, धी, गज
9 = अंक, ग्रह, दुर्गा, द्वार, रंध्र, पदार्थ
10 = अवतार, अंगुली, दिशा, रावणशिर
11 = रुद्र, शिव, हर, ईश्वर, ईश
12 = अर्क, आदित्य, मास, राशि, भास्कर
13 = करण, काम, विश्व
14 = इंद्र, मनु, शक्र
15 = तिथि, पक्ष
16 = कला, भूप
इत्यादि ।

10. श्लोक है—

एकं च दश च शतं च सहस्रमयुतनियुते तथा प्रयुतम् ।
कोट्यर्बुदं च वृन्दं स्थानात् स्थानं दशगुणं स्यात् ।।

आर्यभट ने यहां दस स्थानों तक के नाम दिए हैं । *'स्थानात् स्थानं दशगुणं स्यात्'* (प्रत्येक स्थान अपने पिछले स्थान से दस गुना है) से स्पष्ट है कि आर्यभट शून्ययुक्त दाशमिक स्थानमान अंक-पद्धति से परिचित थे, हालांकि अभिलेखों में इसके प्रयोग का पहला प्रमाण एक गुर्जर राजा के कलचुरि संवत् 346 (594 ई.) के एक ताम्रपत्र में मिलता है ।

11. श्लोक है—

चतुरधिकं शतमष्टगुणं द्वाषष्टिस्तथा सहस्राणाम् ।
अयुतद्वयविष्कम्भस्यासन्नो वृत्तपरिणाहः ।। 10 ।।

गणितपाद

12. ऐसे गणित के लिए 'आर्यभटीय' के भाष्यकार भास्कर-प्रथम ने 'कुट्टाकार' शब्द का प्रयोग किया, इसके विभिन्न भेद बतलाए (राशिकुट्टाकार, ग्रहकुट्टाकार, भागकुट्टाकार आदि) और इनके उदाहरण दिए । ब्रह्मगुप्त ने अपने सिद्धांत में एक स्वतंत्र 'कुट्टकाध्याय' लिखा ।

13. श्लोक है—

अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत् ।
अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लंकायाम् ।। 9 ।।

गोलपाद

अर्थात्, नाव में बैठा हुआ कोई व्यक्ति पूर्व दिशा में जाते हुए जिस प्रकार तट के समीप की अचल वस्तुओं को उल्टी दिशा में जाता हुआ देखता है, उसी प्रकार अचल तारामंडल लंका में पश्चिम की ओर जाते प्रतीत होते हैं ।

पृथूदकस्वामी (ईसा की नौवीं सदी), जिन्होंने ब्रह्मगुप्त के **ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत** पर भाष्य लिखा, आर्यभट की एक आर्या उद्धृत करते हैं —

भपंजरः स्थिरो भूरेवावृत्यावृत्त प्रातिदैवसिकौ ।
उदयास्तमयौ सम्पादयति नक्षत्रग्रहाणाम् ।।

अर्थात्, तारामंडल स्थिर है और पृथ्वी अपनी दैनिक घूमने की गति से नक्षत्रों तथा ग्रहों का उदय और अस्त करती है ।

यह आर्या आर्यभट के किसी अन्य ग्रंथ से है, जो आज उपलब्ध नहीं है ।

14. आर्यभट ने स्पष्ट लिखा है : *प्राणेनैति कलां भूः* (**दशगीतिका** ।। 4 ।।); अर्थात्, एक प्राण के तुल्यकाल में पृथ्वी एक कला घूमती है (एक चक्र = 12 राशि = 360^0 अंश = 21600 कला और एक दिन = 60 नाडी = 3600 विनाडी = 21600 प्राण) ।

मगर आर्यभट के भास्कर-प्रथम से लेकर नीलकंठ तक के सभी भाष्यकारों ने, संभवतः लोकभय के कारण, उनके *प्राणेनैति कलां भूः* को *प्राणेनैति कलां भं* (भूः = पृथ्वी, भं = तारामंडल) में बदलकर व्याख्याएं कीं । केवल मक्कीभट्ट (1377 ई.) ने ही आर्यभट के मत का समर्थन किया ।

मगर वास्तविक पाठ में 'भूः' ही है । ब्रह्मगुप्त ने भी *प्राणेनैति कलां भूर्यदि*···लिखकर ही आर्यभट की आलोचना की है ।

मक्कीभट्ट की तरह कई ज्योतिषी आर्यभट के मत के समर्थक रहे होंगे, इसलिए कट्टर वेदांती अप्पय दीक्षित (1530-1600 ई.) ने लिखा है—*आर्यभटाद्यभिमत भूभ्रमणादिवादानां श्रुतिन्यायविरोधेन हेयत्वात्* (आर्यभट आदि द्वारा प्रतिपादित भूभ्रमण का वाद श्रुति और न्याय के विरुद्ध होने के कारण हेय है ।)

जब भारत में अप्पय दीक्षित जैसे दुराग्रही वेदांती आर्यभट के भूभ्रमणवाद का विरोध कर रहे थे, तब यूरोप में कोपर्निकस के सूर्यकेंद्रवाद की स्थापना हो चुकी थी और ज्योर्दानो ब्रूनो (1547-1600 ई.) घूम-घूमकर यूरोप के नगरों में उस सिद्धांत का प्रचार कर रहे थे ।

15. *छादयति शशी सूर्यं शशिनं महती च भूच्छाया ।।37।।*

गोलपाद

ब्रह्मगुप्त

ईसा से करीब तीन सौ साल पहले सिकंदरिया (मिस्र) के यूनानी विद्याकेंद्र में गणित का जो विकास शुरू हुआ था, उसका लगभग 300 ई. तक अंत हो चुका था । इस विद्याकेंद्र ने यूक्लिड, एपोलोनियस, आर्किमीदीज़, हेरोन, तालेमी आदि अनेक गणितज्ञों और ज्योतिषियों को पैदा किया । सिकंदरिया के अंतिम श्रेष्ठ गणितज्ञ थे **डायोफैंटस** (लगभग 250 ई.) । डायोफैंटस को पाश्चात्य जगत का प्रथम बीजगणितज्ञ माना जाता है ।[1]

सिकंदरिया के विद्याकेंद्र के अवसान के बाद आगे के करीब आठ सौ साल तक यूरोप में कोई श्रेष्ठ गणितज्ञ पैदा नहीं हुआ और न ही गणित का तनिक विकास हुआ, इसलिए इसे यूरोप में ज्ञान-विज्ञान के अंधकार का युग माना जाता है । यूरोप में ज्ञान-विज्ञान के नवजागरण का दौर ईसा की ग्यारहवीं सदी से शुरू हुआ, जब ईसाई पंडितों को अरबी ग्रंथों का परिचय मिला और उनका लैटिन भाषा में अनुवाद होने लगा ।

अरबी पंडितों ने सीरियाई, यूनानी और संस्कृत के ज्ञान-विज्ञान के ग्रंथों का अनुवाद करके अपनी भाषा को खूब समृद्ध बना लिया था । सर्वप्रथम जिन दो संस्कृत ग्रंथों से अरबी विद्वानों को भारतीय गणित और ज्योतिष की जानकारी मिली, उनकी रचना ब्रह्मगुप्त ने ही की थी । अरबों ने भारतीय गणित की अनेक विधियों, भारतीय अंक-पद्धति तथा अंक-संकेतों को अपनाया, और बाद में उन्हीं के द्वारा यूरोप में इनका प्रचार-प्रसार हुआ । ब्रह्मगुप्त को अरबी गणितज्ञों का एक आदिगुरु माना जा सकता है ।[2]

जब यूरोप में ज्ञान-विज्ञान के अंधकार का लंबा दौर चल रहा था, तब भारत में आर्यभट, ब्रह्मगुप्त, महावीराचार्य, भास्कराचार्य आदि कई महान गणितज्ञ पैदा हुए । आर्यभट-प्रथम (499 ई.) के साथ भारत में गणितीय अनुसंधान के एक नए युग की शुरुआत हुई थी । ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट की परंपरा को आगे बढ़ाया, भारतीय गणित को अधिक समृद्ध बनाया । बीजगणित के क्षेत्र की उनकी उपलब्धियां विशेष महत्व की हैं । ब्रह्मगुप्त निश्चय ही अपने समय के संसार के एक महान गणितज्ञ थे । विज्ञान के प्रख्यात इतिहासकार जॉर्ज सार्टन का भी कथन है,— ''ब्रह्मगुप्त भारतभूमि के एक महान वैज्ञानिक थे; अपने

समय के एक सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक थे ।''

ब्रह्मगुप्त के दो उपलब्ध ग्रंथ हैं—**ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत** और **खंड-खाद्यक** । आर्यभट ने अपने 'आर्यभटीय' ग्रंथ में गणित और ज्योतिष का विवेचन एक साथ किया है । ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट का अनुकरण किया और अपने 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत' में गणित तथा ज्योतिष, दोनों की जानकारी दी । ग्रंथ में 24 अध्याय और कुल 1008 श्लोक हैं । 12वें 'गणिताध्याय' में अंकगणित और क्षेत्रमिति से संबंधित विषयों की जानकारी है और 18वें 'कुट्टकाध्याय' में बीजगणित का विवेचन है ।[3]

'खंड-खाद्यक' एक करण यानी पंचांग की गणनाओं से संबंधित ग्रंथ है । खंड-खाद्यक का अर्थ है—खांड या गुड़ से बना खाद्य-पदार्थ । बड़ा विचित्र नाम है । दो भागों (**पूर्व** और **उत्तर**) में विभक्त इस ग्रंथ में कुल 265 श्लोक हैं । इन दो ग्रंथों के अलावा ब्रह्मगुप्त ने एक और पुस्तक लिखी । उसका नाम **ध्यानग्रह** है और उसमें 72 श्लोक हैं ।[4]

आर्यभट प्राचीन भारत के पहले गणितज्ञ-ज्योतिषी हैं जिन्होंने केवल अपने समय (499 ई.) के बारे में स्पष्ट जानकारी दी है । ब्रह्मगुप्त ने अपने बारे में थोड़ी अधिक जानकारी दी है । 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत' के अंतिम 'संज्ञाध्याय' के दो श्लोकों में ब्रह्मगुप्त अपना संक्षिप्त परिचय देते हैं—

श्रीचापवंशतिलके श्रीव्याघ्रमुखे नृपे शकनृपाणाम् ।
पंचाशत्संयुक्तैर्वर्षशतैः पंचभिरतीतैः ।।7।।
ब्राह्मःस्फुटसिद्धान्तः सज्जनगणितज्ञगोलवित्प्रीत्यै ।
त्रिंशद्वर्षेण कृतो जिष्णुसुतब्रह्मगुप्तेन ।।8।।

संज्ञाध्याय

इससे पता चलता है कि ब्रह्मगुप्त ने अपना यह ग्रंथ चाप वंश के राजा व्याघ्रमुख के राज्यकाल में शक-संवत् 550 में लिखा और उस समय इनकी आयु 30 साल की थी । शक-संवत् में 78 जोड़ने से ईसवी सन् का वर्ष मिलता है । अर्थात्, ब्रह्मगुप्त का जन्म 598 ई. में हुआ था और 30 वर्ष की आयु (628 ई.) में उन्होंने अपने 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत' की रचना की । ब्रह्मगुप्त के पिता का नाम **जिष्णु** था ।

ब्रह्मगुप्त के एक टीकाकार वरुणाचार्य ने उन्हें 'भिल्लमालकाचार्य' कहा है । भिल्लमाल या भिन्नमाल नगर आबू पर्वत के करीब 65 कि. मी. पश्चिमोत्तर में लूनी नदी के तट पर बसा उत्तर गुजरात की राजधानी था । इसे भीलमान या श्रीमाल भी कहते थे । आज यह दक्षिण राजस्थान में भीनमाल नामक एक छोटा गांव है । मगर ब्रह्मगुप्त के समय में यह एक वैभवशाली नगर था । चीनी

ब्रह्मगुप्त के 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत' के प्रथम 'मध्यमाधिकार' के आरंभिक बारह श्लोक । प्रथम श्लोक में महादेव की वंदना करने के बाद दूसरे श्लोक में ग्रंथ-रचना के प्रयोजन के बारे में जिष्णु-पुत्र ब्रह्मगुप्त कहते हैं :

ब्रह्मणोक्तं ग्रहगणितं महता कालेन यत् खिलीभूतम् ।
अभिधीयते स्फुटं तज्जिष्णुसुतब्रह्मगुप्तेन ॥2॥

बौद्धयात्री युवान्-च्वाङ् ने जिस 'पि-लो-मो-तो' नगर का उल्लेख किया है, वह यही भिल्लमाल है । **शिशुपाल-वध** महाकाव्य के रचनाकार **माघ कवि** का जन्म इसी नगर में हुआ था । ब्रह्मगुप्त के समय (628 ई.) में भिल्लमाल में चाप या चावड़ा वंश के व्याघ्रमुख राजा की राजधानी थी । युवान्-च्वाङ् ब्रह्मगुप्त के जीवन-काल में ही भारत आया था । उस समय उत्तर भारत में हर्षवर्धन का शासन था ।

ब्रह्मगुप्त के जीवन के बारे में इतनी ही प्रामाणिक जानकारी मिलती है । यह भी पता चलता है कि ब्रह्मगुप्त ने अपने **खंड-खाद्यक** ग्रंथ की रचना 665 ई. में 67 वर्ष की आयु में की थी ।

ब्रह्मगुप्त के मृत्यु-काल के बारे में कहीं कोई सूचना नहीं मिलती, पर स्पष्ट है कि उन्हें लंबी आयु मिली थी ।

आर्यभट ने अपने 'आर्यभटीय' ग्रंथ के 'गणितपाद' अध्याय के 33 श्लोकों में तत्कालीन गणित के सभी विषयों की संक्षिप्त जानकारी दे दी है। उन्होंने गणित के विषयों का कोई विभाजन नहीं किया । ब्रह्मगुप्त पहले भारतीय गणितज्ञ हैं जिन्होंने गणित को दो भागों में बांटा—पाटीगणित और बीजगणित । लेकिन उस समय तक बीजगणित शब्द अस्तित्व में नहीं आया था । ब्रह्मगुप्त ने बीजगणित के लिए 'कुट्टक-गणित' शब्द का प्रयोग किया है और 'कुट्टकाध्याय' में बीजगणित का अलग से विवेचन किया है । पहली बार 'बीजगणित' शब्द का प्रयोग 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत' के टीकाकार **पृथूदकस्वामी** (860 ई.) ने किया है ।

भारतीय गणित-ग्रंथों में अंकगणित के लिए प्रायः पाटीगणित शब्द का प्रयोग हुआ है । लेकिन लगता है कि यह 'पाटी' शब्द संस्कृत मूल का नहीं है। तख्ती के लिए संस्कृत के पुराने शब्द फलक या पट्ट हैं । पहले तख्ती या जमीन पर धूल बिछाकर गणनाएं की जाती थीं, इसलिए अंकगणित को कभी-कभी धूलिकर्म भी कहा जाता था । पाटीगणित और धूलिकर्म शब्दों के आधार पर ही अरबी के क्रमशः 'इल्म-हिसाब अल्-तख्त' और 'हिसाब अल्-गुबार' शब्द बने हैं । भारतीय मूल के अंकों को अरबी गणितज्ञ **गुबार** अंक (हरूफ अल्-गुबार) कहते थे ।

'ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत' के 'गणिताध्याय' का पहला ही श्लोक है—

परिकर्मविंशतिं यः संकलिताद्यां पृथग्विजानाति ।
अष्टौ च व्यवहारान् छायान्तान् भवति गणकः सः ।।

अर्थात्, जो संकलित आदि 20 परिकर्मों को और छाया सहित 8 व्यवहारों को भलीभांति जानता है, वही कुशल गणक कहलाता है । पृथूदकस्वामी के अनुसार

20 परिकर्म हैं—संकलित (जोड़), व्यवकलित (घटा), गुणन, भागहार, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल, पंच जाति (भिन्नों के पांच मानक रूपों में संबंधों को व्यक्त करनेवाले पांच नियम), त्रैराशिक, व्यस्त-त्रैराशिक, पंचराशिक, सप्तराशिक, नवराशिक, एकादशराशिक, भाण्ड-प्रतिभाण्ड (विनिमय तथा लेन-देन) । आठ व्यवहार हैं—मिश्रक, श्रेढी, क्षेत्र, खात (उत्खनन), चिति (माल), क्राकचिक (आरी), राशि (ढेरी) और छाया ।

ब्रह्मगुप्त ने अपने ग्रंथ में सभी प्रमुख परिकर्मों और व्यवहारों के संक्षिप्त नियम प्रस्तुत कर दिए हैं । आर्यभट की तरह ब्रह्मगुप्त का ग्रंथ भी पद्य में है, इसलिए इसमें संख्यांकों का प्रयोग नहीं हुआ है । पर शून्य सहित केवल दस संकेतों से सभी संख्याएं व्यक्त करने की **दाशमिक स्थानमान अंक-पद्धति** आर्यभट के समय तक भारत में अस्तित्व में आ चुकी थी । ब्रह्मगुप्त ने भी इसी नई अंक-पद्धति का प्रयोग किया । बीजगणित में शून्य का उपयोग करनेवाले ब्रह्मगुप्त पहले भारतीय गणितज्ञ हैं । उन्होंने नियम दिए हैं—

अ − 0 = अ

−अ − 0 = −अ

$0 - 0 = 0$

अ × 0 = 0

$0 \times 0 = 0$

$0 \div 0 = 0$

लेकिन यहां ब्रह्मगुप्त का यह कथन कि $0 \div 0 = 0$, सही नहीं है । मगर उन्होंने अ÷0 को 'तच्छेद' कहा है, जो ठीक है । यहां 'तच्छेद' का तात्पर्य 'ख-छेद' यानी 'अनंत' है । भास्कराचार्य (1150 ई.) ने इसे 'ख-हर' (अनंत) राशि का नाम दिया ।

ब्रह्मगुप्त की बीजगणित के क्षेत्र की गवेषणाएं विशेष महत्व की हैं । उन्होंने 'कुट्टकाध्याय' के अंतर्गत बीजगणित का स्वतंत्र विवेचन किया है । 'कुट्टक' का अर्थ है चूर-चूर करनेवाला या चक्की । प्रथम घात के अनिर्धार्य समीकरणों (इन्डिटरमिनेट इक्वेशन्स) को बार-बार की पुनरावृत्ति की एक विशेष विधि से हल किया जाता था, इसलिए यह कुट्टक शब्द अस्तित्व में आया था । बाद में व्यापक अर्थवाले 'बीजगणित' तथा 'अव्यक्त गणित' शब्द अस्तित्व में आए ।

यूनानी गणितज्ञ ज्यामिति को ज्यादा महत्व देते थे और बीजगणित के सवाल भी प्रायः ज्यामितीय विधियों से हल करते थे । लेकिन 'कुट्टकाध्याय' के पहले ही श्लोक में ब्रह्मगुप्त कहते हैं—"कुट्टाकार (बीजगणित) के बिना सवालों को हल करना प्रायः संभव नहीं होता, इसलिए मैं प्रश्नों सहित कुट्टाकार की जानकारी दूंगा ।"[5] आर्यभट-प्रथम ने भी कुट्टक गणित यानी प्रथम घात के

अनिर्धार्य समीकरणों का विवेचन किया है ।

भारतीय बीजगणित में अज्ञात राशि के लिए प्रायः **यावत्-तावत्** (जितनी कि उतनी मात्रा में) शब्द का प्रयोग हुआ है । ब्रह्मगुप्त ने अज्ञात के लिए **वर्ण** (रंग, अक्षर) शब्द का प्रयोग किया है । इसलिए कालांतर में अज्ञात के लिए कालक (का), नीलक (नी), पीतक (पी) आदि रंगों या अक्षरों का इस्तेमाल होता रहा । जोड़ के लिए यु (युत), भाग के लिए 'भा' और गुणा के लिए 'गु' अक्षरों का प्रयोग होता था । घटा के लिए + चिह्न का प्रयोग देखने को मिलता है । यह चिह्न ब्राह्मी के 'क' अक्षर-जैसा है, और संभवतः 'क्षय' शब्द का संक्षेप है । कालांतर में घटा को व्यक्त करने के लिए अंक के ऊपर एक बिंदी लगा दी जाती थी, जैसे $\dot{8}$ का अर्थ था –8 । समीकरण को प्रस्तुत करने की व्यवस्था को **न्यास** कहते थे ।

ब्रह्मगुप्त के काफी पहले से भारतीय गणितज्ञ रैखिक तथा वर्ग-समीकरणों को हल करने में समर्थ थे । ब्रह्मगुप्त ने भी इनको हल करने के नियम दिए हैं । पर भारतीय गणितज्ञों ने सबसे ज्यादा महत्व अनिर्धार्य समीकरणों के विश्लेषण को दिया है । ज्योतिष संबंधी सवालों में ऐसे समीकरण प्रकट होते थे । इन्हें इतना अधिक महत्व दिया गया कि पूरे बीजगणित को ही कुट्टक गणित यानी प्रथम घात के अनिर्धार्य समीकरणों का विश्लेषण कहा जाने लगा ।

सर्वप्रथम आर्यभट-प्रथम ने ब **र**–अ **य** = स जैसे प्रथम घात के अनिर्धार्य समीकरणों के सामान्य हल प्रस्तुत किए थे । ब्रह्मगुप्त और बाद के महावीराचार्य, भास्कर-द्वितीय आदि गणितज्ञों ने भी इनका विश्लेषण प्रस्तुत किया । ऐसे समीकरणों को जन्म देनेवाले सवालों का एक उदाहरण होगा : वह कौन-सी संख्या है जिसमें 7509 से भाग देने पर 13 शेष आता है और 5301 से भाग देने पर 25 शेष आता है? (उत्तर : 21993874) ।

गणित के क्षेत्र में ब्रह्मगुप्त की सबसे बड़ी उपलब्धि है अनिर्धार्य वर्ग-समीकरण **अ य**^{2} **+ 1 = र**^{2} का हल प्रस्तुत करना । पाश्चात्य गणित के इतिहास में इस समीकरण के हल का श्रेय **जोन पेल** (1668 ई.) को दिया जाता है और यह 'पेल समीकरण' के नाम से ही जाना जाता है ।

परंतु वास्तविकता यह है कि पेल के एक हजार साल पहले ब्रह्मगुप्त ने इस समीकरण का हल प्रस्तुत कर दिया था । इसके हल के लिए ब्रह्मगुप्त ने दो प्रमेयिकाएं (लैमाज) खोजी थीं । यूरोप के महान गणितज्ञ **आयलर** ने 1764 ई. में पुनः इसकी खोज की । आयलर ने ही अनिर्धार्य वर्ग-समीकरण को 'पेल समीकरण' का नाम दिया था ।

अनिर्धार्य वर्ग-समीकरण के लिए भारतीय नाम **वर्ग-प्रकृति** है । इस समीकरण को हल करने के लिए ब्रह्मगुप्त ने जिन प्रमेयिकाओं की खोज की

थी, उन्हें भारतीय गणित में **भावना** कहा गया है । भास्कराचार्य (1150 ई.) ने अनिर्धार्य वर्ग-समीकरण को हल करने के लिए **चक्रवाल** नामक एक नई विधि की खोज की थी । यह भी जोन पेल के करीब पांच सौ साल पहले की और आयलर के करीब छह सौ साल पहले की घटना है । अतः स्पष्ट है कि अनिर्धार्य वर्ग-समीकरण को **ब्रह्मगुप्त-भास्कर समीकरण** कहना भी अनुपयुक्त नहीं होगा ।

क्षेत्रमिति के क्षेत्र में भी ब्रह्मगुप्त की उपलब्धियां महत्वपूर्ण हैं । उन्होंने क, ख, ग, घ भुजाओंवाले चक्रीय चतुर्भुज का क्षेत्रफल दिया है— $\sqrt{(\text{स}-\text{क})(\text{स}-\text{ख})(\text{स}-\text{ग})(\text{स}-\text{घ})}$, जहां 2 स = क + ख + ग + घ । बाद में ब्रह्मगुप्त के इस प्रमेय को महावीराचार्य और भास्कर-द्वितीय ने काफी विकसित किया ।

आर्यभट ने वृत्त की परिधि और व्यास के अनुपात (पाई) का मान 3.1416 दिया था, जो एक काफी शुद्ध मान है । ब्रह्मगुप्त ने इस अनुपात का मान $\sqrt{10}$ दिया है, जो उतना शुद्ध नहीं है ।

दरअसल, ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट की अनेक महत्वपूर्ण उपलब्धियों की न केवल उपेक्षा की, बल्कि अनुचित ही उनकी निंदा भी की । आर्यभट पहले भारतीय वैज्ञानिक थे, जिन्होंने कहा था कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है । लेकिन ब्रह्मगुप्त ने इस सही सिद्धांत का भी खंडन किया । आर्यभट ने कहा था कि चंद्र की छाया जब पृथ्वी पर पड़ती है तो सूर्य-ग्रहण होता है और पृथ्वी की छाया जब चंद्र पर पड़ती है तो चंद्र-ग्रहण होता है । ब्रह्मगुप्त ने इसका भी खंडन किया और कहा कि राहु-केतु राक्षस ही ग्रहणों के लिए जिम्मेवार हैं ! ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट की युग-पद्धति की भी आलोचना की ।

लगता है कि तरुण ब्रह्मगुप्त पौराणिक मान्यताओं से ज्यादा प्रभावित थे और लोकभय के कारण परंपरागत विचारों पर प्रश्नचिह्न लगाने का साहस उनमें नहीं था । 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत' में उन्होंने आर्यभट के अनेक दोष दिखाए हैं, पर बाद में, परिपक्व आयु में, उन्होंने आर्यभट-तुल्य फल प्राप्त करने के प्रयोजन से 'खण्ड-खाद्यक' ग्रंथ की रचना की ।

ब्रह्मगुप्त न केवल एक महान गणितज्ञ थे, बल्कि एक महान वेधकर्ता भी थे। 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत' के 'यंत्राध्याय' में इन्होंने अनेक ज्योतिषयंत्रों की जानकारी दी है । **तुरीय यंत्र** की खोज शायद ब्रह्मगुप्त ने ही की थी । वेधकार्य में ज्यादातर गोलयंत्र का उपयोग होता था । आधे चक्र से चापयंत्र बनता था और आधे चाप से तुरीय यंत्र ।

ब्रह्मगुप्त सममुच ही एक महान वेधकर्ता और मौलिक प्रतिभा के गणितज्ञ थे । बाद के अनेकानेक भारतीय तथा अरबी गणितज्ञों ने उनका बड़े आदर से स्मरण किया है । महान भारतीय गणितज्ञ भास्कराचार्य (1150 ई.) ने

ब्रह्मगुप्त को 'महामतिमान शास्त्रकार' और 'गणकचक्रचूड़ामणि' कहा है । भारतीय गणितज्ञों के समुदाय में ब्रह्मगुप्त का स्थान निश्चय ही मुकुट-माणिक्य की तरह सर्वोपरि है ।

सहायक ग्रंथ

1. **ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत**—(मूल और संस्कृत टीका) : पं. सुधाकर द्विवेदी, बनारस 1902
2. पं. सुधाकर द्विवेदी—**गणकतरंगिणी**, बनारस 1933
3. शंकर बालकृष्ण दीक्षित—**भारतीय ज्योतिष** , लखनऊ 1963
4. ब. ल. उपाध्याय—**प्राचीन भारतीय गणित**,नई दिल्ली 1971
5. श्याम मराठे— **भारतीय गणितींची चरित्रे** (मराठी), नागपुर 1989
6. विभूतिभूषण दत्त और अवधेश नारायण सिंह— **हिस्ट्री आफ हिन्दू मैथेमेटिक्स** (भाग I, II), बम्बई 1962
7. सी. एन. श्रीनिवासीएंगर—**द हिस्ट्री आफ एंशियंट इंडियन मैथेमेटिक्स**,कलकत्ता 1967

संदर्भ और टिप्पणियां

1. डायोफैंटस के प्रमुख ग्रंथ का नाम है **अरिथमेटिका**,जिसके मूल 13 अध्यायों में से केवल 6 ही उपलब्ध हैं । यूनानी शब्द **अरिथमेटिके** का मूल अर्थ है— संख्याशास्त्र (अरिथमोस् = संख्या, टेक्ने = शास्त्र, विज्ञान) ग्रंथ में संख्या शास्त्र और बीजगणितीय समीकरणों से संबंधित करीब 130 सवालों के हल दिए गए हैं ।

   डायोफैंटस ने संख्या-सिद्धांत से संबंधित सवालों के अलावा सरल व वर्ग-समीकरण, एक विशेष घन-समीकरण और अनिर्धार्य समीकरणों के हल दिए हैं । उन्होंने शब्दों के आद्याक्षरों या संक्षेपों के आधार पर कुछ चिह्नों का भी प्रयोग किया था । वह ऋण संख्याओं का इस्तेमाल तो करते थे (जैसे, ऋण × ऋण = धन), पर अपने समीकरणों में ऋण या शून्य हलों को स्वीकार नहीं करते थे ।

   डायोफैंटस की कृति ने मध्ययुगीन यूरोप के गणितज्ञों को खूब प्रभावित किया, विशेषकर पियरे द फर्मा को ।

2. ब्रह्मगुप्त 628 ई. में जब अपने 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत' की रचना कर रहे थे, तब मुहम्मद पैगम्बर (मृत्यु : 632 ई.) जीवित थे । उस समय अरबी में ज्ञान-विज्ञान का कोई साहित्य नहीं था ।

   लेकिन आगे के करीब सौ वर्षों में सारा नक्शा ही बदल गया । मुहम्मद साहब के उत्तराधिकारी खलीफाओं का इस्लामी शासन पूर्व में सिंध प्रांत से लेकर पश्चिम में स्पेन तक फैल गया । अब्बासी खलीफा अल्-मंसूर (754-775 ई.) ने दजला नदी के पश्चिमी तट पर 762 ई. में राजधानी बगदाद की स्थापना की । बगदाद का वैभव तेजी से बढ़ता गया । अल्-मंसूर के शासनकाल में ही पहली बार संस्कृत के गणित-ज्योतिष के ग्रंथों का अरबी में अनुवाद शुरू हुआ । इस संबंध में पता चलता है कि सिंध से एक

दूत-मंडली अल्-मंसूर के दरबार में पहुंची थी। इस मंडली में **कंक या मंक** नाम के एक भारतीय पंडित भी थे, जो अपने साथ भारतीय गणित तथा ज्योतिष के कुछ ग्रंथ बगदाद ले गए थे। अल्-मंसूर के आदेश से उन ग्रंथों का अरबी में अनुवाद किया गया। यह 772-73 ई. की घटना है।

अरबी में **सिंदहिंद** और **अल्-अरकंद** नामक ग्रंथों की बड़ी ख्याति रही है, हालांकि ये ग्रंथ अब उपलब्ध नहीं हैं। ये ग्रंथ ब्रह्मगुप्त के 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत' (सिंदहिंद) और 'खण्ड-खाद्यक' (अल्-अरकंद) के अरबी अनुवाद थे। पता चलता है कि भारतीय पंडितों के सहयोग से फारस के विद्वान **याकूब इब्न तारिक** और अरब के इब्राहिम अल्-फजारी के बेटे **मुहम्मद** ने ब्रह्मगुप्त के इन ग्रंथों का पहली बार अरबी में अनुवाद किया था। बाद में इन ग्रंथों के अरबी में कई अनुवाद हुए। **अल्-बेरूनी** (973-1048 ई.) ने भी ब्रह्मगुप्त के ग्रंथों का अनुवाद किया था।

इस प्रकार, पहली बार ब्रह्मगुप्त के ग्रंथों से ही अरबी पंडितों को भारतीय गणित तथा ज्योतिष-सिद्धांतों की जानकारी मिली थी। अरबी में तालेमी और यूक्लिड के यूनानी ग्रंथों का अनुवाद कुछ बाद में हुआ। अल्-बेरूनी के 'भारत' के अनुवादक **एडवर्ड साचाऊ** ने भी लिखा है—"पूर्व के देशों के ज्ञान-विज्ञान के इतिहास में ब्रह्मगुप्त का स्थान बहुत ऊंचा है। अरबवासियों को तालेमी के ग्रंथ का पता लगने से पहले उन्हें ब्रह्मगुप्त ने ज्योतिषशास्त्र सिखाया।" (पृष्ठ XXXI)

भारतीय अंकों की जानकारी अरबों को शायद पहले ही मिल गई थी। पर ब्रह्मगुप्त के ग्रंथों के साथ उन्होंने भारतीय अंक-पद्धति तथा अंक-संकेतों को पूरी तरह अपना लिया। बाद में महान इस्लामी गणितज्ञ **अल्-ख्वारिज्मी** (जन्म : 783 ई.) ने एक पुस्तक भारतीय अंक-पद्धति पर और एक पुस्तक बीजगणित पर लिखी, जिसमें भारतीय बीजगणित की कई विधियों का समावेश किया। बाद में अल्-ख्वारिज्मी के इन दोनों ग्रंथों का लैटिन में अनुवाद हुआ। यूरोप की भाषाओं में प्रचलित 'अलगोरिथम' शब्द अल्-ख्वारिज्मी से और 'अलजब्रा' शब्द उनकी बीजगणित की पुस्तक के नाम पर अस्तित्व में आया है। यूरोप के बौद्धिक नवजागरण में अरबी ज्ञान-विज्ञान ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

अरबों (मूरों) के जरिए भारतीय अंक-पद्धति, अंक-संकेत और भारतीय गणित तथा ज्योतिष के अनेक सिद्धांत यूरोप में पहुंचे। परंतु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि अरबी गणितज्ञ-ज्योतिषियों के आदिगुरु ब्रह्मगुप्त थे।

3. **ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत**—संपादन और संस्कृत टीका — सुधाकर द्विवेदी, बनारस 1902
4. सुधाकर द्विवेदी ने उपर्युक्त ग्रंथ के अंतिम 25वें **ध्यानग्रहोपदेशाध्याय** के रूप में इसका समावेश किया है।
5. श्लोक है—

प्रायेण यतः प्रश्नाः कुट्टाकाराद्दृते न शक्यन्ते।
ज्ञातुं वक्ष्यामि ततः कुट्टाकारं सह प्रश्नैः ॥

अल्-ख्वारिज्मी

केवल दो शब्दों पर विचार करने से पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि यूरोप के बौद्धिक नवजागरण में और गणित के आरंभिक विकास में प्रत्यक्ष रूप से अरबी विज्ञान ने और परोक्ष रूप से भारतीय विज्ञान ने कितनी बड़ी भूमिका अदा की है । ये दो शब्द हैं— 'अलगोरिथम' और 'अलजब्रा' ।

'अलगोरिज्म' या 'अलगोरिथम' महान अरबी गणितज्ञ अल्-ख्वारिज्मी के नाम के विकृत रूप हैं । अल्-ख्वारिज्मी ने भारत में खोजी गई शून्य-सहित दस अंकों पर आधारित स्थानमान अंक-पद्धति का परिचय देने के लिए अरबी में एक पुस्तक लिखी थी । ईसा की बारहवीं सदी में लैटिन में इस पुस्तक का अनुवाद हुआ था ।[1] लैटिन में इसका नाम है—**लिबेर अलगोरिज्मी दे न्यूमेरो इन्दोरम** (हिंद के अंकों के बारे में अल्-ख्वारिज्मी की पुस्तक) ।

यूरोप में यह पुस्तक इतनी अधिक लोकप्रिय हुई कि भारतीय अंक-पद्धति से की जानेवाली गणनाओं के अर्थ में वहां 'अलगोरिज्म' शब्द ही रूढ़ हो गया । भारतीय अंकों पर आधारित अंकगणित के अर्थ में इस शब्द के विभिन्न रूप यूरोप की भाषाओं में सदियों तक प्रचलित रहे । कंप्यूटरों की गणनाओं के लिए गणित के सूत्रों को दिए जानेवाले विशिष्ट रूप के अर्थ में आज भी 'अलगोरिथम' शब्द का खूब इस्तेमाल होता है ।

बीजगणित के द्योतक 'अलजब्रा' शब्द के लिए भी यूरोप अल्-ख्वारिज्मी का ऋणी है । अल्-ख्वारिज्मी की बीजगणित की पुस्तक का नाम—**किताब अल्-जब्र व अल्-मुकाबिलः** था । इस पुस्तक में अल्-ख्वारिज्मी ने भारतीय बीजगणित की कई विधियों का समावेश किया है । ईसा की बारहवीं सदी में अल्-ख्वारिज्मी की इस पुस्तक का भी लैटिन में अनुवाद हुआ ।[2] न केवल अरबी में, बल्कि लैटिन में भी यह बीजगणित की पहली पुस्तक थी । इसलिए इस पुस्तक के नाम का **अल्जब्रा** (पुनर्स्थापना) शब्द ही बीजगणित के अर्थ में यूरोप में रूढ़ हो गया ।

यूरोपीय गणित के आरंभिक विकास में अल्-ख्वारिज्मी का योगदान हस्तामलक की तरह सुस्पष्ट है । गणित के इतिहासकार डिर्क जे. स्त्रुइक ने लिखा है— ''गणित के इतिहास में अल्-ख्वारिज्मी की कृतियां ही वह मुख्य

स्रोत हैं जिसके जरिए पश्चिमी यूरोप में भारतीय अंकों और अरबी बीजगणित को प्रवेश मिला ।"[3] विज्ञान के विख्यात इतिहासकार प्रो. जॉर्ज सार्टन ने अल्-ख्वारिज्मी को अपने समय का सर्वश्रेष्ठ और संसार का एक महान गणितज्ञ माना है ।

इस्लाम की आरंभिक सदियों में जिन अरबी पंडितों ने ज्ञान-विज्ञान के बारे में ग्रंथ लिखे, उनमें से अधिकांश का संबंध फारस और मध्य एशिया से रहा है । अल्-ख्वारिज्मी, इब्न-सिना, अल्-बेरूनी, उमर खय्याम आदि ऐसे ही पंडित थे । इस्लाम के उदय के काफी पहले से फारस और मध्य एशिया के साथ भारत के गहरे सांस्कृतिक संबंध रहे हैं । इस्लाम से पहले मध्य एशिया में बौद्धधर्म काफी फैला हुआ था ।

अल्-ख्वारिज्मी का पूरा नाम **अबू अब्दुल्ला मुहम्मद इब्न-मूसा अल्-ख्वारिज्मी** था । इनका जन्म ख्वारेज्म प्रदेश के खीवा नगर (वर्तमान उजबेकिस्तान) में 783 ई. में हुआ था । इनके करीब दो सौ साल बाद अल्-बेरूनी (973-1048 ई.) भी ख्वारेज्म में ही पैदा हुए थे । अल्-ख्वारिज्मी के जन्म के केवल सात दशक पहले ही ख्वारेज्म पर उमैया खलीफाओं का शासन स्थापित हुआ था। अल्-ख्वारिज्मी के दादा या परदादा संभवतः बौद्ध ही रहे होंगे । इस्लाम से पहले पश्चिमी मध्य एशिया में बौद्धों का भौतिकवादी वैभाषिक सम्प्रदाय काफी फैला हुआ था । अल्-ख्वारिज्मी को भारतीय अंक-पद्धति की जानकारी संभवतः ख्वारेज्म में ही मिल गई थी । अरल सागर के दक्षिणी भाग का यह ख्वारेज्म प्रदेश काबुल या पश्चिमोत्तर भारत से ज्यादा दूर नहीं है ।

अल्-ख्वारिज्मी के ख्वारेज्म प्रदेश के आरंभिक जीवन के बारे में हमें कोई ठोस जानकारी नहीं मिलती । इन्होंने अरबी में अपने ग्रंथों की रचना बगदाद पहुंचने के बाद की थी ।

अब्बासी खलीफा अल्-मंसूर (754-75 ई.) ने दजला नदी के पश्चिमी तट पर 762 ई. में राजधानी बगदाद की स्थापना की थी । तब तक इस्लामी साम्राज्य सिंध से लेकर स्पेन तक फैल चुका था । अल्-मंसूर के शासनकाल में पहली बार भारतीय गणित, ज्योतिष तथा चिकित्सा के ग्रंथों का अरबी में अनुवाद कार्य शुरू हुआ था । अरबी में पहली बार ब्रह्मगुप्त के ग्रंथों का अनुवाद 772-73 ई. में हुआ था ।

बगदाद को ज्ञान-विज्ञान का एक महान केन्द्र बनाने में **बरामिक** परिवार के मंत्रियों ने बड़े महत्व की भूमिका अदा की थी । यह बरामिक परिवार मूलतः मध्य एशिया का था । अरबी का यह **बरामिक** (या ब्रमुक) शब्द 'प्रमुख' से बना है । इस्लाम में दीक्षित होने के पहले इस परिवार के लोग मध्य एशिया के बौद्ध विहारों के प्रमुख या संरक्षक थे ।

अल्-ख्वारिज्मी (1783-लग. 850 ई.)

अब्बासी खलीफा अल्-मंसूर, हारूँ अल्-रशीद (786-809 ई.) और अल्-मामू (813-33 ई.) का काल इस्लामी शासन का स्वर्णयुग माना जाता है। इनमें खलीफा अल्-मामू का मध्य एशिया से विशेष संबंध रहा है। खलीफा हारूँ के शासनकाल में मामू पूर्वी प्रांत (फारस, पश्चिमी भारत और मध्य एशिया) के गवर्नर थे। 813 ई. में खलीफा घोषित किए जाने पर भी वह मध्य एशिया के मेर्व स्थान पर पांच-छह साल तक टिके रहे। मामू एक बुद्धिवादी खलीफा थे और दार्शनिक चर्चा में बड़ी दिलचस्पी लेते थे। मेर्व के निवास के दौरान ही मामू को अल्-ख्वारिज्मी की प्रतिभा का परिचय मिला होगा। 819 ई. में मामू जब बगदाद लौटने लगे तो अपने साथ अल्-ख्वारिज्मी को भी ले गए। उस समय अल्-ख्वारिज्मी की उम्र 36 साल थी।

खलीफा अल्-मामू ने बगदाद में एक विद्यापीठ (बैत अल्-हिकमत) की स्थापना की और देश-विदेश के अनेक पंडितों को अपने दरबार में आमंत्रित किया। उन्होंने विद्यापीठ में एक ग्रंथालय की भी स्थापना की और अल्-ख्वारिज्मी को ग्रंथपाल नियुक्त किया। मामू ने बगदाद में एक अच्छी वेधशाला भी स्थापित की। अल्-ख्वारिज्मी ने यहां सालों तक वेधकार्य किया। उन्होंने अपने ग्रंथों की रचना बगदाद में ही की।

अल्-ख्वारिज्मी ने अंकगणित, बीजगणित, ज्योतिष, भूगोल और इतिहास के बारे में ग्रंथों की रचना की। ये सभी ग्रंथ उन्होंने तत्कालीन इस्लामी साम्राज्य की राजभाषा अरबी में लिखे।

अल्-ख्वारिज्मी ने अंकगणित के बारे में जो ग्रंथ लिखा, उसका अरबी नाम था—**हिसाब अल्-हिंद** या **किताब अल्-जामः व तफरीक बि हिसाब अल्-हिंद** (हिंद के हिसाब में जोड़ और घटा की पुस्तक)। इस पुस्तक में शून्य पर आधारित नई दाशमिक स्थानमान अंक-पद्धति में अंकगणित को समझाया गया है। इस अंक-पद्धति का आविष्कार भारत में हुआ था, इसलिए अल्-ख्वारिज्मी तथा अनेक अरबी गणितज्ञों ने इसे **हिंद का हिसाब** कहा है। अल्-ख्वारिज्मी की इस पुस्तक से भारत की अंक-पद्धति के बारे में पहले इस्लामी देशों को और बाद में यूरोप को व्यापक जानकारी मिली।

'हिंद के हिसाब' के बारे में अल्-ख्वारिज्मी की यह पुस्तक मूल अरबी में आज उपलब्ध नहीं है, पर इसका लैटिन अनुवाद प्राप्य है। इंग्लैंड के बाथ स्थान के निवासी एदेलार्द ने 1126 ई. के आसपास स्पेन के एक अरबी विद्याकेंद्र में इस पुस्तक का अनुवाद किया था। इस पुस्तक ने यूरोप के गणितज्ञों को इतना अधिक प्रभावित किया कि वहां नई भारतीय अंक-पद्धति से की जानेवाली गणनाओं के लिए अल्-ख्वारिज्मी का ही नाम (अलगोरिज्म) प्रचलित हो गया!

अल्-ख्वारिज्मी ने अपनी पुस्तक में जिन भारतीय अंकों का इस्तेमाल किया है

अरबी हस्तलिपियों में भारतीय मूल के गुबार अंक, जो यहां अरबी लिपि की तरह दाएं से बाएं लिखे गए हैं । तीसरी पंक्ति के गुबार अंक 970 ई. की एक अरबी हस्तलिपि के हैं, जिसमें पहली बार शून्य सहित पूरे दस अंक-संकेत देखने को मिलते हैं ।

उन्हें उन्होंने **गुबार अंक** (हरूफ अल्-गुबार) कहा है । ये अंक भारतीय हैं, जो ब्राह्मी अंकों से विकसित हुए हैं । अरबों (मूरों) के साथ यही अंक स्पेन में पहुंचे और बाद में यूरोप में फैले । स्पेन में लिखी गई 976 ई. की एक हस्तलिपि में

स्पेन में 976 ई. में लिखी गई एक यूरोपीय हस्तलिपि में भारतीय मूल के अंकों का प्राचीनतम उपलब्ध प्रयोग । गुबार अंकों से बने ये अंक-संकेत बाएं से दाएं लिखे गए हैं ।

पहली बार हमें भारतीय मूल के ये अंक देखने को मिलते हैं । दसवीं सदी के एक यूरोपीय विद्वान **झेरबार** ने भारतीय अंकों के प्रचार का बड़ा काम किया ।[4] स्पेन के यहूदी विद्वान **रब्बी बेन एजरा** (1095-1167 ई.) ने भी भारतीय अंक तथा अंकगणित की जानकारी देने के लिए एक पुस्तक लिखी थी ।[5] इतालवी गणितज्ञ **लियोनार्दो 'फिबोनकी'** (लगभग 1170-1245 ई.) ने भारतीय अंकों के प्रचार में बड़ा योग दिया ।[6] पर यूरोप के गणितज्ञों पर सबसे अधिक प्रभाव अल्-ख्वारिज्मी की **हिसाब अल्-हिंद** पुस्तक का ही पड़ा है ।

अल्-ख्वारिज्मी की बीजगणित से संबंधित पुस्तक है : **किताब अल्-जब्र व अल्-मुकाबिलः** । यहां 'जब्र' का अर्थ है 'पुनर्स्थापना' और 'मुकाबिलः' का अर्थ है 'समान करना' । ये समीकरणों की रचना (न्यास) से संबंधित क्रियाएं हैं । इस पुस्तक में अल्-ख्वारिज्मी ने भारतीय बीजगणित की कई विधियों को

अपनाया है । अल्-ख्वारिज्मी के लिए ब्रह्मगुप्त (628 ई.) का बीजगणित अरबी अनुवाद में पहले से उपलब्ध था ।

अल्-ख्वारिज्मी ने बीजगणित का अपना यह ग्रंथ बगदाद में 825 ई. के आसपास रचा और इसे उन्होंने अपने आश्रयदाता खलीफा अल्-मामू को समर्पित किया ।

अल्-ख्वारिज्मी की बीजगणित की इस पुस्तक का इंग्लैंड के चेस्टर-निवासी **राबर्ट** ने 1145 ई. के आसपास स्पेन के एक अरबी विद्याकेंद्र में बैठकर लैटिन में अनुवाद किया । लैटिन में बीजगणित पर यह पहली पुस्तक थी, इसलिए इसके अरबी नाम का 'अल्-जब्र' शब्द 'अलजब्रा' बनकर यूरोप की भाषाओं में बीजगणित के अर्थ में रूढ़ हो गया !

अल्-ख्वारिज्मी ने अपने बीजगणित में रैखिक और वर्ग समीकरणों का विवेचन किया है । वर्ग-समीकरणों में उन्होंने $य^2 + 10य = 39$, $य^2 + 21 = 10य$, $3य + 4 = य^2$ जैसे समीकरणों के हल प्रस्तुत किए हैं । मध्ययुग के प्रसिद्ध वर्ग-समीकरण $य^2 + 10य = 39$ का हल उन्होंने ज्यामितीय रचना करके दिया है । पहले के सभी गणितज्ञों की तरह अल्-ख्वारिज्मी ने भी वर्ग-समीकरणों के केवल धनात्मक मूल ही स्वीकार किए हैं । दरअसल, उन्नीसवीं सदी के मध्यकाल तक बीजगणित का अध्ययन मुख्यतः समीकरणों तक ही सीमित रहा । अल्-ख्वारिज्मी ने अपने बीजगणित में व्यावहारिक क्षेत्रमिति (ज्यामिति) की भी जानकारी दी है । अल्-ख्वारिज्मी की बीजगणित की मूल अरबी पुस्तक और इसका लैटिन अनुवाद, दोनों ही आज उपलब्ध हैं ।

अरबी वैज्ञानिक ज्योतिष के अध्ययन और इसमें त्रिकोणमिति के उपयोग को बड़ा महत्व देते थे । अल्-ख्वारिज्मी ने ज्योतिष-सारणियों और ज्या (साइन) तथा स्पर्शज्या (टैंजेंट) सारणियों पर भी अरबी में एक पुस्तक लिखी थी, जिसका बाद में लैटिन में अनुवाद हुआ था । अल्-ख्वारिज्मी का ज्योतिष-विवेचन भारतीय ज्योतिष के सिद्धांत-ग्रंथों पर आधारित था ।[7] आर्यभट (499 ई.) के ग्रंथ में त्रिकोणमिति का विवेचन है और ज्या-सारणी भी दी गई है । अरबी त्रिकोणमिति भारतीय पद्धति की है, तालेमी की त्रिकोणमिति पर आधारित नहीं । इसका एक स्पष्ट सबूत यह है कि आज त्रिकोणमिति में प्रचलित यूरोप का 'साइन' शब्द संस्कृत के 'जीवा' शब्द से बना है । अरबी अनुवादकों ने संस्कृत के जीवा शब्द को ज्यों-का-त्यों अपनाकर इसे अरबी अक्षरों में 'ज-ब' के रूप में लिखा था । लैटिन अनुवादकों ने इसे 'जेब' (कुरते में छाती के ऊपर लगनेवाला पाकिट) समझकर इसका अनुवाद किया **सिनुस्** (छाती) । सिनुस् से ही 'साइन' शब्द बना है ।[8]

अल्-ख्वारिज्मी ने बगदाद की वेधशाला में वेधकार्य तो किया ही, उन्होंने

Liber mahumeti de Algebra et almuchabala ...

PROLOGVS

अल्-ख्वारिज्मी की बीजगणित की पुस्तक 'अल्-जब्र व अल्-मुकाबिलः' का चेस्टरवासी रॉबर्ट द्वारा लगभग 1145 ई. में अरबी से लैटिन में किए गए अनुवाद का प्रथम पृष्ठ, जिसकी प्रथम पंक्ति है: 'लिबेर महुम्मेती दे अल्जेब्रा एत् अलमुकाबला' (1456 ई. की हस्तलिपि)।

ज्योतिष-यंत्रों और सूर्य-घड़ी पर भी एक पुस्तक लिखी।

अल्-ख्वारिज्मी ने 'भूगोल' पर भी एक पुस्तक लिखी थी—**किताब सूरत अल्-अर्ज** (धरती का विवरण)। यह पुस्तक पिछली सदी के अंतिम चरण में मिली है। इसमें 38 मानचित्र थे, जिनमें से केवल चार बचे हैं। इन मानचित्रों में दो हजार से भी अधिक भौगोलिक स्थलों का उल्लेख है। तत्कालीन भौगोलिक जगत के बारे में प्रामाणिक जानकारी देनेवाली अरबी में यह पहली कृति थी।

अल्-ख्वारिज्मी ने इतिहास के बारे में भी एक पुस्तक लिखी थी—**किताब अल्-तारीख**। आज यह पुस्तक उपलब्ध नहीं है, पर मध्ययुग के अरबी ग्रंथों में इसका कई जगह उल्लेख मिलता है।

850 ई. के आसपास अल्-ख्वारिज्मी का देहांत हुआ।

प्रायः यही समझा जाता है कि यूरोप में विकसित हुआ समूचा आधुनिक गणित प्राचीन यूनानी गणित पर आधारित है। पर बात ऐसी नहीं है। केवल ज्यामिति का ही मूलाधार यूनानी है। यूरोपवासियों को यूक्लिड की पुस्तक की जानकारी सर्वप्रथम इसके अरबी अनुवाद से ही मिली थी। आधुनिक अंकगणित और बीजगणित तो पूर्णतः भारतीय और अरबी ढांचे के हैं। पूर्व के देशों की अंक-पद्धति, अंकगणित और बीजगणित को यूरोप में पहुंचाने में अल्-ख्वारिज्मी की कृतियों ने एक महान ऐतिहासिक भूमिका अदा की है, यह तथ्य हमें हमेशा स्मरण रखना चाहिए। निम्नलिखित कथन इस बात की पुष्टि करते हैं—

जो लोग यूनानी भाषा के जानकार होने के कारण यह समझते हैं कि वे विज्ञान के शिखर पर पहुंच चुके हैं, यदि वे हिंदवालों की इस अंक-पद्धति को जानें तो उन्हें यकीन हो जाएगा कि उनके अलावा दुनिया में और भी लोग हैं, जो कुछ जानते हैं।

*—सीरियाई बिशप **सेवेरस सेबोख्त** (662 ई.)*

शून्य के आविष्कार और इसके महत्व की जितनी भी स्तुति की जाए, कम है। कुछ नहीं वाले इस शून्य को, न केवल एक स्थान, नाम, चिह्न या संकेत प्रदान करना, बल्कि इसमें उपयोगी शक्ति भरना, उस भारतीय मस्तिष्क की एक विशेषता है जिसने इसे जन्म दिया है। यह निर्वाण को विद्युत-शक्ति में बदलने-जैसा है। गणित के किसी भी अन्य आविष्कार ने मानव-बुद्धि एवं शक्ति को इतना अधिक बलशाली नहीं बनाया है।

*—गणितज्ञ **प्रो. जार्ज ब्रूस हॅलस्टीड***

अरबों ने ही सबसे पहले स्पेन में भारतीय अंक-पद्धति का प्रचार किया। यह एक नई

जर्मनी में प्रकाशित 'मर्गीरिता फिलोसोफिका' नामक विश्वकोश (1503 ई.) का एक चित्र, जिसमें दिखाया गया है कि गिनतारे से गणना करने वाला व्यक्ति (दाएं) परेशान है, मगर भारतीय अंकों से गणना करने वाला बाईं ओर का व्यक्ति (अल्गोरिस्ट) प्रसन्नचित्त है। चित्र में दाईं ओर का व्यक्ति पाइथेगोरस (छठी सदी ई.पू.) है और बाईं ओर का व्यक्ति रोमन विद्वान बोएथियस (475-524 ई.), जिन्होंने अंधकार-युगीन यूरोप में गणित की ज्योति को प्रज्वलित रखा।

और क्रांतिकारी अंक-पद्धति थी । इसी अंक-पद्धति ने आधुनिक विज्ञान और इंजीनियरी का पथ प्रशस्त किया है ।

*—गणित के इतिहासकार **अल्फ्रेड हूपर***

आधुनिक अंकगणित और बीजगणित के भाव एवं तरीके भारतीय हैं, यूनानी नहीं ।··· दुर्भाग्य से भारत के कई अमूल्य आविष्कार यूरोप में काफी बाद में पहुंचे । यदि वे दो-तीन सदियों पहले पहुंचते, तो उनका प्रभाव निश्चय ही अधिक पड़ता ।

*—गणित के इतिहासकार **फ्लोरियन काजोरी***

केवल दस संकेतों से सभी संख्याओं को व्यक्त करने की यह अद्भुत विधि हमें भारत से प्राप्त हुई है । ··· यह गहन धारणा आज हमें इतनी सरल प्रतीत होती है कि हम इसके महत्व पर विचार ही नहीं करते । ··· जब हम स्मरण करते हैं कि प्राचीन जगत के दो महान गणितज्ञों—आर्किमीदीज़ और एपोलोनियस—की प्रतिभाएं भी इस धारणा के बारे में सोच नहीं पाईं, तब हमारी दृष्टि में इस आविष्कार का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है ।

*—फ्रांसीसी गणितज्ञ **लापलास (1749-1827 ई.)***

यदि बीजगणित का अर्थ सभी प्रकार के परिमाणों पर अंकगणित के परिकर्म लागू करना है···तो भारतीय पंडित ही बीजगणित के सच्चे आविष्कारक हैं ।

—हरमान हेंकेल (1874 ई.)

जब अल्-ख्वारिज्मी बगदाद के महान विद्याकेंद्र में गणित और ज्योतिष-भूगोल की अपनी कृतियों की रचना कर रहे थे, तब समूचे यूरोप में ज्ञान-विज्ञान का अंधकार-युग था । लेकिन लगभग अल्-ख्वारिज्मी के ही समय में दक्षिण भारत में महान जैन गणितज्ञ महावीराचार्य अंकगणित की अपनी पुस्तक **गणितसार-संग्रह** की रचना करने में जुटे हुए थे ।

सहायक ग्रंथ

1. डिर्क जे. स्त्रुइक — **ए कंसाइज हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स**, लंदन 1959
2. डेविड यूजेन स्मिथ — **हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स** (भाग 1, 2), डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1958
3. ए. सी. क्रोम्बी — **आगस्तीन टु गैलीलियो** (द हिस्ट्री आफ साइंस 400-1650 ई.), लंदन 1957
4. होवार्ड इवेस — **एन इंट्रोडक्शन टु द हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स** (पंचम संस्करण), न्यूयार्क

5. अल्फ्रेड हूपर — **मेकर्स आफ मैथेमेटिक्स**, न्यूयार्क 1948
6. गुणाकर मुले — **भारतीय गणित की यूरोप-यात्रा** (लेख), **गगनांचल**, वर्ष 10, अंक 4, पृ. 83-94

संदर्भ और टिप्पणियां

1. यह अनुवाद बाथ-निवासी **एदेलार्द** (बारहवीं सदी, पूर्वार्ध) ने 1126 ई. के आसपास किया था। इंग्लैंड के ईसाई मठवासी एदेलार्द ने इटली, सीरिया, मिस्र, अरबिया आदि देशों की यात्राएं की थीं और अंत में स्पेन पहुंच गए थे। वहां कार्दोवा के विद्यापीठ में उन्होंने अरबी का अध्ययन किया और जुट गए अनुवाद-कार्य में। उन्होंने अल्-ख्वारिज्मी की पुस्तक 'लिबेर अलगोरिज्मी' के अलावा उनकी ज्योतिष-सारणी (त्रिकोणमिति) का भी लैटिन में अनुवाद किया।

   एदेलार्द ने ही यूक्लिड के 'मूलतत्व' (ज्यामिति) का अरबी से लैटिन में पहला अनुवाद किया था। यूरोप में यूक्लिड का मूल यूनानी ग्रंथ सोलहवीं सदी में ही उपलब्ध हुआ।
2. अनुवादक थे — इंग्लैंड के चेस्टर स्थान के राबर्ट। उन्होंने इटली और यूनान की यात्रा की थी। स्पेन के सेर्गोविया स्थान में जाकर 1145 ई. के आसपास उन्होंने अल्-ख्वारिज्मी के 'बीजगणित' का लैटिन में अनुवाद किया। उन्होंने ही **कुरान** का पहली बार लैटिन में अनुवाद किया।
3. डिर्क जे. स्त्रुइक, **ए कंसाइज हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स**, लंदन 1959, पृ. 92
4. फ्रांस में पैदा हुए झेरबार (लगभग : 950-1003 ई.) बाद में जाकर सिल्वेस्तर-द्वितीय के नाम से 999 ई. में पोप बने। गहन अध्ययन के लिए वे स्पेन गए थे। फिर इटली गए। पोप बनने के बाद उन्होंने भारतीय अंकों के बारे में जानकारी हासिल की, उनका प्रचार किया और अंकगणित वं ज्यामिति के बारे में पुस्तकें लिखीं।
5. यहूदी विद्वान अब्राहम बेन एजरा का जन्म तोलेदो (स्पेन) में 1094 ई. के आसपास हुआ था और 1167 ई. में रोम में उनकी मृत्यु हुई। उन्होने लंदन से लेकर मिस्र तक की यात्राएं की थीं। उन्होंने संख्याओं के बारे में चार पुस्तकें लिखीं, जिनमें से **सिफर ह-मिस्पर** (संख्याओं की पुस्तक) ज्यादा महत्व की है और भारतीय अंकगणित पर आधारित है।
6. लियोनार्दो 'फिबोनकी' को मध्ययुगीन यूरोप का सबसे बड़ा गणितज्ञ माना जाता है। 'फिबोनकी' का अर्थ है 'बोनकी का पुत्र'। बोनकी पीसा (इटली) के एक सम्पन्न व्यापारी थे। बुगिया (अफ्रीका का उत्तरी तट) में उनकी कोठी थी। बुगिया में ही एक

लियोनार्दो 'फिबोनकी'
(लगभग 1170-1245 ई.)

मूर अध्यापक की देखरेख में बालक लियोनार्दो की शिक्षा हुई । तरुणाई में उन्होंने मिस्र, सीरिया, यूनान, सिसिली आदि की यात्राएं कीं और विद्वानों तथा व्यापारियों से मिलकर गणित और संख्या-पद्धतियों की जानकारी हासिल की ।

लियोनार्दो 'फिबोनकी' ने भारतीय अंक-पद्धति को सबसे बेहतर पाया। 1202 ई. में उन्होंने **लिबेर एबकी** नामक ग्रंथ लिखा, जिसमें 15 अध्याय हैं । प्रथम अध्याय 'हिंद के अंकों का पठन और लेखन' के बारे में है । 'फिबोनकी' ने ज्यामिति और संख्या-सिद्धांत के बारे में भी पुस्तकें लिखीं, जिन्होंने मध्ययुगीन यूरोप के गणित को बेहद प्रभावित किया ।

7. डिर्क जे. स्त्रुइक—**ए कंसाइज हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स**, लंदन 1950, पृ. 92
8. विशेष प्रकार की ज्या के अर्थ में प्रयुक्त **क्रमज्या** शब्द को लीजिए । संस्कृत का **क्रमज्या** अरबी में **करज** या **करदज** बन गया । 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत' के आधार पर याकूब इब्न तारिक (लगभग 772 ई.) ने जो सारणी तैयार की थी उसका नाम **करदज सारणी** था । उसी अर्थ में अल्-ख्वारिज्मी ने **करज** का प्रयोग किया । लैटिन में यह शब्द **करदग** और **गरदग** बन गया।

   ज्या से आधुनिक **साइन** शब्द बना । उसी तरह, **कोज्या** से **कोसाइन** शब्द बना ।

अल्-ख्वारिज्मी की 1200 वीं जयंती के अवसर पर 'सोवियत संघ' द्वारा जारी किया गया पदक

महावीराचार्य

जिस समय भारत में आर्यभट (499 ई.) और ब्रह्मगुप्त (628 ई.) जैसे महान गणितज्ञ पैदा हुए, उस समय समूचा यूरोप ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से अंधकार में था, और प्राचीन यूनानी विज्ञान का अवसान पहले ही हो चुका था। ईसा की पांचवीं-छठी सदी से लेकर बारहवीं-तेरहवीं सदी तक गणित का विकास मुख्यतः एशियाई देशों में हुआ। इन सात-आठ सौ वर्षों में भारत, चीन और इस्लामी देशों में अनेक महान गणितज्ञ पैदा हुए और गणित का खूब विकास हुआ। ब्रह्मगुप्त के करीब दो सौ साल बाद, ईसा की नौवीं सदी में, महावीराचार्य नाम के एक श्रेष्ठ जैन गणितज्ञ हुए। इस्लामी गणितज्ञ अल्-ख्वारिज्मी और महावीराचार्य का समय लगभग एक ही है।

प्राचीन भारत में गणित और ज्योतिष की जानकारी एक ही ग्रंथ में प्रस्तुत कर देने की परंपरा रही है। आर्यभट और ब्रह्मगुप्त के ग्रंथ इसी तरह के हैं। लेकिन प्राचीन भारत के जिस ग्रंथ में पहली बार केवल गणित का विवेचन देखने को मिलता है वह है महावीराचार्य का **गणितसार-संग्रह**। संस्कृत काव्य में रचे गए इस ग्रंथ में महावीराचार्य ने गणित के नियमों के साथ-साथ बहुत से प्रश्न भी दिए हैं, जो बड़े ही मनोरंजक हैं। यही कारण है कि दक्षिण भारत में यह ग्रंथ गणित की पाठ्य-पुस्तक के रूप में कई सदियों तक उपयोग में लाया गया।

महावीराचार्य अपने ग्रंथ के मंगलाचरण में सर्वप्रथम भगवान महावीर की वंदना करते हैं और फिर अपने आश्रयदाता राजा अमोघवर्ष नृपतुंग की स्तुति करते हैं। राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष 814 ई. में गद्दी पर बैठा और 878 ई. में उसका देहांत हुआ। जैन धर्म का अनुयायी यह राजा ज्ञान-विज्ञान का भी अनुरागी था। अमोघवर्ष ने **कविराजमार्ग** नाम से छंद-अलंकार शास्त्र के बारे में कन्नड में एक ग्रंथ की रचना की थी और संस्कृत में नीतिशास्त्र का **प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका** ग्रंथ रचा था। **धवलाटीका** और **आदिपुराण** के रचनाकार प्रसिद्ध जैन आचार्य जिनसेन और गणितज्ञ महावीराचार्य के प्रति अमोघवर्ष की परम आस्था थी। महावीराचार्य ने भी नरेश अमोघवर्ष को बड़े आदर से 'चक्रिकाभंजन' और 'नृपतुंग' कहा है। चूंकि महावीराचार्य इस राष्ट्रकूट राजा के समय में हुए, इसलिए उनका काल हम 850 ई. के आसपास मान सकते हैं।

उनके जीवन के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती ।

वेदांग-ज्योतिष ने गणित के अध्ययन को सर्वाधिक महत्व दिया था । (गणितं मूर्धनि स्थितम्) ।[1] जैनाचार्यों ने भी गणित के अध्ययन को प्रधानता दी थी ।[2] परंतु गणितशास्त्र की जैसी प्रशंसा महावीराचार्य ने की, वैसी अन्यत्र देखने को नहीं मिलती । अपने ग्रंथ के आरंभ में ही वह लिखते हैं : ''सांसारिक, वैदिक तथा धार्मिक आदि सभी कार्यों में गणित उपयोगी है । कामशास्त्र, अर्थशास्त्र, संगीत व नाट्यशास्त्र, पाकशास्त्र, ओषधिशास्त्र, वास्तुविद्या, छंद-अलंकार, काव्य, तर्क, व्याकरण आदि सभी कलाओं में गणित-विज्ञान श्रेष्ठ माना जाता है । सूर्य तथा ग्रहों-नक्षत्रों की गतियां, ग्रह-संयुति, चंद्र की गति, त्रिप्रश्न आदि जानने में इनका उपयोग होता है ।··· व्यर्थ में अधिक कहने से क्या लाभ । तीनों लोकों में जो तमाम चराचर (गतिशील और स्थिर) वस्तुएं हैं उनका अस्तित्व गणित से पृथक नहीं है ।''[3]

महावीराचार्य के 'गणितसार-संग्रह' में कुल नौ **अधिकार** यानी अध्याय हैं ।[4] प्रथम अध्याय में रेखा, समय, धान्य, सोना-चांदी तथा भूमि आदि को मापने के पैमाने दिए गए हैं । महावीराचार्य ने इकाई से आरंभ करके 24वें स्थान तक संख्या-संज्ञाएं गिनाई हैं ।[5] चौबीसवें स्थान की संख्या को 'महाक्षोभ' कहा गया है। जैन तीर्थंकरों की संख्या 24 है, इसीलिए शायद 24 संख्या-स्थान दिए गए हैं।

गणित-ज्योतिष के अन्य पद्य-ग्रंथों की तरह 'गणितसार' में भी संख्याएं शब्दों में लिखी गई हैं । जैसे, संख्या 3021 को 'चंद्र-अक्षि-आकाश-अग्नि' से व्यक्त किया गया है । इन शब्द-संख्याओं को इकाई से आरंभ करके क्रमशः बाईं ओर आगे बढ़ते हुए लिखा जाता था *(अंकानां वामतो गतिः)* । महावीराचार्य ने कई शब्द-संख्याओं का उपयोग जैन दर्शन के अनुसार किया है । जैसे, उन्होंने 'रत्न' शब्द का उपयोग 'तीन' के लिए किया, जबकि अन्य गणितज्ञों ने 'रत्न' का उपयोग पांच के लिए किया ।

महावीराचार्य ने आरंभ में ही शून्य के प्रयोग के बारे में जो नियम दिए हैं उन्हें आधुनिक संकेतों से निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है[6]—

$$\text{अ} + 0 = \text{अ},\ \text{अ} - 0 = \text{अ},\ \text{अ} \times 0 = 0,\ \text{अ} \div 0 = \text{अ}$$

यहां अंतिम कथन सही नहीं है । किसी राशि को शून्य से भाग देने पर परिणाम 'अनंत' होता है । भास्कराचार्य (1150 ई.) ने ऐसी राशि को 'खहर' यानी 'अनंत' कहा है ।

मगर महावीराचार्य जानते थे कि किसी धनात्मक वर्गराशि का वर्गमूल निकालने पर दो राशियां (धनात्मक और ऋणात्मक) प्राप्त होती हैं । परंतु उन्होंने ऋणात्मक राशि के वर्गमूल को स्वीकार नहीं किया ।[7] दरअसल,

ऋणात्मक राशि के वर्गमूल के रूप में गणित में कल्पित संख्याओं (इमेजनरी नंबर्स) को स्वीकार करना महावीराचार्य के करीब एक हजार साल बाद ही संभव हुआ ।

'गणितसार' के दूसरे अध्याय में गुणन भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल तथा श्रेढ़ियों के संकलन के बारे में नियम तथा प्रश्न दिए गए हैं । महावीराचार्य ने गुणन के कुछ ऐसे रोचक प्रश्न दिए हैं जिनसे गुणनफल की **कंठाभरण** संख्याएं बनती हैं ।[8] इसी प्रकार, समांतर और गुणोत्तर श्रेढियों से संबंधित सवाल भी बड़े दिलचस्प हैं ।

तीसरा **कलासवर्णव्यवहारः** नामक अध्याय भिन्नों से संबंधित है । चौथे **प्रकीर्णकव्यवहारः** नामक अध्याय में भिन्नों के बारे में बड़े मनोरंजक उदाहरण दिए हैं । वैदिक काल में $\frac{1}{16}$ के लिए 'कला' शब्द का इस्तेमाल होता था । बाद में यह 'कला' शब्द भिन्न के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा । कई भिन्नों के हर को एक कर लेने का नाम कलासवर्णन या समच्छेदविधि है । महावीर ने अपने कलासवर्ण अध्याय में भिन्नों के जोड़ तथा घटा की छह जातियां बताई हैं ।[9]

महावीराचार्य ने **एकांशक भिन्नों** को बड़ा महत्व दिया है । एकांशक भिन्न वे हैं जिनके अंश में 1 होता है । महावीराचार्य ने किसी दी हुई भिन्न को एक से अधिक **एकांशक भिन्नों** के जोड़ के रूप में परिवर्तित करने के अनेक नियम दिए हैं । प्राचीन मिस्र की **आःमोस पेपीरस** पुस्तक (1650 ई. पू.) में एकांशक भिन्नों की चर्चा है, परंतु भारत में महावीराचार्य पहले गणितज्ञ थे जिन्होंने एकांशक भिन्नों का व्यापक विवेचन किया । उन्होंने 1 को या किसी अन्य एकांशक भिन्न को विविध प्रकार के एकांशक के जोड़ों के रूप में व्यक्त करने के लिए कई नियम दिए हैं । उन्होंने 1 को 'न' एकांशक भिन्नों के जोड़ के रूप में व्यक्त करने के लिए जो नियम दिया है उसे निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है :

$$1 = \frac{1}{2} + \frac{1}{3} + \frac{1}{3^2} + \dots + \frac{1}{3^{न-2}} + \frac{1}{2.3^{न-2}}$$

यदि न = 5, तो इस नियम के अनुसार —

$$1 = \frac{1}{2} + \frac{1}{3} + \frac{1}{9} + \frac{1}{27} + \frac{1}{54}$$

महावीराचार्य ने भिन्नों के बारे में बड़े रोचक प्रश्न दिए हैं । एक प्रश्न है : "आम्र फलों के समूह में से राजा ने $\frac{1}{16}$ भाग लिया, रानी ने शेष का $\frac{1}{5}$ भाग लिया और प्रमुख राजकुमारों ने उसी शेष के क्रमशः $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{3}$ और $\frac{1}{2}$ भाग लिए। सबसे छोटे ने शेष 3 आम लिए । हे प्रकीर्णक-विशारद ! आम्रसमूह का

संख्यात्मक मान बताओ'' (उत्तर : 18 आम) । यहां यह बता देना उपयोगी होगा कि भारतीय गाणितज्ञ भिन्नों को आज की तरह ही ऊपर-नीचे लिखते थे, पर अंश और हर के बीच में आड़ी रेखा नहीं रहती थी ।

'गणितसार' के पांचवें अध्याय में त्रैराशिक का विवेचन है । त्रैराशिक का अर्थ है तीन राशियों—प्रमाण, फल और इच्छा—से संबंधित नियम । त्रैराशिक के सवाल का स्वरूप होता है—यदि 'प्रमाण' में 'फल' मिलता है, तो 'इच्छा' में क्या मिलेगा ? प्राचीन भारत के सभी गणितज्ञों ने त्रैराशिक को बड़ा महत्व दिया और इसका व्यापक विवेचन किया । महावीराचार्य ने नियम दिया है : त्रैराशिक में जब इच्छा और प्रमाण एक जाति के होते हैं, तब फल और इच्छा के गुणनफल को प्रमाण से भाग देने पर इच्छाफल मिलता है । उन्होंने व्यस्त त्रैराशिक और बहुराशिक के कई उदाहरण दिए हैं ।

पिछले करीब दो हजार वर्षों से भारत में त्रैराशिक के नियम का प्रचलन रहा है । भारत से यह आठवीं सदी में अरब देशों में पहुंचा और बाद में यूरोप में इसका प्रचार हुआ । अल्-बेरूनी ने त्रैराशिक के बारे में **फी राशिकात अल्-हिंद** (हिंद के राशिक) नाम से एक ग्रंथ लिखा था । यूरोप में भारत के इस त्रैराशिक नियम को 'स्वर्ण नियम' की उपाधि से विभूषित किया गया था ।

'गणितसार' का छठा **मिश्रकव्यवहार** अध्याय काफी बड़ा है । पाटीगणित के भारतीय ग्रंथों में मिश्रकव्यवहार के अंतर्गत ब्याज, सुवर्ण की मिलावट आदि से संबंधित व्यावसायिक प्रश्न देने की प्रथा रही है । महावीराचार्य ने ब्याज के संबंध में अनेक नियम और उदाहरण दिए हैं । उन्होंने युगपत् समीकरणों तथा वर्ग-समीकरणों को हल करने के भी नियम दिए हैं । ब्याज का एक सवाल है : ''इस प्रश्न में मूलधन 40, 30, 20 और 50 है, और महीने क्रमशः 5, 4, 3 और 6 हैं । ब्याज की राशियों का योग 34 है । ब्याज की दर एक ही हो, तो अलग-अलग ब्याज ज्ञात करो'' (उत्तर : 10, 6, 3, 15) ।

ऐसे सवालों को हल करने के लिए महावीराचार्य ने निम्नलिखित सर्वसमिका का उपयोग किया है—

$$\frac{अ}{ब} = \frac{स}{द} = \frac{क}{ख} = \dots = \frac{अ + स + क + \cdots}{ब + द + ख + \cdots}$$

जैन गणितज्ञों ने **क्रमचय** और **संचय** (परम्यूटेशन एण्ड कम्बिनेशन) से संबंधित

सवालों का बड़ा व्यापक विवेचन किया है । महावीराचार्य संसार के पहले गणितज्ञ हैं जिन्होंने **संचय** के लिए निम्नलिखित व्यापक सूत्र दिया—

$$_{न}स_{र} = \frac{न\,(न-1)\,(न-2)\,...\,(न-र+1)}{1.\,2.\,3.\,...\,र}$$

यह सूत्र यूरोप में महावीराचार्य के करीब आठ सौ साल बाद, सत्रहवीं सदी में खोजा गया । 'गणितसार' का एक रोचक उदाहरण है—

''हे मित्र ! हीरा, नीलम, मरकत, विद्रुम तथा मुक्ताफल से रची हुई अंतहीन धागे की माला के संचय में परिवर्तन होने से कितने प्रकार हो सकते हैं, शीघ्र बताओ'' (उत्तर : 5, 10, 10, 5, 1, 31) ।

महावीराचार्य ने साझा और समानुपातिक विभाजन के बारे में भी कई सवाल दिए हैं । एक रोचक उदाहरण है—''तीन व्यापारियों ने सड़क पर एक थैली पड़ी हुई देखी । एक ने शेष दो से कहा, 'यदि मुझे वह थैली मिल जाए तो तुम्हारे हाथ में जितनी रकमें हैं उनके हिसाब से मैं तुम दोनों से दुगुना धनवान हो जाऊंगा ।' तब दूसरे ने कहा, 'मैं तिगुना धनवान हो जाऊंगा ।' तब तीसरे ने कहा, 'मैं पांच गुना धनवान हो जाऊंगा ।' थैली की रकम तथा प्रत्येक के हाथ की रकमों को अलग-अलग बतलाओ'' (उत्तर : 15, 1, 3, 5) ।

आर्यभट और ब्रह्मगुप्त ने कुट्टक (बीजगणित) के अनिर्धार्य समीकरणों का विवेचन किया था । महावीराचार्य ने इनका अधिक व्यापक विवेचन किया ।

'गणितसार' के सातवें और आठवें अध्यायों में क्षेत्रगणित तथा खात-व्यवहार की चर्चा है । **खात** का अर्थ है खोह या गढ़ा । महावीर ने वृत्त, अर्द्धवृत्त, दीर्घवृत्त, निम्नवृत्त, उन्नतवृत्त, कंबुकावृत्त, हस्तिदंत आदि कई प्रकार की आकृतियों का विवेचन किया है । इसके अलावा, उन्होंने वृत्तों से घिरे हुए कई प्रकार के क्षेत्रों के क्षेत्रफल भी निकाले हैं । ब्रह्मगुप्त की तरह महावीर ने भी परिधि तथा व्यास के अनुपात (π) का मान 3 यां $\sqrt{10}$ ही लिया है, जबकि इन दोनों के पहले आर्यभट इस अनुपात (π) का अधिक सूक्ष्म मान ज्ञात कर चुके थे (3.1416) । इसी प्रकार, ब्रह्मगुप्त और महावीर ने चक्रीय चतुर्भुजों के क्षेत्रफल के लिए एक-से सही सूत्र दिए, पर दोनों ने ही यह स्पष्ट नहीं किया कि यह सूत्र केवल चक्रीय चतुर्भुजों के लिए है ।

दीर्घवृत्त (इलिप्स) का विवेचन करनेवाले महावीराचार्य पहले भारतीय गणितज्ञ हैं । इसे उन्होंने 'आयतवृत्त' (ऊनेन्द्र या अंडाकार आकृति) कहा है । दीर्घवृत्त की परिधि के लिए महावीर ने सूत्र दिया है $\sqrt{24\,ब^2 + 16\,अ^2}$, जहां अ और ब इसके क्रमशः बड़े और छोटे अक्षार्द्ध हैं । यह सूत्र काफी सन्निकट मान देता है।
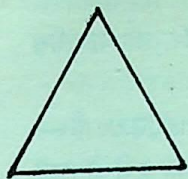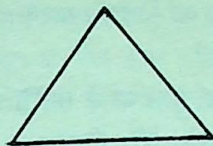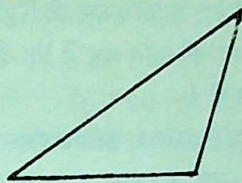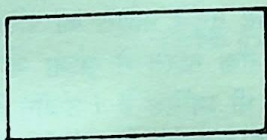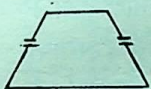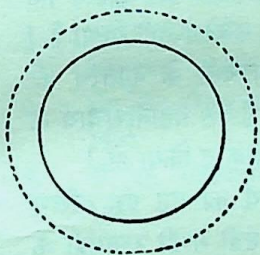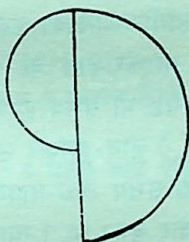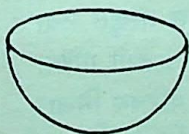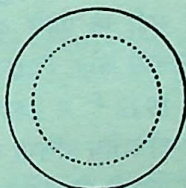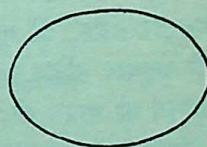
गणितसार-संग्रह के अनुसार कुछ
ज्यामितीय क्षेत्रों की आकृतियां

पर दीर्घवृत्त के क्षेत्रफल के लिए उन्होंने जो सूत्र दिया है वह सही नहीं है। फिर भी महत्व की बात यह है कि दीर्घवृत्त का विवेचन करनेवाले वह पहले भारतीय गणितज्ञ हैं।

अंतिम अध्याय **छायाव्यवहार** है। शंकु छाया से संबंधित एक उदाहरण है— "कोई स्तंभ 20 हस्त ऊंचा है। इस स्तंभ और दीवाल के बीच की दूरी 8 हस्त है। उस समय मनुष्य की छाया मनुष्य की ऊंचाई से दुगुनी है। स्तंभ की छाया का वह कौन-सा भाग है जो दीवाल पर आरूढ़ है ?" (उत्तर : 16 हस्त)।

इस प्रकार, महावीराचार्य ने उस समूचे गणित का परिचय दे दिया है जो ईसा की नौवीं सदी के मध्यकाल तक भारत में खोजा जा चुका था। इसमें उनकी अपनी कतिपय उपलब्धियां भी शामिल हैं। उन्होंने नियम संक्षिप्त और स्पष्ट शब्दों में दिए हैं। उन्होंने जो उदाहरण दिए हैं वे बड़े दिलचस्प हैं और उनकी भाषा बड़ी मधुर तथा काव्यमय है। यही कारण है कि दक्षिण भारत में 'गणितसार-संग्रह' का कई सदियों तक पाठ्य-पुस्तक के रूप में इस्तेमाल हुआ।

'गणितसार-संग्रह' के अध्ययन से पता चलता है कि महावीराचार्य ब्रह्मगुप्त के 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत' से भलीभांति परिचित थे। 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत' के टीकाकार पृथूदकस्वामी महावीराचार्य के लगभग समकालीन थे। दोनों ने अपनी कृतियों में भरपूर उदाहरण दिए हैं। पर यह बड़े आश्चर्य की बात है कि भास्कराचार्य (1150 ई.) ने महावीराचार्य का कहीं कोई उल्लेख नहीं किया है। और, संभव नहीं लगता कि भास्कराचार्य को महावीराचार्य के कृतित्व की जानकारी न मिली हो। लेकिन यह भी संभव हो सकता है कि महावीराचार्य के जैन होने के कारण भास्कराचार्य ने जान-बूझकर उनका जिक्र न किया हो।

जो भी हो, भास्कराचार्य के समय तक महावीराचार्य का यह ग्रंथ दक्षिण भारत में काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। ग्यारहवीं सदी में ही राजमुंद्री के राजराजेंद्र के शासनकाल में पावलुरि मल्लण ने इस ग्रंथ का तेलुगु में अनुवाद किया था। कन्नड में भी बाद में इस ग्रंथ की टीकाएं हुईं।

प्रो. एम. रंगाचार्य ने वर्तमान सदी के पहले दशक में महावीराचार्य के 'गणितसार-संग्रह' की कुछ हस्तलिपियां खोज निकालीं और मूल संस्कृत तथा अंग्रेजी अनुवाद सहित इस ग्रंथ को 1912 ई. में प्रकाशित किया। तभी गणित की दुनिया को भारत की इस महान गणितीय प्रतिभा का व्यापक परिचय मिला। प्रो. रंगाचार्य से प्राप्त की गई जानकारी के आधार पर गणित के प्रख्यात इतिहासकार डेविड यूजेन स्मिथ ने 1908 ई. में रोम में आयोजित गणित की चौथी अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस में महावीराचार्य का संक्षिप्त परिचय पहले ही दे दिया था।

महावीराचार्य की यह कृति अब मूल संस्कृत तथा हिंदी अनुवाद में भी

उपलब्ध है। यह हिंदी अनुवाद प्रो. लक्ष्मीचंद्र जैन ने किया है और जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर, से प्रकाशित हुआ है।

महावीराचार्य भारत के एक श्रेष्ठ गणितज्ञ तो थे ही। हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि भारतीय गणित के विकास में जैनों ने महत्वपूर्ण योगदान किया है।

सहायक ग्रंथ

1. **गणितसार-संग्रह** (संस्कृत मूल और हिंदी अनुवाद); संपादक : लक्ष्मीचंद्र जैन, सोलापुर 1963
2. ब. ल. उपाध्याय — **प्राचीन भारतीय गणित**, नई दिल्ली 1971
3. श्याम मराठे — **भारतीय गणितींची चरित्रे** (मराठी), नागपुर 1989
4. दत्त और सिंह — **हिस्ट्री आफ हिंदू मैथेमेटिक्स** (भाग 1, 2), बम्बई 1962
5. दत्त और सिंह — **हिंदू गणितशास्त्र का इतिहास** (भाग 1), लखनऊ 1956
6. वी. एस. जैन — आन द गणितसार-संग्रह आफ महावीर' (लेख), **इंडियन जर्नल आफ हिस्ट्री आफ साइंस**, खंड 12, अंक 1, नई दिल्ली 1977.
7. अनुपम जैन और सुरेशचंद्र अग्रवाल — जैन गणितज्ञ महावीराचार्य (लेख), **अर्हत्वचन**, प्रवेशांक, सितंबर 1986, पृ. 41-46
8. बोस, सेन और सुब्बरायप्पा — **ए कंसाइज हिस्ट्री आफ साइंस इन इंडिया**, नई दिल्ली 1971
9. सी. एन. श्रीनिवासीएंगर— **द हिस्ट्री आफ एंशियंट इंडियन मैथेमेटिक्स**, कलकत्ता 1967

संदर्भ और टिप्पणियां

1. *यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा ।।*
   तद्वद् वेदांगशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम् ।। 4 ।।
   यजुः-ज्योतिष

2. जैन परंपरा में गणित के अध्ययन को धर्म का एक अभिन्न अंग माना जाता रहा है। जैन शास्त्रों में जिन 72 कलाओं के नाम मिलते हैं उनमें दूसरा स्थान गणित का है। लेख या लिपि के जो 18 प्रकार बताए गए हैं उनमें अंकलिपि और गणितलिपि का भी उल्लेख है।

   जैन आगम साहित्य के चार अनुयोग (सूत्र और अर्थ का उचित संबंध) माने गए हैं—धर्मकथानुयोग, गणितानुयोग, चरणकरणानुयोग और द्रव्यानुयोग। जैनाचार्यों ने

विश्व और काल का विवेचन करने के लिए गणित का खूब विकास किया । **सूर्यप्रज्ञप्ति**, **चन्द्रप्रज्ञप्ति**, **जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति**, **तिलोयपण्णत्ति**, **षड्खडागम**, **त्रिलोकसार** आदि ग्रंथों तथा इनकी टीकाओं में गणित के बारे में प्रचुर जानकारी मिलती है । **सूर्यप्रज्ञप्ति** को तो गणितानुयोग ही माना जाता है । मगध से दक्षिण भारत में जाकर बसे हुए आचार्य भद्रबाहु ने **सूर्यप्रज्ञप्ति** पर टीका लिखी थी, जो आज अप्राप्य है। कहा जाता है कि भद्रबाहु गणित में भी पारंगत थे ।

इसी प्रकार, **तत्वार्थाधिगम** पर भाष्य लिखने वाले आचार्य उमास्वाति भी गणितज्ञ थे। उन्होंने अपने भाष्य में गणित के कई सूत्र उद्धृत किए हैं । एक सूत्र में परिधि और व्यास का अनुपात $\sqrt{10}$ दिया गया है । **सूर्यप्रज्ञप्ति** में इस अनुपात के लिए दो मान हैं : 3 और $\sqrt{10}$ । यह भी पता चलता है कि उस समय के जैन गणितज्ञों को यह जानकारी थी कि $\sqrt{10}$ एक अपरिमेय संख्या है । प्रथम सदी के **अनुयोगद्वार-सूत्र** में करणियों के गणित के बारे में भी नियम देखने को मिलते हैं ।

भगवती-सूत्र में संचय के बारे में कुछ उदाहरण देखने को मिलते हैं । इस गणित को वे **विकल्प** कहते थे । नेमिचन्द्र रचित **त्रिलोकसार** में 14 प्रकार की श्रेणियों (सीरीज) का विवेचन किया गया है। इस ग्रंथ में क्षेत्रमिति के बारे में भी कई नियम देखने को मिलते हैं ।

जैन ग्रंथों में बड़ी-बड़ी संख्याओं के लिए संज्ञाएं देखने को मिलती हैं । **अनुयोगद्वार-सूत्र** में संख्या 2^{96} का उल्लेख है। जैन ग्रंथों में मिलने वाली दूसरी बड़ी संख्या **शीर्षप्रहेलिका** है, जो $(84,00,000)^{28}$ को सूचित करती है और 194 अंक-स्थान लेती है ।

हम नहीं जानते कि शून्य पर आधारित स्थानमान अंक-पद्धति का आविष्कार किस भारतीय प्रतिभा ने किया । संभव है कि कोई जैनाचार्य ही इस महान आविष्कार का जनक हो ।

3. *लौकिके वैदिके वापि तथा सामायिकेऽपि यः ।*
व्यापारस्तत्र सर्वत्र संख्यानमुपयुज्यते ।।9।।
कामतन्त्रेऽर्थशास्त्रे च गान्धर्वे नाटकेऽपि वा ।
सूपशास्त्रे तथा वैद्ये वास्तुविद्यादिवस्तुषु ।।10।।
छन्दोऽलंकारकाव्येषु तर्कव्याकरणादिषु ।
कलागुणेषु सर्वेषु प्रस्तुतं गणितं परम् ।।11।।
सूर्यादिग्रहचारेषु ग्रहणे ग्रहसंयुतौ ।
त्रिप्रश्ने चन्द्रवृत्तौ च सर्वत्रांगीकृतं हि तत् ।।12।।
....
बहुभिर्विप्रलापैः किं त्रैलोक्ये सचराचरे ।
यत्किंचिद्वस्तु तत्सर्वं गणितेन विना न हि ।।16।।

संज्ञाधिकार, गणितसार-संग्रह

4. ये नौ अध्याय हैं : 1. संज्ञा अधिकार, 2. परिकर्म व्यवहार (अंकगणित), 3. कलासवर्ण व्यवहार (भिन्न), 4. प्रकीर्णक व्यवहार (भिन्नों पर प्रश्न), 5. त्रैराशिक व्यवहार, 6. मिश्रक व्यवहार, 7. क्षेत्रगणित व्यवहार, 8. खात व्यवहार (खोह या गढ़े संबंधी सवाल), और 9. छाया व्यवहार ।

5. ये 24 संख्या-संज्ञाएं हैं : 1. एक, 2. दश, 3. शत, 4. सहस्र, 5. दश सहस्र, 6. लक्ष, 7. दश लक्ष, 8. कोटि, 9. दश कोटि, 10. शत कोटि, 11. अर्बुद, 12. न्यर्बुद, 13. खर्व, 14. महाखर्व, 15. पद्म, 16. महापद्म, 17. क्षोणी, 18. महाक्षोणी, 19. शंख, 20. महाशंख, 21. क्षित्या, 22. महाक्षित्या, 23. क्षोभ, 24. महाक्षोभ ।

6. *ताडितः खेन राशिः खं सोऽविकारी हृतो युतः ।*
हीनोऽपि खवधादिः खं योगे खं योज्यरूपकम् ।।49।।

संज्ञाधिकार

7. *धनं धनर्णयोर्वर्गो मूले स्वर्णे तयोः क्रमात् ।*
ऋणं स्वरूपतोऽवर्गो यतस्तस्मान्न तत्पदम् ।।52।।

संज्ञाधिकार

अर्थात्, धनात्मक तथा ऋणात्मक राशि का वर्ग धनात्मक होता है। और, उस वर्गराशि के वर्गमूल क्रमशः धनात्मक एवं ऋणात्मक होते हैं । चूंकि वस्तुओं के स्वभाव से ऋणात्मक राशि वर्गराशि नहीं होती, इसलिए उसका वर्गमूल नहीं होता ।

8. महावीराचार्य ने गुणन की क्रिया से संबंधित कुछ ऐसे उदाहरण दिए हैं जिनमें गुणनफल की संख्या के अंक बाएं से दाएं या दाएं से बाएं पढ़ने पर एक-से रहते हैं । ऐसे गुणनफलों को 'कंठाभरण' या 'कंठहार' संख्याएं कहा गया है ।

'गणितसार-संग्रह' में इन मनोहर कंठहार संख्याओं के उदाहरण हैं—

$12345679 \times 9 = 111\ 111\ 111$ (नरपालकंठिकाभरण)

$333\ 333\ 666\ 667 \times 33 = 11000011000011$

$14287143 \times 7 = 100010001$ (रक्तकंठिका)

$142857143 \times 7 = 1000000001$ (राजकंठिका)

$152207 \times 73 = 11111111$ (कंठाभरण)

$11011011 \times 91 = 1002002001$

$139 \times 109 = 15151$

$279946681 \times 441 = 12345654321$

अंतिम कंठाभरण संख्या 12345654321 को महावीराचार्य ने बड़े ही मनोरंजक शब्दों में लिखा है—**एकादिषडन्तानि क्रमेण हीनानि**; अर्थात्, वह संख्या जिसमें (इकाई के स्थान से आरंभ करने पर) अंक पहले 1 से 6 तक क्रमशः बढ़ते हैं और फिर क्रमशः घटते हैं ।

9. महावीराचार्य ने असमान हरों वाली भिन्नों को जोड़ने के लिए **निरुद्ध** (लघुत्तम समापवर्त्य) मालूम करने का नियम दिया है —

छेदापवर्तकानां लब्धानां चाहतौ निरुद्धः स्यात् ।।
हरहृतनिरुद्धगुणिते हारांशगुणे समो हारः ।।56।।

कलासवर्णव्यवहार

अर्थात्, हरों के सभी संभव गुणनखंडों और सभी अंतिम भजनफलों के संतत गुणन से निरुद्ध (लघुत्तम समापवर्त्य) प्राप्त होता है । निरुद्ध को हरों द्वारा भाजित करने से प्राप्त भजनफ़लों में हरों और अंशों का गुणन करते हैं । इस तरह प्राप्त हरों और अंशों संबंधी अपवर्त्यों के हर समान होते हैं ।

यूरोप में इस नियम की खोज महावीराचार्य के पांच-छह सौ साल बाद हुई ।

भास्कराचार्य

प्राचीन भारत के सबसे प्रसिद्ध गणितज्ञ भास्कराचार्य हैं। उनकी गणित की **लीलावती** पुस्तक का कई सदियों तक पाठ्य-पुस्तक के रूप में उपयोग हुआ है। 'लीलावती' की अनेक टीकाएं लिखी गईं और देश-विदेश की कई भाषाओं में अनुवाद भी हुआ। 'लीलावती' की ख्याति इतनी अधिक रही कि अभी पिछली पीढ़ी तक बड़े-बूढ़ों के मुंह से अक्सर सुनने को मिलता था : "बेटा 'लीलावती' पढ़ लो तो न केवल पेड़ों की पत्तियां, बल्कि सर के बाल और आकाश के तारे तक गिन सकते हो।" वस्तुतः यह एक निरर्थक कथन है।

भास्कराचार्य के दो ग्रंथ मिलते हैं—**सिद्धांत-शिरोमणि** और **करण-कुतूहल**। 'सिद्धांत-शिरोमणि' गणित और ज्योतिष का ग्रंथ है। इसके चार भाग हैं—लीलावती, बीजगणित, गोलाध्याय, और ग्रहगणित। **लीलावती** में पाटीगणित अर्थात्, अंकगणित के अलावा बीजगणित तथा क्षेत्रगणित की भी थोड़ी जानकारी दी गई है। **बीजगणित** में बीजगणित का, **गोलाध्याय** में खगोल का और **ग्रहगणित** में ग्रहों से संबंधित गणित का वर्णन है। **करण-कुतूहल** में पंचांग बनाने की विधियों का वर्णन है।

उच्च कोटि के कवि भास्कराचार्य ने **सिद्धांत-शिरोमणि** ग्रंथ संस्कृत काव्य में रचा है। काव्य में दिए गए गणित तथा ज्योतिष के नियमों को स्पष्ट करने के लिए भास्कराचार्य ने स्वयं अपने 'सिद्धांत-शिरोमणि' पर गद्य में **वासना** नामक भाष्य लिखा।

भास्कराचार्य के करीब पांच सौ साल पहले प्राचीन भारत में भास्कर नाम के एक और गणितज्ञ-ज्योतिषी हुए। उन्होंने आर्यभट के **आर्यभटीय** (499 ई.) ग्रंथ पर 629 ई. में टीका लिखी थी। उनके **महाभास्करीय** तथा **लघुभास्करीय** नामक दो ग्रंथ मिलते हैं। वे आर्यभट की शिष्य-परंपरा में थे और सौराष्ट्र के निवासी थे। उन्हें भास्कर-प्रथम और 'लीलावती' के रचनाकार को भास्कर-द्वितीय के नाम से जाना जाता है। यहां हमें 'लीलावती' के लेखक भास्कराचार्य-द्वितीय की ही चर्चा करनी है।

भास्कराचार्य ने 'सिद्धांत-शिरोमणि' में अपने समय, कुल तथा निवास-स्थान के बारे में निम्नलिखित श्लोक से जानकारी दी है :

रसगुणपूर्णमही समशकनृपसमयेऽभवन्ममोत्पत्तिः ।
रसगुणवर्षेण मया सिद्धांतशिरोमणी रचितः ।।[1]

अर्थात्, शक-संवत् 1036 में मेरा जन्म हुआ और 36 साल की आयु में मैंने 'सिद्धांत-शिरोमणि' की रचना की ।

इस श्लोक में संख्या 1036 को 'रस-गुण-पूर्ण-मही' से तथा संख्या 36 को 'रस-गुण' से व्यक्त किया गया है ।[2] शक संवत् में 78 जोड़ने पर ईसवी सन् की संख्या मिलती है । अतः भास्कराचार्य का जन्म 1114 ई. में हुआ था और 1150 ई. में उन्होंने 'सिद्धांत-शिरोमणि' की रचना की ।

सिद्धांत-शिरोमणि की चौथी पुस्तक 'गोलाध्याय' की हस्तलिपि का एक अंश । इस अंश में गोलाध्याय के अंतिम प्रकरण 'प्रश्नाध्याय' के कुछ श्लोक हैं । भास्कराचार्य ने इसी प्रश्नाध्याय में अपने बारे में थोड़ी जानकारी दी है ।

भास्कराचार्य के पिता का नाम महेश्वर था और वही उनके विद्या-गुरु थे । भास्कर का कुल ज्योतिष और गणित के अध्ययन के लिए प्रसिद्ध था । अतः उनके पिता महेश्वर ने भी ज्योतिष के कुछ ग्रंथ लिखे होंगे । भास्कर के पुत्र का नाम लक्ष्मीधर और पोते का नाम चंगदेव था । एक शिलालेख से जानकारी मिलती है कि देवगिरि के यादववंशी सिंघण (सिंह) राजा के दरबार में चंगदेव राजज्योतिषी थे ।[3] परंतु भास्कराचार्य ने अपनी कृतियों में किसी आश्रयदाता राजा का उल्लेख नहीं किया है । भास्कर ने अपना गोत्र शांडिल्य और मूल निवास-स्थान विज्जडविड बताया है । वह लिखते हैं—

आसीत् सह्यकुलाचलाश्रितपुरे त्रैविद्यविद्वज्जने,
नानासज्जनधाम्नि विज्जडविडे शांडिल्यगोत्रो द्विजः ।।

गोलाध्याये प्रश्नाध्याय, 61

इसके अनुसार भास्कराचार्य सह्य-पर्वत (सह्याद्रि) के समीप के विज्जडविड या विज्जलविड स्थान के निवासी थे । कुछ विद्वानों ने आधुनिक बीजापुर या बीदर को विज्जडविड माना है । कुछ के अनुसार पाटण (खानदेश) ही भास्कर का निवास-स्थान था । तीसरी संभावना यह है कि गोदावरी के समीप का

बिज्जल-बिड स्थान भास्कर का निवास-स्थल था। भास्कर के समय में पश्चिमी चालुक्य नरेश तैलप-द्वितीय का एक सामन्त बिज्जल था। बिज्जल-बिड का अर्थ है बिज्जल का बिड। यह स्थान सह्याद्रि की एक शाखा (कुलाचल) के पास है। इसलिए संभव है कि यही बिड भास्कराचार्य का निवास-स्थान हो। जो भी हो, इतना निश्चित है कि भास्कराचार्य महाराष्ट्र के सह्याद्रि क्षेत्र के निवासी थे।

भास्कर के देहांत के बारे में कोई स्पष्ट सूचना नहीं मिलती। परन्तु उन्होंने अपने 'करण-कुतूहल' ग्रंथ की रचना 69 साल की आयु में 1183 ई. में की थी। अतः कहा जा सकता है कि भास्कराचार्य को लंबी आयु मिली थी।

भास्कर के पिता महेश्वर ही उनके विद्या-गुरु थे। उन्होंने 'गोलाध्याय' के प्रश्नाध्याय (61) में अपने पिता को 'निःशेष विद्यानिधि' तथा 'श्रौतस्मार्तविचारसार-चतुर' कहा है।

भास्कर ने अपने पिता से गणित के अलावा ज्योतिष, वेद, काव्य, व्याकरण आदि की भी शिक्षा प्राप्त की थी। 'बीजगणित' पुस्तक के अंत में भास्कर अपने पिता की प्रशंसा में लिखते हैं—

आसीन्महेश्वर इति प्रथितः पृथिव्याम्
आचार्यवर्यपदवीं विदुषां प्रपन्नः।
लब्धावबोधकलिकां तत एव चक्रे
तज्जेन बीजगणितं लघु भास्करेण।।

'लीलावती' पुस्तक के नामकरण के बारे में विद्वानों ने अनेक प्रकार के विचार प्रस्तुत किए हैं। पुस्तक में अये बाले, बाले 'लीलावती', मृग-छौने सदृश विशाल चंचल नेत्रोंवाली लीलावती आदि संबोधन आए हैं[4], इसलिए लगता है कि 'लीलावती' संभवतः भास्कराचार्य की पुत्री का नाम था। बादशाह अकबर के दरबार के कवि फैजी ने 1587 ई. में 'लीलावती' का फारसी भाषा में अनुवाद किया था। उसमें फैजी ने 'लीलावती' के बारे में प्रचलित एक दिलचस्प कथा दी है।

''भास्कराचार्य ने अपनी बेटी लीलावती की जन्म-कुंडली देखकर जान लिया था कि विवाह के बाद वह जल्दी ही विधवा हो जाएगी। इसलिए ज्योतिषी पिता ने बड़े प्रयास के बाद उसके विवाह के लिए एक शुभ-मुहूर्त खोज निकाला। विवाह की तैयारियां होने लगीं। विवाह का ठीक-ठीक समय जानने के लिए घटी-यंत्र लगाया गया। घटी-यंत्र तांबे का एक ऐसा पात्र था जिसकी पेंदी में एक छोटा-सा छिद्र होता था। इसे पानी भरे एक बड़े बर्तन में छोड़ दिया जाता था। यह घटी-यंत्र एक अहोरात्र में 60 बार पानी में डूबता था।

''लीलावती अपनी सहेलियों के साथ बार-बार घटी-यंत्र में झांकती थी।

दुर्भाग्य से, लीलावती के मणि-जड़ित वस्त्रों में से एक छोटा मणि टूटकर घटी-यंत्र की पेंदी में पहुंच गया और किसी को भी इसका पता न चला। नतीजा यह हुआ कि शुभ-मुहूर्त का समय चूक गया। ब्याह रुक गया। सभी को बड़ा दुःख हुआ। भास्कराचार्य ने अपनी बेटी को सांत्वना देते हुए कहा : 'अब मैं तुम्हें अंकगणित, बीजगणित, ज्योतिष आदि विषय पढ़ाऊंगा। और, गणित के बारे में जो पुस्तक लिखूंगा उसे लीलावती नाम दूंगा'।''

लेकिन यह कथा संभव नहीं जान पड़ती। पुस्तक के अन्य उल्लेखों से स्पष्ट पता चलता है कि लीलावती भास्कर की पुत्री नहीं हो सकती। पुस्तक को अधिक सरस बनाने के लिए ही उन्होंने इसे 'लीलावती' नाम दिया और विभिन्न प्रकार से लीलावती को संबोधित किया। पुस्तकों को लीलावती नाम देने की परंपरा भारत में पहले से रही है।
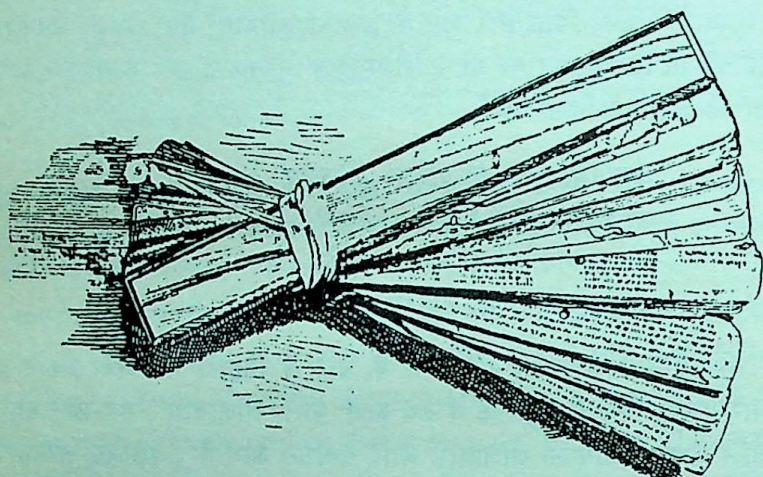
लीलावती की ताडपत्र-हस्तलिपि (लगभग 1400 ई. की प्रतिलिपि)।
(डे.यू. स्मिथ के ग्रंथ से)

'लीलावती' पाटीगणित अर्थात् अंकगणित की पाठ्य-पुस्तक है और इसे सुविधा के लिए 13 प्रकरणों में बांटा गया है। आरंभ में गणेश की वंदना है। उसके बाद पुस्तक के प्रमुख विषय हैं : सारणियां, संख्या-प्रणाली, आठ परिकर्म, भिन्न, शून्य, त्रैराशिक, श्रेढी, क्षेत्रमिति, चिति (ढेरी), क्रकच (लकड़ी चीरना), छाया, कुट्टक (अनिर्धार्य समीकरण) और अंकपाश (क्रमचय-उपचय)।

भास्कराचार्य ने 'लीलावती' और 'बीजगणित' में शून्य के गणित का पहले के भारतीय गणितज्ञों की अपेक्षा अधिक व्यापक विवेचन किया है। ब्रह्मगुप्त ने

यह स्पष्ट नहीं किया था कि $\frac{य}{0}$ में शून्य को एक परमाल्प संख्या समझना चाहिए। लेकिन भास्कराचार्य ने शून्य को स्पष्ट रूप में एक परमाल्प संख्या माना है। किसी संख्या को शून्य से भाग देने पर जो लब्धि मिलती है उसे भास्कर ने **ख-हर** (अनंत) राशि कहा है। उनके अनुसार —

"जिस प्रकार अनंत ईश्वर में, प्रलय के समय बहुत से भूतगणों का प्रवेश होने से या सृष्टि के समय उनके निकल जाने से, कोई विकार नहीं होता, उसी प्रकार ख-हर (शून्य हर वाली) राशि में बहुत बड़ी संख्या को जोड़ने या घटाने पर कोई परिवर्तन नहीं होता।"[5] अर्थात्,

$$\frac{अ}{0} = अनंत, \text{ और } अनंत + क = अनंत ।$$

ब्रह्मगुप्त का यह कथन सही नहीं था कि शून्य को शून्य से भाग देने पर शून्य मिलता है। भास्कराचार्य का कथन है : "यदि किसी संख्या का गुणक शून्य हो और हर भी शून्य हो, तो समझना चाहिए कि उस संख्या में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।" अर्थात्,

$$\frac{अ \times 0}{0} = अ$$

भास्कर का यह नियम भी एकदम शुद्ध नहीं है। पर लगता है कि उन्हें निम्नलिखित संबंध की जानकारी थी —

$$\underset{त \to 0}{सीमा} \frac{अ \times त}{त} = अ$$

भास्कर ने शून्य को एक परमाल्प राशि मानकर कुछ सवालों के हल भी दिए हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि भास्कर को 'शून्य' और 'अनंत' की धारणाओं का काफी हद तक सही आभास मिल गया था।

भास्कर ने क्रमचय-उपचय (पर्म्यूटिशन, कंबिनेशन) को **अंकपाश** कहा है। जैनों ने इसे **विकल्प** या **भंग** कहा था। भास्कर ने अंकपाश के नियम देकर कुछ उदाहरण दिए हैं। एक उदाहरण इस प्रकार है—

"महादेव की मूर्ति की दस भुजाएं हैं। इन भुजाओं में पाश, अंकुश, सर्प, डमरू, कपाल, त्रिशूल, खट्वांग, शक्ति, बाण तथा चाप, ये दस शस्त्र हैं। यदि मूर्ति इन शस्त्रों को बदल-बदल कर विभिन्न हाथों में धारण करे तो कुल कितने भेद होंगे ? इसी प्रकार, चतुर्भुज विष्णु के शंख, चक्र, गदा तथा पद्म के परिवर्तन से मूर्ति के कितने संभाव्य भेद होंगे ? (उत्तर : महादेव की मूर्तियां 36,28,000; विष्णु की मूर्तियां 24)।

भास्कराचार्य ने श्रेढियों के लिए नियम देकर कई उदाहरण दिए हैं।

'लीलावती' में ज्यामितीय श्रेढी का एक उदाहरण है : ''किसी दाता ने प्रथम दिन दो कौड़ी देकर यह प्रतिज्ञा की कि 30 दिन तक प्रतिदिन धन दूंगा । बताओ उसने कितना धन दिया ?''[6] (उत्तर : 2,14,74,83,646 कौड़ियां) ।

क्षेत्रमिति के प्रकरण में भास्कराचार्य ने समकोण त्रिभुज (पाइथेगोरस के प्रमेय) के बारे में कई रोचक उदाहरण दिए हैं । चूंकि यह प्रमेय भारतीय गणितज्ञों को बहुत पहले से ज्ञात रहा है, इसलिए भास्कर द्वारा दिए गए उदाहरण पहले के गणितज्ञों के उदाहरणों से काफी मिलते-जुलते हैं । एक उदाहरण है : ''नौ हाथ ऊंचे एक स्तंभ पर एक मोर बैठा है । उस स्तंभ के ठीक नीचे एक सर्प का बिल है । मोर ने बिल की ओर आते हुए सर्प को 27 हाथ की दूरी पर देखा और एकदम कर्णगति से उस पर टूट पड़ा । दोनों की गति समान थी । बताओ, मोर ने बिल से कितनी दूरी पर सर्प को पकड़ा ?''[7] (उत्तर : 12 हाथ) ।

भास्कराचार्य की पुस्तक 'बीजगणित' का आरंभिक अंश ।
(हस्तलिपि : मुंबई विश्वविद्यालय)

भास्कराचार्य ने अपनी 'बीजगणित' पुस्तक में सरल समीकरणों, वर्ग-समीकरणों, करणियों, कुट्टक आदि का विवेचन किया है । ऋण राशि को व्यक्त करने के लिए उसके ऊपर बिंदी लगाई जाती थी । अज्ञात राशि के लिए **यावत्-तावत्** (जितना हो उतना) का प्रयोग होता था । जब अज्ञात राशियां कई होती थीं, तब रंगों के नामों के प्रथमाक्षरों का उपयोग होता था । जैसे, **का** (कालक), **नी** (नीलक), **पी** (पीतक), **रू** (रूपक) ।

भास्कर ने वर्ग-समीकरण का व्यापक विवेचन किया और कई रोचक उदाहरण दिए । भारतीय गणितज्ञ जानते थे कि वर्ग-समीकरण के दो मूल प्राप्त होते हैं, पर ऋण मूल को स्वीकार नहीं किया गया । भास्कर ने ऋणात्मक राशि के वर्गमूल (काल्पनिक संख्या) को भी स्वीकार नहीं किया ।

अनिर्धार्य समीकरणों के अध्ययन में भारतीय गणितज्ञ बहुत आगे बढ़ गए थे। आर्यभट ने इस विषय की नींव डाली थी । ब्रह्मगुप्त ने अनिर्धार्य वर्ग-समीकरणों

को हल करने की दिशा में बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया था । भास्कर ने इस विषय को पराकाष्ठा पर पहुंचा दिया । भास्कर ने अनिर्धार्य वर्ग-समीकरण क$य^2 + 1 =$ र^2 (जहां 'क' एक अवर्ग पूर्णांक है) को हल करने की जो मौलिक विधि दी है उसे उन्होंने **चक्रवाल विधि** का नाम दिया है । जिस चीज की खोज भास्कराचार्य ने बारहवीं सदी में की, उसी की खोज यूरोपीय गणितज्ञों ने सत्रहवीं सदी में की। भास्कर ने 'बीजगणित' के **वर्ग-प्रकृति** अध्याय में अनिर्धार्य वर्ग-समीकरणों का विवेचन किया और **चक्रवाल** अध्याय में उन्हें हल करने की विधि बताई । बीजगणित के अध्ययन में भारतीय गणितज्ञ निश्चय ही यूरोपवालों से बहुत आगे थे । गणित के प्रायः सभी इतिहासकारों ने इस तथ्य को स्वीकार किया है ।
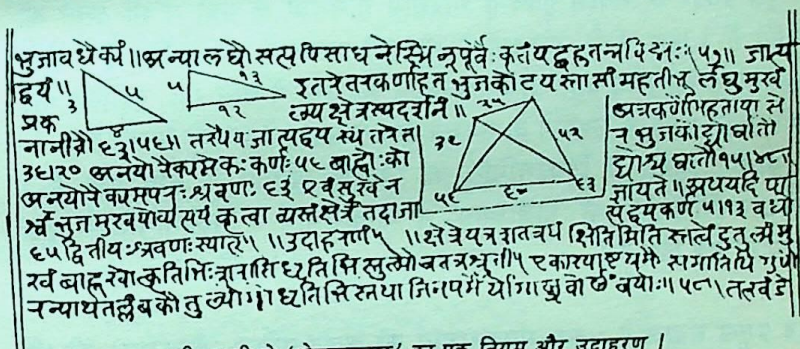
लीलावती के 'क्षेत्रव्यवहार' का एक नियम और उदाहरण ।
(लभगभ 1600 ई. की हस्तलिपि)

'लीलावती' के 'क्षेत्र-व्यवहार' प्रकरण में भास्कराचार्य ने समकोण त्रिभुजों पर प्रश्न, त्रिभुजों तथा चतुर्भुजों के क्षेत्रफल, पाई (π) का मान और गोलों के तल तथा आयतन के बारे में जानकारी दी है । पाई (π) के मान के लिए भास्कर का श्लोक है —

व्यासे भनन्दाग्नि (3927) हते विभक्ते
खबाणसूर्यैः (1250) परिधिस्तु सूक्ष्मः ।
द्वाविंशति (22) घ्ने विहृतेऽथ शैलैः (7)
स्थूलोऽथवा स्याद्व्यवहार योग्यः ॥39॥

अर्थात्, 'पाई' का सूक्ष्म मान $= \frac{3927}{1250}$, और

'पाई' का स्थूल मान $= \frac{22}{7}$

भास्कर ने वृत्त के क्षेत्रफल, गोले के तल तथा गोले के आयतन के लिए निम्न परिणाम दिए हैं—

वृत्त का क्षेत्रफल = परिधि $\times \frac{1}{4}$ (व्यास)

गोले का तल = 4 × (वृत्त का क्षेत्रफल)

गोले का आयतन = $\frac{1}{6}$× (गोले का तल)(व्यास)

पहले हमने समकोण त्रिभुज से संबंधित एक सवाल दिया है। 'लीलावती' का एक और रोचक सवाल देखिए —

''सौ हाथ ऊंचा एक पेड़ है, जिस पर दो बंदर बैठे हुए हैं। पेड़ की जड़ से 200 हाथ पर एक कुआं है। एक बंदर पेड़ से उतरकर कुएं के पास गया। दूसरा बंदर पेड़ से कुछ ऊपर उछलकर कर्ण की दिशा में कुएं पर कूद कर गिरा। यदि दोनों बंदरों को समान जाना पड़ा, तो बताओ कि दूसरा बंदर पेड़ से कितना ऊंचा उछला था ?'' (उत्तर : 50 हाथ)।

इस प्रकार के सवाल पूर्ववर्ती भारतीय गणितज्ञों के ग्रंथों में भी देखने को मिलते हैं। कुछ चीनी गणितज्ञों ने भी इसी प्रकार के सवाल दिए हैं। चूंकि पाइथेगोरस का प्रमेय बहुत प्राचीन काल से कई देशों में ज्ञात रहा, इसीलिए कई देशों में इस प्रमेय के उपयोग के लगभग एक-से सवाल देखने को मिलते हैं।

प्राचीन भारत में त्रिकोणमिति का विकास ज्योतिष के साथ हुआ है। 'सिद्धांत-शिरोमणि' के 'गोलाध्याय' में भास्कराचार्य ने त्रिकोणमिति के कुछ उपयोगी सूत्र दिए हैं।

अब प्रमुख सवाल है : क्या भास्कराचार्य को कलन-गणित (कैल्कुलस) की भी कुछ जानकारी थी ? हम जानते हैं कि कलन-गणित की स्थापना न्यूटन (1642-1727 ई.) और लाइबनिट्ज (1646-1716 ई.) ने की है। परंतु समाकलन (इंटेग्रेशन) की धारणा आर्किमीदीज़ से लेकर केपलर तक अनेक वैज्ञानिकों को ज्ञात रही है। 'गोलाध्याय' के 'भुवनकोश' प्रकरण में हम भास्कराचार्य को भी गोल का क्षेत्रफल तथा आयतन ज्ञात करने में समाकलन गणित का उपयोग करते हुए देखते हैं। वे गोले की सतह पर छोटे-छोटे समांतर वृत्त खींचकर अंत में समाकलन से क्षेत्रफल ज्ञात करते हैं। दूसरी विधि में वे सतह को याम्योत्तर रेखाओं से छोटी-छोटी फांकों में बांटकर समाकलन से क्षेत्रफल मालूम करते हैं। इसी प्रकार, गोले का आयतन ज्ञात करने के लिए वे उसमें छोटे-छोटे पिरामिड स्थापित करते हैं।

ग्रहों की दैनिक गति को ठीक-ठीक जानने के लिए भास्कराचार्य ने दिन को छोटे-छोटे कालमानों में बांटकर **तात्कालिक गति** की धारणा प्रस्तुत की है। पर इस विषय का समुचित विकास **सीमा** (लिमिट) की धारणा से ही संभव था।

भास्कराचार्य भलीभांति जानते थे कि पृथ्वी अचल यानी निराधार है। वह 'गोलाध्याय' के 'भुवनकोश' प्रकरण में लिखते हैं—*मरुच्चलो भूरचला स्वभावतो यतो विचित्रावत वस्तुशक्तयः ॥5॥*

वे आगे लिखते हैं—

आकृष्टिशक्तिश्च मही तया यत्
खस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या ।
आकृष्यते तत्पततीव भाति
समेसमन्तात् क्व पतत्वियं खे ।।6।।

अर्थात्, पृथ्वी में आकर्षण-शक्ति है । पृथ्वी अपनी आकर्षण-शक्ति से भारी पदार्थों को अपनी ओर खींचती है । आकर्षण के कारण यह गिरती-सी लगती है। मगर जब चारों ओर का आकाश निराधार है, तो फिर यह पृथ्वी क्यों नहीं निराधार हो सकती ?

'लीलावती' के फैजी-कृत फारसी अनुवाद (1587 ई.) का एक पृष्ठ (1731 ई. की हस्तलिपि)। यहां इष्टकर्म (कल्पना के नियम) को स्पष्ट करके एक उदाहरण दिया गया है ।

भास्कराचार्य निस्संदेह एक महान गणितज्ञ थे । देश में उनके ग्रंथों का बड़ा आदर हुआ और उन पर अनेक टीकाएं लिखी गईं । हम बता चुके हैं कि अकबर के आदेश से फैजी ने 1587 ई. में 'लीलावती' का फारसी में अनुवाद किया था । शाहजहां के दरबार के अताउल्लाह रसीदी ने 1634 ई. में भास्कर के 'बीजगणित' का फारसी में अनुवाद किया ।

ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारी एडवर्ड स्ट्रैची ने 1813 ई. में पहली बार भास्कर के 'बीजगणित' का फारसी से अंग्रेजी में अनुवाद किया था । फिर जे. टेलर ने 1816 ई. में 'लीलावती' का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया । परंतु 'लीलावती' और 'बीजगणित' का मूल संस्कृत से अंग्रेजी में पहली बार प्रामाणिक अनुवाद हेनरी थामस कोलब्रूक ने 1817 ई. में किया । अब भास्कराचार्य के ग्रंथों के हिंदी में भी कई अनुवाद उपलब्ध हैं ।

भास्कराचार्य गणितज्ञ के साथ-साथ एक उच्च कोटि के कवि भी थे । अपनी काव्य-प्रतिभा के प्रदर्शन के लिए ही उन्होंने 'गोलाध्याय' में ऋतुओं का बड़ा सरस वर्णन किया है । भास्कर के ग्रंथों से तत्कालीन भारत के सामाजिक और आर्थिक जीवन के बारे में भी काफी जानकारी मिलती है । उनके एक प्रश्न से पता चलता है कि उस समय दास तथा दासी को खरीदने की प्रथा थी ।[8] ब्याज पर रुपए दिए जाते थे । पर शायद चक्रवृद्धि ब्याज का प्रचलन नहीं था ।

भास्कराचार्य ने बाद के भारतीय गणितज्ञों पर बड़ा गहरा प्रभाव छोड़ा है । पर भास्कर के बाद भारत में गणित का विशेष विकास नहीं हुआ । ज्यादातर टीकाएं ही लिखी गईं । पर यह भी नहीं कहा जा सकता कि गणित के क्षेत्र में बिल्कुल ही कोई कार्य नहीं हुआ । यूरोप के गणित के संपर्क में आने तक केरल में गणित के अनुसंधान का थोड़ा-बहुत कार्य होता रहा ।[9]

सहायक ग्रंथ

1. **लीलावती** — भास्कराचार्य रचित । टिप्पणियों सहित संपादन : राधावल्लभ, कलकत्ता 1913
2. **लीलावती** — भास्कराचार्य कृत । कोलब्रूक के अंग्रेजी अनुवाद सहित, टिप्पणियां : हारानचद्र बनर्जी, द्वितीय संस्करण, कलकत्ता 1927
3. **सिद्धांतशिरोमणि** (गणिताध्याय, गोलाध्याय— वासनाभाष्य सहित—भास्कराचार्य कृत । व्याख्या : बापूदेव शास्त्री, काशी 1913

4. **बीजगणितम्** — भास्कराचार्य कृत । टीका : राधावल्लभ, कलकत्ता 1917
5. श्याम मराठे — **भारतीय गणितींची चरित्रे** (मराठी), नागपुर 1989
6. शंकर बालकृष्ण दीक्षित — **भारतीय ज्योतिष** (द्वितीय हिंदी संस्करण), लखनऊ 1963
7. ब. ल. उपाध्याय — **प्राचीन भारतीय गणित**, नई दिल्ली 1971
8. दत्त और सिंह (अनु. कृपाशंकर शुक्ल) — **हिंदू गणितशास्त्र का इतिहास** (भाग 1), लखनऊ 1956
9. गुणाकर मुले — **भास्कराचार्य**, नई दिल्ली 1991
10. सी. एन. श्रीनिवासीएंगर — **द हिस्ट्री आफ एंशियंट इंडियन मैथेमेटिक्स**, कलकत्ता 1967
11. दत्त और सिंह — **हिस्ट्री ऑफ हिंदू मैथेमेटिक्स** (भाग 1, 2), बम्बई 1962
12. बोस, सेन और सुब्बरायप्पा — **ए कंसाइज हिस्ट्री आफ साइंस इन इंडिया**, नई दिल्ली 1971

संदर्भ और टिप्पणियां

1. गोलाध्याये प्रश्नाध्याय, श्लोक 58.
2. 6 3 0 1
रस – गुण – पूर्ण – मही
शब्दांकों को इकाई के स्थान से आरंभ करके क्रमशः बाईं ओर बढ़ते हुए लिखा जाता था *(अंकानां वामतो गतिः)* ।
3. इस शिलालेख की खोज डा. भाऊ दाजी (1822-74 ई.) ने महाराष्ट्र के चालीसगांव से करीब 16 किलोमीटर दूर के पाटण गांव के भवानी के मंदिर में की थी । यह शिलालेख 1220 ई. के आसपास का है । लेख के अनुसार, भास्कराचार्य और उनके वंश के अन्य विद्वानों के ग्रंथों का अध्ययन करने के लिए पाटण में एक मठ स्थापित किया गया था ।

   इस लेख के अनुसार भास्कराचार्य के पूर्वजों और वंशजों की नामावली इस प्रकार बनती है —

|

भास्कराचार्य

|

लक्ष्मीधर

|

चंगदेव

शंकर बालकृष्ण दीक्षित का मत है कि इस वंशावली के प्रथम पुरुष 'कविचक्रवर्ती' त्रिविक्रम **दमयंती-कथा** ग्रंथ के कर्ता हैं (**भारतीय ज्योतिष**, पृ. 345) ।

4. अये बाले ! लीलावति ! मतिमति !
बाले ! बालकुरंगलोलनयने ! लीलावती !
सखे ! चंचलाक्षि विमलां बाले ! इत्यादि ।
मगर पुस्तक में मित्र ! सुवर्णगणितज्ञ ! गणक ! वणिग्वर ! आदि संबोधन भी हैं ।

5. *अस्मिन् विकारः खहरे न राशा-*
वपि प्रविष्टेष्वपि निःसृतेषु ।
बहुष्वपि स्याल्लय सृष्टिकाले-
ऽनन्तेऽच्युते भूतगणेषु यद्वत् ।।4।।

बीजगणित

6. *पूर्वं वराटकयुगं येन द्विगुणोत्तरं प्रतिज्ञातम् ।*
प्रत्यहमर्थिजनाय स मासे निष्कान् ददाति कति।

लीलावती 55, उदाहरण ।

7. *अस्ति स्तम्भतले बिलं तदुपरि क्रीडाशिखंडी स्थितः*
स्तम्भे हस्तनवोच्छ्रिते त्रिगुणितस्तम्भ प्रमाणान्तरे ।
दृष्ट्वाऽहिं बिलमाव्रजन्तमपतत् तिर्यक् स तस्योपरि
क्षिप्रं ब्रूहि तयोर्बिलात् कतिमितैः साम्येन गत्योर्युतिः ।।

लीलावती, क्षेत्रव्यवहार

8. 'लीलावती' में व्यस्त त्रैराशिक का एक प्रश्न है —
प्राप्नोति चेत् षोडशवत्सरा स्त्री
द्वात्रिंशतं विंशतिवत्सरा किम्
अर्थात्, सोलह साल की दासी के 32 निष्क मिलते हैं, तो बीस साल की दासी का मूल्य क्या होगा ?

9. भास्कराचार्य के बाद गणित और ज्योतिष के ग्रंथों पर टीकाएं लिखने का दौर चला । लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि गणित के क्षेत्र में मौलिक कार्य बिल्कुल नहीं हुआ । श्रेणियों तथा उन्हें संकलित (वारसंकलित) करने संबंधी कुछ कार्य पहले के भारतीय

गणितज्ञों ने भी किया था, परंतु भास्कर के बाद केरल के कुछ गणितज्ञों ने इस कार्य को काफी आगे बढ़ाया । कहा जा सकता है कि भास्कर के बाद दक्षिण भारत के मलयाली क्षेत्र में गणितीय अनुसंधान का कार्य जारी रहा और काफी महत्व के परिणाम प्राप्त किए गए ।

ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारी चार्लेस एम. व्हिश ने 1835 ई. में पहली बार जानकारी दी थी कि केरल के ज्योतिष-गणित संबंधी कुछ ग्रंथों में श्रेणियों का महत्वपूर्ण विवेचन है । ये ग्रंथ हैं — **तंत्र-संग्रह, करण-पद्धति, युक्तिभाषा** और **सद्रत्नमाला ।**

'करण-पद्धति' के रचनाकार पुदुमन सोमयाजिन् हैं और यह ग्रंथ संभवतः 1430 ई. में रचा गया था । इसमें निम्नलिखित श्रेणी के लिए नियम दिया गया है—

$$\frac{\pi}{4} = 1 - \frac{1}{3} + \frac{1}{5} - \frac{1}{7} + \frac{1}{9} - \cdots$$

यूरोप में इस श्रेणी की खोज जेम्स ग्रेगोरी ने 1671 ई. में की । 'तंत्र-संग्रह' में भी इस श्रेणी का विवेचन है । 'तंत्र-संग्रह' की रचना केरल के गणितज्ञ-ज्योतिषी नीलकंठ ने 1502 ई. में की थी । नीलकंठ ने आर्यभट (499 ई.) के 'आर्यभटीय' ग्रंथ पर भी टीका लिखी है ।

'युक्तिभाषा' की रचना 1639 ई. में हुई । यह कृति 'तंत्र-संग्रह' की टीका है । इसमें पहली बार प्रमेयों की उपपत्तियां देखने को मिलती हैं, इसलिए इस कृति का बड़ा महत्व है । 'सद्रत्नमाला' बाद की रचना है । इसमें भी श्रेणियों का विवेचन किया गया है ।

आधुनिक गणित में श्रेणियों का बड़ा महत्व है, इसलिए भारत में इनका स्वतंत्र अध्ययन शुरू हो जाना एक उल्लेखनीय तथ्य है । इन्हीं श्रेणियों की सहायता से π (पाई) का शुद्ध मान 'करण-पद्धति' में दस दशमलव स्थानों तक और 'सद्रत्नमाला' में 17 दशमलव स्थानों तक प्राप्त किया गया है । नीलकंठ ने स्पष्ट लिखा है कि π (पाई) एक अपरिमेय संख्या है, और इसका ठीक-ठीक मान प्राप्त करना असंभव है ।

इस प्रकार, भास्कर के बाद भी केरल में गणितीय अनुसंधान का कार्य जारी रहा । पर इसका देशव्यापी प्रभाव नहीं पड़ा । यूरोप के उन्नत गणित के संपर्क में आने पर ही श्रीनिवास रामानुजन् (1887-1920) के रूप में भारतीय प्रतिभा ने पुनः अपना चमत्कार दिखाया और गणित-जगत में गौरव का स्थान प्राप्त किया ।

रैने दकार्त

भास्कराचार्य (1150 ई.) के बाद भारत में गणित का विकास नहीं हो सका। उनके बाद केरल में ही गणितीय अनुसंधान का थोड़ा कार्य हुआ। इस्लामी जगत में अल्-ख्वारिज्मी (नौवीं सदी) के बाद फारस के **उमर खय्याम** (लगभग 1100 ई.) ने गणित के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया।[1] आज उमर खय्याम अपनी रुबाइयों के लिए मशहूर हैं। मगर मूलतः वे एक खगोलविद और गणितज्ञ थे। खय्याम ने एक नया पंचांग बनाया था और बीजगणित के क्षेत्र में त्रिघातीय समीकरणों का व्यापक विवेचन किया था। लेकिन बारहवीं सदी के बाद अरबी जगत में गणित का विकास रुक गया था।

प्राचीन चीन में भी ईसा की आरंभिक सदी से गणित का खूब विकास हुआ था। तीसरी सदी में **लिउ हुइ**[2] और पांचवीं सदी में **झु छोङ् झीः**[3] प्रख्यात चीनी गणितज्ञ हुए। फिर ईसा की तेरहवीं सदी में चीन में चार महान गणितज्ञ हुए। ये हैं—किन् जुइशाओ, लि ये, याङ् हुइ और झु शिजी। यूरोपीय गणितज्ञों के करीब पांच सौ साल पहले **किन् जुइशाओ** द्वारा खोजे गए एक प्रमेय (चीनी शेषफल प्रमेय) का आज भी कंप्यूटरों की गणना में खूब इस्तेमाल होता है। भारतीय गणितज्ञों की तरह चीनी गणितज्ञ भी ज्यामितीय सवालों को बीजगणितीय विधियों से हल करने में पारंगत थे।[4]

तात्पर्य यह कि ईसा की तेरहवीं सदी तक एशियाई गणित यूरोप के गणित से काफी आगे बढ़ा हुआ था। जब भारत, चीन और इस्लामी जगत में गणित का तेजी से विकास हो रहा था, तब यूरोप अंधकार के युग में सोया हुआ था।

मगर ईसा की दसवीं सदी से परिस्थितियां बदलने लगीं। अरबों (मूरों) के माध्यम से भारतीय तथा यूनानी गणित यूरोप के भूमध्यसागरीय देशों में पहुंचा। भारतीय दाशमिक स्थानमान अंक-पद्धति और भारतीय अंक-संकेत यूरोप के देशों में पहुंचे। इटली के **लियोनार्ड 'फिबोनकी'** (1170-1250 ई.) जैसे गणितज्ञों ने भारतीय अंक-पद्धति का यूरोप में प्रचार-प्रसार किया। भारतीय और यूनानी गणित पर आधारित अनेक अरबी ग्रंथों का लैटिन भाषा में अनुवाद हुआ। यूरोप में गणित के अध्ययन का नया युग शुरू हुआ।

लेकिन जिसे हम आधुनिक गणित कहते हैं उसकी शुरुआत यूरोप में ईसा की

सत्रहवीं सदी में हुई । उस समय की नई राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियों ने यूरोप में गणित के विकास में बड़ा योग दिया । यूरोप में सामंतवाद दम तोड़ने लगा और एक नए व्यापारी वर्ग का उदय हुआ । आर्थिक लाभ की नई-नई मशीनों का निर्माण होने लगा । मुद्रण के कारण ज्ञान-विज्ञान के ग्रंथ अधिक संख्या में उपलब्ध होने लगे । मानव-अधिकारों के लिए संघर्ष शुरू हुआ । कोयले के इस्तेमाल के कारण उत्तरी यूरोप के ठंडे देशों में लंबे शीतकाल के दिनों में तापन और प्रकाश की सुविधाएं उपलब्ध हुईं । यूरोप के साहसी नाविक दुनिया के दूर-दूर के देशों में पहुंचने लगे । यूरोप में धर्मांधता के स्थान पर मानवतावाद और वैज्ञानिक संदेहवाद की स्थापना होने लगी । इन तथा अन्य अनेक नई परिस्थितियों से यूरोप में गणितीय अनुसंधान को प्रेरणाएं मिलीं । ईसा की सत्रहवीं सदी में यूरोप में गणित के अनुसंधान का दायरा इटली से आगे बढ़कर फ्रांस और इंग्लैंड तक विस्तृत हो गया ।

ईसा की सत्रहवीं सदी में यूरोप ने अनेक महान गणितज्ञों और वैज्ञानिकों को जन्म दिया । इस सदी के आरंभ में **नेपियर** ने लघुगणक (लागरिथम) का आविष्कार किया । **हैरियट** और **औघट्रेड** ने बीजगणित में नए चिह्नों का समावेश करके इस विषय को व्यवस्थित बनाया । **गैलीलियो** ने गति-विज्ञान की स्थापना की । **केपलर** ने ग्रहों की गतियों के नियम खोज निकाले । **देसार्ग्यू** और **पास्कल** ने विशुद्ध ज्यामिति का एक नया क्षेत्र खोला । **फर्मा** ने आधुनिक संख्या-सिद्धांत की नींव डाली । **हाइगेन्स** ने प्रायिकता सिद्धांत के विकास में योगदान किया ।[5] **रैने दकार्त** ने आधुनिक वैश्लेषिक ज्यामिति को जन्म दिया ।

इस प्रकार, सत्रहवीं सदी में यूरोप में गणित के क्षेत्र में कई नए विषयों का अध्ययन आरंभ हुआ । गणित के इन नए विषयों ने न्यूटन और लाइबनिट्ज द्वारा कलन-गणित (कैल्कुलस) के निर्माण के लिए पृष्ठभूमि तैयार कर दी ।

न्यूटन ने कहा था कि पूर्ववर्ती महान प्रतिभाओं के कंधों पर खड़े रहकर ही वह कुछ अधिक दूरी तक देखने में समर्थ हुए हैं । इन पूर्ववर्ती प्रतिभाओं में रैने दकार्त का स्थान सर्वोपरि है । दकार्त को आधुनिक यूरोपीय दर्शन का जनक माना जाता है । गणित के इतिहासकार उन्हें आधुनिक गणित का संस्थापक मानते हैं । भौतिकीविद उन्हें अपना आदिपथप्रदर्शक मानते हैं । निस्संदेह, रैने दकार्त सत्रहवीं सदी के एक महान गणितज्ञ और क्रांतिकारी विचारक थे ।

आजकल सातवीं-आठवीं कक्षाओं के विद्यार्थियों को गणित के एक नए विषय से परिचय कराया जाता है । यह विषय है — **निर्देशांक ज्यामिति** (को-ऑर्डिनेट ज्यामिट्री) । विद्यार्थियों को सर्वप्रथम ग्राफ-पेपर का इस्तेमाल करना सिखाया जाता है । फिर ग्राफ-पेपर पर एक-दूसरे को समकोण में काटनेवाली दो रेखाएं

लेने को कहा जाता है । इन्हें निर्देशांक अक्ष (को-ऑर्डिनेट एक्सेज) कहते हैं । क्षैतिज अक्ष को भुज (एब्सिसा) और ऊर्ध्वाधर अक्ष को कोटि (ऑर्डिनेट) कहते हैं । तब इन निर्देशांकों की सहायता से तल के किसी भी बिंदु की स्थिति केवल
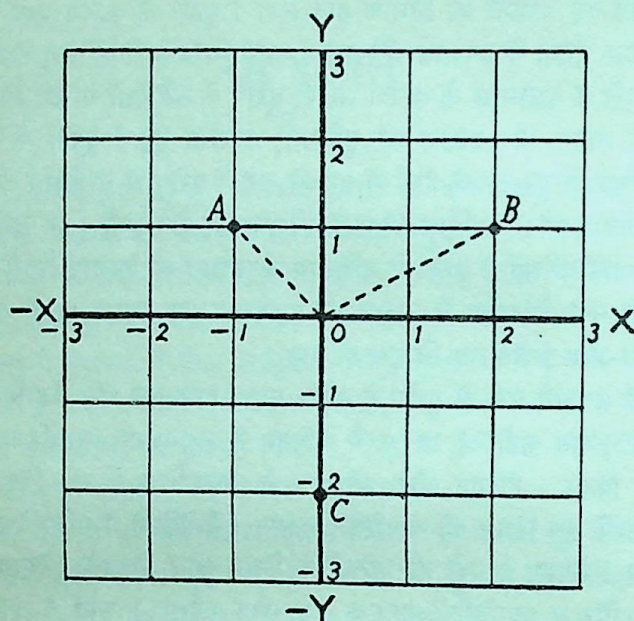
निर्देशांक ज्यामिति

दो अंकों से सुस्पष्ट हो जाती है । इन दो अंकों या संकेतों को निर्देशांक कहते हैं । आगे यह भी समझाया जाता है कि समतल पर दर्शाए गए बिंदुपथ या वक्र को चर मान वाले उन दो संकेतों के एक विशिष्ट संबंध में यानी समीकरण में व्यक्त किया जा सकता है ।

इस प्रकार, बीजगणित के समीकरण ज्यामितीय आकृतियों के द्योतक बन जाते हैं । ज्यामितीय सवाल बीजगणित की विधियों से हल होने लग जाते हैं । ज्यामितीय आकृतियों के गुणधर्म बीजगणित के समीकरणों के अध्ययन से ही स्पष्ट होने लग जाते हैं । विद्यार्थियों को पहली बार ज्यामिति और बीजगणित के इस समागम को देखकर बड़ा अचरज होता है ।

निर्देशांकों की विधि से और बीजगणित के साधनों से ज्यामितीय आकृतियों के इस प्रकार के अध्ययन की विधिवत स्थापना फ्रांस के महान गणितज्ञ रैने दकार्त ने की थी । चूंकि दकार्त द्वारा प्रस्तुत विधियों से बीजगणित के जरिए ज्यामितीय आकृतियों का विश्लेषण करना संभव हुआ, इसलिए गणित के इस विषय को **वैश्लेषिक ज्यामिति** (एनेलेटिक ज्यामिट्री) भी कहते हैं ।

रैने दकार्त का जन्म दक्षिण फ्रांस के तूरीन इलाके के ल हाय स्थान पर 31 मार्च, 1596 को एक सम्पन्न और सुसंस्कृत परिवार में हुआ था। उनके पिता ब्रितानी की पार्लियामेंट के सदस्य थे। रैने के जन्म के चंद दिन बाद ही उनकी मां का निधन हो गया था।

आठ साल के रैने को ला फ्लेचे के जेसुइट स्कूल में अध्ययन के लिए भेजा गया। स्कूल के अध्यक्ष फादर शार्ले दुबले-पतले बालक रैने का विशेष ध्यान रखते थे। वे चाहते थे कि रैने के स्वास्थ्य में सुधार हो। इसीलिए उन्होंने उसे सुबह देर तक बिस्तर में लेटे रहने की इजाजत दे दी। तब से सुबह देर तक लेटे रहकर सोचते रहने की रैने दकार्त की हमेशा की आदत-सी बन गई। बाद में दकार्त ने स्वयं लिखा कि सुबह के शांत वातावरण में लेटे-लेटे चिंतन करते गुजारा गया समय उनके दर्शन और गणित के सृजन में बड़ा सहायक सिद्ध हुआ।

रैने दकार्त ला फ्लेचे के स्कूल में आठ साल तक रहे। वहां उन्होंने लैटिन, ग्रीक तथा अन्य शास्त्रीय विषयों का अध्ययन किया। साथ ही, उस स्कूल की शिक्षा ने उन्हें समाज में एक भद्र पुरुष (जैंटिलमैन) का जीवन जीने योग्य बना दिया। फादर शार्ले के अलावा स्कूल के अनेक विद्यार्थी उनके मित्र बन गए। इनमें से एक थे **मेरिन मेरसेन** (1588-1648 ई.), जिन्होंने बाद में संख्या-सिद्धांत के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया।[6]

स्कूल की शिक्षा पूरी करके 1612 ई. में, सत्रहवें साल में, रैने दकार्त घर लौटे। तब उनके पिता ने आगे के अध्ययन के लिए उन्हें पेरिस भेजा। वहां उन्होंने कुछ समय तक गणित का अध्ययन जारी रखा। मेरसेन भी पेरिस पहुंच गए थे। पेरिस में दकार्त की एक और गणितज्ञ **माइदोर्ग** से दोस्ती हुई। लेकिन अंत में दकार्त पेरिस के जीवन से ऊब गए और उन्होंने सेना में भरती होने का निश्चय किया।

रैने दकार्त 1617 ई. में ओरेंग के प्रिंस मौरीस की सेना में भरती हुए। फिर 1619 ई. में दकार्त बेवरिया की सेना में भरती हुए। उसी समय की एक घटना है। बताया जाता है कि 10 नवंबर, 1619 को चिंतन करते-करते दकार्त को एकाएक ज्यामिति के अध्ययन में बीजगणित का उपयोग करने का, यानी निर्देशांक ज्यामिति के सृजन का, विचार सूझा। मगर इस विषय को व्यवस्थित रूप देने में और इसे प्रकाशित करने में उन्हें आगे अठारह साल का लंबा समय लगा।

अंत में सैनिक जीवन से दकार्त का मन भर गया और 1621 ई. में उन्होंने उससे मुक्ति पा ली। उसके बाद चार-पांच साल उन्होंने जर्मनी, डेनमार्क, हालैंड, स्विट्जरलैंड और इटली में घूमने-फिरने में गुजारे। 1625 ई. में पुनः पेरिस लौटे। उस समय मेरसेन, माइदोर्ग और देसार्ग्यू आदि गणितज्ञ पेरिस में

थे । दकार्त ने आगे के करीब चार साल पेरिस में गणित के अनुसंधान में गुजारे । लेकिन जब देखा कि पेरिस का माहौल उनके चिंतन के लिए अनुकूल नहीं है, तो उन्होंने हालैंड की राह पकड़ी । रैने दकार्त का 1629 से 1649 तक का बीस साल का जीवन हालैंड में ही गुजरा । उनके निश्चिंत गुजारे के लिए उनके पिता पर्याप्त सम्पत्ति छोड़ गए थे ।

रैने दकार्त (1596-1650 ई.)

हालैंड के बीस साल के शांतिमय जीवन में रैने दकार्त ने दर्शन तथा गणित से संबंधित अपने चिंतन को लिपिबद्ध किया । आरंभिक चार सालों में उन्होंने विश्व

की भौतिक रचना के बारे में **ल मांद** नामक अपने दार्शनिक ग्रंथ की रचना की। लेकिन जब दकार्त को पता चला कि कोपर्निकस के सूर्यकेन्द्रवादी सिद्धांत का समर्थन करने के लिए गैलीलियो को ईसाई चर्च ने दोषी ठहराया है (1633 ई.), तो उन्होंने अपने ग्रंथ को प्रकाशित करने का इरादा छोड़ दिया। 'ल मांद' ग्रंथ दकार्त की मृत्यु (1650 ई.) के बाद 1664 ई. में प्रकाशित हुआ।

उसके बाद दकार्त प्राकृतिक विज्ञान के बारे में एक नए ग्रंथ की रचना में जुट गए। इस ग्रंथ का लंबा शीर्षक है — **सही तार्किक चिंतन और वैज्ञानिक सत्य की खोज की विधि के बारे में प्रबंध**। अपनी इस महान कृति के साथ दकार्त ने तीन परिशिष्ट जोड़े। इनके विषय हैं — प्रकाशिकी, उल्कापिंड और ज्यामिति। यह ग्रंथ 1637 ई. में लीडेन से प्रकाशित हुआ।

दकार्त की यह महान कृति संक्षेप में **विधि** (द मेथड) के नाम से जानी जाती है। मगर गणित की दृष्टि से इस ग्रंथ का महत्वपूर्ण परिशिष्ट **ला ज्यामित्री** है। करीब सौ पृष्ठों के इस परिशिष्ट में ही रैने दकार्त ने अपनी निर्देशांक ज्यामिति का प्रतिपादन किया है।

हम बता चुके हैं कि दकार्त ने अपने जीवन के बीस साल हालैंड के शांतिमय वातावरण में गुजारे और उसी दौरान उन्होंने अपने नए दर्शन और गणित का सृजन किया। सारे यूरोप में उनकी कीर्ति फैल गई। हालैंड के देहातों के शांत वातावरण में रहकर भी वे यूरोप के तत्कालीन महान विचारकों से पत्र-व्यवहार करते रहे। उन्हें कई राजदरबारों से निमंत्रण मिला। मगर दकार्त को प्रकृति का शांत वातावरण ही ज्यादा पसंद था।

23 मई, 1632 को लिखे गए दकार्त के एक पत्र का आखिरी अंश, जिसमें दाईं ओर नीचे उनके हस्ताक्षर हैं — 'देस्कार्तेस्'।

स्वीडन की उन्नीस वर्षीया रानी क्रिस्टिना ने भी दकार्त की कीर्ति सुनी। ज्ञान-विज्ञान की नई-नई जानकारी प्राप्त करने में उसकी बड़ी दिलचस्पी थी। उसने दकार्त को स्टाकहोम में आमंत्रित किया। शुरू में दकार्त इस आमंत्रण को टालते रहे। अंत में अक्तूबर 1649 ई. में क्रिस्टिना ने दकार्त को ले आने के लिए अपने एक नौसैनिक अधिकारी को हालैंड भेजा। बड़े खिन्न मन से दकार्त स्टाकहोम पहुंचे। वहां उनका भव्य स्वागत हुआ।

रानी क्रिस्टिना पुरुषोचित स्वभाव की तरुणी थी । उसे घुड़सवारी का भी बेहद शौक था । दकार्त से दर्शनशास्त्र की शिक्षा प्राप्त करने के लिए उसने सुबह पांच बजे का समय निश्चित किया । वैसे ही स्वीडन में खूब सर्दी होती है । ऊपर से शीतकाल के वे दिन । बेचारे दकार्त सुबह देर तक बिस्तर में लेटे रहने के बचपन से आदी थे । फिर भी उन्होंने सुबह पांच बजे उठकर क्रिस्टिना को दर्शन की शिक्षा देने के प्रस्ताव को अस्वीकार नहीं किया । हर दिन सुबह पांच बजे राजदरबार की घोड़ागाड़ी उनके दरवाजे पर पहुंचती और दकार्त राजप्रासाद पहुंच जाते !

मगर यह दिनचर्या दकार्त के स्वास्थ्य के लिए घातक सिद्ध हुई । दकार्त कठोर शीत और जिद्दी क्रिस्टिना का सामना केवल चार महीने तक ही कर पाए। वे न्युमोनिया के शिकार हुए । अंत में 11 फरवरी, 1650 को, 54 साल की आयु में, स्टाकहोम में उनका देहांत हुआ ।

रैने दकार्त को आधुनिक यूरोपीय दर्शन का जनक माना जाता है । उन्होंने चिंतन की एक नई प्रणाली का सृजन किया और तर्कशास्त्र तथा वैज्ञानिक विधि के उपयोग पर ज्यादा बल दिया । मगर गणित के क्षेत्र का दकार्त का कार्य अधिक महत्व का है । गणित के इतिहास में उन्हें वैश्लेषिक ज्यामिति का संस्थापक माना जाता है ।

दकार्त की कृति 'विधि' (द मेथड) के महत्वपूर्ण परिशिष्ट (ला ज्यामित्री) को तीन भागों में बांटा गया है। पहले भाग में उन्होंने अंकगणित और ज्यामिति के बुनियादी परिकर्मों को एक-दूसरे से जोड़ा है । दूसरे भाग में वक्रों का वर्गीकरण करके स्पर्शज्याओं (टैंजेंट्स) को प्राप्त करने की विधियों पर विचार किया है । तीसरे भाग में दकार्त ने समीकरणों के मूलों के स्वरूप का विवेचन किया है । और, बीजगणित में प्रयुक्त होने वाले चिह्नों को सुस्थिर बनाया है ।

इस प्रकार, रैने दकार्त ने पहली बार एक ऐसे व्यापक गणित का निर्माण किया जिसमें अंकगणित, बीजगणित और ज्यामिति के विषय एक-दूसरे के साथ जुड़ जाते हैं । धरातल पर अक्षांश और देशांतर की रेखाएं खींचकर किसी भी स्थान की स्थिति को दर्शाने की व्यवस्था पहले से ही विद्यमान रही है । परंतु रैने दकार्त पहले गणितज्ञ थे जिन्होंने सुस्पष्ट किया कि तल के किसी भी बिंदु को दो निर्देशांकों (x, y) से निर्धारित किया जा सकता है और इन दो निर्देशांकों से निर्मित समीकरण वक्र के प्रत्येक बिंदु के गुणधर्म को व्यक्त करता है । आंग्ल विचारक एवं लेखक **जान स्टुअर्ट मिल** (1806-1873 ई.) के शब्दों में कहें तो यह ''विज्ञान की प्रगति की दिशा में उठाया गया एक महानतम कदम था ।''

निर्देशांक ज्यामिति का विचार दकार्त से कुछ साल पहले **पियरे फर्मा** को भी
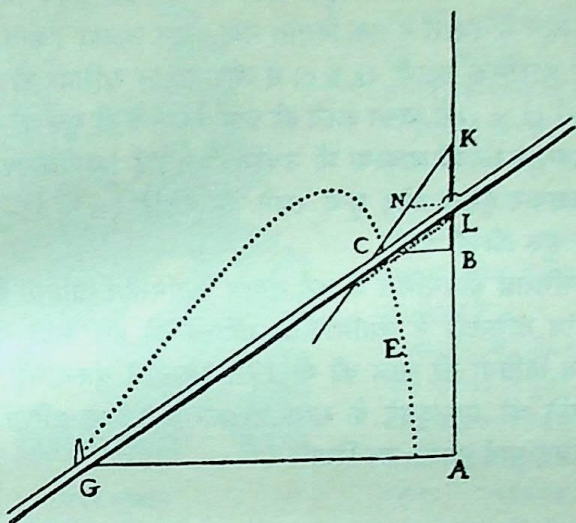
Aprés cela prenant vn point a discretion dans la courbe, comme C, sur lequel ie suppose que l'instrument qui sert a la descrire est appliqué, ie tire de ce point C la ligne C B parallele a G A, & pourceque C B & B A sont deux quantités indeterminées & inconnuës, ie les nomme l'vne y & l'autre x. mais affin de trouuer le rapport de l'vne à l'autre; ie considere aussy les quantités connuës qui determinent la description de cete ligne courbe, comme G A que ie nomme a, K L que ie nomme b, & N L parallele a G A que ie nomme c. puis ie dis, comme N L est à L K, ou c à b, ainsi C B, ou y, est à B K, qui est par consequent $\frac{b}{c}y$: & B L est $\frac{b}{c}y - b$, & A L est $x + \frac{b}{c}y - b$. de plus comme C B est à L B, ou y à $\frac{b}{c}y - b$, ainsi a, ou G A, est á L A, ou $x + \frac{b}{c}y - b$. de façon que mul-

S f tipliant

दकार्त की 'ला ज्यामित्री' (1637 ई.) का एक पृष्ठ

सूझा था । मगर वैश्लेषिक ज्यामिति को अंकगणित के साथ जोड़ने में, उच्च घात वाले समीकरणों में उसे विस्तृत करने में और इस समूचे विषय को नए चिह्नों में सजाने में दकार्त ने एक नितांत नया कदम उठाया । ज्ञात राशियों को वर्णमाला के आरंभिक अक्षरों (a, b, c) से और अज्ञात राशियों को वर्णमाला के अंतिम अक्षरों (x, y, z) से व्यक्त करने की प्रथा दकार्त ने ही शुरू की थी । x x x को x^3 से व्यक्त करने की व्यवस्था भी उन्होंने ही चलाई । समीकरण के सभी पद एक ओर रखकर दूसरी ओर शून्य रखने की पद्धति ($ax^2 + bx + c = 0$) भी दकार्त ने ही शुरू की थी ।

यूनानी गणितज्ञ बीजगणित के कई सवाल ज्यामितीय विधियों से हल करते थे । भारतीय गणितज्ञों ने ज्यामिति के सवालों को हल करने के लिए कई बीजगणितीय विधियों की खोज की थी । रैने दकार्त ने अंकगणित, बीजगणित और ज्यामिति को एक-दूसरे के साथ जोड़कर आधुनिक गणित के व्यापक विकास के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया ।

सहायक ग्रंथ

1. ई. टी. बेल— **मेन आफ मैथेमेटिक्स** (भाग 1), पेलिकन बुक, लंदन 1953
2. डेविड यूजेन स्मिथ— **हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स** (दो खंड), डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1958
3. डिर्क जे. स्त्रुइक— **ए कंसाइज हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स**, लंदन 1959
4. जे. एफ. स्कांट— **ए हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स**, लंदन 1969
5. होवर्ड इवेस— **एन इंट्रोडक्शन टु द हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स** (पांचवां संस्करण), न्यूयार्क 1983
6. संपादित— **एंशियंट चायनाज टेक्नालाजी एंड सायंस**, बेइजिङ् 1983
7. उसेंस्की और हीस्लेट— **एलिमेंट्री नंबर थ्योरी**, न्यूयार्क 1939
8. गुणाकर मुले— **एशिया के महान वैज्ञानिक** (पांडुलिपि)
9. डेविड यूजेन स्मिथ— **ए सोर्सबुक इन मैथेमेटिक्स** (2 खंड), डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1959

संदर्भ और टिप्पणियां

1. उमर खय्याम का जन्म ईरान के खुरासान प्रदेश के नैशापुर नगर में 1048 ई. में हुआ था । 'खय्यामी' का मतलब है तम्बू बनाने वाला । उनके पिता या दादा यह काम करते होंगे । उमर का आरंभिक जीवन नैशापुर में गुजरा । कुछ साल वे समरकंद में भी रहे । अंत में इस्फहान के सुलतान मलिकशाह ने उमर खय्याम को 1074 ई. में अपने यहां

बुला लिया, और उन्हें अपना नदीम बनाया । नदीम का अर्थ होता है सहायक । इससे उन्हें काफी सुविधाएं हुईं । खय्याम ने गृहस्थी का कोई झमेला नहीं पाला था ।

उमर खय्याम
(लगभग 1100 ई.)

खय्याम को इस्फ़हान की वेधशाला सुधारने और वहां वेधकार्य करने का सुअवसर मिला । उन्होंने एक बेहतर पंचांग बनाया, मगर चला नहीं । इस्लामी दुनिया में आज भी चांद्र-पंचांग ही चलता है ।

खय्याम के जीवन के अंतिम दस साल निराशा में गुजरे । उन्होंने दरबार छोड़ दिया था । नैशापुर में 1128 ई. में उनका देहांत हुआ । मृत्यु के समय महान वैज्ञानिक इब्न-सीना (980-1037 ई.) की एक पुस्तक उमर खय्याम के हाथ में थी ।

2. लिउ हुई एक कुशल ज्यामितिकार थे । उन्होंने बहुतलीय ठोसों के आयतन खोजे । उन्होंने वृत्त के भीतर सम बहुभुज स्थापित करके पहले पाई का स्थूल मान $\frac{157}{50}$ (= 3.14) और फिर सूक्ष्म मान $\frac{3927}{1250}$ (= 3.1416) ज्ञात किया ।
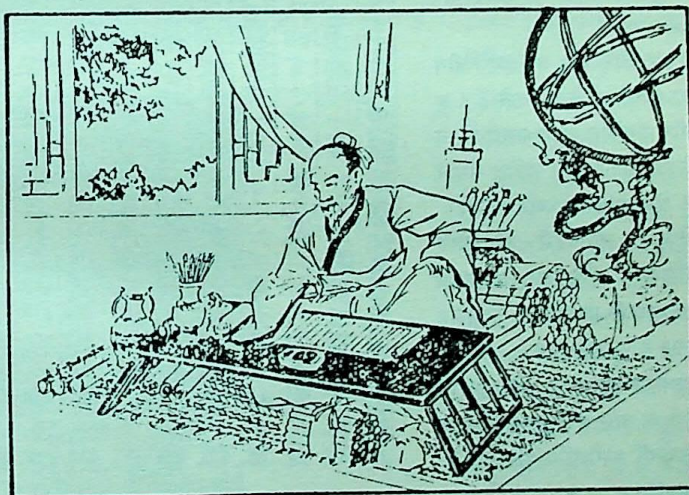
झु छोङ् झीः (420-500 ई.)

3. झु छोङ् झीः (420-500 ई.) भारतीय गणितज्ञ आर्यभट (499 ई.) के लगभग समकालीन थे । झु ने पाई के लिए मान प्राप्त किया $\frac{355}{113}$;

अर्थात्, $3.1415926 < \pi < 3.1415927$

झु छोङ् झीः के करीब एक हजार साल बाद ही यूरोप में पाई का इतना शुद्ध मान प्राप्त करना संभव हुआ । आर्यभट ने पाई का मान 3.1416 प्राप्त किया था ।

झु छोङ् झीः ने 'झुई-शु' नामक एक ग्रंथ लिखा था, जो चीन, कोरिया और जापान में लंबे समय तक पाठ्य-पुस्तक के रूप में प्रसिद्ध रहा । बाद में यह कृति लुप्त हो गई ।

झु चोटी के ज्योतिषी भी थे। उन्होंने सायण वर्ष का मान 365.2429 दिनों के बराबर प्राप्त किया था । उन्होंने एक नया पंचांग भी चलाया था । झु ने कुछ यंत्रों का भी आविष्कार किया था ।

झु छोङ् झीः को हम 'चीन का आर्यभट' कह सकते हैं । झु और आर्यभट अपने समय में, न केवल एशिया के, अपितु संसार के श्रेष्ठ गणितज्ञ-ज्योतिषी थे।

4. विस्तृत जानकारी के लिए देखिए, **एंशियंट चायनाज टेक्नालाजी एंड सायंस**, बेइजिङ् 1983, पृ. 50-123

5. **जान नेपियर** (1550-1617 ई.) के नाम से स्कूल-कालेज के विद्यार्थी भलीभांति परिचित हैं। लागरिथम का आविष्कार नेपियर ने ही किया था। स्काटलैंड (इंग्लैंड) के एक सम्पन्न परिवार में नेपियर का
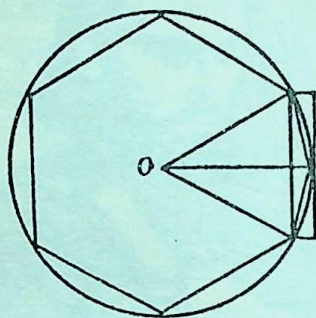
वृत्त के भीतर बहुफलक स्थापित करके वृत्तखंडक्षेत्र ज्ञात करने की लिउ हुई की विधि

以御功程積實六曰均輸以御遠近勞費七曰盈朒以御隱雜互見八曰方程以御錯糅正負九曰句股以御高深廣遠皆乘以散之除以聚之齊同以通之今有以貫之則算數之方盡於斯矣古之九數圓周率三圓徑率一其術疏舛自劉歆張衡劉徽王蕃皮延宗之徒各設新率未臻折衷宋末南徐州從事史祖沖之更開密法以圓徑一億為一丈圓周盈數三丈一尺四寸一分五釐九毫二秒七忽朒數三丈一尺四寸一分五釐九毫二秒六忽正數在盈朒二限之間密率圓徑一百一十三圓周三百五十五約率圓徑七周二十二又設開差冪開差立兼以正圓參之

झु छोङ् झीः द्वारा प्राप्त 'पाई' के सूक्ष्म मान की विधि का विवरण (सुई राजवंश के इतिहास से)
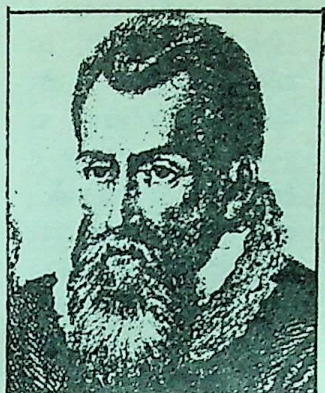
जॉन नेपियर
(1550-1617 ई.)
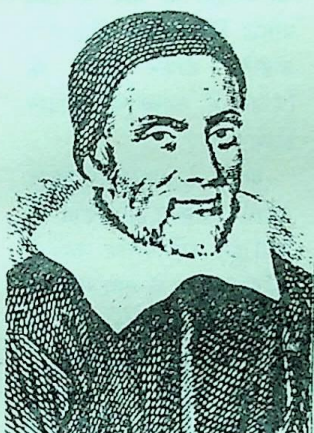
विलियम आउटरैड
(1574-1660 ई.)
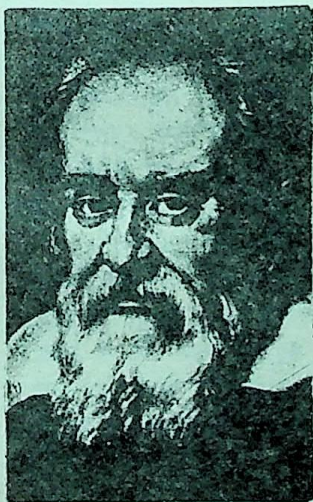
गैलीलियो
(1564-1642 ई.)

जन्म हुआ था। वह कैथोलिक ईसाई धर्म के जबरदस्त विरोधी थे और उन्होंने चर्च के खिलाफ एक ग्रंथ लिखा था। लेकिन उनका गणित के क्षेत्र का अनुसंधान-कार्य ही चिरस्थायी साबित हुआ। गणनाओं को सरल बनाने के लिए उन्होंने लघुगणक (लागरिथम) का आविष्कार किया और इस विषय पर 1614 ई. में एक पुस्तक प्रकाशित की। संख्याओं को सरलता से गुणा तथा भाग करने के लिए और उनके वर्गमूल प्राप्त करने के लिए जिस साधन का उन्होंने आविष्कार किया वह **नेपियर के दंड** के नाम से प्रसिद्ध है। **हेनरी ब्रिग्स** (1560-1630 ई.) ने लघुगणकों को एक उपयोगी आविष्कार में बदल दिया। इंग्लैंड के ही एक अन्य गणितज्ञ **विलियम आउटरैड** (1574-1660 ई.) ने स्लाइडरूल का आविष्कार किया।

थॉमस हैरियट (1560-1621 ई.) इंग्लैंड के एक अच्छे बीजगणितज्ञ और खगोलविद थे। उन्होंने वाल्टेर रैले के साथ अमरीका की यात्रा की और लौटकर बीजगणित के बारे में एक किताब लिखी, जो उनके देहांत के बाद प्रकाशित हुई।

सत्रहवीं सदी के दो प्रख्यात गणितज्ञ-ज्योतिषी **गैलीलियो** और **केपलर** के योगदान से लगभग सभी परिचित हैं।
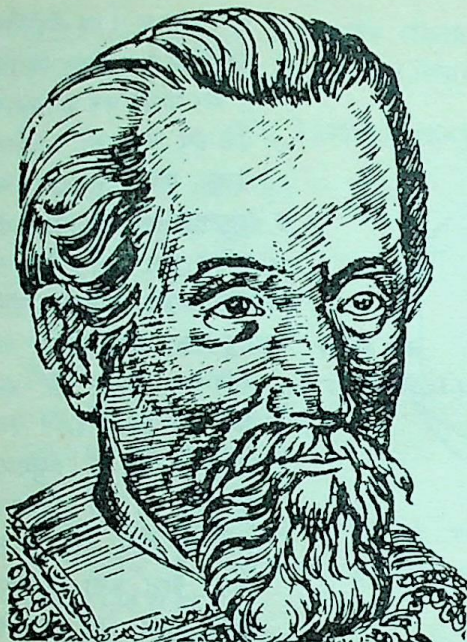
केपलर (1571-1630 ई.)

गैलीलियो (1564-1642) ने 1609 ई. में दूरबीन का आविष्कार किया और कोपर्निकस के सूर्यकेंद्रवाद का समर्थन करने के कारण वे ईसाई चर्च के कोपभाजन बने। दकार्त को जब इसकी खबर मिली, तो उन्होंने अपने ग्रंथ का प्रकाशन स्थगित कर दिया था।

जर्मन गणितज्ञ-ज्योतिषी **केपलर** (1571-1630) ने ग्रहों की गतियों के बारे में तीन प्रसिद्ध नियम खोज निकाले। उन्होंने शांकव-गणित के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया।

दकार्त के समकालीन महान गणितज्ञ **पास्कल** और **फर्मा** की चर्चा हम आगे स्वतंत्र लेखों में करेंगे। पास्कल के साथ गणितज्ञ देसार्ग्यू (1593-1662 ई.) के कृतित्व का भी उल्लेख करेंगे।

क्रिस्तिआन ह्राइगेन्स (1629-1695 ई.)

क्रिस्तिआन ह्राइगेन्स (1629-1695 ई.) एक डच गणितज्ञ-खगोलविद थे। उन्होंने शांकव-गणित (कानिक्स) पर एक पुस्तक लिखी और पेंडुलम-घड़ी का आविष्कार किया। ह्राइगेन्स ने दूरबीन में सुधार किया और प्रकाश के तरंग-सिद्धांत की स्थापना की (1678 ई.)।

6. फ्रांसीसी साधु **मेरिन मेरसेन** ने अपने समय के यूरोप के श्रेष्ठ गणितज्ञों के साथ निरंतर पत्र-व्यवहार जारी रखकर गणित के विकास में महती योग दिया। उदाहरण के लिए, एक बार मेरसेन ने फर्मा को पत्र लिखकर अनुरोध किया कि वे संख्या 1,00,89,55,98,169 के भाजक बताएं। फर्मा ने तुरंत उत्तर लिख भेजा—यह संख्या 8,98,423 और 1,12,303 का गुणनफल है। और, ये दोनों भाजक अभाज्य संख्याएं हैं।

स्मरण रहे कि उस समय तक यूरोप में गणितीय अनुसंधानों के प्रकाशन के लिए

शोध-पत्रिकाएं अस्तित्व में नहीं आई थीं । वैसी स्थिति में मेरसेन के पत्र-व्यवहार ने गणित के विकास में महत्वपूर्ण भूमिक अदा की ।

आज मेरसेन को विशेष रूप से **मेरसेन अभाज्य** संख्याओं के लिए स्मरण किया जाता है । ये $2^{य}-1$ के स्वरूप की अभाज्य संख्याएं हैं । अब तक इतना स्पष्ट हो गया है कि 2, 3, 5, 7, 13, 17, 19, 31, 61, 89, 107 और 127 के मानों के लिए $2^{य}-1$ निश्चय ही एक अभाज्य संख्या है। मेरसेन संख्याओं से संबंधित कई बातें आज भी अनुत्तरित हैं ।

पियरे द फर्मा

गणित एक अद्‌भुत विषय है। कभी-कभी सरल प्रतीत होनेवाले सवालों को हल करना बड़े-बड़े गणितज्ञों के लिए भी संभव नहीं होता। गणित का ऐसा ही एक प्रसिद्ध सवाल है — **फर्मा का अंतिम प्रमेय**। पिछले करीब 350 वर्षों से संसार के सैकड़ों मूर्धन्य गणितज्ञ इस प्रमेय को सिद्ध करने का प्रयास करते रहे, पर अब तक किसी को भी पूर्ण सफलता नहीं मिली है।

चूंकि इस प्रमेय को समझने में कोई खास कठिनाई नहीं है, इसलिए स्कूल-कालेज में गणित पढ़नेवाले अनेकानेक विद्यार्थी भी इस प्रमेय का हल ढूंढ़ने का प्रयास करते रहे हैं। गणितज्ञों और विद्यार्थियों के इन अथक प्रयासों ने फर्मा के इस प्रमेय को विख्यात बना दिया है।

गणित की इस समस्या को सर्वाधिक प्रसिद्धि मिलने का एक और कारण है। सन् 1908 ई. में जर्मन गणितज्ञ पाउल वोल्फ्स्केल ने अपनी वसीयत में लिख दिया था कि जो कोई भी फर्मा के इस प्रमेय को पूर्णतः गलत या सही सिद्ध करेगा उसे 1,00,000 जर्मन मार्क का पुरस्कार दिया जाए। पुरस्कार की यह राशि गॉटिंगेन की विज्ञान अकादमी को सौंपी गई थी। इतने बड़े पुरस्कार के प्रलोभन ने भी बहुतों को गणित की इस समस्या से जूझने के लिए प्रेरित किया है। परंतु अभी तक यह पुरस्कार अदेय ही बना हुआ है।

हर साल संसार के कई गणितज्ञ और गणित के दर्जनों विद्यार्थी फर्मा के इस प्रमेय को प्रमाणित करने का दावा करते हैं। भारत के भी कई गणित-प्रेमियों ने इस प्रमेय को सिद्ध करने के दावे किए हैं।

मार्च 1988 में समाचार छपा कि फर्मा का अंतिम प्रमेय प्रमाणित हो गया है। जापान के 38-वर्षीय गणितज्ञ **योईची मियाओका** ने बॉन (जर्मनी) की प्रख्यात मैक्स प्लांक इंस्टीट्यूट के करीब तीन दर्जन गणितज्ञों के सामने फर्मा के अंतिम प्रमेय के लिए अपना प्रमाण (प्रूफ) प्रस्तुत किया। उपस्थित गणितज्ञों ने इसे सही प्रमाण माना है। जर्मनी, फ्रांस और अमेरिका के कई गणितज्ञों ने प्रो. योईची मियाओका के इस प्रमाण की गहराई से जांच की है। मगर विशेषज्ञ गणितज्ञ अपना अंतिम फैसला नहीं सुना पाए हैं।

फर्मा के अंतिम प्रमेय के लिए प्रस्तुत किया गया कोई नया प्रमाण गलत

साबित हो या सही, उसे किसी भी भाषा में सरल शब्दों में समझाना कतई संभव न होगा। आधुनिक गणित के जटिल सिद्धांतों और विशिष्ट संकेतों में प्रस्तुत किए गए उस प्रमाण को केवल विशेषज्ञ ही समझ पाएंगे।

परंतु जो प्रमेय पिछले करीब साढ़े तीन सौ वर्षों से अनेकानेक गणितज्ञों के लिए सिरदर्द बना रहा उसे आसानी से समझा जा सकता है। असली चीज भी इस प्रमेय को समझना ही है। फर्मा के इस प्रमेय ने गणित के विकास में ऐतिहासिक महत्व की भूमिका अदा की है। इस प्रमेय के लिए प्रमाण खोजने के प्रयासों में गणित के कई नए विषय अस्तित्व में आए हैं। आधुनिक गणित में प्रूफ या उपपत्ति के बुनियादी महत्व को समझने के लिए भी फर्मा के इस विख्यात प्रमेय को जानना जरूरी है।

पाइथेगोरस के नाम से प्रसिद्ध प्रमेय को स्कूल के विद्यार्थी भलीभांति जानते हैं। यह प्रमेय हमें बताता है कि किसी भी समकोण त्रिभुज के कर्ण पर आधारित वर्ग उस त्रिभुज की शेष दो भुजाओं पर आधारित वर्गों के योग के बराबर होता है। मान लीजिए कि कर्ण 'क' है और शेष दो भुजाएं 'य' तथा 'र' हैं। तब पाइथेगोरस के प्रमेय के लिए संबंध-सूत्र बनता है —

$$\text{य}^2 + \text{र}^2 = \text{क}^2$$

हम जानते हैं कि इस संबंध-सूत्र के अनंत हल संभव हैं। जैसे, य बराबर 3, र बराबर 4 और क बराबर 5। इसी प्रकार, य बराबर 6, र बराबर 8 और क बराबर 10, इत्यादि। पाइथेगोरस के पहले हमारे देश के शुल्वसूत्रकारों को भी इस संबंध-सूत्र की जानकारी थी। प्राचीन चीन और बेबीलोन के गणितज्ञ भी इससे परिचित थे।

ईसा की तीसरी सदी के सिकंदरिया के यूनानी गणितज्ञ **डायोफैंटस** ने भी अपने ग्रंथ **अरिथमेटिका** में उपर्युक्त सूत्र का विवेचन किया था। डायोफैंटस के उस ग्रंथ को मूल यूनानी और लैटिन अनुवाद के साथ बाचे ने पेरिस से 1621 ई. में प्रकाशित किया था। फर्मा के अंतिम प्रमेय की रोमांचक कहानी डायोफैंटस के इसी ग्रंथ के एक पन्ने के हाशिए से शुरू होती है।

पियर द फर्मा (1601 या 1608-1665)[1] तुलूस के चमड़े के एक व्यापारी के बेटे थे और उनकी आरंभिक पढ़ाई घर पर हुई थी। बाद में वे पेशे से वकील और तुलूस की प्रांतीय संसद के सदस्य रहे। फर्मा ने अपना अतिरिक्त समय गणितीय अनुसंधान में खर्च किया। अपने समय के श्रेष्ठ गणितज्ञों के साथ पत्र-व्यवहार करके उन्होंने गणित की विभिन्न शाखाओं को समृद्ध बनाया।

फर्मा अपने खाली समय में डायोफैंटस के ग्रंथ का अध्ययन करते थे और
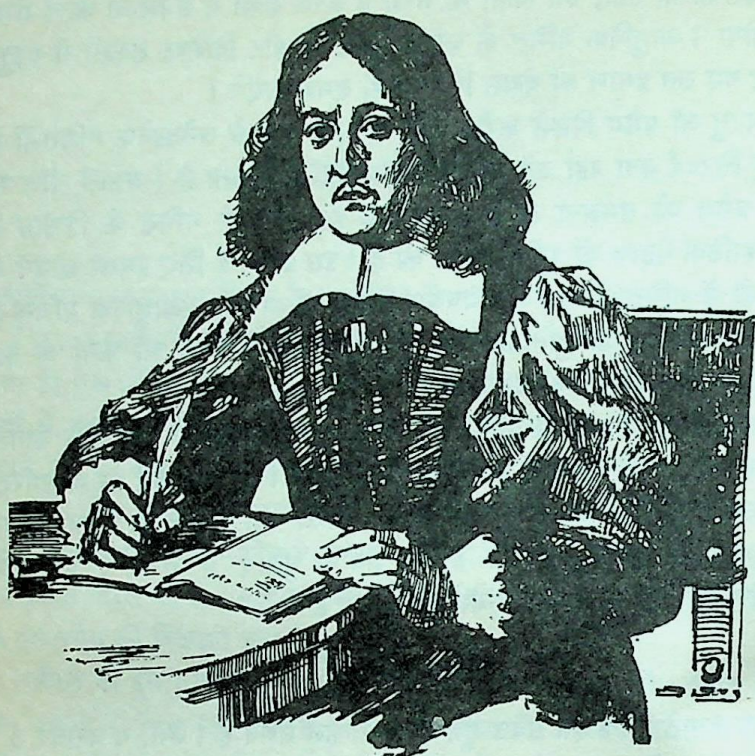
पियर द फर्मा (1601-1665 ई.)

गणित के संबंध में कोई नया विचार सूझता तो वे उसे उसी पन्ने के हाशिए पर लिख देते थे।

घटना शायद 1637 ई. की है। फर्मा एक दिन डायोफैंटस के ग्रंथ का वह पन्ना पढ़ रहे थे जिसमें उपर्युक्त पाइथेगोरीय संबंध-सूत्र के लिए परिमेय संख्याओं (भिन्नों या पूर्णांकों) में हल प्रस्तुत करने के लिए प्रश्न दिया गया था।[2]

फर्मा ने उस प्रश्न के बारे में क्या सोचा, कितना सोचा, इसके बारे में हमें कोई जानकारी नहीं मिलती। परंतु उस प्रश्न के बगल में हाशिए पर उन्होंने जो संक्षिप्त टिप्पणी लिख छोड़ी वह उनके बाद के सैकड़ों अन्वेषकों के लिए आधुनिक गणित के इतिहास की एक सर्वाधिक जटिल समस्या साबित हुई। फर्मा ने उस संकरे हाशिए पर लिखा—

> *किसी भी घन को दो घनों के योग के रूप में या किसी संख्या के चतुर्थ घात को दो संख्याओं के चतुर्थ घात के योग के रूप में विभाजित करना संभव नहीं है। अथवा, व्यापक रूप से, 2 से ज्यादा के घातांक वाली किसी भी संख्या को उसी घातांक की दो संख्याओं*

के योग के रूप में विभाजित नहीं किया जा सकता । मैंने (इस साध्य या प्रमेय का) एक सचमुच अद्‌भुत प्रमाण खोज लिया है, जिसे लिखने के लिए यह हाशिया बहुत छोटा है ।

फर्मा की इस टिप्पणी को समझने में कोई कठिनाई नहीं है । पीछे हमने जो पाइथेगोरीय संबंध-सूत्र दिया है उसमें य, र और क पूर्णांक संख्याएं हैं और तीनों का घातांक 2 है । फर्मा ने ऊपर की अपनी टिप्पणी में यही कहा है कि इस सूत्र में य, र तथा क के घातांक 2 से बड़े हों, तो फिर इन तीन बीजकों के लिए पूर्णांक प्राप्त करना असंभव है । अन्य शब्दों में, इस संबंध-सूत्र में घातांक 2 हो तो अनगिनत हल मिलते हैं, पर घातांक यदि 2 से बड़ा हो तो कोई भी हल नहीं मिलता ।[3] फर्मा ने टिप्पणी में यह भी जोड़ दिया कि यह सिद्ध करने के लिए उन्होंने एक अद्‌भुत प्रमाण खोज लिया है ।

लेकिन हाशिया छोटा पड़ गया, और फर्मा उस प्रमाण को वहां प्रस्तुत नहीं कर पाए । उनका ऐसा कोई हस्तलेख नहीं मिला जिसमें उन्होंने इस प्रमेय का प्रमाण लिख छोड़ा हो । दरअसल, फर्मा ने अपने जीवनकाल में कोई शोध-निबंध प्रकाशित नहीं किया । उन्होंने अपनी गणितीय गवेषणाएं या तो ग्रंथों के हाशियों पर लिखीं या फिर पास्कल, रैने दकार्त, हाइगेन्स जैसे समकालीन वैज्ञानिकों को लिखे पत्रों में व्यक्त कीं ।

लेकिन फर्मा की ये गवेषणाएं इतनी महत्वपूर्ण हैं कि उन्हें 17वीं सदी का एक महान गणितज्ञ माना जाता है । उन्हें आधुनिक संख्या-सिद्धांत का जनक माना जाता है । उन्हें प्रायिकता सिद्धांत (थ्योरी आफ प्रोबेबिलिटी) का भी एक संस्थापक माना जाता है। फर्मा ने रैने दकार्त के पहले ही निर्देशांक ज्यामिति की शुरुआत कर दी थी । और, गणित के इतिहास का एक दिलचस्प तथ्य यह है कि महान न्यूटन के पहले ही फर्मा ने कलन-गणित की नींव रख दी थी । 1934 ई. में न्यूटन का एक ऐसा पत्र मिला जिसमें उन्होंने स्वीकार किया कि फर्मा की स्पर्शरिखाएं (टैंजेंट) खींचने की विधि से ही उन्हें अवकल-गणित (डिफरेंशियल कैल्कुलस) विकसित करने की प्रेरणा मिली । ऐसे अद्‌भुत गणितज्ञ थे पेशे से विधिवेत्ता पियरे द फर्मा !

फर्मा ने अपने प्रमेय के लिए जिस प्रमाण की 'खोज' की थी वह उपलब्ध नहीं हुआ, तो दूसरे गणितज्ञों के लिए वह एक चुनौतीपूर्ण अनुमान (कंजेक्चर) बन गया और उन्होंने नए सिरे से प्रमाण खोजना आरंभ कर दिया ।

फर्मा ने कहा था कि घातांक यदि 2 से बड़ा हो, तो य, र तथा क के लिए पूर्णांक नहीं प्राप्त किए जा सकते । महान गणितज्ञ **आयलर** (1707-83 ई.) ने सिद्ध किया कि घातांक 3 तथा 4 के लिए फर्मा का यह प्रमेय सही है । फ्रांस के दो महान गणितज्ञ **डिरिख्ले** और **लेजंद्र** ने 1825 ई. में सिद्ध किया कि घातांक 5

के लिए भी यह प्रमेय सही है। गणितज्ञ **लामे** ने 1840 ई. में इस प्रमेय को घातांक 7 के लिए सिद्ध किया। बाद में गणितज्ञ **लेबेग** ने लामे के प्रमाण को अधिक सरल बना दिया। फिर जर्मन गणितज्ञ **एर्न्स्ट कुम्मेर** ने कई साल तक इस प्रमेय का गहन अध्ययन किया और अंत में सिद्ध किया कि यह प्रमेय 100 से छोटी सभी अभाज्य संख्याओं वाले घातांकों के लिए सही है। इस प्रयास में कुम्मेर ने गणित के एक नए विषय को जन्म दिया।[4]

इस समस्या का हल प्रस्तुत कर देने के लिए एक लाख जर्मन मार्क का पुरस्कार घोषित होने के बाद वर्तमान सदी में इस दिशा में दर्जनों गणितज्ञों और गणित के सैकड़ों शौकिया विद्यार्थियों ने प्रयास किए हैं। कुम्मेर की विधियों का उपयोग करके गणितज्ञ **एच. एस. वांडिवेर** ने 1950 ई. तक यह सिद्ध कर दिया था कि फर्मा का कथन 617 से छोटे सभी अभाज्य घातांकों के लिए सही है। **जे.बी. रोसर** ने 1940 में सिद्ध किया कि यह प्रमेय 4,10,00,000 तक की सभी विषम अभाज्य संख्या वाले घातांकों के लिए सत्य है। 1941 में दो गणितज्ञों ने यह संख्या 25,37,47,889 तक पहुंचा दी।

परंतु सिद्ध यह करना है कि फर्मा का यह प्रमेय 2 से बड़े **सभी** पूर्णांक-घातों के लिए सत्य है। यहां 'सभी' का अर्थ है 2 से बड़ा कोई भी पूर्णांक। और, इस प्रमेय के लिए प्रमाण खोजने की सबसे बड़ी कठिनाई यही है। आज तक विभिन्न घातांकों के लिए जितने प्रमाण खोजे गए हैं उनमें आधुनिक गणित की अत्यंत जटिल विधियों का प्रयोग हुआ है। प्रमाण की ये आधुनिक तकनीकें इतनी जटिल हैं कि फर्मा के लिए भी इन्हें समझ पाना सहज संभव न होता। इसलिए कुछ गणितज्ञों ने यह भी कहा है कि फर्मा को शायद गलतफहमी रही कि उन्होंने अपने प्रमेय के लिए प्रमाण भी 'खोज' लिया है, क्योंकि गणित की जिन तकनीकों से इस प्रमेय के लिए प्रमाण खोजे जा रहे हैं वे फर्मा के समय में उपलब्ध नहीं थीं।

हर साल कई गणितज्ञ और गणित के अनेक विद्यार्थी फर्मा के इस प्रमेय को प्रमाणित करने का दावा करते आ रहे हैं। **लिंडेमान** नामक एक प्रसिद्ध गणितज्ञ ने पिछली सदी के अंत में फर्मा के इस प्रमेय का हल प्रकाशित कर दिया था। बाद में पता चला कि उनके शोध-निबंध में शुरू में ही एक गलती थी। ऐसा दर्जनों गणितज्ञों के साथ हुआ है।

फर्मा के प्रमेय के बारे में इतनी जानकारी से यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि आधुनिक गणित में प्रमाण या उपपत्ति का कितना बड़ा महत्व है और इसे खोजना कितना कठिन होता है। फर्मा के प्रमेय को सिद्ध करने के लिए करोड़ों-अरबों विशेष उदाहरण प्रस्तुत कर देना भी पर्याप्त नहीं है। हमें 2 से बड़े **सभी** घातांकों के लिए प्रमाण चाहिए।

फर्मा के प्रमेय के लिए उपपत्ति खोजना कितना कठिन कार्य हो सकता है, इसका कुछ अंदाजा जर्मनी के प्रख्यात गणितज्ञ **डेविड हिल्बर्ट** (1862-1943 ई.) के एक कथन से लग जाता है। किसी ने 1920 ई. में हिल्बर्ट से पूछा था कि वह इस समस्या को क्यों नहीं हल करते। उन्होंने उत्तर दिया : ''खोज की शुरुआत करने के पहले मुझे कम-से-कम तीन साल तक इस समस्या का गहन अध्ययन करना होगा। मेरे पास इतना समय नहीं है कि मैं उसे असफलता दे सकनेवाली एक समस्या पर फिजूल में खर्च करूं।''

रामानुजन् संख्या-सिद्धांत के एक महान सितारे थे, पर यकीन के साथ कहा जा सकता है कि उन्होंने फर्मा के इस प्रमेय के लिए उपपत्ति खोजने का प्रयास नहीं किया। उपपत्तियों में रामानुजन् की कोई दिलचस्पी नहीं थी। वे उपपत्तियों की आधुनिक विधियों से विशेष परिचित भी नहीं थे। रामानुजन् ने स्वयं सैकड़ों नए प्रमेय और अनुमान प्रस्तुत किए हैं, जिनकी उपपत्तियां खोजने का काम उन्होंने दूसरों के लिए छोड़ दिया है। प्राचीन भारत के गणितज्ञों ने भी उपपत्तियों को कोई महत्व नहीं दिया था।

फर्मा के प्रमेय को हल करने के आज तक के सैकड़ों गणितज्ञों के प्रयास भले ही पूर्ण सफल न रहे हों, पर व्यर्थ में नहीं गए। इन प्रयासों से गणित के कई नए विषयों ने जन्म लिया है। ऐसा ही एक महत्वपूर्ण विषय है **बीजीय संख्याओं का सिद्धांत**। ऐसे विषय आधुनिक विज्ञान के लिए बड़े उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

फर्मा का एक और अनुमान है कि किसी धन-पूर्णांक **न** के लिए $2^{2^{न}}+1$ अभाज्य संख्या है। फर्मा ने स्पष्ट कहा था कि उनके पास इस अनुमान का कोई प्रूफ नहीं है।

मगर फर्मा का यह अनुमान गलत साबित हो गया। महान गणितज्ञ आयलर ने प्रमाणित कर दिया कि न = 5 के लिए फर्मा का यह अनुमान सही नहीं है। संख्या $2^{2^5} + 1 = 2^{32} + 1$ को 641 से भाग दिया जा सकता है।

जापान के प्रो. मियाओका ने फर्मा के अंतिम प्रमेय का अन्वेषण एक लाख जर्मन मार्क का पुरस्कार प्राप्त करने के प्रलोभन से नहीं ही किया है। जिस समय यह पुरस्कार घोषित किया गया था, उस समय इसका मूल्य करीब 25,000 डालर के बराबर था। परंतु प्रथम महायुद्ध के बाद जर्मनी में राजनीतिक और आर्थिक उथल-पुथल के जो कई दौर आए हैं उन्होंने पुरस्कार की इस राशि को निरर्थक बना दिया है। फर्मा की इस समस्या को पूर्ण रूप से सुलझानेवाले के लिए सबसे बड़ा पुरस्कार होगा — गणित के इतिहास में महान फर्मा के नाम के साथ उसके नाम का भी चिरकालिक उल्लेख !

सहायक ग्रंथ

1. डेविड यूजेन स्मिथ — **हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स** (दो खंड), डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1958
2. डेविड यूजेन स्मिथ — **ए सोर्सबुक इन मैथेमेटिक्स** (दो खंड), डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1959
3. उस्पेंस्की और हीस्लेट — **एलिमेंट्री नंबर थ्योरी**, न्यूयार्क 1939
4. होवार्ड इवेस — **एन इंट्रोडक्शन टु द हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स** (पांचवां संस्करण), न्यूयार्क 1983
5. ई. टी. बेल — **मेन आफ मैथेमेटिक्स** (भाग 1), पेलिकन बुक, लंदन 1953
6. जैक्व हादामार — **द साइकोलाजी आफ इन्वेंशन इन द मैथेमेटिकल फील्ड**, डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1954

संदर्भ और टिप्पणियां

1. फर्मा के जन्म-वर्ष के बारे में विद्वान एकमत नहीं हैं ।
2. **प्रश्न था** — किसी वर्ग-संख्या को दो अन्य वर्ग-संख्याओं में विभक्त करना ।
3. **प्रमेय है** : यदि न > 2 है, तो य, र, क और न पूर्णांकों के लिए संबंध-सूत्र $य^न + र^न = क^न$ संभव नहीं है ।
4. एर्न्स्ट एदुआर्द कुम्मेर (1810-1893 ई.) ब्रासलाऊ और बर्लिन विश्वविद्यालयों में गणित के प्राध्यापक रहे । उन्होंने 1843 ई. में फर्मा के प्रमेय की एक उपपत्ति गणितज्ञ डिरिख्ले के पास भेजी । डिरिख्ले ने उसमें एक गलती खोजी, तो कुम्मेर पुनः जोर-शोर से फर्मा के प्रमेय के अन्वेषण में जुट गए । कुछ साल बाद, उच्च बीजगणित के एक नए सिद्धांत की स्थापना करके, उन्होंने फर्मा के प्रमेय के लिए काफी व्यापक हल प्रस्तुत कर दिया । इस क्षेत्र का आगे का ज्यादातर कार्य कुम्मेर की विधि पर ही आधारित है। अब तक यह स्पष्ट हो गया है कि पूर्णांक न < 1,00,000 के लिए और **न** के कुछ विशिष्ट मानों के लिए फर्मा का प्रमेय (अनुमान) सही है ।

   कुम्मेर ने उच्च बीजगणित के जिस नए सिद्धांत की स्थापना की उसे **आइडियल** के सिद्धांत के नाम से जाना जाता है । प्रो. ई.टी. बेल ने इसे 'उन्नीसवीं सदी का एक महान गणितीय सिद्धांत' कहा है ।

ब्लाइस पास्कल

ईसा की सत्रहवीं सदी में यूरोप में कई महान गणितज्ञ हुए । उन्होंने गणित के नए-नए विषयों को जन्म दिया । रैने दकार्त (1596-1650 ई.) ने निर्देशांक ज्यामिति का सृजन किया । फ्रांस के ही दूसरे महान गणितज्ञ पियर द फर्मा (1601-1665 ई.) ने संख्या-सिद्धांत को मजबूत नींव पर खड़ा कर दिया । न्यूटन और लाइबनिट्ज, जिन्होंने कलन-गणित का निर्माण किया, सत्रहवीं सदी में ही पैदा हुए थे ।

सत्रहवीं सदी के यूरोप ने जिस एक और महान गणितज्ञ को जन्म दिया, वे थे फ्रांस के ब्लाइस पास्कल । गणित के कई इतिहासकारों का मत है कि पास्कल संसार के महानतम गणितज्ञ होने की क्षमता रखते थे । फिर भी अपने रोगग्रस्त जीवन के थोड़े वर्षों में उन्होंने जो खोजकार्य किया वही उन्हें संसार का एक महान गणितज्ञ घोषित कर देने के लिए पर्याप्त है ।

पास्कल ने अपने समकालीन गणितज्ञ देसार्ग्यू (1593-1662 ई.) के साथ मिलकर प्रक्षेपीय ज्यामिति (प्रोजेक्टिव ज्यामिट्री) की नींव डाली । फर्मा के साथ उनका जो पत्र-व्यवहार हुआ उसके फलस्वरूप गणित में प्रायिकता सिद्धांत (थ्योरी आफ प्रोबेबिलिटी) की स्थापना हुई । पास्कल और फर्मा ने कलन-गणित के क्षेत्र की कुछ बुनियादी धारणाओं की स्थापना करके इस विषय की ठोस नींव डालने के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया । संसार का पहला गणक-यंत्र पास्कल ने ही बनाया था । पास्कल फ्रांसीसी भाषा की अपनी विशिष्ट गद्य-शैली के लिए भी विख्यात हैं । अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक कष्टों के बावजूद इतना कुछ कर पाना एक महान प्रतिभा के लिए ही संभव था ।

दकार्त के जन्म के 27 साल बाद और न्यूटन के जन्म के 19 साल पहले फ्रांस के क्लेरमोन-फेरान स्थान पर 19 जून, 1623 को ब्लाइस पास्कल का जन्म हुआ था। ब्लाइस के पिता एतियेन पास्कल (1588-1640 ई.) क्लेरमोन की अदालत में सरकारी वकील थे और तत्कालीन फ्रांस के सुसंस्कृत व्यक्तियों में उनकी गणना होती थी । वे गणित के भी अच्छे जानकार थे । ब्लाइस जब चार साल का था तभी उसकी माता का देहांत हो गया था । ब्लाइस की दो खूबसूरत और
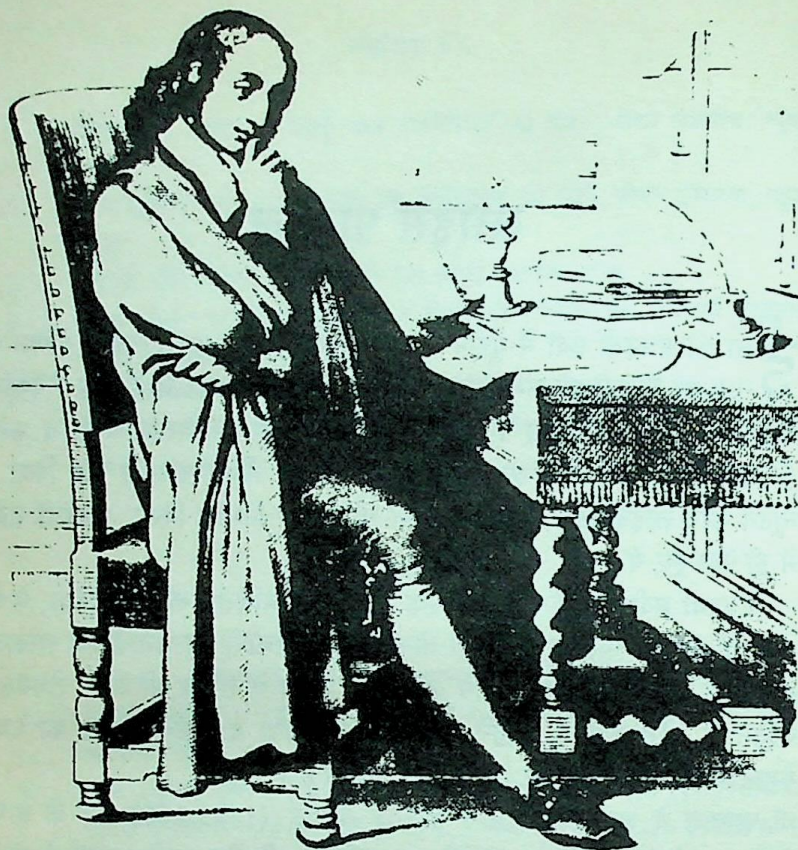
ब्लाइस पास्कल (1623 - 1662 ई.)

प्रतिभाशाली बहनें थीं — गिलबर्ते और जेकेलीन । दोनों ने, विशेषकर दूसरी ने, पास्कल के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की ।

बालक ब्लाइस बचपन से ही बीमार रहता था । जब वह एक साल का था, तो इतना बीमार पड़ा कि परिवारवालों ने उसे मृत ही समझ लिया था । पास्कल जीवनभर व्याधिग्रस्त रहे । यही वजह थी कि दूसरे बच्चों के साथ वे कभी स्कूल भी नहीं गए । पिता ने घर पर ही उनके लिए शिक्षकों की व्यवस्था कर दी और वे स्वयं भी बेटे की पढ़ाई पर ध्यान देते थे ।

ब्लाइस के पिता को यह भी लगा कि यदि अभी से उसे गणित पढ़ाया गया, तो वह उसी में रम जाएगा और अपने स्वास्थ्य को चौपट कर लेगा । इसलिए पिता ने शिक्षकों को आदेश दिया कि ब्लाइस को केवल ग्रीक, लैटिन आदि भाषाएं ही पढ़ाई जाएं और गणित की पढ़ाई से दूर रखा जाए ।

ब्लाइस जब सात साल के थे तो उनका सारा परिवार पेरिस चला आया था । लेकिन यहां भी पास्कल को गणित के अध्ययन से दूर रखा गया । उनका

भाषाओं का शास्त्रीय शिक्षण जारी रहा । तब वह समय भी आया जब बालक पास्कल सोचने लगे : पिताजी मुझे ग्रीक पढ़ाते हैं, लैटिन पढ़ाते हैं, साहित्य पढ़ाते हैं, मगर गणित क्यों नहीं पढ़ाते ?

और तब एक दिन, जब पास्कल बारह साल के थे, पिता से पूछ ही बैठे : पिताजी, ज्यामिति क्या होती है ? उसमें क्या-क्या होता है ?

आखिर पिता को बताना ही पड़ा । उन्होंने ज्यामिति का इतना सुस्पष्ट परिचय दिया कि बालक पास्कल पर उसका गहरा असर हुआ, इतना गहरा कि वह सब कुछ छोड़कर ज्यामिति के पीछे हाथ धोकर पड़ गया । पास्कल की बहन गिलबर्ते ने अपने भाई की जीवनी लिखी है । उसमें उसने पास्कल द्वारा खोजे गए ज्यामिति के प्रमेयों की दिलचस्प जानकारी दी है । गिलबर्ते बताती है कि पास्कल के पास चूंकि ज्यामिति की कोई पुस्तक नहीं थी इसलिए उसने स्वयं अपने प्रयासों से ही यूक्लिड के 'मूलतत्व' के 32 तक के कई प्रमेय खोज निकाले। 32वां प्रमेय है : "किसी भी त्रिभुज के तीन भीतरी कोणों का योग दो समकोणों के बराबर होता है ।"

एक दिन की बात है । पास्कल के पिता उनके कमरे में आए तो वह ज्यामिति में खोए हुए थे । तभी पिता को पता चला कि उनके बेटे ने स्वयं ही यूक्लिड का 32वां प्रमेय खोज लिया है । उन्हें बेहद प्रसन्नता हुई और साथ ही यह अफसोस भी कि उन्होंने नाहक ही अपने बेटे को इतने दिनों तक गणित के अध्ययन से अलग रखा । उसके बाद पिता ने बारह साल के पास्कल को यूक्लिड की 'मूलतत्व' पुस्तक पढ़ने को दी ।

फिर क्या था । पास्कल जोर-शोर से ज्यामिति के अध्ययन में जुट गए और उन्होंने जल्दीं ही यूक्लिड के ग्रंथ पर अधिकार प्राप्त कर लिया । दो साल बाद, पास्कल जब 14 साल के थे, तो उन्होंने उन दिनों पेरिस में होनेवाली वैज्ञानिक चर्चाओं में भी भाग लेना शुरू कर दिया । उन साप्ताहिक बैठकों को गणितज्ञ मेरसेन ने शुरू किया था ।[1] वहां पास्कल का कई श्रेष्ठ गणितज्ञों से परिचय हुआ। बाद में, 1666 ई. में, उन्हीं साप्ताहिक बैठकों में फ्रांस की प्रसिद्ध 'विज्ञान अकादमी' का जन्म हुआ ।

पास्कल जब ज्यामिति के अध्ययन में जुटे हुए थे तो उसी दौरान उनके पिता एक राजनीतिक-धार्मिक झमेले में फंस गए । फलस्वरूप उन्हें कुछ दिन अज्ञातवास में बिताने पड़े । लेकिन पुनः धार्मिक शासन की उन पर कृपा हुई और उन्हें नए स्थान पर एक नई शासकीय नौकरी मिली । संकट के उन दिनों में भी बालक पास्कल ने गणित का अपना गहन अध्ययन जारी रखा । और, जब वह 16 साल के थे तो उन्होंने ज्यामिति के एक अद्भुत प्रमेय की खोज की, जो 'रहस्यमय षड्भुज' के नाम से प्रसिद्ध है ।
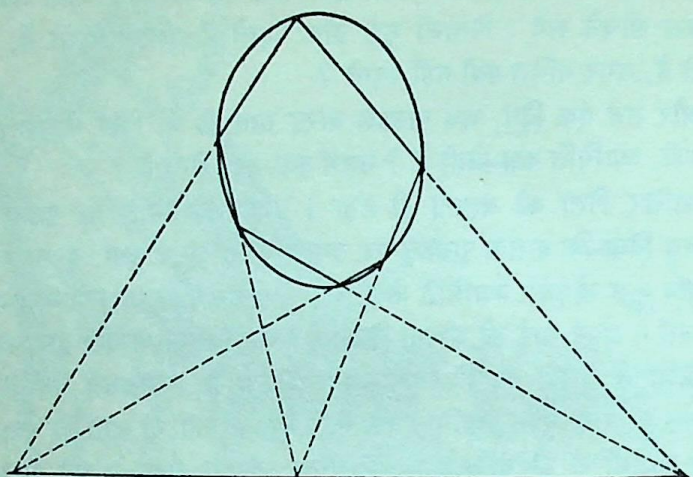
पास्कल का 'रहस्यमय षड्भुज'

पास्कल के इस 'रहस्यमय षड्भुज' को समझने में कोई कठिनाई नहीं है। एक वृत्त या दीर्घवृत्त लीजिए। फिर उस आकृति की परिधि पर कोई भी छह बिन्दु लेकर उन्हें सीधी रेखाओं से जोड़िए। तब आकृति के भीतर एक षड्भुज बनकर तैयार हो जाएगा। तब इस षड्भुज की आमने-सामनेवाली भुजाओं को एक दिशा में इस प्रकार बढ़ाइए कि वे एक बिन्दु पर मिलें। ऐसा करने पर वृत्त या दीर्घवृत्त के बाहर तीन बिन्दु मिल जाएंगे। इन तीनों बिन्दुओं को जोड़ा जाए तो वह एक सीधी रेखा होगी।

पास्कल के इस प्रमेय की खास बात यह है कि कोई भी शांकव (वृत्त, दीर्घवृत्त, परवलय, अतिपरवलय) लिया जाए और उसमें षड्भुज बनाया जाए तो उपर्युक्त तरीके से प्राप्त होनेवाले तीन बिन्दु एक सीधी रेखा पर ही स्थित रहेंगे। यही है इस प्रमेय का सबसे बड़ा रहस्य।

एक शंकु (कोन) को विभिन्न स्थितियों में काटने पर हमें वृत्त, दीर्घवृत्त (इलिप्स), परवलय (पैराबोला) तथा अतिपरवलय (हाइपरबोला) की आकृतियां मिलती हैं। पहली बार प्राचीन यूनान के महान गणितज्ञ एपोलोनियस (लगभग 200 ई. पू.) ने इन शांकव आकृतियों (कोनिक सेक्शन्स) की जानकारी दी थी। शांकवों का यह गणित अनेक सदियों तक उपेक्षित पड़ा रहा। फिर केपलर (1571-1630 ई.) ने ग्रहों की कक्षा-गतियों को स्पष्ट करने के लिए पहली बार इनका इस्तेमाल किया। मगर पास्कल ने इन शांकव आकृतियों के आधार पर एक नितांत नई ज्यामिति का निर्माण किया, जिसे **प्रक्षेपीय ज्यामिति** (प्रोजेक्टिव ज्यामिट्री) कहते हैं।

टार्च से निकलनेवाली रोशनी एक 'कोन' या शंकु की आकृति बनाती है। इस शंकु को विभिन्न दिशाओं से काटा जाए तो हमें वृत्त, दीर्घवृत्त, परवलय तथा अतिपरवलय की आकृतियां मिलती हैं। पास्कल ने 'रहस्यमय षड्भुज' के जिस प्रमेय की खोज की वह इन सभी शांकवों पर लागू होता है। यदि किसी वृत्त में पास्कल का 'रहस्यमय षड्भुज' बनाया जाए और फिर उसे किसी अन्य समतल पर प्रक्षेपित करके दीर्घवृत्त में बननेवाला 'रहस्यमय षड्भुज' प्राप्त किया जाए, तो दोनों के गुणधर्मों में कोई परिवर्तन नहीं होगा। सभी शांकवों में 'रहस्यमय षड्भुज' के तीनों बिन्दु एक ही सीधी रेखा पर रहेंगे।
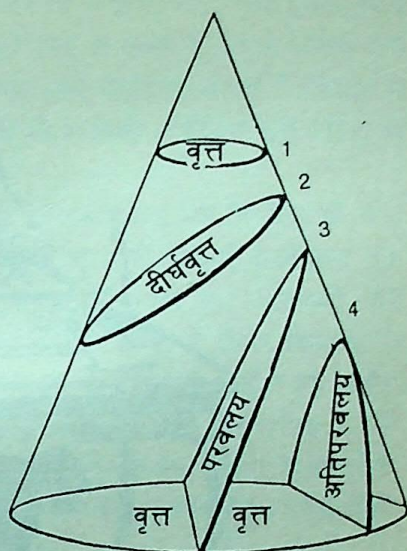
शांकव : 1 वृत्त, 2 दीर्घवृत्त, 3 परवलय, 4 अतिपरवलय।

गणित के क्षेत्र में यह एक नई खोज थी। यूक्लिड की ज्यामिति की आकृतियों को अन्य समतलों पर प्रक्षेपित किया जाए, तो वे आकार-प्रकार में बदल जाती हैं। मगर पास्कल की ज्यामितीय आकृतियां प्रक्षेपित किए जाने पर भी अपने गुणधर्मों को बरकरार रखती हैं। अतः यह एक नई ज्यामिति थी—प्रक्षेपीय ज्यामिति। पास्कल और उनके समकालीन गणितज्ञ **देसार्ग्यू** इस नई ज्यामिति के जनक माने जाते हैं।[2]

महत्व की बात यह है कि उपर्युक्त 'रहस्यमय षड्भुज' की खोज सोलह साल के एक बालक ने की थी। इतना ही नहीं, पास्कल ने उसी समय शांकवों के गणित पर एक 'पुस्तक' भी लिखी। रैने दकार्त ने जब उस पुस्तक को देखा तो उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ कि वह पुस्तक सोलह साल के एक बालक ने लिखी है। मगर लाइबनिट्ज ने जब उस पुस्तक को देखा तो उसकी बड़ी प्रशंसा की। बताया जाता है कि पास्कल ने 'रहस्यमय षड्भुज' के आधार पर प्रक्षेपीय ज्यामिति के करीब चार सौ परिणाम खोज निकाले, मगर यह बात अतिशयोक्तिपूर्ण जान पड़ती है। आज गणित का यह विषय काफी विकसित हो चुका है और उच्च कक्षाओं में पढ़ाया जाता है।

हम बता चुके हैं कि बचपन से ही पास्कल का स्वास्थ्य खराब था। पास्कल ने

पास्कल अपने गणक-यंत्र के साथ

पास्कल का गणक-यंत्र
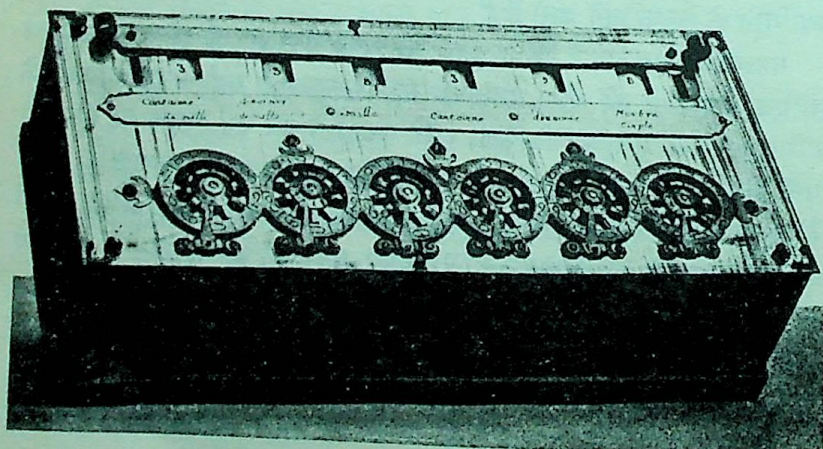
कम उम्र में ही अपनी प्रतिभा के चमत्कार तो दिखाए, मगर उन्हें इसकी भारी कीमत भी चुकानी पड़ी। सत्रह साल की आयु से लेकर जीवन के अंतिम क्षण तक शायद ही ऐसा कोई दिन गुजरा जब उन्हें शारीरिक वेदना ने परेशान न किया हो। जीवनभर वह अजीर्ण के रोगी रहे। उनकी अधिकांश रातें अनिद्रा के कष्टों में ही कटीं।

पास्कल कोरे गणितज्ञ ही नहीं थे। वे एक कुशल यंत्र-निर्माता भी थे। अठारह साल की आयु में उन्होंने जोड़ तथा घटा की क्रियाएं करनेवाला एक 'गणक-यंत्र' बनाया। यह संसार का पहला गणक-यंत्र था। दंतचक्रों और सिलिंडरों की सहायता से पास्कल ने यह यंत्र 1642 ई. में तैयार किया था। अपने पिता के हिसाब-किताब में मदद करने के उद्देश्य से उन्होंने यह मशीन बनाई थी। कुछ साल बाद जर्मन गणितज्ञ लाइवनिट्ज (1646-1716 ई.) ने पास्कल की मशीन में सुधार करके एक नया गणक-यंत्र बनाया। आधुनिक इलेक्ट्रानिक कम्प्यूटरों का आविष्कार होने तक पास्कल-लाइबनिट्ज गणक-यंत्रों का ही बैंकों आदि में इस्तेमाल होता रहा।

इसी समय पास्कल-परिवार एक धार्मिक आंधी की चपेट में आ गया। ईसाई धर्म के अंतर्गत नए-नए संप्रदाय जन्म ले रहे थे। उस समय के 'धर्म-सुधारकों' में एक थे—कॉर्नेलियस जान्सेन। पास्कल-परिवार ने 1646 ई. में जान्सेन संप्रदाय में दीक्षा ले ली। उसके बाद पास्कल-परिवार में एक बहुत बड़ा परिवर्तन आया।[2] एक ओर पास्कल और उनकी बहन जेकेलीन का जान्सेन संप्रदाय के प्रति आकर्षण धर्मान्धता की सीमा तक बढ़ता गया, तो दूसरी ओर पास्कल का स्वास्थ्य दिनोंदिन गिरता ही गया। मगर उनकी बौद्धिक क्षमता में कोई कमी नहीं आई।

पास्कल की प्रतिभा ने 1648 ई. में विज्ञान के एक नए क्षेत्र में अपना चमत्कार दिखाया। गैलीलियो और उनके शिष्य टॉरिसेली (1608-1647 ई.) ने वायुमंडल के भार के बारे में कुछ सिद्धांत प्रस्तुत किए थे। टॉरिसेली ने कांच की एक लंबी नलिका में पारा भरकर सिद्ध किया था कि वायुमंडल के भार में परिवर्तन होता है, तो साथ-साथ नलिका के भीतर पारे की ऊंचाई में भी परिवर्तन होता है। इस जानकारी के आधार पर पास्कल ने एक 'बैरोमीटर' यंत्र बनाया।

इस बीच पास्कल की बहन गिलबर्ते का विवाह एम. पेरिए नामक एक सज्जन से हो गया। पास्कल के सुझाव पर पेरिए महाशय उनके बनाये बैरोमीटर को एक ऊंची इमारत की गुम्बद पर ले गए। वहां उन्होंने देखा कि बैरोमीटर में पारे की ऊंचाई कुछ घट गई है। इस प्रयोग के आधार पर पास्कल ने एक नए सिद्धांत की खोज की, जो विज्ञान में 'पास्कल का द्रव-भार सिद्धांत' नाम से

प्रसिद्ध है । आज भी हाइड्रोलिक जैक, हाइड्रोलिक प्रेस तथा इसी प्रकार की अन्य मशीनें पास्कल के इसी सिद्धांत के आधार पर बनाई जाती हैं ।

पास्कल ने छोटी उम्र में ही कई महान आविष्कार किए थे । इसलिए उनके समकालीन कई वैज्ञानिक इन आविष्कारों को संदेह की दृष्टि से देखते थे । उसी दौरान पास्कल और दकार्त की पेरिस में मुलाकात हुई । दकार्त का कहना था कि पास्कल ने बैरोमीटर के विचार दूसरों से चुराए हैं । मगर दकार्त का यह आरोप सही नहीं था । दकार्त और पास्कल के मतभेदों का एक कारण यह भी था कि दोनों की धार्मिक मान्यताएं अलग-अलग थीं । दकार्त को ईसाइयों के जेसुइट संप्रदाय से जीवनभर आश्रय और स्नेह मिला था । पास्कल-परिवार जान्सेन संप्रदाय में दीक्षित हो गया था । और, जान्सेन संप्रदाय का मुख्य उद्देश्य था—जेसुइटों को पराजित करना । इस प्रकार, फ्रांस के दो महान वैज्ञानिक़ों के बीच में धर्म एक दीवार बनकर खड़ा हो गया ।

फिर भी वयस्क दकार्त ने तरुण पास्कल को एक अच्छी सलाह दी । दकार्त के स्वास्थ्य का रहस्य था, सुबह देर तक बिस्तर में लेटे-लेटे सोचते रहना । दकार्त ने पास्कल को भी यही सुझाव दिया । मगर पास्कल ने दकार्त के सुझाव की कोई कदर नहीं की । पास्कल का स्वास्थ्य बिगड़ता ही गया । शारीरिक वेदनाओं के उस दौर में भी पास्कल ने गणितीय अनुसंधान का कार्य जारी रखा । फर्मा के साथ उनका जो पत्र-व्यवहार चला उससे प्रायिकता सिद्धांत (थ्योरी आफ प्रोबेबिलिटी) ने जन्म लिया ।

उन दिनों फ्रांस में जुआ खेलने का बड़ा शौक था । एक रईस जुआरी **केवेलिए द मेरे** ने पास्कल के सामने एक समस्या रखी : मान लीजिए कि दो व्यक्ति जुआ खेल रहे हैं और उन्हें तीन प्वाइंट बनाकर दांव जीतना है । मगर जब एक व्यक्ति दो प्वाइंट और दूसरा व्यक्ति एक प्वाइंट बना लेता है, तो किसी कारण से उन्हें खेल बंद कर देना पड़ता है । प्रश्न है : दांव की राशि को वे आपस में कैसे बांटें ?

प्रश्न का उत्तर सरल नहीं है । मान लीजिए कि वे अगला प्वाइंट भी खेलते हैं। तब दो संभावनाएं बनती हैं : या तो एक को पूरी राशि मिलेगी या दोनों में आधी-आधी बांटनी होगी । मेरे ने संभावनाओं की यह पहेली पास्कल के सामने पेश की थी । इस समस्या के बारे में पास्कल ने फर्मा के साथ पत्र-व्यवहार शुरू कर दिया । दोनों ही अपने-अपने हल सुझाते गए । इस समस्या को सुलझाने के दोनों के तरीके तो अलग-अलग थे, मगर परिणाम एक-जैसे ही थे । फर्मा और पास्कल के बीच हुए उस पत्र-व्यवहार से प्रायिकता (संभाविता) के सिद्धांत का जन्म हुआ ।

जुआरियों की समस्याओं से और फर्मा-पास्कल के पत्र-व्यवहार से जिस

विषय ने जन्म लिया वह आज गणितशास्त्र का एक अत्यंत महत्वपूर्ण अंग बन गया है। समूचे सांख्यिकीय गणित में और आधुनिक भौतिकी की कई शाखाओं में आज प्रायिकता सिद्धांत का व्यापक उपयोग होता है। अब तो ऐसा लगता है कि भौतिक जगत के सभी नियम मूलतः प्रायिकता सिद्धांत पर ही आधारित हैं।

प्रायिकता सिद्धांत से संबंधित सवालों को हल करने के लिए पास्कल ने **संचयों** (कंबिनेशन्स) का उपयोग किया। उदाहरण के लिए, 10 विभिन्न वस्तुओं में से, बिना किसी निश्चित क्रम के, एक समय में 4 वस्तुएं ली जाएं, तो कितने संचय बनते हैं, यह जानने के लिए आज हम एक सूत्र का इस्तेमाल करते हैं।[4] मगर पास्कल के समय में यूरोप के गणितज्ञों को इस सूत्र की जानकारी नहीं थी, हालांकि भारतीय गणितज्ञ महावीराचार्य ईसा की नौवीं सदी में ही इस सूत्र की खोज कर चुके थे।

पास्कल ने संचयों की संख्या जानने के लिए संख्याओं से बननेवाले एक विशिष्ट प्रकार के त्रिभुज का इस्तेमाल किया। आज यह अंकगणितीय त्रिभुज **पास्कल का त्रिभुज** कहलाता है, मगर चीन और भारत के गणितज्ञों को बहुत प्राचीन काल से इसकी जानकारी रही है। आचार्य पिंगल (ईसा पूर्व दूसरी सदी) के **छंदःसूत्र** में **मेरुप्रस्तार** के नाम से इस संख्या-त्रिभुज की जानकारी है।
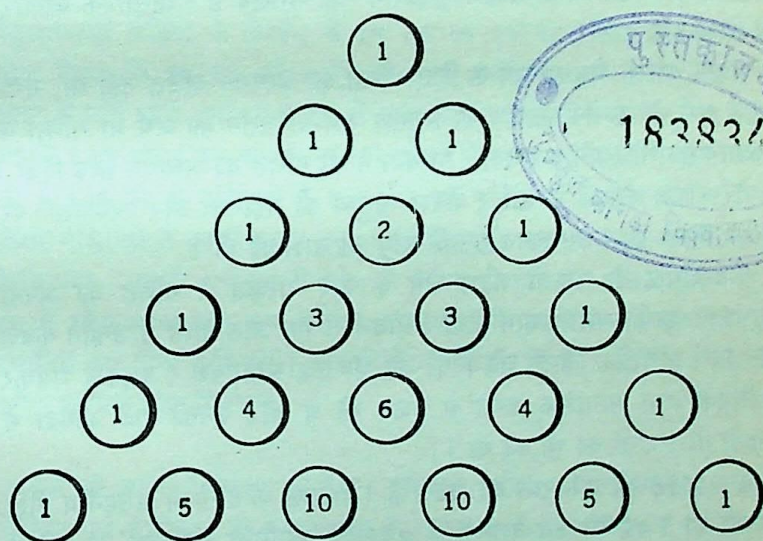
'पास्कल का त्रिभुज'

इस त्रिभुज में प्रथम दो पंक्तियों के बाद की पंक्तियों की संख्याएं इसके विकर्णों में एक-एक रखकर और ऊपर की पंक्ति की दो-दो संख्याओं को जोड़ते

जाकर प्राप्त की जा सकती हैं ।[5] पास्कल ने संचयों की संख्या ज्ञात करने के लिए इस त्रिभुज का उपयोग किया । पास्कल ने $(अ + ब)^2$, $(अ + ब)^3$ आदि के विस्तार को जानने के लिए भी इस त्रिभुज का इस्तेमाल किया । उदाहरणार्थ —

$$(अ)^1 = (1)\ अ^1$$
$$(अ + ब)^2 = (1)\ अ^2 + 2\ अ\ ब + (1)\ ब^2$$
$$(अ + ब)^3 = (1)\ अ^3 + 3\ अ^2\ ब + 3\ अ\ ब^2 + (1)ब^3$$
$$(अ + ब)^4 = (1)\ अ^4 + 4\ अ^3\ ब + 6\ अ^2\ ब^2 + 4अ\ ब^3 + (1)ब^4$$

हम बता चुके हैं कि पास्कल-परिवार जान्सेन संप्रदाय का अनुयायी बन गया था। पेरिस के पास पोर्ट-रॉयल नामक स्थान पर इस संप्रदाय का एक मठ था । पास्कल-परिवार ने उस मठ में आना-जाना शुरू कर दिया था ।

सन् 1651 में पास्कल के पिता का देहांत हुआ । तब जेकेलीन साध्वी (नन) बनकर पोर्ट-रॉयल के मठ में पहुंच गई । वह चाहती थी कि उसका भाई भी पोर्ट-रॉयल के मठ का सदस्य बन जाए । परंतु कोई फैसला करने में पास्कल को करीब तीन साल लगे । अंत में, 1654 ई. में, पास्कल ने भी 'धर्म-परिवर्तन' स्वीकार कर लिया । यहां 'धर्म-परिवर्तन' का मतलब है : सांसारिक व्यापारों को तिलांजलि देना ।

हमारे देश में जैन मुनियों के लिए गणित का अध्ययन वर्जित नहीं था, मगर ईसाई धर्म के जान्सेन संप्रदाय के अनुसार धर्म-परिवर्तन का अर्थ था गणित के अध्ययन का भी त्याग कर देना ! पास्कल ने भी गणित का अध्ययन छोड़ दिया । वे पोर्ट-रॉयल के मठ में रहकर केवल 'मनुष्य की महानता और परवशता' पर विचार करते रहे । उस समय उनकी आयु 31 साल की थी ।

पोर्ट-रॉयल के मठ में शरण लेने के बाद पास्कल ने गणित का अपना अनुसंधान-कार्य एकदम त्याग दिया । जीवन के शेष आठ सालों में उन्होंने केवल आठ दिन गणितीय चिंतन को दिए, वह भी एक संयोगवश । पास्कल भयंकर शारीरिक तथा मानसिक कष्टों से गुजर रहे थे और उनकी रातें अनिद्रा में बीतती थीं । दांतों का भी दर्द था ।

सन् 1658 की एक रात की घटना है । पास्कल के दांतों में असहनीय पीड़ा हो रही थी । दर्द की उस दशा में वे अचानक 'ज्यामिति की हेलेन' के बारे में सोचने लगे । उन्होंने अनुभव किया कि उनकी पीड़ा कम हो गई है । उस घटना का पास्कल ने अर्थ लगाया कि 'ज्यामिति की हेलेन' के बारे में सोचकर उन्होंने कोई पाप नहीं किया है । लगातार आठ दिन तक सोचते रहकर पास्कल ने 'ज्यामिति की हेलेन' से संबंधित कई समस्याओं के हल खोज निकाले और एक

छद्मनाम से उन्हें प्रकाशित कर दिया । गणित के क्षेत्र में पास्कल की यह अंतिम खोज थी ।

'ज्यामिति की हेलेन' एक विशिष्ट वक्र है । इस वक्र के निर्माण में कोई कठिनाई नहीं है। एक छोटा पहिया या कोई गोल सिक्का लीजिए । फिर उसकी परिधि पर एक स्थिर बिन्दु लीजिए । तब उस पहिए या सिक्के को समतल भूमि पर खड़ा चलाया जाए, तो वह स्थिर बिन्दु जो मार्ग बनाएगा वही है 'ज्यामिति की हेलेन' के नाम से मशहूर वक्र । अंग्रेजी में इसे 'साइक्लोआइड' कहते हैं । हिन्दी में इसे हम **चक्रज** कहेंगे ।
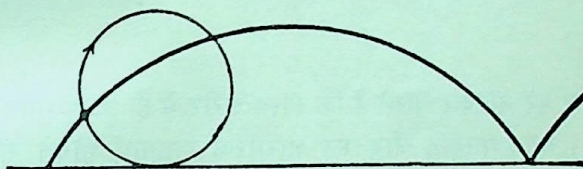
'ज्यामिति की हेलेन'

पास्कल के करीब दो सौ साल पहले ही इस वक्र का अध्ययन शुरू हो गया था। गैलीलियो ने सुझाव दिया था कि इस वक्र के आकार के पुल बनाए जा सकते हैं । क्रिस्टफर रेन ने इस वक्र का गुरुत्वकेंद्र खोजा था । हाइगेन्स ने पेंडुलमवाली घड़ियों के निर्माण में इस वक्र का इस्तेमाल किया था । उन्होंने सिद्ध किया कि इस वक्र को कटोरे की तरह उलटा रखकर इसके किसी भी स्थान से मणि छोड़े जाएं तो वे एक-से समय में ही सबसे नीचे के बिन्दु पर पहुंच जाएंगे । इस प्रकार इस वक्र के गुणधर्म खोजने में अनेक गणितज्ञों ने माथापच्ची की है । कितने ही गणितज्ञों ने एक-दूसरे को चुनौतियां दी हैं । इस वक्र को लेकर गणितज्ञों में काफी कलह बढ़ा । इसीलिए इस वक्र का नाम ज्यामिति की हेलेन पड़ा । यूनानी राजकुमारी हेलेन के कारण ही इतिहास-प्रसिद्ध ट्रोजन-युद्ध हुए थे और अनेक साल तक चले थे । पास्कल भी ज्यामिति की इस हेलेन से प्रभावित हुए बिना नहीं रहे । आठ दिनों की अवधि में ही उन्होंने इस वक्र के अनेक गुणधर्म खोज निकाले ।

पास्कल को आज न केवल एक महान गणितज्ञ, बल्कि फ्रांसीसी भाषा का एक विशिष्ट गद्य-शैलीकार भी माना जाता है । पास्कल के पोर्ट-रॉयल में पहुंचने के बाद की घटना है । उनके एक मित्र अर्नोल्ड को उनके धार्मिक विचारों के कारण दंड दिया गया था । मित्र की पैरवी करने के उद्देश्य से पास्कल ने 13 पत्र प्रकाशित किए, जो 'प्राविंशल लेटर्स' के नाम से प्रसिद्ध हुए । इन पत्रों में जेसुइट संप्रदायवालों पर जबरदस्त प्रहार किया गया है । इन पत्रों के अलावा पास्कल ने

पेंसी (चिंतन) नाम से प्रकाशित एक अधूरी पुस्तक भी लिखी है। पास्कल का यह सारा गद्य-लेखन धार्मिक रहस्यवाद से ओतप्रोत है, मगर भाषा इतनी प्रभावशाली है कि उन्हें आज भी फ्रांसीसी गद्य के एक महान निर्माता के रूप में स्मरण किया जाता है।

पास्कल जीवनभर अजीर्ण और अनिद्रा से पीड़ित रहे। जीवन के अंतिम चार सालों में उन्हें भयंकर सिरदर्द भी रहा। 1662 ई. में उन्होंने अपना मकान एक गरीब परिवार को दान दे दिया और अपनी बहन गिलबर्ते के साथ रहने चले गए। वहीं पर 19 अगस्त, 1662 को 39 साल की आयु में पास्कल का देहांत हुआ।

हम आमतौर पर मानकर चलते हैं कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है। मगर पास्कल जीवनभर शारीरिक यातनाएं भोगते रहे। उनके जीवन के इस पक्ष पर विचार करते हैं तो आश्चर्य होता है कि वे गणित के क्षेत्र में इतना महान कार्य कैसे कर पाए। धर्म को लेकर पास्कल के चिंतन का दायरा भले ही सीमित रहा हो, मगर विज्ञान के लिए उनके आविष्कार महान वरदान सिद्ध हुए हैं। प्रायिकता सिद्धांत और प्रक्षेपीय ज्यामिति के एक प्रमुख निर्माता के रूप में पास्कल की स्मृति चिरस्मरणीय बनी रहेगी।

सहायक ग्रंथ

1. डेविड यूजेन स्मिथ — **हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स** (दो खंड), डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1958
2. डेविड यूजेन स्मिथ — **ए सोर्सबुक इन मैथेमेटिक्स** (दो खंड), डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1959
3. ई. टी. बेल — **मेन आफ मैथेमेटिक्स** (भाग 1), पेलिकन बुक, लंदन 1953
4. होवार्ड इवेस — **एन इंट्रोडक्शन टु द हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स** (पांचवां संस्करण), न्यूयार्क 1983
5. अल्फ्रेड हूपर — **मेकर्स आफ मैथेमेटिक्स**, न्यूयार्क 1948
6. डिर्क जे. स्त्रुइक — **ए कंसाइज हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स**, लंदन 1959
7. वी. ए. उस्पेंस्की — **पास्कल्ज ट्रैंगल** , मास्को 1976
8. गुणाकर मुले — **पास्कल (दूसरा संस्करण)**, नई दिल्ली 1979

संदर्भ और टिप्पणियां

1. देखिए 'रैने दकार्त' लेख की टिप्पणी सं. 6.

2. गेरार्द देसार्ग्यू (1593-1662 ई.) के जीवन के बारे में बहुत कम जानकारी मिलती है। पता चलता है कि उनका जन्म और देहांत फ्रांस के लॉयन नगर में हुआ था और वह इंजीनियर, वास्तुविद और कुछ समय तक सैनिक अफसर रहे। पेरिस में रहकर उन्होंने कई भाषण दिए।

देसार्ग्यू अपनी **शांकव** (कोनिक्स) पुस्तक के लिए सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। यह पुस्तक पेरिस से 1639 ई. में प्रकाशित हुई थी, मगर आगे के करीब दो सौ साल तक उपेक्षित रही, हालांकि पास्कल और दकार्त ने इसकी स्तुति की थी। देसार्ग्यू की पुस्तक में एक नई प्रक्षेपीय ज्यामिति की स्थापना की गई थी और इसके लिए उन्होंने कई सारे नए शब्दों का उपयोग किया था। दकार्त की वैश्लेषिक ज्यामिति के विकास में गणितज्ञों ने ज्यादा दिलचस्पी ली, इसलिए भी देसार्ग्यू की नई ज्यामिति उपेक्षित रही।

देसार्ग्यू ने अपनी नई विशुद्ध ज्यामिति में 'अनंत दूरी पर बिन्दु', 'अनंत दूरी तक रेखा', 'अनंत त्रिज्यावाली वृत्त-रेखा', 'ज्यामितीय अंतर्वलन' (इन्वोल्यूशन) आदि धारणाएं प्रस्तुत कीं, और इस प्रकार प्रक्षेपीय ज्यामिति की स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान किया।

3. ईसाइयों के जान्सेन संप्रदाय की स्थापना डच धर्मनेता कॉर्नेलियस जान्सेन (1585-1638 ई.) ने की थी। यह संप्रदाय रोमन कैथोलिक चर्च का विरोधी और कुछ हद तक प्रोटेस्टैंट मत का समर्थक था। पोप और उनके समर्थक शासकों ने जान्सेन-मतावलंबियों को काफी कष्ट दिए। जान्सेन मतावलंबी जेसुइटों को अपना कट्टर दुश्मन मानते थे।

4. सूत्र है—

$स^{न}_{र} = \frac{\lfloor न}{\lfloor र\ (न-र)}$, जहां कुल वस्तुएं **न**, और हर बार चुनी गई वस्तुएं **र** हैं।

$$\text{अतः } स^{10}_{4} = \frac{10 \times 9 \times 8 \times 7 \times 6 \times 5 \times 4 \times 3 \times 2 \times 1}{4 \times 3 \times 2 \times 1 \times 6 \times 5 \times 4 \times 3 \times 2 \times 1} = 210 \text{ संचय}$$

5. यह तथाकथित 'पास्कल का त्रिभुज' पास्कल की मृत्यु के बाद, 1665 ई. में, उनकी **अंकगणितीय त्रिभुज** नामक कृति में प्रकाशित हुआ था। इसमें यह त्रिभुज निम्न रूप में दिया गया है—

'पास्कल का त्रिभुज'

यह त्रिभुज पहले के त्रिभुज को 45^0 में घुमाने से बना है । इसमें कोई भी संख्या **अ** दो संख्याओं के योग के बराबर है : इनमें से एक संख्या उसी क्षैतिज रेखा में **अ** के पहले की है और दूसरी संख्या उसी ऊर्ध्वाधर रेखा में **अ** के पहले की है ।

पास्कल ने अपनी पुस्तक में इस त्रिभुज के कई गुणधर्मों और उपयोगों का विवेचन किया है । उदाहरण के लिए, पास्कल द्वारा दिए गए तीन गुणधर्म देखिए—
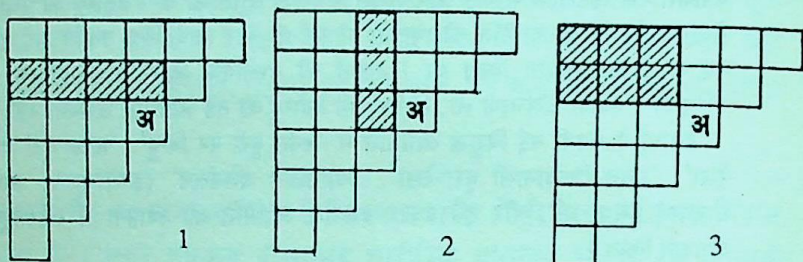
एक : इसमें प्रत्येक संख्या **अ**, इसके पहले की क्षैतिज पंक्ति की आरंभ से **अ** तक की संख्याओं के योग के बराबर होती है ।

दो : इसमें प्रत्येक संख्या **अ**, इसके पहले के ऊर्ध्वाधर स्तंभ की आरंभ से **अ** तक की संख्याओं के योग के बराबर होती है ।

तीन : इसमें प्रत्येक संख्या **अ**, इसके पहले तक की सभी क्षैतिज पंक्तियों और सभी ऊर्ध्वाधर स्तंभों से निर्मित आयत की सभी संख्याओं के योग में 'एक' को जोड़ने से बनती है । संख्या **अ** इस आयत के एक कोने पर रहती है ।

लाइबनिट्ज[1]

आजकल विशेषज्ञों का युग है । ज्ञान-विज्ञान का इतना अधिक विकास हुआ है कि एक व्यक्ति के लिए एक विषय पर भी पूरा अधिकार प्राप्त करना कठिन हो गया है । गणित पर तो यह बात विशेष रूप से लागू होती है । कोई गणितज्ञ यदि संख्या-सिद्धांत के क्षेत्र में खोजबीन करना चाहता है, तो उसे अपनी सारी शक्ति उसी विषय के गहन अध्ययन में लगानी पड़ती है । गणित के उच्च बीजगणित, प्रक्षेपीय ज्यामिति, टॉपोलॉजी, प्रायिकता सिद्धांत जैसे अन्य अनेक विषयों का उसका ज्ञान काफी अधूरा रह जाता है ।

एक उदाहरण लीजिए ।[2] रामानुजन् (1887-1920 ई.) को गणित की एक महान प्रतिभा माना जाता है । संख्या-सिद्धांत पर उनका असाधारण अधिकार था । मगर गणित के अन्य विषयों में वे काफी कच्चे थे । यहां तक कि संख्या-सिद्धांत की आधुनिक तकनीकों से भी वे भलीभांति परिचित नहीं थे । इंग्लैंड में डा. हार्डी के सान्निध्य में पहुंचने के बाद ही रामानुजन् को गणित की इन आधुनिक तकनीकों की थोड़ी-बहुत जानकारी मिली थी ।

एक और दिलचस्प उदाहरण लीजिए । फ्रांस के प्रख्यात गणितज्ञ फर्मा (1608-1665 ई.) का एक प्रमेय (अनुमान) है कि संबंध $य^न + र^न = क^न$ संभव नहीं, यदि **न** का मान 2 से अधिक हो । अनेकानेक प्रयासों के बावजूद आज तक यह अनुमान **पूर्णतः** प्रमाणित नहीं हो पाया है ।

सन् 1920 का किस्सा है । जर्मनी के प्रख्यात गणितज्ञ डेविड हिल्बर्ट से किसी ने कहा : ''आप फर्मा के इस प्रमेय की उपपत्ति क्यों नहीं खोजते ?'' हिल्बर्ट का उत्तर था : ''खोज की शुरुआत करने के पहले मुझे कम-से-कम तीन साल तक इस समस्या का गहन अध्ययन करना होगा । मेरे पास इतना समय नहीं है कि मैं उसे असफलता दे सकनेवाली इस समस्या पर फिजूल में खर्च करूं ।'' डेविड हिल्बर्ट (1862-1943 ई.) को आधुनिक काल का एक महान सैद्धांतिक ज्यामितिकार माना जाता है ।

आज विज्ञान के, विशेषतः गणित के, क्षेत्र में विशेषज्ञता का दायरा और भी छोटा हो गया है । तीन-चार सौ साल पहले ऐसी स्थिति नहीं थी । उस समय यूरोप में आधुनिक गणित के नए-नए विषय जन्म ले रहे थे । एक ही गणितज्ञ

लाइबनिट्ज (1646-1716 ई.)

गणित के कई क्षेत्रों में एक साथ खोजबीन करने में समर्थ था । कुछ प्रतिभाएं गणित के अलावा विज्ञान के अन्य एक-दो विषयों में भी महत्वपूर्ण योगदान करने में समर्थ थीं । दकार्त, पास्कल, न्यूटन आदि ऐसी ही महान प्रतिभाएं थीं ।

लेकिन उस युग में यूरोप में एक ऐसी भी महान प्रतिभा पैदा हुई जिसने ज्ञान-विज्ञान के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया । वह प्रतिभा थी जर्मनी के महान दार्शनिक और गणितज्ञ **गॉटफ्रीड विलहेल्म लाइबनिट्ज ।**

लाइबनिट्ज और न्यूटन को संयुक्त रूप से **कलन-गणित** (कैल्कुलस) का निर्माता माना जाता है । मगर केवल गणित ही नहीं, कानून, कूटनीति, इतिहास, साहित्य, तर्कशास्त्र, दर्शन तथा यांत्रिकी के क्षेत्रों में भी लाइबनिट्ज की प्रतिभा ने अपना भरपूर चमत्कार दिखाया । इनमें से प्रत्येक क्षेत्र में किया गया उनका कार्य उनकी कीर्ति और स्मृति को स्थायी बना देने के लिए पर्याप्त था । लाइबनिट्ज के बाद उनकी जैसी 'सार्वभौमिक प्रतिभा' यूरोप में पुनः पैदा नहीं हुई । सबसे महत्व की बात यह है कि लाइबनिट्ज ने संपूर्ण ज्ञान-विज्ञान के आधार के लिए तार्किक गणित के संकेतों की एक व्यापक भाषा खोजने का प्रयास किया । यहां हम प्रमुख रूप से लाइबनिट्ज की गणित तथा विज्ञान के क्षेत्र की उपलब्धियों की ही चर्चा करेंगे ।

लाइबनिट्ज का जन्म आज के जर्मनी के लाइपजिग नगर में 21 जून, 1646 को हुआ था । न्यूटन का जन्म लाइबनिट्ज के जन्म के करीब साढ़े तीन साल पहले हुआ था । लाइबनिट्ज के पिता लाइपजिग विश्वविद्यालय में नीतिशास्त्र के प्राध्यापक थे । उनका अपना एक अच्छा पुस्तकालय था ।

लाइबनिट्ज जब छह साल के थे तभी उनके पिता का देहांत हो गया । वह स्कूल जाते थे, मगर उनकी दिलचस्पी अपने पिता के ग्रंथालय की पुस्तकें पढ़ने में थी । आठ साल की आयु में उन्होंने स्वयं ही लैटिन भाषा का अध्ययन आरंभ कर दिया था और बारह साल की उम्र में ग्रीक सीखना शुरू कर दिया । पन्द्रह साल के हुए तो उन्होंने तर्कशास्त्र का अध्ययन प्रारंभ कर दिया । फिर जल्दी ही उन्होंने यह भी महसूस किया कि परंपरागत तर्कशास्त्र में सुधार करना बहुत जरूरी है ।

पन्द्रह साल की आयु में 1661 ई. में लाइबनिट्ज लाइपजिग विश्वविद्यालय में कानून के विद्यार्थी के रूप में दाखिल हुए । दो साल बाद कुछ महीनों के लिए वे जेना विश्वविद्यालय में रहे और वहां गणितशास्त्र का अध्ययन किया । फिर लाइपजिग लौटे और उसी साल, सत्रह साल की आयु में, स्नातक की उपाधि प्राप्त की । 1666 ई. में, बीस साल की आयु में, उन्होंने कानून में 'डाक्टर' की

उपाधि के लिए अपने को पेश किया। मगर लाइबनिट्ज की कम उम्र के कारण विश्वविद्यालय ने उन्हें डाक्टर की उपाधि नहीं दी।

लाइबनिट्ज बड़े दुःखी हुए। उन्होंने लाइपजिग को सदा के लिए नमस्कार किया और नीरेम्बर्ग चले गए। वहां के आल्टडोर्फ विश्वविद्यालय ने, न केवल उन्हें फौरन डाक्टर की उपाधि प्रदान की, बल्कि उन्हें प्राध्यापक बनने का भी आमंत्रण दिया। परंतु लाइबनिट्ज ने उस पद को स्वीकार नहीं किया। उनके विचार कुछ दूसरे ही काम करने के थे।

लाइबनिट्ज ने डाक्टर की उपाधि के लिए जो प्रबंध पेश किया वह उन्होंने लाइपजिग से नीरेम्बर्ग की अपनी यात्रा के दौरान तैयार किया था। जीवनभर उनकी यह एक विशेषता रही कि वे किसी भी स्थान पर, किसी भी समय और किन्हीं भी परिस्थितियों में सृजनात्मक कार्य करने में समर्थ थे। उस यात्रा के दौरान उन्होंने जो प्रबंध लिखा उसका विषय था—'कानून सीखने और सिखाने की नई विधि'। लाइबनिट्ज ने नीरेम्बर्ग में ही अपने उस प्रबंध को प्रकाशित किया।

लाइबनिट्ज का वह प्रबंध माइंट्ज के आर्कबिशप-इलेक्टर (निर्वाचक) को इतना अधिक पसंद आया कि उन्होंने तत्कालीन कानून में संशोधन करने का काम लाइबनिट्ज को सौंप दिया। उस समय 'इलेक्टर' यूरोप के उन आर्कबिशपों और राजाओं को कहते थे जो नाममात्र के 'पवित्र रोमन सम्राट' का चुनाव करते थे। माइंट्ज के इलेक्टर के आश्रय में जाने के बाद लाइबनिट्ज का कूटनीतिज्ञ का जीवन शुरू हुआ। उन्हें कई राजनयिक मिशनों पर भेजा गया। उसी दौरान उन्होंने राजनीतिक विषयों पर अनेक लेख भी लिखे।

लाइबनिट्ज कौटिल्य-जैसे चतुर राजनीतिज्ञ थे। वह 'शक्ति-संतुलन' के दाव रचने में माहिर थे। फ्रांस का राजा चौदहवां लुई जर्मनी पर हमला करने की धमकियां दे रहा था। जर्मनी से लुई का ध्यान हटाने के लिए लाइबनिट्ज ने एक खतरनाक योजना बनाई। लाइबनिट्ज ने सुझाया कि यूरोप के राजाओं को एकजुट होकर तुर्की के खिलाफ धर्मयुद्ध छेड़ देना चाहिए। उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि फ्रांस को मिस्र पर हमला करके उस देश को तथा उसकी सांस्कृतिक निधियों को अपने कब्जे में कर लेना चाहिए।

उस समय तो वे योजनाएं फलित नहीं हुईं, मगर बाद में नेपोलियन ने लाइबनिट्ज की उस योजना से ही प्रेरणा प्राप्त करके 1798 ई. में मिस्र पर चढ़ाई की थी।

लेकिन लाइबनिट्ज ने जो योजना प्रस्तुत की थी उसका तत्काल एक दूसरा ही लाभ हुआ। उन्हें चौदहवें लुई के सामने अपनी योजना पेश करने के लिए पेरिस आने का आमंत्रण मिला। छब्बीस साल के लाइबनिट्ज 1672 ई. में पेरिस

पहुंचे । वहां वे डच वैज्ञानिक क्रिस्तिआन हाइगेन्स (1629-95 ई.) के निकट सम्पर्क में आए और उसके बाद ही लाइबनिट्ज का गणित का वास्तविक अध्ययन तथा खोजकार्य शुरू हुआ ।

पेरिस पहुंचने के पहले ही लाइबनिट्ज अपनी बहुमुखी प्रतिभा का पर्याप्त परिचय दे चुके थे । उन्होंने कानून, राजनीति, तर्कशास्त्र, दर्शन, धर्मशास्त्र, यांत्रिकी तथा प्रकाशिकी पर प्रबंध लिखे थे । इसके अलावा, 1671 ई. में उन्होंने एक गणक-यंत्र भी बनाया था, जो पास्कल के गणक-यंत्र से काफी बेहतर था । पास्कल का गणक-यंत्र केवल जोड़ तथा घटा की क्रियाएं करने में समर्थ था । लाइबनिट्ज के गणक-यंत्र से जोड़ तथा घटा के अलावा गुणा तथा भाग की क्रियाएं भी की जा सकती थीं, और वर्गमूल भी प्राप्त किए जा सकते थे ।
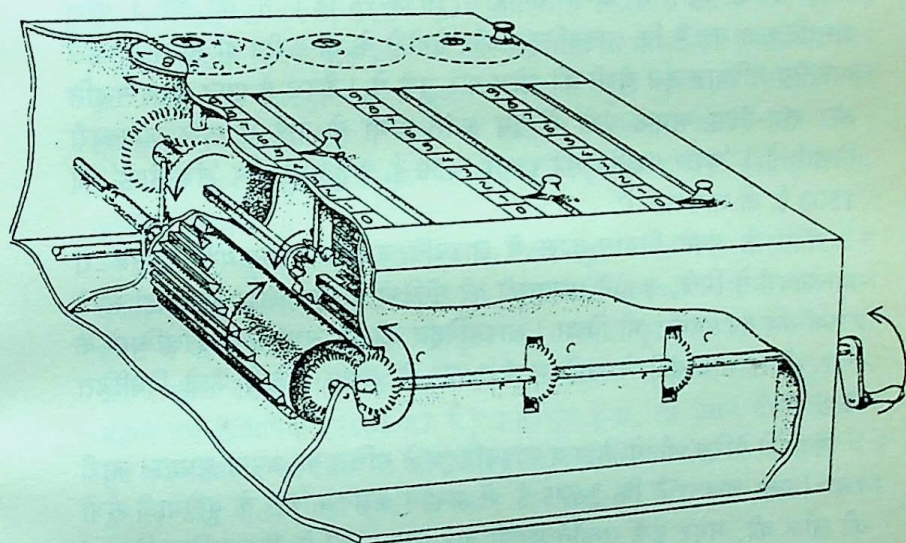
लाइबनिट्ज के गणक-यंत्र की कार्य-प्रणाली का आरेख

पेरिस में हाइगेन्स के सान्निध्य में पहुंचने पर लाइबनिट्ज को पहली बार पता चला कि आधुनिक गणित क्या है और कितना विकास कर चुका है । हाइगेन्स ने उन्हें लोलक (पेंडुलम) के गणितीय विवेचन से संबंधित अपनी पुस्तक पढ़ने को दी । लाइबनिट्ज उस पुस्तक से इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने हाइगेन्स से आधुनिक गणित के पाठ पढ़ने का निश्चय कर लिया । हाइगेन्स के निर्देशन में लाइबनिट्ज ने गणित का गहन अध्ययन आरंभ कर दिया । पेरिस के निवास-काल में उनका यह अध्ययन 1676 ई. तक जारी रहा ।

बीच में, जनवरी से मार्च 1675 ई. तक के काल में, लाइबनिट्ज लंदन में रहे। वहां उनका बॉयल[3], न्यूटन आदि अनेक वैज्ञानिकों से परिचय हुआ। उन्हें इंग्लैंड के गणितज्ञों के खोजकार्य के बारे में जानकारी मिली। लाइबनिट्ज को अनंत श्रेणियों की विधि के बारे में जानकारी मिली तो उन्होंने स्वयं एक अनंत श्रेणी की खोज की। वह श्रेणी है : यदि π वृत्त की परिधि और व्यास का अनुपात हो, तो

$$\frac{\pi}{4} = 1 - \frac{1}{3} + \frac{1}{5} - \frac{1}{7} + \frac{1}{9} - \frac{1}{11} ---$$

दिलचस्प बात यह है कि इस अनंत श्रेणी में π और सभी विषम संख्याओं का संबंध स्थापित हो जाता है। प्रायः कहा जाता है कि इस अद्‌भुत श्रेणी की खोज स्काटलैंड के गणितज्ञ जेम्स ग्रेगोरी (1638-75 ई.) ने की थी। परंतु वास्तविकता यह है कि लाइबनिट्ज और ग्रेगोरी के भी करीब दो सौ साल पहले भारतीय गणितज्ञ इस श्रेणी की खोज कर चुके थे। केरल से प्राप्त **करण-पद्धति** और **तंत्र-संग्रह** नामक ग्रंथों में इस अनंत श्रेणी के बारे में स्पष्ट जानकारी मिलती है। 'करण-पद्धति' की रचना 1430 ई. में हुई थी और 'तंत्र-संग्रह' की 1500 ई. के आसपास।[4]

लंदन के अपने निवास-काल में लाइबनिट्ज रॉयल सोसायटी के सेक्रेटरी ओल्डेनबर्ग से मिले, उन्होंने सोसायटी की मीटिंगों में भाग लिया और वहां अपने गणक-यंत्र का प्रदर्शन भी किया। लाइबनिट्ज की इस तथा अन्य उपलब्धियों के लिए रॉयल सोसायटी ने उन्हें मार्च 1673 में अपना विदेशी फैलो निर्वाचित किया।

लंदन से पेरिस लौटने के बाद लाइबनिट्ज ने गणित का अपना अध्ययन जारी रखा। पता चलता है कि 1675 ई. में उन्होंने कलन-गणित के बुनियादी सूत्रों की खोज की, मगर इन्हें उन्होंने पहली बार जून 1677 में ही प्रकाशित किया। लाइबनिट्ज 1676 ई. में पेरिस से हान्नोवर (जर्मनी) के ड्यूक की सेवा में चले गए थे। जीवन के शेष चालीस साल लाइबनिट्ज ने हान्नोवर के राज-परिवार की सेवा में ही गुजारे। वहां वे ड्यूक के ग्रंथालय के ग्रंथपाल नियुक्त हुए थे।

हान्नोवर में बस जाने के बाद लाइबनिट्ज कलन-गणित के विकास में जुट गए। उन्होंने न्यूटन को भी अपनी खोजबीन की जानकारी दी। मगर न्यूटन ने कलन-गणित संबंधी अपने अनुसंधान की स्पष्ट जानकारी लाइबनिट्ज को नहीं दी, हालांकि कैम्ब्रिज के कुछ गणितज्ञों को अपनी इस खोज के बारे में वे 1669 ई. में ही बता चुके थे।

सचाई यह है कि न्यूटन और लाइबनिट्ज के भी पहले फर्मा, पास्कल, बारौ[5] (न्यूटन के गुरु), वालिस[6] आदि कई गणितज्ञ कलन-गणित की नींव डाल चुके

थे। कलन-गणित की स्थापना के लिए पृष्ठभूमि पहले से तैयार थी । यह काम न्यूटन और लाइबनिट्ज ने किया, मगर अलग-अलग तरीकों से । न्यूटन ने अपनी विधि को 'फ्लक्सिओन' का नाम दिया था और लाइबनिट्ज ने 'डिफरेंसेस' का । दोनों की विधियों में थोड़ा अंतर जरूर था, मगर अंतिम परिणाम एक-जैसे ही थे ।

लाइबनिट्ज ने हान्नोवर में बस जाने पर 1682 ई. में **आक्टा एरुडिटोरियम** नामक एक वैज्ञानिक पत्रिका की स्थापना की, जिसके वे स्वयं प्रमुख संपादक थे । इसी पत्रिका में 1684 ई. में लाइबनिट्ज ने कलन-गणित संबंधी अपने अनुसंधान-कार्य का विवरण प्रकाशित किया । न्यूटन ने कलन-गणित संबंधी अपना अनुसंधान-कार्य प्रकाशिकी (आप्टिक्स) से संबंधित अपनी एक पुस्तक के एक परिशिष्ट के रूप में 1704 ई. में प्रकाशित किया । उसके बाद ही यह निहायत घटिया विवाद शुरू हुआ कि कलन-गणित का वास्तविक संस्थापक कौन है—न्यूटन या लाइबनिट्ज । कलन-गणित के कुछ बुनियादी सिद्धांतों की जानकारी हम अगले लेख में न्यूटन के कृतित्व पर विचार करते वक्त देंगे । मगर यहां लाइबनिट्ज और न्यूटन के बीच चले विवाद पर थोड़ा प्रकाश डालना उपयोगी रहेगा ।

आरंभ में न्यूटन और लाइबनिट्ज के संबंध बहुत अच्छे थे । लाइबनिट्ज ने कलन-गणित संबंधी अपनी विधियों की न्यूटन को जानकारी भी दी थी । इस संबंध में दोनों का पत्र-व्यवहार भी हुआ था । मगर न्यूटन ने कलन-गणित की अपनी खोज की सूचना लाइबनिट्ज को कूट संकेतों में ही दी थी । न्यूटन का महान ग्रंथ **प्रिंसिपिया** (1686-87 ई.) प्रकाशित हुआ, तो उसमें दोनों के बीच हुए पत्र-व्यवहार का जिक्र था और लाइबनिट्ज के लिए प्रशंसा के शब्द भी थे । 1684 और 1699 के बीच के काल में किसी ने भी नहीं कहा था कि कलन-गणित की खोज लाइबनिट्ज ने नहीं की है ।

तब 1699 ई. में इंग्लैंड में बसे हुए एक स्विस गणितज्ञ ने रॉयल सोसायटी के सामने एक निबंध पढ़कर पहली बार आरोप लगाया कि लाइबनिट्ज ने कलन-गणित की खोज नहीं की है, कि उनका कलन-गणित न्यूटन की विधि पर आधारित है । वह स्विस गणितज्ञ इसलिए खफा था, क्योंकि लाइबनिट्ज ने उस समय के श्रेष्ठ गणितज्ञों की जो सूची बनाई थी उसमें उसका नाम शामिल नहीं किया था ।

लाइबनिट्ज को जब उस आरोप की जानकारी मिली तो उन्होंने अपनी पत्रिका **आक्टा एरुडिटोरियम** में उसका जवाब दिया और रॉयल सोसायटी से भी विरोध प्रकट किया । आगे के पांच साल तक मामला शांत रहा । मगर 1704 ई. में जब न्यूटन का **प्रकाशिकी** ग्रंथ (जिसके एक परिशिष्ट में उन्होंने

कलन-गणित का विवरण दिया था) प्रकाशित हुआ, तो लाइबनिट्ज ने अपनी पत्रिका में उसकी समीक्षा करके स्पष्ट किया कि कलन-गणित की उनकी विधि न्यूटन की विधि से भिन्न है ।

लाइबनिट्ज की उस समीक्षा को पढ़कर ऑक्सफोर्ड के गणित के एक प्राध्यापक जोन काइल ने उलटे आरोप लगाया कि लाइबनिट्ज ने ही न्यूटन की कलन-गणित की विधि को चुराया है, केवल विधि का नाम और संकेत बदल दिए हैं । लाइबनिट्ज ने रॉयल सोसायटी से पुनः इस आरोप का विरोध किया । उस समय न्यूटन रॉयल सोसायटी के अध्यक्ष थे । उन्होंने चतुराई से काम लिया। काइल के आरोप वापस नहीं लिए गए । पूरे मामले की जांच-पड़ताल करने के लिए एक समिति की स्थापना कर दी गई। उस समिति ने भी यही रिपोर्ट दी कि काइल का आरोप असत्य नहीं है । वह रिपोर्ट रॉयल सोसायटी की मुख-पत्रिका में, लाइबनिट्ज की मृत्यु के एक साल पहले, 1715 ई. में प्रकाशित हुई । ब्रेवस्टर अपनी पुस्तक **न्यूटन की जीवनी** में लिखते हैं कि वह रिपोर्ट रॉयल सोसायटी के अध्यक्ष न्यूटन की हस्तलिपि में थी ।

कलन-गणित के असली आविष्कारक से संबंधित यह घटिया विवाद आगे करीब सौ साल तक जारी रहा और जर्मनी तथा इंग्लैंड के लिए राष्ट्रीय स्वाभिमान का मामला बन गया । इस दौरान इंग्लैंड में तो न्यूटन के कलन-गणित का कोई विकास नहीं हो पाया, मगर लाइबनिट्ज की कलन-गणित की विधि तथा उनके द्वारा प्रयुक्त संकेतों का यूरोप में तेजी से विकास हुआ । आज हम लाइबनिट्ज द्वारा प्रयुक्त संकेतों का ही कलन-गणित में इस्तेमाल करते हैं । लाइबनिट्ज ने x के मान में अत्यल्प परिवर्तन या अंतर (डिफरेंस) के लिए dx का प्रयोग किया था और y में अत्यल्प अंतर के लिए dy का । $y = f(x)$ के अवकलज (डेरिवेटिव) को आज भी हम लाइबनिट्ज के संकेत $\frac{dy}{dx}$ से ही व्यक्त करते हैं, हालांकि उन्होंने इसकी व्याख्या कुछ भिन्न प्रकार से की थी । इंटेग्रेशन (समाकलन) और डिफरेंशियेशन (अवकलन) शब्द लाइबनिट्ज ने ही चलाए थे । हमारे देश में 'कैल्कुलस' के अर्थ में **कलन** शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम पं. सुधाकर द्विवेदी ने किया था और इंटेग्रेशन के लिए **चलराशि कलन** शब्द पं. बापूदेव शास्त्री ने चलाया था । यह भी एक महत्व की बात है कि समाकलन के लिए आज सर्वत्र जिस $\int$ चिह्न का प्रयोग होता है उसे लाइबनिट्ज ने ही चलाया था ।[7]

आज गणित के सभी इतिहासकार स्वीकार करते हैं कि न्यूटन और लाइबनिट्ज दोनों ने कलन-गणित की स्थापना स्वतंत्र रूप से की थी । दोनों की शब्दावली और विधियों में अंतर था, मगर दोनों ने एक-जैसे परिणाम प्राप्त किए थे । आज कलन-गणित में लाइबनिट्ज द्वारा चलाए संकेतों का ही प्रयोग होता है ।

Leibnitius Wolfio 10 Feb 1712
Summae potentiarum

Vir celeberrime Fautor et Amice Honoratissime

Gratias ago quod de Libro Illustris Comitis de Herbeystein ad me destinato significas, si occasionem ad Dn. Abbatem Schmidium vel alium Helmstadium att Brunsvigam mittendi habes, non dubito quin inde recte ad me perveniat

Nuper summas potentiarum considerans sequentia satis ... observo. Numeri naturales 0, 1, 2, 3, 4, etc sint n potentiae exponens sit e ∫ summa potentiarum exponentis superioris ab omnibus summis inferioris pendet ope hujus theorematis

$$\frac{1}{e+1}\overline{n+1}^{e+1} = \frac{1}{1}\int n^e + \frac{e}{1.2}\int n^{e-1} + \frac{e.e-1}{1.2.3}\int n^{e-2} + \frac{e.e-1.e-2}{1.2.3.4}\int n^{e-3} + \text{etc}$$

ubi autem e est numerus rationalis integer, tunc series est finita, et descendendo pervenitur ad terminos constantes

Inveni et talem aequationem independentem a summis A, B, C etc inferioribus, sed tamen continentes numeros constantes, qui pro quolibet summa, semel calculandos supponentes

$$\frac{1}{e+1}\overline{n+1}^{e+1} = \int n^e + A\,\overline{n+1}^{e} + B\,e\,\overline{n+1}^{e-1} + C\,e.e-1.\overline{n+1}^{e-2} + D.e.e-1.e-2.\overline{n+1}^{e-3}$$

ubi est $A = \frac{1}{1.2}$ $B = \frac{1}{1.2.3} + \frac{1}{1.2}A$ $C = \frac{1}{1.2.3.4} + \frac{1}{1.2.3}A + \frac{1}{1.2}B$ et

$D = \frac{1}{1.2.3.4.5} + \frac{1}{1.2.3.4}A + \frac{1}{1.2.3.4}B + \frac{1}{\cdot}C$ Et ita porro pro E, F etc

P.S. Rumor de morte illustris viri Christiani Thomasii percrebuit, sed eum falsum esse gaudeo cum multa ab eo profutura adhuc expectem

Deditissimus
Godefridus Guilielmus Leibnitius

लाइबनिट्ज द्वारा क्रिस्तियन वोल्फ को लिखे गए एक पत्र (10 फरवरी, 1972) का अंश, जिसमें गणित के अन्य चिह्नों के अलावा समाकलन का चिह्न भी है । पत्र के अंत में हस्ताक्षर है—'लाइबनिटिउस्' ।

लाइबनिट्ज की गतिविधियां केवल गणित की खोजबीन तक सीमित नहीं रहीं। हम बता चुके हैं कि वे 1676 ई. में हान्नोवर चले गए थे और वहां के ड्यूक के ग्रंथपाल नियुक्त हुए थे। वहां उन्होंने लगातार चार ड्यूकों की सेवा की और उन्हें अनेक राजनयिक मिशनों पर भेजा गया। हान्नोवर के ड्यूक 'इलेक्टर' की हैसियत प्राप्त करना चाहते थे। इस हैसियत को प्राप्त करने के लिए हान्नोवर के राज-परिवार की विस्तृत वंशावली तैयार करना जरूरी समझा गया। यह काम लाइबनिट्ज को सौंपा गया। दस्तावेज प्राप्त करने के लिए लाइबनिट्ज ने आस्ट्रिया, इटली, जर्मनी आदि देशों की यात्राएं कीं। उस दौरान उन्होंने ईसाई धर्म के प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक सम्प्रदायों को एकजुट करने के प्रयास किए और इस विषय पर एक ग्रंथ भी लिखा।

लाइबनिट्ज ने 1700 ई. में बर्लिन की यात्रा की। उस दौरान उन्होंने वहां **बर्लिन विज्ञान अकादमी** की स्थापना की और उसके वे पहले अध्यक्ष नियुक्त हुए। यूरोपीय विज्ञान के विकास में इस अकादमी ने बड़े महत्व की भूमिका अदा की है। लाइबनिट्ज ने रूस के पीटर महान के सुझाव पर सेंट पीटर्सबर्ग के लिए भी एक अकादमी की योजना तैयार कर दी थी। मगर वह अकादमी कुछ बाद में ही अस्तित्व में आ सकी।

लाइबनिट्ज को 1712 ई. में साम्राज्य का बैरन (नवाब) बनाया गया। वे बड़े शान-शौकत से रहते थे। हान्नोवर में उनका महल आज भी मौजूद है, जिसे अब एक संग्रहालय में बदल दिया गया है।

लाइबनिट्ज ने अपना मनचाहा बैरन का ऊंचा पद तो प्राप्त कर लिया था, मगर उनके गौरवशाली जीवन का सूर्य अब अस्त होने जा रहा था। हान्नोवर के उनके आश्रयदाता शासक जार्ज लुई को जार्ज-प्रथम का नाम देकर 1714 ई. में इंग्लैंड का राजा बनाया गया। लाइबनिट्ज भी उनके साथ लंदन जाना चाहते थे, हालांकि न्यूटन के साथ उनके विवाद के कारण इंग्लैंड में उनके अनेक विरोधी पैदा हो गए थे। मगर जार्ज-प्रथम को अब लाइबनिट्ज की कोई जरूरत नहीं थी। लाइबनिट्ज से कहा गया कि वे हान्नोवर में ही रहकर वंशवृत्त तैयार करने का अपना काम जारी रखें। लाइबनिट्ज को इससे बड़ा आघात पहुंचा। उनके दिन अब लद चुके थे। दो साल बाद, सत्तर साल की आयु में, 14 नवंबर, 1716 को हान्नोवर में लाइबनिट्ज का देहांत हुआ। बताया जाता है कि उनकी शवयात्रा में केवल उनके सचिव एकहार्ट ही उपस्थित थे। उनके निधन पर न तो बर्लिन विज्ञान अकादमी ने, न ही लंदन की रॉयल सोसायटी ने शोक-प्रस्ताव पारित किए।

आज कूटनीति और राजनीति के क्षेत्र में लाइबनिट्ज के कार्यों को कोई याद नहीं करता। उनकी दार्शनिक मान्यताओं को भी विशेष महत्व नहीं दिया

जाता। मगर आज, करीब साढ़े तीन सदियों बाद, उनकी गणितीय उपलब्धियों को पहले से अधिक महत्व दिया जाता है ।

लाइबनिट्ज ने बीस साल की छोटी उम्र में ही गणित की एक सार्वभौमिक सांकेतिक भाषा तैयार करने का सपना देखा था । उनका वह सपना तो पूरा नहीं हुआ, मगर उसके निर्माण के लिए वैचारिक पृष्ठभूमि उन्होंने अवश्य तैयार कर ली थी । **सांकेतिक तर्कशास्त्र** (सिम्बॉलिक लॉजिक) की नींव पिछली सदी के मध्यकाल में जार्ज बूल (1815-1864 ई.) ने डाली थी । वर्तमान सदी में इस विषय का अधिक विकास बर्ट्राण्ड रसेल, कुर्त गोडेल, अल्फ्रेड टार्स्की आदि गणितज्ञों ने किया । आधुनिक कंप्यूटर के महान सिद्धांतकार नार्बर्ट वाइनेर ने तो यहां तक सुझाया है कि लाइबनिट्ज को संचार-सिद्धांत और नियंत्रण-सिद्धांत का प्रथम प्रवर्तक माना जाना चाहिए ।

न्यूटन दिक् और काल का स्वतंत्र अस्तित्व मानते थे । मगर लाइबनिट्ज की मान्यता थी कि दिक् और काल एक-दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं । उनके ये विचार आइंस्टाइन द्वारा दिक् और काल की सापेक्षता से संबंधित व्यक्त किए गए आधुनिक विचारों से काफी मेल खाते हैं ।

लाइबनिट्ज को सभी प्रकार के विचारों को व्यक्त करने के लिए एक सार्वभौमिक भाषा की तलाश थी । पता चलता है कि उन्होंने संस्कृत भाषा के बारे में भी काफी जानकारी प्राप्त की थी । उन्हें जब पता चला कि चीनी लिपि पूर्णतः भावचित्रात्मक है, तो उन्होंने रूस के जार के जरिए चीन के साथ सांस्कृतिक संबंध स्थापित करने के प्रयास किए । एक रोचक किस्सा उनके इन प्रयासों पर अच्छा प्रकाश डालता है । यह किस्सा फ्रांस के महान गणितज्ञ लापलास (1749-1827 ई.) ने लिखा है ।

लाइबनिट्ज को पता चला कि सभी संख्याओं को दस के बजाय केवल दो संकेतों (शून्य और एक) से व्यक्त किया जा सकता है । फिर उन्होंने कल्पना की कि यदि ईश्वर को 'एक' और 'कुछ नहीं' को 'शून्य' माना जाए, तो यह सिद्ध किया जा सकता है कि जिस प्रकार एक तथा शून्य के मेल से सभी संख्याएं बनती हैं, उसी प्रकार सर्वेश्वर ने 'कुछ नहीं' से समूची सृष्टि रची है ।

लाइबनिट्ज को अपनी यह कल्पना इतनी अधिक पसंद आई कि यह उन्होंने लिखकर चीन के गणित-मंडल के अध्यक्ष जेसुइट ग्रिमाल्डी के पास भेज दी, इस उम्मीद से कि चीन का सम्राट इससे प्रभावित होकर ईसाई धर्म को अंगीकार कर लेगा ।

मगर चीन के गणितज्ञ दो संकेतों पर आधारित अंक-पद्धति से पहले से ही परिचित थे । चीन में इस द्वि-आधारी अंक-पद्धति की खोज आज से करीब दो हजार साल पहले हुई थी ।

आज के इलेक्ट्रानिक कंप्यूटरों में सारी गणनाएं केवल दो ही संकतों से सम्पन्न होती हैं—शून्य और एक ।

सहायक ग्रंथ

1. डेविड यूजेन स्मिथ — **हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स** (दो खंड), डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1958
2. डेविड यूजेन स्मिथ — **ए सोर्सबुक इन मैथेमेटिक्स** (दो खंड), डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1959
3. ई. टी. बेल — **मेन आफ मैथेमेटिक्स** (भाग 1), पेलिकन बुक, लंदन 1953
4. अल्फ्रेड हूपर — **मेकर्स आफ मैथेमेटिक्स**, न्यूयार्क 1948
5. होवार्ड इवेस — **एन इंट्रोडक्शन टु द हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स** (पांचवां संस्करण), न्यूयार्क 1983
6. मॉरिस क्लाइन — **मैथेमेटिकल थॉट फ्राम एंशियंट टु माडर्न टाइम्स**, न्यूयार्क 1972
7. कार्ल बी. बोयर — **द हिस्ट्री आफ द कैल्कुलस**, डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1959
8. जेम्स आर. न्यूमान — **द वर्ड आफ मैथेमेटिक्स** (चार खंड), न्यूयार्क 1956
9. फ्रेडरिक सी. क्रेइलिंग — **लाइबनिट्ज** (लेख), **साइंटिफिक अमेरिकन**, मई 1968

संदर्भ और टिप्पणियां

1. लाइबनिट्ज को प्रायः **लाइबनिज** भी लिखा जाता है ।
2. यह तथा नीचे की एक-दो और बातों की चर्चा पियरे द फर्मा से संबंधित लेख में भी आई हैं, क्योंकि वह लेख एक अन्य पत्रिका में छपा था । उपयोगी समझकर इस पुनरावृत्ति को मैंने कायम रखा ।
3. रॉबर्ट बॉयल (1627-1691 ई.), आंग्ल रसायनज्ञ और भौतिकीविद । 'बॉयल का नियम' है : किसी भी गैस के आयतन में उस पर डाले गए दाब के व्युत्क्रमानुसार परिवर्तन होता है, बशर्ते कि तापमान स्थिर रहे।
4. देखिए, सी. ए. श्रीनिवासीएंगर — **द हिस्ट्री आफ एंशियंट इंडियन मैथेमेटिक्स**, कलकत्ता 1967, पृ. 142-154.
5. आइजेक बारौ (1630-1677 ई.) — आंग्ल गणितज्ञ और धर्मशांस्त्रज्ञ । बारौ बचपन में बड़े ही ऊधमी थे । बताया जाता है कि एक बार उनके पिता को कहते सुना गया—'यदि ईश्वर मेरा कोई बच्चा उठा लेना चाहे, तो मैं आइजेक को खुशी से न्योछावर कर दूंगा ।' बारौ ने कैम्ब्रिज में अपना अध्ययन पूरा किया और अपने समय के

आइजेक बारौ (1630-1677 ई.)

सर्वश्रेष्ठ ग्रीक विद्वान के रूप में ख्याति अर्जित की । उन्होंने गणितज्ञ, खगोलविद, भौतिकीविद और धर्मशास्त्रज्ञ के रूप में भी नाम कमाया। अंत में कैम्ब्रिज में गणित के लुकाशियन प्राध्यापक नियुक्त हुए । परंतु अपने शिष्य आइजेक न्यूटन के लिए 1669 ई. में प्राध्यापक का अपना पद छोड़ दिया ।

बारौ के शारीरिक बल, साहस और वाक्-चातुर्य के बारे में कई किस्से मशहूर हैं ।

प्राध्यापक का पद छोड़ने के बाद ज्यामिति और प्रकाशिकी के बारे में बारौ के जो ग्रंथ प्रकाशित हुए उनमें उन्होंने अवकलन गणित का प्रतिपादन किया । बारौ ने यह भी स्पष्ट किया कि अवकलन और समाकलन परस्पर-विपरीत क्रियाएं हैं ।

बारौ ने यूनानी गणितज्ञ यूक्लिड, एपोलोनियस और आर्किमीदीज़ के ग्रंथों का संपादन किया।

6. जॉन वालिस (1616-1703 ई.), न्यूटन के समकालीन एक प्रमुख आंग्ल गणितज्ञ । लम्बे समय तक ऑक्सफोर्ड में ज्यामिति के सेविलियन प्राध्यापक रहे । सन् 1656 में वालिस का **अरिथमेटिका इन्फिनिटोरम** ग्रंथ प्रकाशित हुआ, जिसमें उन्होंने समाकलन सिद्धांत का भी विवेचन किया । वालिस ने गणित (बीजगणित) के इतिहास के बारे में भी एक ग्रंथ लिखा । उन्होंने गणित के कुछ यूनानी ग्रंथों का भी संपादन किया ।

जॉन वालिस (1616-1703 ई.)

7. समाकलन का यह ∫ चिह्न लैटिन के **सुम्मा** (योग) शब्द के आद्याक्षर S को कुछ लंबा करने से बना है ।

आइजेक न्यूटन

घटना 1684 ई. के जनवरी महीने के एक दिन की है। लंदन के एक कॉफी-हाउस में इकट्ठे हुए तीन विद्वान एक वैज्ञानिक समस्या पर चर्चा कर रहे थे। वे तीन विद्वान थे—सर क्रिस्टफर रेन, एडमंड हेली और रॉबर्ट हूक। वैज्ञानिक समस्या थी—यदि किसी पिंड या ग्रह पर गुरुत्वीय बल का प्रभाव दूरी के वर्ग के व्युत्क्रम में रहता है, तो उसकी गति का मार्ग क्या होगा?

वे तीनों इंग्लैंड के जाने-माने वैज्ञानिक थे। क्रिस्टफर रेन (1631-1723 ई.) अपने समय के प्रख्यात वास्तुविद थे। लंदन के प्रसिद्ध सेंट पॉल कैथेड्रल के अलावा उन्होंने कई अन्य इमारतों के निर्माण में योग दिया था। रेन लंदन तथा ऑक्सफोर्ड में खगोल-विज्ञान के प्राध्यापक रह चुके थे और गणित तथा भौतिकी में उनकी गहरी दिलचस्पी थी।

रॉबर्ट हूक (1635-1702 ई.) एक कुशल यंत्रविद और गणितज्ञ थे। उन्होंने एक माइक्रोस्कोप भी बनाया था। रॉबर्ट बॉयल के साथ उन्होंने गैसों पर खोजकार्य किया था और कुछ साल तक वे लंदन की रॉयल सोसायटी (स्थापना : 1662 ई.) के सचिव भी रहे।

एडमंड हेली (1656-1742 ई.) गणितज्ञ और खगोलविद थे। आज उन्हें उनके नाम से प्रसिद्ध धूमकेतु के कारण ही ज्यादा जाना जाता है, मगर उन्होंने विज्ञान के कई क्षेत्रों में महत्वपूर्ण खोजकार्य किया था। हेली हालांकि स्वयं एक महान वैज्ञानिक थे, मगर उन्होंने दूसरे वैज्ञानिकों के कार्य को अधिक महत्व दिया और उनकी भरपूर मदद की।

इंग्लैंड के ये तीनों वैज्ञानिक गुरुत्वीय बल को समझ चुके थे और निष्कर्ष पर भी पहुंचे थे कि सूर्य के गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव दूरी के वर्ग के व्युत्क्रमानुपात में काम करता है। मगर तीनों ही यह स्पष्ट नहीं कर पा रहे थे कि गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव में कोई पिंड या ग्रह किस मार्ग (कक्षा) में यात्रा करेगा। इसी गहन सवाल पर विचार करने के लिए तीनों लंदन के एक कॉफी-हाउस में एकत्र हुए थे। समस्या एडमंड हेली ने प्रस्तुत की थी।

क्रिस्टफर रेन ने स्वीकार किया कि उनके पास इस समस्या का कोई स्पष्ट हल नहीं है। रॉबर्ट हूक ने कहा कि उन्होंने इस समस्या का हल ढूंढ़ लिया है, मगर

क्रिस्टफर रेन (1631-1723 ई.)

राबर्ट हूक (1635-1702 ई.)

एडमंड हेली (1656-1742 ई.)

उस समय वे उसे पेश नहीं कर पाए । हेली भी हल प्रस्तुत करने में असमर्थ थे । तब क्रिस्टफर रेन ने बाजी लगाते हुए कहा — ''आप दोनों में से जो कोई भी दो महीने के भीतर इस समस्या का गणितीय हल सबसे पहले प्रस्तुत कर देगा उसे मैं 40 शिलिंग की एक पुस्तक इनाम में दूंगा ।''

उन दिनों के हिसाब से 40 शिलिंग काफी बड़ी रकम थी और तब मुद्रित पुस्तकों का बड़ा महत्व था ।

दो महीने गुजर गए । छह महीने गुजर गए । फिर भी हूक इस समस्या का हल प्रस्तुत नहीं कर पाए । हेली को भी सफलता नहीं मिली, तो वे बेचैन हो उठे । तब उन्हें एक ऐसे वैज्ञानिक से मिलने का विचार सूझा जिनसे इस समस्या का हल प्राप्त हो सकता था । वे वैज्ञानिक थे — आइजेक न्यूटन ।

हेली कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के ट्रिनिटी कालेज में जाकर न्यूटन से मिले और उनके सामने समस्या रखी — ''गुरुत्वाकर्षण यदि दूरी के वर्ग के व्युत्क्रमानुपात में घटता-बढ़ता है, तो ग्रहों का पथ कौन-सा वक्र होगा?''

न्यूटन ने फौरन उत्तर दिया — ''दीर्घवृत्त (इलिप्स) ।''

हेली चकित रह गए । पूछा — ''आप कैसे जानते हैं?''

न्यूटन का सरल-सा उत्तर था — ''मैंने गणना की है ।''

हेली उस हल को देखना चाहते थे । न्यूटन पांच साल पहले की गई गणनाओं के कागज खोजन लगे, मगर उस समय वे उन्हें नहीं मिले । उन्होंने हेली से क्षमा मांगी और

वादा किया कि समस्या का समूचा हल वे लिखकर उन्हें जल्दी ही भेज देंगे। और, तीन महीने बाद हेली को समस्या का हल सचमुच ही प्राप्त हो गया तो उन्हें बेहद प्रसन्नता हुई। उन्हें पूरा यकीन हो गया कि यह एक महान प्रतिभा की ही खोज हो सकती है। कुछ दिन बाद न्यूटन ने हेली को अपनी एक छोटी पांडुलिपि दिखाई जिसमें उन्होंने न केवल ग्रहों की दीर्घवृत्तीय गतियों की, बल्कि विश्व के समस्त पिंडों की गतियों की संक्षिप्त गणितीय व्याख्या प्रस्तुत की थी।

उसी समय हेली ने न्यूटन के कार्य को प्रकाश में लाने का दृढ़ निश्चय कर लिया। वे न्यूटन से चौदह साल छोटे थे, स्वयं एक श्रेष्ठ गणितज्ञ व खगोलविद थे, मगर उन्होंने न्यूटन के कार्य को सर्वाधिक महत्व दिया। हेली के आग्रह पर न्यूटन ने अपना वह प्रबंध रॉयल सोसायटी को भेज दिया। हेली के जोर देने पर ही न्यूटन ने आगे के दो सालों में विश्व-यांत्रिकी से संबंधित अपने महान ग्रंथ

आइजेक न्यूटन (1642-1727 ई.)

卐 दीपावली अभिनन्दनम् 卐

दीपावली शान्ति - सुख - प्रसारं
कीर्तिं च प्रीतिं गुण - गौरवाणि ।
सौभाग्यमारोग्य - विभूति-वृद्धिं
तनोतु नित्यं स्वप्रभा-प्रभावात् ।।

दीपावली का शुभ पर्व अपनी शुभ्र कान्ति से आपके परिवार में शान्ति, सुख, यश, प्रेम, गुणगौरव, सौभाग्य, नीरोगता और श्रीवृद्धि सदा करे ।

शान्ति निकेतन
ज्ञानपुर-२१३०४(भदोही)
फोन : 05414-50250

डा० कपिल देव द्विवेदी
निदेशक
विश्वभारती अनुसंधान परिषद्
ज्ञानपुर २१३०४(भदोही)

उसी समय हान्नाह के दूसरे पति का देहांत हो गया, तो जमींदारी संभालने के लिए उसने न्यूटन को वूल्सथोर्पे वापस बुला लिया । न्यूटन के आगे के दो वर्ष गांव में गुजरे । मगर जमींदारी में उनका मन नहीं लगा । छोटे-मोटे यंत्र बनाते, अपने में खोये रहते, पढ़ते रहते । तब मां ने उन्हें पुनः ग्रांथम के स्कूल में भेज

वादा किया कि समस्या का समूचा हल वे लिखकर उन्हें जल्दी ही भेज देंगे । और, तीन महीने बाद हेली को समस्या का हल सचमुच ही प्राप्त हो गया तो

आइजक न्यूटन (1642-1727 ई.)

प्रिंसिपिया की तीन खंडों में रचना की । इतना ही नहीं, हेली ने स्वयं अपने खर्चे से न्यूटन की उस कृति को प्रकाशित किया ।

न्यूटन ने अपने खोजकार्य को प्रकाशित करने में कभी कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई ।[1] न्यूटन की कीर्ति को और उनकी प्रमुख कृतियों को प्रसारित करने का सर्वाधिक श्रेय एडमंड हेली को है । हेली के संपर्क में आने के बाद न्यूटन के जीवन का एक नया दौर शुरू हुआ । इसकी चर्चा हम आगे करेंगे । उसके पहले न्यूटन के आरंभिक जीवन पर नजर डालना जरूरी है । हेली से 1684 ई. में अपनी पहली मुलाकात होने के पहले ही न्यूटन वे तमाम चीजें — गुरुत्वाकर्षण का नियम, कलन-गणित, द्विपद-प्रमेय, प्रकाश से संबंधित नियम, परावर्ती दूरबीन आदि — खोज चुके थे जिनके कारण उन्हें संसार का महानतम वैज्ञानिक माना जाता है । यदि आदिकाल से लेकर आज तक के मंसार के महानतम वैज्ञानिक का नाम लेना पड़े, तो हमें न्यूटन और आइंस्टाइन में से ही एक का चुनाव करना होगा ।

न्यूटन का जन्म इंग्लैंड के लिंकनशायर इलाके के छोटे-से देहात वूल्सथोर्पे में क्रिसमस के दिन 25 दिसंबर, 1642 को हुआ था । उसी साल गैलीलियो का देहांत हुआ था । न्यूटन जब मां के पेट में थे तभी उनके पिता गुजर गए थे । जन्म के समय वह इतने कमजोर थे कि बहुतों को उनके बचे रहने की भी उम्मीद नहीं थी । मगर बाद में न्यूटन का बदन काफी मजबूत बना और उन्होंने 85 साल की लंबी आयु पाई ।

न्यूटन के पिता एक छोटे-मोटे जमींदार-किसान थे । मां हान्नाह ने दो साल तक जमींदारी संभाली, बेटे का लालन-पालन किया और फिर एक धनी व्यक्ति से विवाह कर लिया । मगर उसने आइजेक के हित का भी पूरा ध्यान रखा । न्यूटन को जीवनभर कोई आर्थिक कठिनाई नहीं हुई । बालक आइजेक को दादी ने संभाला । आरंभिक पढ़ाई गांव की एक कमरे की पाठशाला में हुई ।

आइजेक जब बारह साल का हुआ तो उसे दस किलोमीटर दूर के ग्रांथम कस्बे के 'ग्रामर स्कूल' में पढ़ने के लिए भेजा गया । इन ग्रामर स्कूलों में ग्रीक और लैटिन की पढ़ाई पर ज्यादा जोर दिया जाता था, मगर गणित की प्रायः उपेक्षा ही की जाती थी । ग्रांथम के ग्रामर स्कूल के संचालक क्लार्क महाशय के परिवार के साथ चार साल तक रहकर न्यूटन ने वहां पढ़ाई की । उन दिनों वे तेज विद्यार्थी नहीं समझे जाते थे । वहां कुछ समय के लिए क्लार्क महाशय की बेटी के साथ न्यूटन के कोमल संबंध भी बने, मगर न्यूटन आजन्म अविवाहित ही रहे ।

उसी समय हान्नाह के दूसरे पति का देहांत हो गया, तो जमींदारी संभालने के लिए उसने न्यूटन को वूल्सथोर्पे वापस बुला लिया । न्यूटन के आगे के दो वर्ष गांव में गुजरे । मगर जमींदारी में उनका मन नहीं लगा । छोटे-मोटे यंत्र बनाते, अपने में खोये रहते, पढ़ते रहते । तब मां ने उन्हें पुनः ग्रांथम के स्कूल में भेज

दिया । इस बार न्यूटन ने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने के लिए तैयारी की । उन्नीस साल की आयु में, जून 1661 में, न्यूटन कैम्ब्रिज के ट्रिनिटी कालेज में दाखिल हुए । न्यूटन के जीवन का एक नया अध्याय शुरू हुआ ।

न्यूटन बहुत धनी और खानदानी विद्यार्थी नहीं थे, इसलिए ट्रिनिटी कालेज में वे एक 'साइजर' के रूप में दाखिल हुए । 'साइजर' विद्यार्थी को फीस माफ होती थी, कमरे का किराया नहीं देना पड़ता था और बदले में अपने अध्यापक की सेवा करनी पड़ती थी ।

कालेज में दाखिल होने तक न्यूटन गणित में काफी कच्चे थे । एक बार उन्होंने विज्ञान को छोड़कर कानून का अध्ययन करने का फैसला भी कर लिया था । मगर कालेज के ग्रंथालय में उपलब्ध पुस्तकों के कारण गणित और विज्ञान में उनकी दिलचस्पी बढ़ती गई । उन्हीं दिनों उन्होंने केपलर की **प्रकाशिकी** पुस्तक पढ़ी । उन्होंने यूक्लिड की ज्यामिति की पुस्तक खरीदी, मगर वह उन्हें बड़ी नीरस लगी । आगे जाकर उन्हें अपनी गलती महसूस हुई, तो उन्होंने ज्यामिति का गहन अध्ययन किया । उन्होंने दकार्त, कोपर्निकस, गैलीलियो, वालिस और बारौ की कृतियों का अध्ययन किया ।

ट्रिनिटी कालेज में प्रवेश पाने के दो साल बाद न्यूटन गणित के प्राध्यापक आइजेक बारौ (1630-1677 ई.) के निकट संपर्क में आए ।[2] बारौ ने न्यूटन की प्रतिभा को पहचाना, उन्हें प्रकाशिकी से संबंधित प्रयोग और ज्यामिति का गहन अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया । प्रो. बारौ ने कलन-गणित (कैल्कुलस) से संबंधित कुछ बुनियादी बातें भी खोजी थीं । आगे हम देखेंगे कि न्यूटन का प्रमुख अनुसंधान-कार्य उन्हीं विषयों से संबंधित था जिनकी नींव प्रो. बारौ ने रखी थी । सारांश यह कि न्यूटन की प्रतिभा के विकास में प्रो. बारौ का बहुत योगदान रहा।

स्नातक की उपाधि प्राप्त करने के कुछ महीने पहले, 1665 ई. के आरंभिक दिनों में, न्यूटन ने गणित के एक महत्वपूर्ण प्रमेय का व्यापक उपयोग खोज निकाला । आज इसे हम **द्विपद प्रमेय** (बाइनोमियल थ्योरम) के नाम से जानते हैं। द्विपद का अर्थ होता है धन या ऋण चिह्न से जुड़े हुए दो पद या संख्यांक, जैसे, 9 + 4 या य + र । प्रमेय का मतलब है सूत्र या नियम । द्विपद प्रमेय को समझने के लिए निम्न संबंधों पर विचार कीजिए :

$$(\text{अ} + \text{ब})^1 = \text{अ} + \text{ब}$$
$$(\text{अ} + \text{ब})^2 = \text{अ}^2 + 2\,\text{अ}\,\text{ब} + \text{ब}^2$$
$$(\text{अ} + \text{ब})^3 = \text{अ}^3 + 3\,\text{अ}\,\text{ब}^2 + 3\,\text{अ}^2\,\text{ब} + \text{ब}^3$$
$$(\text{अ} + \text{ब})^4 = \text{अ}^4 + 4\,\text{अ}\,\text{ब}^3 + 6\,\text{अ}^2\,\text{ब}^2 + 4\,\text{अ}^3\,\text{ब} + \text{ब}^4$$

इसी प्रकार द्विपद के घातांक 'न' को 4 के आगे 5,6,7···आदि पूर्णांक लेकर विस्तार करते जाएं, तो हम एक व्यापक संबंध-सूत्र प्राप्त कर सकते हैं—

$$(\text{अ} + \text{ब})^{\text{न}} = \text{अ}^{\text{न}} + \frac{\text{न}}{1}\ \text{अ}^{\text{न}-1}\text{ब} + \frac{\text{न}(\text{न}-1)}{1 \times 2}\ \text{अ}^{\text{न}-2}\ \text{ब}^2 + \frac{\text{न}(\text{न}-1)(\text{न}-2)}{1 \times 2 \times 3}\ \text{अ}^{\text{न}-3}\ \text{ब}^3 + \cdots$$

तात्पर्य यह कि द्विपद के घातांक 'न' का मान कोई भी पूर्णांक हो तो हम उसका विस्तृत मान उपर्युक्त सूत्र से प्राप्त कर सकते हैं। इस सूत्र में गुणांकों को प्राप्त करने के लिए, 'पास्कल के त्रिभुज' से मदद मिलती है।[3] वस्तुतः पास्कल के त्रिभुज और इस द्विपद प्रमेय में उसके उपयोग से भारत और चीन के गणितज्ञ भलीभांति परिचित थे। उमर खय्याम (1100 ई.) ने, जिन्हें हम आज उनकी रुबाइयों के लिए ज्यादा जानते हैं मगर जो असलियत में एक श्रेष्ठ गणितज्ञ और खगोलविद थे, अपनी बीजगणित की पुस्तक में 'न' के धन पूर्णांक मानों के लिए इस द्विपद प्रमेय का व्यापक उपयोग किया था।

न्यूटन की विशेषता यह है कि उन्होंने पहली बार सिद्ध किया कि यह द्विपद प्रमेय 'न' के भिन्नात्मक तथा ऋणात्मक मानों के लिए भी सत्य है। न्यूटन ने यह खोज 1665 ई. में ही कर ली थी, मगर उन्होंने रॉयल सोसायटी को इसकी सूचना दस साल बाद 1676 ई. में दी। न्यूटन ने अपनी प्रायः हर खोज को सालों तक गुप्त रखा। अपने अनुसंधान-कार्य को वे अपनी निजी सम्पत्ति समझते थे।

जो भी हो, गणित में इस द्विपद प्रमेय का बड़ा महत्व है। न्यूटन ने अपनी गणनाओं में इसका खूब इस्तेमाल किया। यही वजह है कि उनकी मृत्यु के बाद उनकी समाधि-शिला पर इस द्विपद प्रमेय को भी उत्कीर्ण कर दिया गया था। इस प्रमेय के लिए व्यापक प्रमाण (प्रूफ) बाद के गणितज्ञों ने प्रस्तुत किए। आज हम जानते हैं कि यह प्रमेय 'न' के सभी किस्म के मानों के लिए सत्य है।[4]

न्यूटन ने 1665 ई. में ट्रिनिटी कालेज से स्नातक (बी. ए.) की उपाधि प्राप्त की।

उसी साल इंग्लैंड में प्लेग की महामारी फैली। हजारों की संख्या में लोग मरने लगे। इस भय से कि प्लेग कैम्ब्रिज में भी फैल सकता है, विश्वविद्यालय बंद कर दिया गया और विद्यार्थियों को जबरन उनके घर भेज दिया गया। अगस्त 1665 में न्यूटन भी वूल्सथोर्पे लौटे। उनकी मां ने उनके लिए घर की ऊपरी मंजिल में एक छोटा-सा कमरा बनवा दिया। आगे के करीब अठारह महीने तक न्यूटन ने वूल्सथोर्पे के प्राकृतिक वातावरण में मुक्त चिंतन किया। कैम्ब्रिज में न्यूटन ने गणित का गहन अध्ययन किया था। वूल्सथोर्पे के शांत वातावरण में पहुंचकर न्यूटन ने अपने अध्ययन को आविष्कारों में परिवर्तित कर

वूल्सथोर्पे में न्यूटन का पैतृक मकान ।

दिया । कलन-गणित, गुरुत्वाकर्षण तथा प्रकाशिकी से संबंधित आविष्कार न्यूटन ने प्लेग की महामारी के उन्हीं सालों (1665-66) में किए । उस समय न्यूटन 23-24 साल के तरुण थे।

रैने दकार्त ने बिंदुओं और रेखाओं को बीजगणितीय समीकरणों से व्यक्त करने की विधि (निर्देशांक ज्यामिति) खोजी थी । मगर जरूरत थी न केवल स्थिर बल्कि गतिशील बिंदुओं तथा रेखाओं के लिए, यानी दिक् में वास्तविक पिंडों की गतियों का, गणित प्रस्तुत करने की । इस दिशा में पास्कल, फर्मा, बारौ, वालिस आदि गणितज्ञों को आंशिक सफलताएं भी मिली थीं, मगर ज्यादा सफलता न्यूटन को मिली । वक्रों और क्षेत्रफलों में सतत होनेवाले परिवर्तनों की गणना करने की एक व्यापक विधि उन्होंने मई 1665 में खोज निकाली । अपनी इस विधि को न्यूटन ने 'फ्लक्सिओन्स' अर्थात् 'बहती राशियों' का नाम दिया । आज इस विषय को हम कलन-गणित (अवकलन तथा समाकलन) के नाम से जानते हैं। उन्हीं दिनों न्यूटन ने कलन की अपनी नई विधि से अतिपरवलय (हाइपरबोला) का क्षेत्रफल प्राप्त किया — 52 दशमलव स्थानों तक गणनाएं करके !

कलन-गणित एक महान खोज थी, मगर न्यूटन ने आगे कई सालों तक इसकी किसी को कोई जानकारी नहीं दी, न ही इसे प्रकाशित किया ।

उन्हीं दिनों वूल्सथोर्पे के अपने बाग में बैठकर न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण के बारे में गहन चिंतन किया । पेड़ से सेब गिरते देखकर गुरुत्वाकर्षण का विचार सूझने का किस्सा उसी दौरान का है । न्यूटन निष्कर्ष पर पहुंचे कि जो बल सेब को धरती की ओर खींचता है, वही बल चंद्र को पृथ्वी की ओर और पृथ्वी को सूर्य की ओर खींचता है । केपलर के नियमों के आधार पर न्यूटन निष्कर्ष पर पहुंचे कि ग्रहों को उनकी कक्षाओं में गतिशील रखनेवाला बल सूर्य-केंद्र से ग्रहों की

दूरियों के वर्गों के व्युत्क्रमानुपात में होना चाहिए । यह एक महान खोज थी । न्यूटन ने विश्व के सभी गतिशील पिंडों की व्याख्या करनेवाला गुरुत्वाकर्षण का एक व्यापक नियम खोज निकाला था । अपनी इस खोज को भी न्यूटन ने उस समय गुप्त रखा, क्योंकि इसके प्रमाण के लिए अभी उन्हें बहुत-सारी गणनाएं करनी थीं ।

प्रकाश-किरणों के अध्ययन में न्यूटन की ज्यादा दिलचस्पी थी । उन्हीं दिनों उन्होंने स्वयं कई किस्म के लेंस तैयार किए और एक प्रिज्म भी खरीदा । प्रिज्म की सहायता से उन्होंने श्वेत प्रकाश को विभिन्न रंगों के एक पट्टे (स्पैक्ट्रम) में प्राप्त किया । यह भी एक नई खोज थी । उन्हीं दिनों न्यूटन ने एक नई किस्म की परावर्ती दूरबीन के बारे में भी सोचा ।

इस प्रकार, वूल्सथोर्पे में 18 महीनों के अपने निवासकाल में न्यूटन ने कलन-गणित, गुरुत्वाकर्षण तथा प्रकाशिकी से संबंधित बुनियादी आविष्कार कर लिए थे। इन आविष्कारों को गणितीय ढांचे में प्रस्तुत करना अभी बाकी था। इसलिए इनकी जानकारी उन्होंने अपने तक ही सीमित रखी ।

प्लेग का प्रकोप शांत हुआ तो 1667 ई. के आरंभिक दिनों में न्यूटन कैम्ब्रिज लौट आए । उसी साल न्यूटन ट्रिनिटी कालेज के फैलो चुने गए, तो उन्हें आर्थिक चिंता से मुक्त होकर फुरसत से खोजकार्य करने का अवसर मिला । उन्हीं दिनों उन्होंने एक छोटी परावर्ती दूरबीन (रिफ्लेक्टिंग टेलिस्कोप) बनाई । उनकी इस खोज के लिए रॉयल सोसायटी ने 1672 ई. में उन्हें अपना फैलो चुना । उसी साल रॉयल सोसायटी के जर्नल में प्रकाश के बारे में न्यूटन का पहला प्रबंध प्रकाशित हुआ ।

न्यूटन की महान प्रतिभा को पहचाननेवाले पहले व्यक्ति प्रो. आइजेक बारौ थे। बारौ ने न्यूटन के लिए अपना प्राध्यापक-पद स्वेच्छा से खाली कर दिया । सत्ताईस साल की उम्र में, 1669 ई. में, न्यूटन ट्रिनिटी कालेज में गणित के लुकेशियन प्राध्यापक नियुक्त हुए। उसके बाद वे तन-मन से कलन-गणित और गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत का परिष्कार करने में जुट गए । साथ ही वे कीमिया से संबंधित प्रयोग और ईसाई धर्मग्रंथों का भी अध्ययन करते रहे ।

पहले हम बता चुके हैं कि 1684 ई. में किस प्रसंग में एडमंड हेली ने न्यूटन से पहली बार मुलकात की थी । हेली ने गुरुत्वाकर्षण का विस्तृत विवरण एक ग्रंथ में प्रस्तुत कर देने का न्यूटन से आग्रह किया । न्यूटन मान गए । मगर विश्व के सभी पिंडों की गतियों को गणित के सुदृढ़ ढांचे में प्रस्तुत करना आसान काम नहीं था । न्यूटन को दिक्, काल, द्रव्यमान, त्वरण, संवेग आदि धारणाओं की नए सिरे से परिभाषाएं देनी पड़ीं । उन्हें सैकड़ों जटिल सवालों के हल खोजने पड़े। इन सवालों के उत्तर उन्होंने अपने खोजे हुए कलन-गणित का उपयोग

न्यूटन की परावर्ती दूरबीन और (नीचे) उसकी रचना-पद्धति ।
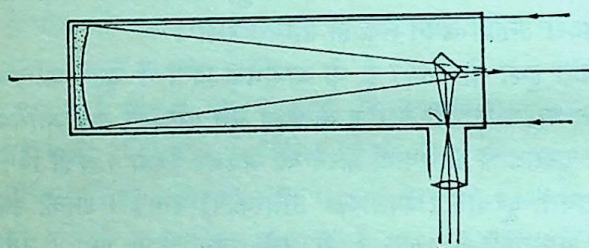
करके प्राप्त किए, पर अंत में उन्होंने अपने सिद्धांतों और सवालों को चिरस्थापित ज्यामिति के ढांचे में ही प्रस्तुत किया ।

अंततः अठारह महीनों के अथक प्रयासों के बाद तीन भागों में लैटिन भाषा में जो ग्रंथ तैयार हुआ उसे **फिलासोफी नेच्युरालिस प्रिंसिपिया मैथेमेटिका** (संक्षेप में **प्रिंसिपिया**) का नाम दिया गया । ग्रंथ की तैयारी में अनेक विघ्न आए, मगर हेली ने उन्हें बड़ी कुशलता से सुलझाया । धनाभाव के कारण रॉयल सोसायटी ने 'प्रिंसिपिया' प्रकाशित करने से इनकार कर दिया, तो हेली ने अपने पैसों से ग्रंथ को छपवाया, हालांकि उस समय हेली की आर्थिक स्थिति न्यूटन से बेहतर नहीं थी । इस महान ग्रंथ के पहले संस्करण की मुश्किल से करीब 300 प्रतियां ही छपी थीं । चमड़े से बंधी नामांकित जिल्द के दाम थे नौ शिलिंग !

'प्रिंसिपिया' ने विश्व को समझने का एक नया नजरिया पेश किया । 'प्रिंसिपिया' का विश्व एक ऐसी मशीन है जिसके कल-पुर्जे सुनिश्चित नियमों के अनुसार काम करते हैं । न्यूटन ने पहली बार विज्ञान में यह विश्वास स्थापित किया कि मानव-बुद्धि विश्व की प्रत्येक हलचल की सूक्ष्म गणना करने में समर्थ है ।

'प्रिंसिपिया' की एक आकृति, जिसमें चंद्र और पृथ्वी की दीर्घवृत्तीय कक्षाएं दर्शायी गई हैं ।

'प्रिंसिपिया' के पहले भाग में न्यूटन ने गति के नियमों को स्पष्ट किया है । दूसरे भाग में गैसों तथा द्रवों के गणितीय सिद्धांत (द्रव गतिकी) की स्थापना की है । ग्रंथ का तीसरा भाग सर्वाधिक महत्व का है । इस भाग में न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण के सार्वभौमिक सिद्धांत की स्थापना करके सौर-मंडल की विविध घटनाओं की व्याख्या की है ।

'प्रिंसिपिया' के प्रकाशन के बाद न्यूटन के आगे के करीब दस साल काफी निराशा के रहे । उस समय इंग्लैंड की राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियां भी बड़ी तेजी से बदल रही थीं । 1688 ई. में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय ने न्यूटन को अपना प्रतिनिधि चुनकर पार्लियामेंट में भेजा । वह लंदन पहुंचे । अगले साल उनकी मां का देहांत हुआ । उस समय से न्यूटन काफी विक्षिप्त रहने लगे । वे कैम्ब्रिज लौट आए । मगर 1692 से लेकर 1696 तक काफी बेचैन और मानसिक रूप से अस्वस्थ रहे । उसके बाद उनके जीवन का एक नया दौर शुरू हुआ । 1696 ई. में न्यूटन टकसाल के वार्डन नियुक्त हुए तो वे स्थायी रूप से लंदन में बस गए ।

लंदन में बस जाने के बाद न्यूटन की आर्थिक स्थिति तो सुधर गई थी, मगर वे अन्य कई झमेलों में उलझ गए । इंग्लैंड के राजज्योतिषी जोन फ्लेमस्टीड (1646-1716 ई.) के साथ न्यूटन का झगड़ा कई सालों तक जारी रहा ।[5] जर्मनी के गणितज्ञ लाइबनिट्ज के साथ भी उनका विवाद शुरू हुआ, जो दोनों देशों के बीच, दोनों गणितज्ञों के देहांत के बाद भी, लंबे समय तक जारी रहा ।

इस घटिया फसाद का कारण था — कलन-गणित । लाइबनिट्ज ने भी स्वतंत्र रूप से कलन-गणित की खोज की थी और उसे न्यूटन से पहले प्रकाशित कर दिया था । मगर कलन-गणित का प्रथम आविष्कारक कौन है, इस बात को लेकर दोनों महान गणितज्ञों में सालों तक बेतुका फसाद जारी रहा । आज हम जानते हैं कि कलन-गणित की लाइबनिट्ज की विधि और उनके द्वारा प्रयुक्त संकेत बेहतर थे, इसलिए यूरोप में उनका तेजी से विकास हुआ ।

लंदन में न्यूटन का जीवन अब आराम से गुजर रहा था । अब उनकी आय भी काफी थी । उनकी सौतेली बहन की खूबसूरत बेटी कैथरीन बर्टन उनके घर को संभाल रही थी । 1703 ई. में न्यूटन रॉयल सोसायटी के अध्यक्ष निर्वाचित हुए । अगले वर्ष न्यूटन का **प्रकाशिकी** (ऑप्टिक्स) ग्रंथ प्रकाशित हुआ । यह ग्रंथ उन्होंने अंग्रेजी में ही लिखा था । न्यूटन के जीवनकाल में 'प्रिंसिपिया' के दो और संशोधित संस्करण प्रकाशित हुए । 'प्रिंसिपिया' का पहला अंग्रेजी अनुवाद न्यूटन की मृत्यु के दो साल बाद प्रकाशित हुआ ।

हम देख चुके हैं कि न्यूटन ने अपने सभी प्रमुख आविष्कार 1665-1666 में वूल्सथोर्प के शांत वातावरण में उस समय किए थे जब वे 23-24 साल के तरुण थे । मगर उन आविष्कारों का परिष्कार करके उन्हें दुनिया के सामने रख देने में उन्होंने कोई ज्यादा दिलचस्पी नहीं दिखाई । न्यूटन अपने आविष्कारों को अपनी निजी सम्पत्ति समझते थे ।

लंदन में बस जाने के बाद न्यूटन को धन, यश और खूब सम्मान तो मिला, मगर उन्होंने अपने जीवन के अंतिम तीस वर्षों में नया कुछ नहीं खोजा । उलटे घटिया कलहों में उलझे रहे । 20 मार्च, 1727 में, 85 वर्ष की दीर्घायु में, लंदन में न्यूटन का देहांत हुआ ।

आज न्यूटन को संसार का एक महानतम वैज्ञानिक माना जाता है, मगर यह हैसियत हासिल करने के लिए उन्हें अपने जीवन में बड़ी कीमत चुकानी पड़ी । न्यूटन का समूचा जीवन वूल्सथोर्प, कैम्ब्रिज और लंदन में ही गुजरा । ढलती उम्र में केवल एक बार उन्होंने ऑक्सफोर्ड की यात्रा की थी । इसके अलावा उन्होंने कहीं कोई प्रवास नहीं किया, न ही वे कभी इंग्लैंड से बाहर गए ।

'प्रिंसिपिया' की रचना के दौरान न्यूटन की क्या दशा रही, इसकी जानकारी हमें उनके उस समय के लिपिक हम्फ्री न्यूटन के संस्मरणों से मिलती है । हम्फ्री ने जानकारी दी है कि न्यूटन कोमल स्वभाव के व्यक्ति थे और गहन चिंतन में खोए रहते थे । पंद्रह सालों में उसने न्यूटन को केवल एक बार हंसते देखा था । उन्हें लोगों से मिलने-जुलने का शौक नहीं था । व्यायाम भी नहीं करते थे । रात के दो या तीन बजे के पहले सोने नहीं जाते थे । चार या पांच घंटे से अधिक नहीं सोते थे । कीमिया (रसायन) के किसी प्रयोग में जुट जाते थे तो उन्हें रात-दिन

का भी भान नहीं रहता था। 'प्रिंसिपिया' के रचनाकाल के दौरान न्यूटन अक्सर नीचे उतरकर बगीचे में टहलने लग जाते और किसी बात का स्मरण हो आने पर तेजी से कमरे में पहुंचते थे और खड़े-खड़े ही लिखने लग जाते। सुबह उठकर कपड़े पहने बिना ही बिस्तर के किनारे बैठकर घंटों सोचते रहते। भोजन को भूल जाना एक आम बात थी। न्यूटन के भुलक्कड़ स्वभाव के बारे में अनेक किस्से, कुछ मनगढ़ंत भी, प्रसिद्ध हैं।

न्यूटन ने गणितीय अनुसंधानों में जितना समय खर्च किया, उससे कहीं अधिक समय उन्होंने धर्मशास्त्र के अध्ययन और कीमिया के प्रयोगों में खर्च किया। उनके इन प्रयोगों का उद्देश्य था नकली सोना बनाना और संजीवनी या अमृत की खोज करना। न्यूटन के कीमिया संबंधी प्रयोगों के वर्तमान सदी में ढेर सारे कागज-पत्र मिले हैं। यह सामग्री हमें एक 'जादूगर' न्यूटन के दर्शन कराती है।

न्यूटन ने निश्चय ही एक महामानव का मस्तिष्क पाया था, मगर उनके व्यक्तित्व को पुरुषोत्तम या अनुकरणीय नहीं कहा जा सकता।

सहायक ग्रंथ

1. सर ओलिवर लॉज — **पायोनियर्स आफ साइंस**, डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1960
2. कीरा अ. इवानोवा — **आइजेक न्यूटन**, मास्को 1969
3. जे. जी. क्रौथेर — **सेवन ग्रेट मेन** में **आइजेक न्यूटन**, लंदन 1964
4. जेम्स आर. न्यूमान (संपा.) — **द वर्ड आफ मैथेमेटिक्स** (चार खंड), न्यूयार्क 1956
5. अल्फ्रेड हूपर — **मेकर्स आफ मैथेमेटिक्स**, न्यूयार्क 1948
6. कार्ल बी. बोयेर — **द हिस्ट्री आफ द कैल्कुलस**, डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1959
7. डेविड यूजेन स्मिथ — **ए सोर्सबुक इन मैथेमेटिक्स** (दो खंड), डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1959
8. ई. टी. बेल — **मेन आफ मैथेमेटिक्स** (भाग 1), पेलिकन बुक, लंदन 1953
9. डेविड यूजेन स्मिथ — **हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स** (दो खंड), डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1958
10. रॉबर्ट एदौआर्ड मोरिट्ज — **आन मैथेमेटिक्स एंड मैथेमेटिशियन्स**, डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1958
11. लांसलेट हॉग्बेन — **मैथेमेटिक्स इन द मेकिंग**, लंदन 1960
12. होवार्ड इवेस — **एन इंट्रोडक्शन टु द हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स**, (पांचवां संस्करण), न्यूयार्क 1976
13. मॉरिस क्लाइन — **मैथेमेटिकल थाट फ्राम एंशियंट टु मार्डन टाइम्स**, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क 1972
14. जे. डी. बेर्नाल — **साइंस इन हिस्ट्री** (दूसरा भाग), पेंग्विन बुक, लंदन 1969

15. ए. वूल्फ — ए हिस्ट्री आफ साइंस (16 वीं-17 वीं सदी), लंदन 1935

संदर्भ और टिप्पणियां

1. बताया जाता है कि न्यूटन आलोचना से भयंकर भयभीत रहते थे। दे मॉर्गन ने लिखा है : 'न्यूटन का संपूर्ण जीवन दूसरों के विरोध के भीषण भय से प्रभावित रहा।' उन्होंने 1672 ई. में प्रकाश और उसके स्वरूप के बारे में निबंध प्रकाशित किया, तो रॉबर्ट हूक और हाइगेन्स ने उनकी आलोचना की थी। न्यूटन ने 1675 ई. में प्रकाशित अपने दूसरे निबंध में जब प्रतिपादित किया कि प्रकाश वस्तुतः सूक्ष्म कणिकाओं का प्रवाह है, तो पुनः उनकी कटु आलोचना हुई थी।
2. देखिए 'लाइबनिट्ज' की टिप्पणी सं. 5.

   प्रो. बारौ और एडमंड हेली ही ऐसे दो व्यक्ति थे जिन्होंने सर्वप्रथम न्यूटन की प्रतिभा को पहचाना और उनकी भरपूर मदद की।
3. देखिए 'ब्लाइस पास्कल' लेख।
4. न्यूटन के करीब डेढ़ सौ साल बाद नार्वे के गणितज्ञ आबेल (1802-1829 ई.) ने घातांक 'न' के सभी सम्मिश्र (कॉम्प्लेक्स) मानों के लिए भी द्विपद प्रमेय को प्रमाणित किया।
5. फ्लेमस्टीड 1675 ई. से अपनी मृत्युपर्यन्त इंग्लैंड के राज-ज्योतिषी रहे। ग्रीनिच में वेधकार्य करके उन्होंने तारों की एक सारणी तैयार की थी।

   न्यूटन की 'प्रिंसिपिया' का चंद्र की गति से संबंधित सिद्धांत अविकसित रह गया था। उन्हें फ्लेमस्टीड द्वारा प्राप्त किए गए चंद्र के सूक्ष्म प्रेक्षण-आंकड़ों की आवश्यकता थी। न्यूटन ने फ्लेमस्टीड से उन आंकड़ों की मांग की और उनके साथ एक सेवक की तरह सलूक किया। फ्लेमस्टीड ने विरोध जताया तो न्यूटन ने अपनी उच्च हैसियत के प्रभाव का उपयोग करके वे आंकड़े प्राप्त किए। परिणामतः दोनों में लंबे समय तक कलह जारी रहा।

जोन फ्लेमस्टीड (1646-1716 ई.) का करीब चार दशकों का वेधकार्य 3000 तारों की एक अतिसूक्ष्म सारणी के रूप में उनकी मृत्यु के बाद 1725 ई. में प्रकाशित हुआ

लिओन्हार्ड आयलर

रूस की महारानी कैथरीन-द्वितीय के दरबार की 1773 ई. की घटना है। उसने फ्रांस के ख्यातिप्राप्त दार्शनिक तथा विश्वकोशकार **देनिस दीदरो** (1713-84 ई.) को अपने दरबार में आमंत्रित किया था। दीदरो भौतिकवादी और अनीश्वरवादी थे।[1] उनके नास्तिक विचारों से दरबारी प्रभावित होने लगे, तो कैथरीन को चिंता हुई। उसने एक प्रख्यात गणितज्ञ और दीदरो के बीच शास्त्रार्थ का आयोजन किया। दीदरो को बताया गया कि उस गणितज्ञ ने ईश्वर के अस्तित्व का प्रमाण खोज लिया है, मगर उन्हें उस गणितज्ञ का नाम नहीं बताया गया।

दरबार लगा। दीदरो के सामने पहुंचकर गणितज्ञ ने बड़े विश्वास से गंभीर शब्दों में कहा :

''महाशय, $\frac{\text{अ} + \text{ब}^{\text{न}}}{\text{न}}$ = क्ष, इसलिए ईश्वर का अस्तित्व है;

उत्तर दीजिए।''

दीदरो बीजगणित से अनभिज्ञ थे। उनसे कोई उत्तर देते नहीं बना। उन्हें निरुत्तर देखकर उपस्थित दरबारी ठहाका मारकर हंसने लगे। दीदरो ने बड़ा ही अपमानित महसूस किया। उन्होंने फ्रांस लौटने के लिए कैथरीन से अनुमति मांगी, जो उन्हें सहर्ष मिल गई।

दीदरो यदि बीजगणित की विशिष्ट भाषा को समझते और गणितज्ञ से कहते कि उपर्युक्त संबंध-सूत्र को दरबारियों के सामने स्पष्ट करो, तो पासा ही पलट जाता। गणितज्ञ को सरल शब्दों में कुछ इस प्रकार समझाना पड़ता—

यदि अ = 1, ब = 2 और न = 3, तब क्ष = 3,

या अ = 3, ब = 3 और न = 4, तब क्ष = 21, इत्यादि।

तब दीदरो, और दरबारी भी, पूछते कि इससे ईश्वर का अस्तित्व कैसे सिद्ध होता है, तो गणितज्ञ को कोई जवाब देते नहीं बनता। मगर गणित की विशिष्ट भाषा से अपरिचित होने के कारण एक भौतिकवादी दार्शनिक को ही पराजय स्वीकार करनी पड़ी।
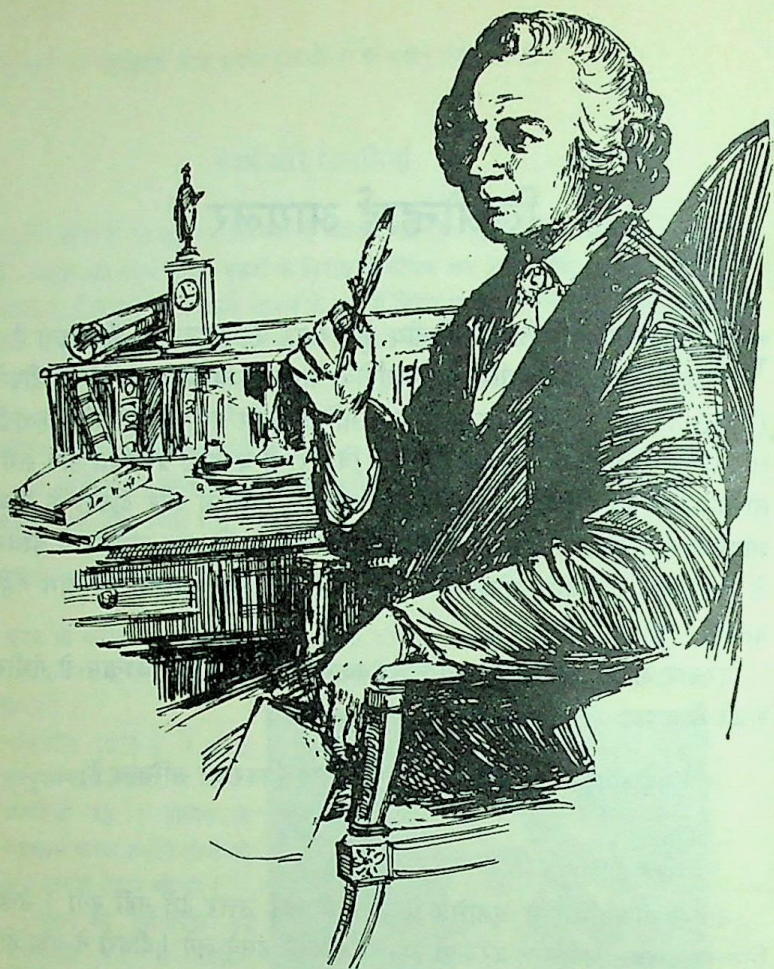
लिओन्हार्ड आयलर (1707-1783 ई.)

जिनके हाथों दीदरो की पराजय हुई थी वे थे अठारहवीं सदी के महान यूरोपीय गणितज्ञ **लिओन्हार्ड आयलर**। कैथरीन के दरबार में ईश्वर के अस्तित्व के लिए प्रस्तुत किया गया आयलर का 'प्रमाण' निरर्थक है, मगर गणित के क्षेत्र में किया गया उनका अनुसंधान-कार्य अत्यंत महत्व का है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि आज कालेजों में जो गणित पढ़ाया जाता है वह आयलर की नई स्थापनाओं पर आधारित है। उन्हें आधुनिक 'वैश्लेषिक गणित का साक्षात् अवतार' माना जाता है। आयलर ने गणित के क्षेत्र में जितना अनुसंधान-कार्य किया, उतना संसार के किसी भी अन्य गणितज्ञ ने नहीं किया। रही कैथरीन के दरबार में दार्शनिक दीदरो को गणित की धाक से मूर्ख बनाने की बात, तो

फ्रेडरिक महान के दरबार में गणित को भलीभांति समझनेवाले फ्रांस के महान विचारक वाल्तेयर (1694-1778 ई.) ने अपनी वाक्पटुता से आयलर की भी दुर्गति बना दी थी; आयलर को पुनः पीटर्सबर्ग लौटना पड़ा था ।

लिओन्हार्ड आयलर का जन्म स्विट्जरलैंड के बासेल नगर में 15 अप्रैल, 1707 ई. को ईसाइयों के कैल्विन संप्रदाय के एक धार्मिक परिवार में हुआ था । आयलर के जन्म के एक साल बाद उनके पिता पॉल आयलर बासेल के नजदीक के एक देहात में कैल्विन संप्रदाय के पुरोहित बन गए थे । परिवार की धार्मिक प्रवृत्ति से आयलर जीवनभर प्रभावित रहे । जीवन के अंतिम कई सालों तक जब वे दोनों आंखों से अंधे हो गए थे, तो उनकी धार्मिक आस्था से उन्हें बड़ा बल मिला था ।

आयलर के पिता गणित के अच्छे जानकार थे । उन्होंने **याकोब बर्नूली** से गणित की शिक्षा ग्रहण की थी । आरंभ में आयलर ने अपने पिता से और बाद में **योहान बर्नूली** से गणित की शिक्षा प्राप्त की । मगर पिता की इच्छानुसार आयलर ने बासेल विश्वविद्यालय में धर्मशास्त्र का अध्ययन किया । साथ ही, उन्होंने स्वतंत्र रूप से गणित का अपना अध्ययन जारी रखा, और योहान बर्नूली से भी गणित पढ़ते रहे । बर्नूली-बंधुओं[2] ने जब पॉल आयलर को समझाया कि उनका बेटा एक महान गणितज्ञ बनने की क्षमता रखता है, तो पिता ने बेटे को अपने पेशे में खींचने का इरादा छोड़ दिया । सत्रह साल की आयु में विश्वविद्यालय से 'मास्टर' की उपाधि प्राप्त करने पर आयलर ने गणित की दुनिया को अपना जीवन पूर्णतः अर्पित कर दिया । उन्नीस साल की आयु में उन्होंने पेरिस की विज्ञान अकादमी के लिए एक प्रबंध लिखा, मगर वह पुरस्कृत नहीं हुआ । फिर उन्होंने बासेल विश्वविद्यालय में गणित के प्राध्यापक-पद के लिए आवेदन-पत्र भेजा, मगर वह पद उन्हें नहीं मिला । तदनंतर उन्होंने सेंट पीटर्सबर्ग की विज्ञान अकादमी में पहुंचने का प्रयास आरंभ कर दिया । आयलर के मित्र **डेनियल** और **निकोलस बर्नूली** पहले ही पीटर्सबर्ग अकादमी में पहुंच गए थे ।

अठारहवीं सदी में यूरोप में गणित और विज्ञान के क्षेत्र में जो महान अनुसंधान-कार्य हुआ वह प्रमुख रूप से वहां की विज्ञान अकादमियों में हुआ, जिनकी स्थापना यूरोप के दूरदर्शी शासकों ने की थी । आयलर अपने लंबे जीवन में यूरोप की दो विज्ञान अकादमियों से संबंधित रहे । एक थी रूस के पीटर महान द्वारा 1724 ई. में स्थापित सेंट पीटर्सबर्ग की विज्ञान अकादमी, और दूसरी थी प्रशिया के सम्राट फ्रेडरिक-प्रथम द्वारा 18वीं सदी के आरंभिक दशक में स्थापित बर्लिन की विज्ञान अकादमी । इन दोनों ही अकादमियों की स्थापना

लाइबनिट्ज (1646-1716 ई.) के प्रयासों से हुई थी । ये दोनों ही अकादमियां गणित व विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान करनेवाले योग्य विद्वानों को राजकीय कोष से प्रचुर सुविधाएं उपलब्ध कराती थीं । उन दिनों यूरोप के विश्वविद्यालयों में अनुसंधान के लिए नहीं के बराबर सुविधाएं मिलती थीं ।

सेंट पीटर्सबर्ग की विज्ञान अकादमी
(स्थापना : 1724 ई.)

पीटर्सबर्ग की विज्ञान अकादमी की स्थापना तो पीटर महान ने की थी, मगर उसमें विधिवत कार्य आरंभ हुआ पीटर की मृत्यु के अनंतर विधवा सम्राज्ञी कैथरीन-प्रथम द्वारा शासन संभालने के बाद । तब बर्नूली-बंधु निकोलस और डेनियल भी सेंट पीटर्सबर्ग अकादमी पहुंच गए । उन्होंने अकादमी के चिकित्सा विभाग में आयलर को पद दिलाने के प्रयास शुरू कर दिए । इधर आयलर ने भी शरीर-विज्ञान का अध्ययन आरंभ कर दिया । अंत में 1727 ई. में आयलर को पीटर्सबर्ग अकादमी में चिकित्सा-विज्ञान का पद संभालने के लिए आमंत्रित किया गया । उसी साल महान न्यूटन का देहावसान हुआ । उसी साल से आयलर के अकादमिक जीवन का आरंभ हुआ ।

पीटर्सबर्ग अकादमी में आयलर के आरंभिक छह साल बड़ी अस्थिरता में गुजरे । पीटर के देहांत के दो साल बाद कैथरीन भी चल बसी, तो रूस में अराजकता का दौर चला । आयलर बेचारे चुपचाप काम करते रहे । उसी बीच उन्होंने अपने को चिकित्सा विभाग से गणित विभाग में स्थानांतरित कर लिया । डेनियल बर्नूली वापस बासेल चले गए, तो गणित विभाग में उनका स्थान

आयलर को मिला । वे जोर-शोर से गणितीय अनुसंधान में जुट गए ।

पीटर्सबर्ग में आयलर के जीवन में सुस्थिरता आई, तो उन्होंने गसेल नामक एक चित्रकार की पुत्री कैथरीना से विवाह कर लिया । बाद में उनके कुल तेरह बच्चे हुए, जिनमें से पांच को छोड़कर बाकी बचपन में ही चल बसे । आयलर उन कई महान गणितज्ञों में से एक थे जो कहीं भी और कैसी भी परिस्थिति में कार्य करने में समर्थ थे । उन्हें बच्चों से बेहद लगाव था । गणित का कोई प्रबंध लिखते समय अक्सर एक बच्चा उनकी गोद में होता था और बाकी बच्चे उनके आसपास खेलते होते थे !

हम पहले बता चुके हैं कि आयलर एक बहुसर्जक गणितज्ञ थे । गणितीय गवेषणा से संबंधित उनके प्रबंधों की संख्या लगभग एक हजार पर पहुंचती है । वे आधे घंटे के भीतर एक निबंध लिख डालने में समर्थ थे । जैसे ही कोई नया निबंध तैयार होता, उसे वे पहले तैयार किए गए निबंधों के ढेर के ऊपर रख देते । अकादमी की पत्रिका के पन्ने भरने के लिए मैटर की जरूरत पड़ती तो मुद्रक आयलर के निबंधों की ढेरी के ऊपर से ही निबंध उठाकर उसे छाप देता । इस प्रकार निबंधों की रचना और उनके मुद्रण की तिथियां एकदम उलट जातीं । आयलर जब अपने नए निबंध में पहले के निबंधों के हवाले देते, तो मामला और भी पेचीदा हो जाता था ।

सन् 1735 की घटना है । पेरिस की विज्ञान अकादमी ने गणित-ज्योतिष से संबंधित एक जटिल सवाल हल करने के लिए पुरस्कार घोषित किया । यूरोप के नामी गणितज्ञों ने उस सवाल को हल करने के लिए कई महीनों का समय मांगा। मगर आयलर ने उस सवाल को तीन दिन में ही हल कर लिया ! उसकी कीमत भी आयलर को चुकानी पड़ी । अत्यधिक परिश्रम के कारण वे बीमार पड़े और उनकी दाईं आंख की रोशनी चली गई । फिर भी उनके अनुसंधान-कार्य में कोई शिथिलता नहीं आई । वे पहले की तरह ही अनवरत काम करते रहे । तीन साल बाद उन्हें पेरिस की विज्ञान अकादमी का पुरस्कार मिला ।

पीटर्सबर्ग-निवास के दौरान 1736 ई. में आयलर ने यांत्रिकी के बारे में एक महत्वपूर्ण कृति की रचना की । इस कृति में आयलर ने पहली बार यांत्रिकी के विवेचन में कलन-गणित का पूर्ण उपयोग किया । न्यूटन का महान ग्रंथ 'प्रिंसिपिया' ज्यामितीय रचनाओं पर आधारित था, इसलिए कहा जा सकता है कि उसकी रचना आर्किमीदीज़ के लिए भी संभव थी । मगर कलन-गणित पर आधारित आयलर की यांत्रिकी की रचना करना यूनानियों के लिए संभव नहीं था । आयलर ने यांत्रिकी को *निरूपण* के बंधनों से मुक्त करके *विश्लेषण* की नींव पर खड़ा कर दिया । बाद में आयलर के तरुण मित्र फ्रांसीसी गणितज्ञ **लाग्रॉंज** (1736-1813 ई.) ने इस वैश्लेषिक यांत्रिकी का परिष्कार किया ।

आयलर ने अन्य कई प्रकार से भी रूसी शासन की सेवा की । उन्होंने रूसी स्कूलों के लिए गणित की पाठ्य-पुस्तकें लिखीं और माप-तौल के साधनों में सुधार करने में सहयोग दिया । आयलर किसी भी काम को छोटा नहीं मानते थे।

रूस में राजनीतिक अस्थिरता और अराजकता जारी रही, तो 1741 ई. में आयलर ने प्रशिया के सम्राट फ्रेडरिक महान का बर्लिन अकादमी का सदस्य बनने का निमंत्रण स्वीकार कर लिया । आगे के पच्चीस साल आयलर ने बर्लिन में

वाल्तेयर (1694-1778 ई.) फ्रेडरिक महान (1712-1786 ई.) को कुछ सुना रहे हैं ।

गुजारे, मगर उनके लिए वे कोई खास सुखद दिन नहीं थे । फ्रेडरिक के दरबार में आयलर-जैसे आडम्बरहीन गणितज्ञ की नहीं, बल्कि वाल्तेयर (1694-1778 ई.)[3] जैसे वाक्पटु दार्शनिक की ज्यादा कद्र थी । फ्रेडरिक की गणित में कोई दिलचस्पी नहीं थी, मगर वह आयलर की प्रतिभा से प्रभावित था । आयलर ने भी राज्य की कई व्यावहारिक समस्याओं को सुलझाने में सहयोग दिया । परंतु दरबार में वे प्रायः मजाक के ही पात्र बनते थे ।

आयलर हालांकि बर्लिन चले आए थे, मगर रूस के राज-परिवार की कृपादृष्टि उन पर सतत बनी रही । बर्लिन में रहते हुए भी आयलर को पीटर्सबर्ग

अकादमी से उनके वेतन का एक हिस्सा मिलता रहा। आयलर को कोई आर्थिक कठिनाई नहीं थी। बर्लिन में उनका अपना मकान था और बर्लिन से कुछ दूरी पर उनका एक फार्म भी था। 1760 ई. में रूसी सेना ने प्रशिया पर हमला करके बर्लिन पर कब्जा कर लिया, तो उस अभियान में आयलर का फार्म भी लूट लिया गया था। जब रूसी सेनापति को पता चला कि वह फार्म आयलर का था, तो उसने घोषणा की : "उसकी लड़ाई विज्ञान के खिलाफ नहीं है।" उसने आयलर को नुकसान का भरपूर मुआवजा दिया। इतना ही नहीं, रूस की तत्कालीन सम्राज्ञी एलिजाबेथ को आयलर की क्षति का समाचार मिला तो उसने उन्हें चार हजार क्राउन (सिक्के) भेज दिए।

ऐसी स्थिति में रूस की सम्राज्ञी कैथरीन-द्वितीय ने 1766 ई. में आयलर को पीटर्सबर्ग अकादमी लौटने का निमंत्रण भेजा तो उसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। आयलर उस समय 59 साल के थे। जीवन के शेष 17 साल आयलर ने पीटर्सबर्ग में ही गुजारे। कैथरीन ने आयलर का स्वागत एक राजपुरुष की तरह किया। आयलर और उनके अठारह आश्रितों के लिए एक बढ़िया आवास की व्यवस्था कर दी गई।

आयलर अपनी दाईं आंख की ज्योति पहले ही खो चुके थे। पीटर्सबर्ग लौटने पर उनकी बाईं आंख में मोतियाबिंद बना, तो दूसरी आंख की रोशनी भी चली गई। आयलर ने अपने अंधकारमय जीवन का बड़े साहस से सामना किया। उनका गणितीय अनुसंधान का कार्य पूर्ववत् जारी रहा। जब दूसरी आंख की रोशनी जा रही थी, तो उन्होंने एक बड़ी पाटी पर खड़िया से लिखने का अभ्यास कर लिया था। पूर्णतः अंधे हो जाने पर उन्होंने अपने बेटों को 'गणेश' बनाया। आयलर के अनुसंधान-कार्य में पहले से भी अधिक तेजी आई।

आयलर की स्मरण-शक्ति गजब की थी। उन्हें लैटिन कवि **वर्जिल** (ईसा पूर्व प्रथम सदी) का **एनिइड** काव्य आदि से अंत तक कंठस्थ था। इतना ही नहीं, उनके पास इस काव्य-ग्रंथ की जो प्रति थी उसके प्रत्येक पृष्ठ की पहली और अंतिम पंक्ति भी बताने में वे समर्थ थे। आयलर की अद्भुत स्मरण-शक्ति का एक उदाहरण है : एक बार आयलर के दो विद्यार्थियों ने एक जटिल अभिसारी श्रेणी (कन्वरजेंट सीरीज) का, चर के एक निश्चित मान के लिए, सत्रह पदों तक समाकलन किया। दोनों के उत्तरों के पंद्रहवें अंक-स्थान में केवल एक इकाई का अंतर रहा। निर्णय देने के लिए कि दोनों में से कौन-सा उत्तर सही है, आयलर ने वह समूची गणना अपने मस्तिष्क में पूरी कर ली। आयलर का उत्तर सही निकला !

आयलर अंधावस्था के अपने अंतिम सत्रह सालों में पूर्ण क्षमता के साथ गणितीय अनुसंधान में जुटे रहे। अंधावस्था में ही उन्होंने चंद्र की गति से

संबंधित उस जटिल सवाल को काफी स्पष्ट कर दिया जो महान न्यूटन के लिए भी सिरदर्द बन गया था । उस सवाल से संबंधित सारी गणनाएं उन्होंने अपने मस्तिष्क में की थीं !

पीटर्सबर्ग लौटने के पांच साल बाद की एक विपत्ति में आयलर बाल-बाल बच गए । 1771 ई. में शहर में आग लगी तो आयलर का मकान भी उसकी लपेट में आ गया । सारा फर्नीचर और ग्रंथ-संग्रह जल गया । आयलर के सेवक पीटर ग्रिम्मोन ने आग में कूदकर अपने अंधे मालिक की जान बचाई और वह उन्हें बाहर निकाल लाया । आयलर की हस्तलिपियां भी बचा ली गईं । सम्राज्ञी कैथरीन ने उनके नुकसान की पूरी भरपाई कर दी । आयलर पुनः अपने खोजकार्य में जुट गए ।

पांच साल बाद 1776 ई. में, जब आयलर 69 साल के हो गए थे, उन्हें एक और बड़ी विपदा का सामना करना पड़ा । उनकी पत्नी का देहांत हो गया । तब आयलर ने अपनी पत्नी की रिश्ते की एक बहन से दूसरा विवाह कर लिया ।

आयलर अपने जीवन के अंतिम क्षण तक शारीरिक व मानसिक रूप से सक्रिय बने रहे । अंतिम दिन, 18 सितंबर 1783 को, उन्होंने परिवार के सदस्यों के साथ भोजन किया, बच्चों के साथ खेले और दोपहर को गुब्बारों की उड़ान से संबंधित नियमों के बारे में पाटी पर गणनाएं कीं । दो साल पहले, 1781 ई. में **विलियम हर्शेल** ने आकाश में यूरेनस ग्रह की खोज की थी । अपने जीवन के अंतिम दिन आयलर ने यूरेनस की कक्षा के बारे में गणनाएं कीं । थोड़ी देर बाद उन्होंने अपने पोते को बुलवाया । जब वे उस बच्चे के साथ खेल रहे थे और चाय पी रहे थे तो उन्हें दिल का दौरा पड़ा । ''मेरा अंत समय आ गया है'' कहते हुए आयलर ने, 77 साल की आयु में, अंतिम सांस ली ।

गणित के इतिहास में आयलर की गिनती सबसे अधिक शोध-प्रबंध लिखनेवालों में की जाती है । पीटर्सबर्ग और बर्लिन अकादमियों द्वारा 1728 से 1783 तक प्रकाशित कार्य-विवरणों में सबसे ज्यादा शोध-निबंध आयलर के ही प्रकाशित हुए हैं । पीटर्सबर्ग अकादमी के कार्य-विवरण में तो उनके निबंध 1818 ई. तक छपते रहे । आयलर का सम्पूर्ण कृतित्व इतना अधिक है कि उसके पचास से भी अधिक खंड प्रकाशित हो चुके हैं । आज गणित की प्रत्येक शाखा के साथ आयलर का नाम जुड़ा हुआ है । आयलर का कृतित्व व्यापक ही नहीं, काफी कठिन भी है । इसलिए यहां हम उनकी कुछ सरल और महत्वपूर्ण उपलब्धियों की ही थोड़ी चर्चा कर पाएंगे ।

गणित को इसके आधुनिक ढांचे में प्रस्तुत करनेवाले पहले गणितज्ञ आयलर

Monsieur

Je Vous suis bien obligé de la communication des intentions de
Mr. D'Alembert à l'egard de son memoire. Il m'est fort indiffe-
rent, qu'il soit imprimé dans nos Memoires, ou supprimé. J'aurois
cru que Mr. D'Alembert après y avoir mieux reflechi n'en deman-
deroit plus l'impression. Mais puisqu'il prend à l'Academie
un Memoire de sa façon. en cas qu'on imprime son Memoire
je ne voudrois pas en priver l'Academie. Voilà donc ici ma
reponse. de la solidité de laquelle je suis autant assuré que
Mr. D'Alembert le peut être de la sienne. et je souhaiterois
qu'elle fut imprimée après la sienne. Je consens aussi très
volontiers, que Vous lui en envoyiez d'avance une copie.
Si le Copiste de l'Academie ne peut pas la faire, je m'offre
de la faire copier par mon fils. peut être qu'il change de
sentiment après l'avoir lue quoiqu'il j'en aye fort peu d'esperance.
L'autre Memoire que j'ai l'honneur d'ajouter ici est apparemment
celui de Mr. Castillon

le 6 Xbre 1756 L. Euler

आयलर की हस्तलिपि में उनका एक पत्र

थे । उन्होंने गणित में कई नए संकेतों को प्रचलित किया । जैसे —

$f(x)$ फलन का संकेत-चिह्न
e लघुगणक का आधार, जिसका मान है 2.71828···
Σ संकलन का चिह्न
i अधिकल्पित संख्या $\sqrt{-1}$ के लिए संकेत

आयलर ने त्रिभुज के कोणों को बड़े रोमन अक्षरों A B C से और उनकी सन्मुख भुजाओं को छोटे अक्षरों a b c से व्यक्त करने की प्रथा चलाई ।

आयलर द्वारा खोजा गया एक अद्भुत सूत्र है —

$$e^{ix} = \cos x + i \sin x$$

इसमें $x = \pi$ रखने पर यह बनता है —

$$e^{i\pi} + 1 = 0$$

यहां गणित की सर्वाधिक महत्वपूर्ण पांच संख्याएं एक विलक्षण संबंध-सूत्र से जुड़ गई हैं । इसमें प्रत्येक संकेत का अपना एक इतिहास है । 0 और 1 प्रमुख

पूर्णांक हैं । + और = गणित की प्रमुख क्रियाएं हैं । π वृत्त की परिधि और व्यास का अनुपात है । i का अर्थ $\sqrt{-1}$ है और e नेपियर के लघुगणकों का आधार है । इन सब संकेतों को एक सूत्र में बांधना गणित की एक अनुपम उपलब्धि है ।

आयलर द्वारा लिखित यांत्रिकी से संबंधित ग्रंथ का जिक्र हम पहले कर चुके हैं । आयलर ने कलन-गणित और बीजगणित पर भी पाठ्य-पुस्तकें लिखीं, जो उनकी मृत्यु के बाद यूरोप में कई दशकों तक खूब प्रचलित रहीं ।

आयलर ने केवल उच्च गणित के गंभीर ग्रंथ और प्रबंध ही नहीं लिखे, वे वैज्ञानिक विषयों को सरल भाषा में प्रस्तुत करने में भी समर्थ थे । अपने बर्लिन-निवासकाल में उन्होंने फ्रेडरिक महान की भतीजी राजकुमारी **आनहाल्ट-देसौ** को विज्ञान की जानकारी देने के लिए फ्रांसीसी भाषा में यांत्रिकी, भौतिकी, प्रकाशिकी, खगोल-विज्ञान आदि विषयों पर पाठ लिखे । बाद में पुस्तक रूप में उन पाठों को खूब प्रसिद्धि मिली और उनका यूरोप की सात भाषाओं में अनुवाद किया गया ।

आयलर का अनंत श्रेणियों से संबंधित कार्य आगे जाकर गणित के विकास में बड़े महत्व का साबित हुआ । उन्होंने पहचाना था कि कोई अनंत श्रेणी यदि अभिसारी (कन्वरजेंट) नहीं है, तो उसका उपयोग खतरे से खाली नहीं है । मगर स्वयं आयलर ने इस हिदायत का कई अवसरों पर पालन नहीं किया और बड़े बेतुके परिणाम प्राप्त किए । जैसे, $(1-2)^{-1}$ पर द्विपद प्रमेय लागू किया जाए तो बेतुका परिणाम मिलता है ।

$$-1 = 1 + 2 + 4 + 8 + 16 + \cdots$$

आयलर ऐसे परिणामों से तनिक भी विचलित नहीं होते थे । उनके बाद के 19वीं सदी के गणितज्ञों ने ऐसे ही बेतुके परिणामों की खामियां दूर करके आधुनिक गणित को मजबूत आधार प्रदान किया ।

आयलर के कई निबंध गणितीय मनोरंजन से संबंधित हैं । उनके द्वारा हल किए गए ऐसे ही दो सवाल सौ साल बाद **टॉपोलॉजी** के लिए और अब **नेटवर्क सिद्धांत** के लिए मूलाधार बन गए हैं । इनमें से एक सवाल प्रशिया के **कोनिग्सबर्ग** नगर में नदी पर बने सात पुलों से संबंधित था । आयलर ने इस मान्यता के लिए गणितीय सिद्धांत प्रस्तुत किया कि सातों पुल सतत चलकर और मार्ग को दोहराए बिना पार नहीं किए जा सकते ।[4]

दूसरा सवाल **बहुफलकों** से संबंधित था । आयलर ने सिद्ध किया कि किसी भी बहुफलक में

किनारों की संख्या + 2 = शीर्षों की संख्या + फलकों की संख्या

गणित की भारतीय प्रतिभा **रामानुजन्** की तुलना अक्सर आयलर के साथ की

जाती है, तो इसका प्रमुख कारण यह है कि आयलर ने भी **संख्या-सिद्धांत** के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण परिणाम प्राप्त किए थे । गणितज्ञ **फर्मा** समझते थे कि उन्होंने अभाज्य संख्याएं प्राप्त करने के लिए $2^{2^{न}} + 1$ के रूप में एक अद्भुत सूत्र खोज लिया है । मगर आयलर ने सहज ही सिद्ध कर दिया कि $2^{2^{5}} + 1 =$ 4,29,49,67,297 एक अभाज्य संख्या नहीं है, क्योंकि इस संख्या के दो गुणनखंड हैं 67,00,417 और 641 ।

गणित के क्षेत्र में आयलर का सबसे बड़ा योगदान यह रहा कि उन्होंने कलन-गणित को ज्यामिति के बंधनों से मुक्त करके गणितीय विश्लेषण को एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में स्थापित किया । यही कारण है कि उन्हें आधुनिक गणित की चिंतन-प्रणाली का संस्थापक माना जाता है । आयलर को ठीक ही 'विश्लेषण का साक्षात् अवतार' कहा जाता है ।

सहायक ग्रंथ

1. जेम्स आर. न्यूमान (संपादक) — **द वर्ड आफ मैथेमेटिक्स** (चार खंड), न्यूयार्क 1956
2. डेविड यूजेन स्मिथ — **ए सोर्सबुक इन मैथेमेटिक्स** (दो खंड), डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1959
3. डेविड यूजेन स्मिथ — **हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स** (दो खंड), डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1958
4. ई. टी. बेल — **मेन आफ मैथेमेटिक्स** (भाग 1), पेलिकन बुक, लंदन 1953
5. होवार्ड इवेंस — **एन इंट्रोडक्शन टु द हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स** (पांचवां संस्करण), न्यूयार्क 1976
6. लांसलेट हॉग्बेन — **मैथेमेटिक्स इन द मेकिंग**, लंदन 1960
7. डिर्क जे. स्त्रुइक — **ए कंसाइज हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स**, लंदन 1959
8. अल्फ्रेड हूपर — **मेकर्स आफ मैथेमेटिक्स**, न्यूयार्क 1948
9. यू. ए. शाश्किन — **द आयलर कैरेक्टरिस्टिक**, मास्को 1989
10. डेविड बेरगामिनी — **मैथेमेटिक्स**, टाइम-लाइफ बुक, हांगकांग 1980

संदर्भ और टिप्पणियां

1. दीदरो का जन्म फ्रांस के शेम्पेन इलाके के एक कुशल कारीगर के परिवार में हुआ था । शिक्षा घर पर और पेरिस में हुई । पिता से मनमुटाव होने के कारण जीवन बड़ा अस्त-व्यस्त रहा और कई तरह के काम करने पड़े । दीदरो का वैवाहिक जीवन भी

सुखमय नहीं रहा।

अपने धर्म-विरोधी लेखन के कारण दीदरो चर्च और राज्य के अधिकारियों के कोपभाजन बने। 1749 ई. में उन्हें जेल में भी रहना पड़ा। जेल से मुक्ति मिलने पर उन्होंने **विश्वकोश** के संपादन का कार्यभार संभाला और 1751-1780 ई. की कालावधि में, अनेक कठिनाइयों के बावजूद, इसके 35 खंड प्रकाशित किए। गणितज्ञ देलांबर (1717-1783 ई.) भी कुछ समय तक **विश्वकोश** के सह-संपादक रहे।

दीदरो 1733 ई. में कैथरीन-द्वितीय के निमंत्रण पर रूस गए और वहां पांच महीने रहे। दीदरो कथाकार और नाटककार भी थे।

दीदरो और वाल्तेयर ने अपने समय के यूरोप के सामाजिक चिंतन को सबसे अधिक प्रभावित किया।

2. **गणितज्ञों का बर्नूली परिवार**: करीब ढाई सौ साल पहले का किस्सा है। यूरोप के एक तरुण गणितज्ञ के साथ एक पढ़े-लिखे सज्जन यात्रा कर रहे थे। दोनों में बातचीत शुरू हुई, तो गणितज्ञ ने अपना परिचय दिया : ''मेरा नाम *डेनियल बर्नूली* है।''

सहयात्री का व्यंगपूर्ण उत्तर था : ''और, मेरा नाम *आइजेक न्यूटन* है!''

सहयात्री को यकीन नहीं हुआ था कि उनके साथ यात्रा कर रहा व्यक्ति स्विट्जरलैंड के प्रसिद्ध वैज्ञानिक-परिवार बर्नूली का एक सदस्य है, कि खुद नामी गणितज्ञ डेनियल बर्नूली है। इसीलिए उन्होंने शरारतभरा जवाब दिया था : ''मैं आइजेक न्यूटन हूं।''

डेनियल बर्नूली

याकोब बर्नूली

योहान बर्नूली

डेनियल बर्नूली (1700-1782 ई.) को यूरोप की वैज्ञानिक संस्थाओं से अनेक सम्मान मिले थे, मगर उपर्युक्त घटना को वे अपना सबसे बड़ा सम्मान मानते थे और इस किस्से को अक्सर अपने दोस्तों को सुनाया करते थे।

अठारहवीं सदी के यूरोपीय विज्ञान के इतिहास में स्विट्जरलैंड के बर्नूली परिवार का बहुत ऊंचा स्थान है। इस परिवार ने एक सदी के दौरान अपनी तीन पीढ़ियों में कम-से-कम आठ श्रेष्ठ गणितज्ञ पैदा किए। आनुवंशिक गणितीय प्रतिभा का यह एक बेजोड़ उदाहरण है। विज्ञान के इतिहास में ऐसे और भी कुछ उदाहरण मिलते हैं। वंशानुगत वैज्ञानिक प्रतिभाओं का ऐसा ही एक अन्य परिवार डारविन का था। हक्सले

परिवार भी ऐसा ही था । भारत का ऐसा एक उदाहरण है : चंद्रशेखर वेंकट रामन का परिवार । इस परिवार ने दो नोबेल पुरस्कार प्राप्त किए हैं । अमेरिकावासी नोबेल पुरस्कार-विजेता वैज्ञानिक सुब्रह्मण्यम चंद्रशेखर (जन्म : 1910) रामन के बड़े भाई के बेटे हैं । इस परिवार ने और भी कुछ वैज्ञानिक पैदा किए हैं ।

आनुवंशिक प्रतिभा खोजबीन का विषय है । मगर यह मानने का कोई कारण नहीं है कि गणितज्ञ के परिवार में ही श्रेष्ठ गणितज्ञ पैदा होते हैं । ऐसे अनेक महान गणितज्ञ हुए हैं जिनके माता-पिता की गणित के अध्ययन में कोई दिलचस्पी नहीं रही । गणितज्ञों का बर्नूली परिवार एक अपवादात्मक उदाहरण है । बर्नूली परिवार के गणितज्ञों का आधुनिक गणित के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है और इस परिवार के गणितज्ञों के साथ आयलर का गुरु तथा गुरुबंधुओं का रिश्ता रहा है, इसीलिए हम यहां इनका थोड़ा परिचय दे रहे हैं ।

प्रोटेस्टेंट मतावलंबी बर्नूली परिवार मूलतः बेल्जियमवासी था । कैथोलिकों ने उन पर अत्याचार किए तो पहले यह परिवार फ्रैंकफुर्त में आकर बसा और फिर 1622 ई. में स्विट्जरलैंड के सीमावर्ती नगर बासेल में आकर स्थायी हो गया । व्यापार से यह परिवार काफी धनाढ्य बन गया था । बर्नूली परिवार की चार पीढ़ियों की वंशावली है—

याकोब (1) ने अपने पिता की इच्छानुसार बासेल विश्वविद्यालय में धर्मशास्त्र का अध्ययन किया, मगर गुपचुप गणित का अध्ययन भी जारी रखा । बाद में उन्होंने गणित का अपना एक स्कूल खोला और अंत में बासेल विश्वविद्यालय में गणित के प्राध्यापक नियुक्त हुए । उनके अनेक शिष्य नामी गणितज्ञ हुए । याकोब और उनके गणितज्ञ बंधु **योहान (1)** ने मिलकर लाइबनिट्ज द्वारा प्रतिपादित कलन-गणित का परिष्कार करके इसे एक उपयोगी शक्ति में बदल दिया । ध्रुवीय निर्देशांकों (पोलर कोऑर्डिनेट्स) का व्यापक इस्तेमाल करनेवाले याकोब बर्नूली पहले गणितज्ञ थे । इन निर्देशांकों की सहायता से उन्होंने कई वक्रों की खोज की । इनमें सबसे महत्वपूर्ण वक्र है अद्भुत गुणधर्मोंवाला **लघुगणकीय सर्पिल** (लॉगरियमिक स्पाइरल), जिसे याकोब की इच्छानुसार उनके समाधि-स्मारक पर अंकित कर दिया गया था । याकोब ने प्रायिकता सिद्धांत (प्रोबेबिलिटी थ्योरी) के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान किया था ।

याकोब के भाई **योहान (1)** ने बासेल विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र और गणित का अध्ययन किया । पिता चाहते थे कि वे पारिवारिक व्यापार को संभालें, मगर योहान

लघुगणकीय सर्पिल: इसमें वक्र ध्रुव के अनंत चक्कर लगाता है, मगर कभी भी ध्रुव तक नहीं पहुंचता

की दिलचस्पी गणित में थी। योहान ने पहले ग्रोनिंगेन (नीदरलैंड) में गणित पढ़ाया और फिर 1705 ई. में भाई के देहांत के बाद बासेल विश्वविद्यालय में गणित के प्राध्यापक बने। लाइबनिट्ज के कलन-गणित के विकास व उपयोग में योहान ने बड़े महत्व की भूमिका अदा की। वे बड़े उग्र स्वभाव के व्यक्ति थे। गणित की समस्याओं को लेकर दोनों भाइयों में कई बार कलह हुआ। योहान ने उस कलह में भी सक्रिय भाग लिया जो न्यूटन और लाइबनिट्ज के बीच कलन-गणित के आविष्कार को लेकर सालों तक चलता रहा। वे लाइबनिट्ज के कट्टर समर्थक थे।

योहान के तीन बेटे थे, और तीनों ही गणित के प्राध्यापक बने। इनमें से **निकोलस** (3) और **डेनियल** ने सेंट पीटर्सबर्ग अकादमी में गणित पढ़ाया। डेनियल बर्नूली ने पीटर्सबर्ग में अपना पद आयलर के लिए खाली कर दिया था। उन्होंने फ्रांस की विज्ञान अकादमी के दस पुरस्कार प्राप्त किए थे। डेनियल का गणित व भौतिकी के क्षेत्र का अनुसंधान-कार्य इतना महत्वपूर्ण है कि उन्हें गणितीय भौतिकी का एक संस्थापक माना जाता है। डेनियल बर्नूली ने यूरोप में कितनी ख्याति अर्जित की थी, यह आरंभ में दिए गए किस्से से ही स्पष्ट हो जाता है। डेनियल के चचेरे भाई **निकोलस** (2) इटली के पदुआ विश्वविद्यालय में कुछ समय तक गणित के प्राध्यापक रहे।

बर्नूली परिवार ने और भी कुछ गणितज्ञ और वैज्ञानिक पैदा किए। बर्नूली परिवार के सदस्य अठारहवीं सदी के गणितीय आकाश के काफी चमकीले नक्षत्र रहे हैं।

3. फ्रेडरिक महान के निमंत्रण पर वाल्तेयर जुलाई 1750 में बर्लिन पहुंचे थे और वहां वे मार्च 1753 तक रहे।
4. देखिए आगे 'बेर्नहार्ड रीमान' लेख की टिप्पणी संख्या 5.

लाग्राँज और लापलास

पुरानी पीढ़ी के बहुत-से लोगों को आज स्कूलों में पढ़ाया जानेवाला गणित कुछ निराला लगता है, तो इसका एक कारण है — मीट्रिक प्रणाली का इस्तेमाल । आज संसार के अधिकांश देशों में प्रचलित इस दशाधारी मीट्रिक प्रणाली ने नाप-तौल आदि से संबंधित गणनाओं को काफी सुगम बना दिया है ।

मगर इस मीट्रिक प्रणाली का जन्म कब, कहां और कैसे हुआ ?

पुराने जमाने में जिस तरह हमारे देश में नाप-तौल के नाना तरीके प्रचलित रहे हैं, उसी तरह यूरोप के देशों में भी विविध प्रकार के पैमानों का चलन था । अकेले फ्रांस में ही क्षेत्रफल-मापन के तीन सौ से अधिक तरीके थे । इसलिए फ्रांस की विज्ञान अकादमी ने 1789 ई. में नाप-तौल की एक वैज्ञानिक पद्धति खोजने का काम वैज्ञानिकों की एक समिति को सौंपा । समिति ने सबसे पहले लंबाई की इकाई निश्चित की । उत्तरी ध्रुव से भूमध्यरेखा तक पहुंचनेवाली याम्योत्तर रेखा के एक-करोड़वें हिस्से को एक **मीटर** लंबाई मान लिया गया ।

अब सवाल उठा, नाप-तौल आदि के विभाजनों के लिए एक-सा आधार तय करने का । समिति के *अध्यक्ष* चाहते थे कि यह आधार 10 हो, क्योंकि हमारी अंक-पद्धति भी दशाधारी है । मगर समिति के कुछ सदस्य 12 को आधार बनाने के पक्ष में थे, क्योंकि 12 के चार गुणन-खंड (2, 3 ,4, 6) हैं, जबकि 10 के केवल दो (2, 5) हैं ।

तब समिति के अध्यक्ष ने द्वादशाधार के समर्थकों को मात देने के मकसद से प्रस्ताव रखा — "12 से भी बेहतर होगा अभाज्य संख्या 11 का आधार ।" बात कुछ हद तक सच भी थी, क्योंकि अभाज्य संख्याओं को गणना का आधार बनाने की भी अपनी कुछ सुविधाएं हैं ।

मगर 11 को कौन भला आधार स्वीकार करता ? यूरोप में 11 को एक अशुभ संख्या माना जाता रहा है । अंततः 10 को ही मीट्रिक प्रणाली का आधार मान लिया गया । उसके बाद नाप, माप और तौल की मूलभूत इकाइयों (मीटर, लीटर व ग्राम) के आरंभ में जोड़ने के लिए प्राचीन यूनानी भाषा से निम्न शब्द चुने गए —

मिली — ''हजारवां हिस्सा''
सेंटी — ''सौवां हिस्सा''
डेसी — ''दसवां हिस्सा''
डेका — ''दस''
हेक्टो — ''सौ''
किलो — ''हजार''

बस, बन गई मीट्रिक प्रणाली। मीट्रिक प्रणाली की प्रमुख विशेषता है, इसका दशाधारी होना। शून्य सहित केवल दस संकेतों पर आधारित हमारी मौजूदा अंक-पद्धति की खोज, आज से करीब दो हजार साल पहले, भारत में हुई थी। मीट्रिक प्रणाली फ्रांस की राज्यक्रांति (1793 ई.) की देन है। फ्रांस की विज्ञान अकादमी ने जिस समिति का गठन किया था उसने फ्रांस की क्रांति के दौरान ही इस मीट्रिक प्रणाली को प्रस्तुत किया।

जोसफ-लुई लाग्रॉंज (1736-1813 ई.)

उस समिति के अध्यक्ष थे फ्रांस के महान गणितज्ञ **जोसफ-लुई लाग्रॉंज**। उन्हीं के प्रयासों से मीट्रिक प्रणाली दशाधारी बनी। मीट्रिक प्रणाली के लिए गठित समिति ने कई साल तक काम किया और समय-समय पर लाग्रॉंज, लापलास, कूलोम[1], लेजंद्र और देलांबर-जैसे महान फ्रांसीसी वैज्ञानिक उसके सदस्य रहे। यहां हम अठारहवीं सदी के दो महान गणितज्ञों — लाग्रॉंज व लापलास — का परिचय देंगे। गणितज्ञ देलांबर और लेजंद्र के महत्वपूर्ण योगदान की थोड़ी चर्चा टिप्पणियों में है।[2]

जोसफ-लुई लाग्रॉंज का जन्म 25 जनवरी, 1736 को इटली के तुरीन नगर में हुआ था। उनके पिता फ्रांसीसी थे, मगर इटली के सार्डिनिया राज्य में बसे हुए थे। इटली के एक धनी सामंत परिवार की कन्या से उनका विवाह हुआ था और उनके कुल ग्यारह बच्चे हुए थे, जिनमें सबसे छोटे जोसफ-लुई ही किशोरावस्था को पार करके दीर्घायु प्राप्त कर सके। जोसफ-लुई के वयस्क होने तक उनके पिता परिवार की अधिकांश सम्पत्ति खो चुके थे। जोसफ-लुई को इसका कभी कोई अफसोस नहीं रहा। उलटे अपने बाद के जीवन में वे यही कहते थे : ''यदि

मैं परिवार के ऐश्वर्य का उत्तराधिकारी बनता तो शायद गणित की सेवा नहीं कर पाता।''

विद्यार्थी जीवन में लाग्राँज की गणित में विशेष दिलचस्पी नहीं थी, हालांकि उन्होंने यूक्लिड और आर्किमीदीज़ के ज्यामिति के ग्रंथ पढ़े थे। गणित के अध्ययन में उनकी दिलचस्पी बढ़ी न्यूटन के मित्र एडमंड हेली (1656-1742 ई.) का एक निबंध पढ़ने के बाद। हेली ने अपने उस निबंध में बताया था कि यूनानियों की ज्यामितीय विधियों से नए कलन-गणित की विधियां किस प्रकार बेहतर हैं। तरुण लाग्राँज उस निबंध से बड़े प्रभावित हुए और आगे दो साल तक उन्होंने वैश्लेषिक गणित का गहन अध्ययन किया। सरल शब्दों में हम कह सकते हैं कि जिस गणित में ज्यामितीय विधियों के बजाए बीजगणित के समीकरणों तथा कलन-गणित की विधियों का व्यापक उपयोग होता है उसे **विश्लेषण** या **वैश्लेषिक गणित** कहते हैं।

सोलह साल की छोटी आयु में लाग्राँज तुरीन के रॉयल आर्टिलरी स्कूल में गणित के प्राध्यापक नियुक्त हुए। वहां उनके सभी विद्यार्थी उम्र में उनसे बड़े थे। उसी समय उन्होंने एक 'अनुशीलन सोसायटी' बनाई, जो बाद में तुरीन की विज्ञान अकादमी में विकसित हुई। 1759 ई. से अकादमी की पत्रिका प्रकाशित होने लगी, तो उसमें लाग्राँज के गणित के शोध-निबंध प्रकाशित होने लगे।

लाग्राँज की सबसे महत्वपूर्ण कृति **वैश्लेषिक यांत्रिकी** 1788 ई. में तब प्रकाशित हुई जब वे 52 साल के थे। मगर इस कृति में प्रतिपादित मुख्य विषय की नींव उन्होंने उन्नीस साल की आयु में ही रख दी थी। यह नया विषय था **विचरण कलन** (कैल्कुलस आफ वेरिएशंस)। तुरीन के तरुणावस्था के दिनों में लिखे एक शोध-निबंध में लाग्राँज ने लिखा था कि वे विश्लेषण की विधियों से ठोसों और द्रवों की समूची यांत्रिकी को एक ग्रंथ में प्रस्तुत करना चाहते हैं। इस ग्रंथ के लेखन, प्रकाशन और महत्व की चर्चा हम आगे करेंगे। यहां इतना बता देना ही पर्याप्त होगा कि लाग्राँज के इस ग्रंथ ने ठोसों और द्रवों की यांत्रिकी को उतना ही सम्पन्न बनाया, जितना कि न्यूटन के सार्वभौमिक गुरुत्वाकर्षण के नियम ने खगोल-यांत्रिकी को।

तरुण लाग्राँज को प्रोत्साहित करने की जो भूमिका महान **आयलर** (1707-1783 ई.) ने अदा की वह गणित के इतिहास की एक बेजोड़ मिसाल है। उस समय आयलर बर्लिन की विज्ञान अकादमी में थे और विचरण कलन (कैल्कुलस आफ वेरिएशंस : यह नाम आयलर का ही दिया हुआ है) से संबंधित एक समस्या का हल खोजने में जुटे हुए थे। उसी समय, उसी समस्या से संबंधित, लाग्राँज का एक शोध-निबंध आयलर के पास पहुंचा। निबंध पढ़ने के बाद महामना आयलर ने लाग्राँज को लिखा : ''तुम्हारा हल मेरे हल से बेहतर

है । इस समस्या के हल का संपूर्ण श्रेय तुम्हें ही मिलना चाहिए । अतः तुम अपना निबंध पहले प्रकाशित करो ।" इतना ही नहीं, लाग्राँज के बाद आयलर ने जब अपना निबंध प्रकाशित किया, तो उसमें उन्होंने लाग्राँज की स्तुति भी की !

आयलर और लाग्राँज का पत्र-व्यवहार जारी रहा । आयलर के ही प्रयासों से केवल 23 साल की आयु में लाग्राँज बर्लिन अकादमी के विदेशी सदस्य चुने गए । आयलर उतने ही से सतुंष्ट नहीं हुए । उन्होंने लाग्राँज को बर्लिन अकादमी में बुलाने के प्रयत्न शुरू कर दिए । अंत में 1766 ई. में आयलर ने अकादमी में गणित विभाग के अध्यक्ष का पद लाग्राँज के लिए खाली कर देने का निर्णय लिया और प्रशिया के सम्राट फ्रेडरिक महान से सिफारिश की कि वह पद लाग्राँज को दिया जाए । पेरिस के गणितज्ञ देलांबर (1717-1783 ई.) ने भी वह पद लाग्राँज को सौंपने का समर्थन किया । अंततः 1766 ई. में तीस साल के लाग्राँज तुरीन से बर्लिन पहुंचे और वहां उन्होंने आगे के अपने जीवन के बीस साल बिताए ।

बर्लिन पहुंचने के पहले हा लाग्राँज गणित की कई जटिल समस्याओं का हल खोज चुके थे । न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का नियम दो पिंडों के बीच के संबंधों को स्पष्ट करता है । मगर यथार्थ में दो से अधिक पिंड एक-दूसरे को आकर्षित करते रहते हैं । तीन या अधिक पिंडों के आपसी आकर्षण की समस्या बहुत जटिल बन जाती है । लाग्राँज ने सूर्य, चंद्र और पृथ्वी के आपसी आकर्षण की 'तीन पिंडों की समस्या' पर न्यूटन का नियम लागू करके स्पष्ट किया कि चंद्र का एक ही चेहरा सतत पृथ्वी की ओर क्यों रहता है । इस हल के लिए उन्हें फ्रांस की विज्ञान अकादमी का पुरस्कार मिला । उस समय तक खोजे गए बृहस्पति के चार चंद्रों से संबंधित 'छह पिंडों की समस्या' का भी लाग्राँज ने एक व्यावहारिक हल खोजा और दूसरी बार पेरिस अकादमी का पुरस्कार प्राप्त किया । आगे जाकर उन्होंने पेरिस अकादमी के और भी कुछ पुरस्कार प्राप्त किंए ।

बर्लिन में बस जाने के बाद लाग्राँज को लगा कि उनकी देखभाल करने के लिए उन्हें एक जीवन-साथी की जरूरत है । उन्होंने अपने रिश्ते की एक तरुणी को तुरीन से बर्लिन बुला लिया और उससे विवाह किया । मगर उनका सुखमय वैवाहिक जीवन ज्यादा दिनों तक नहीं चला । पत्नी गंभीर रूप से बीमार पड़ी । लाग्राँज ने रात-दिन उसकी सेवा की, मगर अंत में वह चल बसी । उसके बाद लाग्राँज गणित के अनुसंधान में डूब गए ।

बर्लिन के निवासकाल में लाग्राँज ने अपने महान ग्रंथ 'वैश्लेषिक यांत्रिकी' की रचना की । इस ग्रंथ में लाग्राँज ने ठोसों और द्रवों की यांत्रिकी के व्यापक सूत्र प्रस्तुत किए । न्यूटन ने कलन-गणित का विकास किया था, पर अपनी महान कृति 'प्रिंसिपिया' को उन्होंने चिरस्थापित यूनानी ज्यामिति के ढांचे में ही प्रस्तुत

किया । मगर लाग्राँज ने व्यापक यांत्रिकी को विश्लेषण (कलन-गणित, बीजगणित के समीकरण, आदि) के एक ऐसे सुदृढ़ ढांचे में प्रस्तुत किया कि उनके ग्रंथ में एक भी ज्यामितीय आकृति नहीं है ! कई साल तक संशोधन करते रहने के बाद अंत में 1782 ई. में लाग्राँज ने ग्रंथ की पांडुलिपि प्रकाशनार्थ पेरिस भेज दी, जो लाग्राँज के 1787 ई. में पेरिस पहुंचने के बाद छपी ।

फ्रेडरिक महान की मृत्यु के बाद बर्लिन में लाग्राँज का मन नहीं रमा । उन्होंने फ्रांस के सोलहवें लुई का पेरिस की विज्ञान अकादमी में पद ग्रहण करने का निमंत्रण स्वीकार कर लिया । इक्यावन साल के लाग्राँज पेरिस पहुंचे, तो राज-परिवार ने उनका भव्य स्वागत किया । लूव्र के राजप्रासाद में, जहां आज संग्रहालय है, उनके निवास की व्यवस्था की गई और उनके लिए भरपूर वेतन का भी इंतजाम हुआ । तरुण रानी मेरी एंतोनी की लाग्राँज पर विशेष कृपादृष्टि रही ।

सुख-सुविधाओं के बावजूद गणित से लाग्राँज का मन एकाएक उचट गया । वे उदास रहने लगे । वे गणित को छोड़कर दर्शन, इतिहास, चिकित्सा आदि का अध्ययन करने लगे । गणित से उन्हें इतनी अधिक विरक्ति हो गई कि 1788 ई. में जब उनकी महान कृति 'वैश्लेषिक यांत्रिकी' छपकर आई, तो लाग्राँज ने आगे के दो साल तक उसे एक बार भी खोल कर नहीं देखा !

मगर फ्रांस की राज्यक्रांति ने गणित के प्रति लाग्राँज के लगाव को पुनः जगाया । जब क्रांति के तूफान में बड़े-बड़ों की गर्दन पर 'गिलेटिन' का फरसा गिरने लगा तो लाग्राँज के मित्रों ने उन्हें पेरिस छोड़ देने को कहा । एक तरह से विदेशी होने के कारण वे फ्रांस छोड़ दे सकते थे, मगर लाग्राँज ने पेरिस में रहना ही पसंद किया । बाद में क्रांति के दौरान उन्होंने जो नजारे देखे उससे वे बड़े व्यथित हुए । जब उनके मित्र महान रसायनज्ञ **लेवोजिए** (1743-1794 ई.) का सिर धड़ से अलग कर दिया गया, तो लाग्राँज के दुःखभरे उद्गार थे : ''यह सिर काटने में उन्हें केवल एक क्षण का समय लगा, मगर ऐसा दूसरा सिर वे आगे के सौ सालों में भी पैदा नहीं कर पाएंगे ।''

मगर क्रांति ने लाग्राँज को तनिक भी क्षति नहीं पहुंचाई । उनकी पेंशन जारी रही । उन्हें नए शासन द्वारा स्थापित कुछ कमेटियों का सदस्य बनाया गया । वे मीट्रिक प्रणाली के लिए बनी समिति के अध्यक्ष बनाए गए । 1795 ई. में इकोल नार्मल की स्थापना हुई तो लाग्राँज को गणित का प्राध्यापक बनाया गया । दो साल बाद वे इकोल पोलीटेकनिक में प्राध्यापक बने । उसी दौरान उन्होंने **अत्यल्प** (इन्फिनिटेसिमल) और **सीमा** (लिमिट) की बुनियादी धारणाओं को त्यागकर कलन-गणित के बारे में दो ग्रंथों की रचना की । इन ग्रंथों का ही प्रभाव था कि 19वीं सदी में कई गणितज्ञ 'अत्यल्प' और 'सीमा' की धारणाओं का परिष्कार

करने में जुट गए ।

लाग्राँज पुनः गणित के अन्वेषण में तो जुट गए थे, मगर अब भी उनका जीवन एकाकी और उदास था । उनके खगोलविद मित्र लेमोनिए की सोलह साल की पुत्री लाग्राँज की दशा देख कर इतनी अधिक द्रवित हुई कि उसने उनसे विवाह करने पर जोर दिया । अंत में लाग्राँज भी मान गए । उस समय वे 56 साल के थे । दोनों में चालीस साल का अंतर होने पर भी उनका वैवाहिक जीवन सुखमय रहा ।

लाग्राँज के जीवन के अंतिम साल 'वैश्लेषिक यांत्रिकी' को दूसरे संस्करण के लिए संशोधित और विस्तृत करने में गुजरे । वे सत्तर साल के हो चुके थे, फिर भी लगातार काम में जुटे रहते थे । अंततः शरीर व दिमाग ने साथ देना छोड़ दिया । लाग्राँज जानते थे कि अब उनका अंतिम समय आ गया है, मगर उन्हें मृत्यु का तनिक भी भय नहीं था । वे निरीश्वरवादी थे और उन्होंने एक दार्शनिक का जीवन जिया था । 10 अप्रैल, 1813 को, बेहोशी का दौरा पड़ने के बाद, 76 साल की आयु में, अठारहवीं सदी के इस महान गणितज्ञ की मृत्यु हुई।

लाग्राँज का 'वैश्लेषिक यांत्रिकी' ग्रंथ न्यूटन की 'प्रिंसिपिया' के सौ साल बाद, आज से करीब दो सौ साल पहले, 1788 ई. में प्रकाशित हुआ था । विचरण कलन का उपयोग करके लाग्राँज ने इस ग्रंथ में स्थितिकी और गतिकी के सिद्धांतों का एकीकरण किया । हम बता चुके हैं कि इस ग्रंथ में एक भी आकृति नहीं है । मगर लाग्राँज की शैली इतनी आकर्षक है कि आयरलैंड के गणितज्ञ **हैमिल्टन** (1805-1865 ई.) ने 'वैश्लेषिक यांत्रिकी' को 'एक वैज्ञानिक काव्य' घोषित किया था ।

लाग्राँज ने विशुद्ध गणित की प्रायः प्रत्येक शाखा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की । लाग्राँज ने तुरीन के निवासकाल में अनिर्धार्य वर्ग-समीकरण $न क्ष^2 + 1 = य^2$ का हल खोज कर आयलर के पास भेज दिया था । इस समीकरण के अनंत हल संभव हैं । पर हम जानते हैं कि इस समीकरण का आंशिक हल सबसे पहले भारतीय गणितज्ञ **ब्रह्मगुप्त** (626 ई.) ने और बेहतर हल बाद में **भास्कराचार्य** (1150 ई.) ने प्रस्तुत किया था । भारतीय गणितज्ञों ने इस समीकरण को 'वर्ग-प्रकृति' का नाम दिया था ।

लाग्राँज ने संख्या-सिद्धांत के विकास में भी योग दिया ।[3] उन्होंने फर्मा के कुछ सवालों को सुलझाया और कुछ नए सवाल खोजे । उन्होंने समीकरणों के सन्निकट अंकीय मान प्रस्तुत करने की विधियां खोजीं । लाग्राँज ने इस दिशा में भी महत्वपूर्ण खोजकार्य किया कि किसी समीकरण का हल संभव है या नहीं । उनका यह कार्य उन्नीसवीं सदी के कोशी, आबेल, गाल्वा आदि अनेक गणितज्ञों के लिए पथप्रदर्शक बना ।

लाग्राँज जन्म से इतालवी थे । बर्लिन तथा पेरिस में राज्याश्रय प्राप्त करने पर भी वे राजशाही के समर्थक नहीं थे । क्रांति के दौर में भी गणित की इस महान प्रतिभा का खूब सम्मान हुआ । नेपोलियन अपने इस मृदुभाषी गणितज्ञ के साथ दार्शनिक विषयों और राज्य के लिए गणित की उपयोगिता के बारे में अक्सर बातचीत करता था । उसने ठीक ही कहा था : ''लाग्राँज गणित-विज्ञान के उत्तुंग पिरामिड हैं ।''

लापलास

लाग्राँज विशुद्ध गणित के आराधक थे, तो लापलास प्रायोगिक गणित के । लाग्राँज ने 'वैश्लेषिक यांत्रिकी' की रचना की, तो लापलास ने 'खगोल यांत्रिकी' की । ईसा की दूसरी सदी में मिस्री-यूनानी ज्योतिषी तालेमी ने अपने ग्रंथ **सिन्टेक्सिस्** (अरबी नाम : **अल्-मजिस्ती**) में विश्व की रचना का एक भव्य ढांचा प्रस्तुत किया था । लापलास ने नए वैश्लेषिक गणित और न्यूटन के सिद्धांतों का उपयोग करके विश्व-यांत्रिकी के एक भव्य प्रासाद का निर्माण किया । उन्हें ठीक ही 'फ्रांस का न्यूटन' कहा जाता है । लापलास को आधुनिक प्रायिकता सिद्धांत (थ्योरी आफ प्रोबेबिलिटी) का भी जनक माना जाता है ।
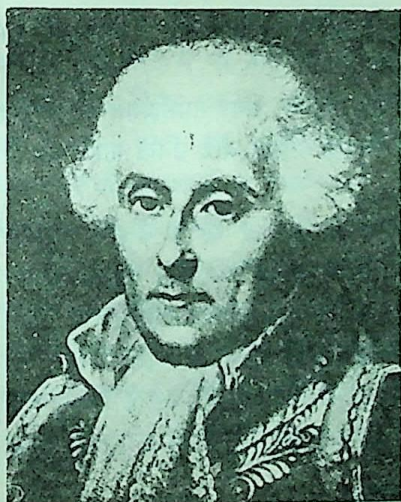
लापलास (1749-1827 ई.)

पियर-सिमाँ लापलास का जन्म फ्रांस के नार्मंडी इलाके के एक कृषक परिवार में 23 मार्च, 1749 को हुआ था । वे बचपन से ही पढ़ाई में तेज थे, इसलिए पड़ौस के धनी परिवारों ने उनकी मदद की । अठारह साल के लापलास कई सिफारिशी पत्र लेकर पेरिस पहुंचे और उसके बाद उन्होंने अपनी पहले की जिंदगी पर सदा-सदा के लिए पर्दा डाल दिया ।

पेरिस पहुंचने पर लापलास ने अपने सिफारिशी पत्र देलांबर के पास पहुंचाए । मगर सिफारिशी पत्र लानेवाले तरुणों में देलांबर की कोई दिलचस्पी नहीं थी । उन्होंने मिलने से इनकार कर दिया । लापलास मामले को समझ गए । अपने निवास पर लौटकर उन्होंने यांत्रिकी के कुछ व्यापक सिद्धांतों पर प्रकाश डालते हुए देलांबर

को एक पत्र लिखा। पत्र ने अपना असर दिखाया। भेंट के लिए आमंत्रित करते हुए देलांबर ने लापलास को लिखा : "तुमने स्वयं अपनी अच्छी सिफारिश की है। अब तुम्हारी मदद करना मेरा फर्ज है।" देलांबर की सिफारिश से लापलास पेरिस के सैनिक स्कूल में गणित के प्राध्यापक नियुक्त हुए।

उसके बाद लापलास के नए शानदार जीवन की शुरुआत हुई। वे न्यूटन के सिद्धांतों के आधार पर समूचे सौर-मंडल की गतिकी को प्रस्तुत करने में जुट गए। अंततः पांच खंडों में जो ग्रंथ तैयार हुआ उसका नाम है : 'खगोल यांत्रिकी'। न्यूटन की 'प्रिंसिपिया' के बाद लापलास की कृति 'खगोल यांत्रिकी' को ही इस विषय का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ माना जाता है। सौर-मंडल सुस्थिर है या नहीं, इस बात को लेकर तत्कालीन विचारकों में कोई मतैक्य नहीं था। न्यूटन की भी मान्यता थी कि दैवी हस्तक्षेप से ही सौर-मंडल सुस्थिर बना रह सकता है। मगर लापलास ने गणितीय सिद्धांतों का व्यापक उपयोग करके एक प्रकार से यह 'प्रमाणित' कर दिया कि सौर-मंडल अपने-आप में एक सुस्थिर योजना है।

एक मशहूर किस्सा है। लापलास ने अपने ग्रंथ 'खगोल यांत्रिकी' की प्रति नेपोलियन को भेंट की। ग्रंथ देखने के बाद, मात देने के इरादे से, नेपोलियन ने लापलास से कहा : "विश्व की संरचना के बारे में आपने इतना बड़ा ग्रंथ लिखा, मगर इसमें 'विश्व के कर्ता' का एक बार भी उल्लेख नहीं किया है !"

"श्रीमान्, मुझे उस **परिकल्पना** की आवश्यकता नहीं थी," लापलास का स्पष्ट उत्तर था।

लापलास राजनीति के मामले में अवसरवादी थे, मगर नेपोलियन को उन्होंने जो स्पष्ट जवाब दिया वह गणित के प्रति उनकी निष्ठा और उनके साहस का ही परिचायक है।

लापलास अपने दंभी स्वभाव के लिए भी प्रसिद्ध रहे। उन्होंने 'खगोल यांत्रिकी' के निर्माण में लाग्रॉज, लेजंद्र आदि अनेक गणितज्ञों की खोजों का उपयोग किया, मगर उन्होंने प्रयत्नपूर्वक उन सबका उल्लेख नहीं किया। हां, न्यूटन का बार-बार उल्लेख करने से वे बच नहीं सकते थे। सौर-मंडल की गतिकी के निर्माण में स्वयं लापलास का इतना विशाल योगदान है कि वे यदि दूसरों का उल्लेख करते तो उनके अपने कृतित्व को तनिक भी कम नहीं आंका जाता।

'खगोल यांत्रिकी' के पांच खंड पच्चीस सालों (1799-1825) की लंबी अवधि में छपे। लापलास का गणितीय विवेचन अत्यंत संक्षिप्त है। वे प्रायः "यह स्पष्ट है कि..." कहकर आगे बढ़ जाते हैं। लापलास की इस कृति का अंग्रेजी में अनुवाद करनेवाले अमेरिकी खगोलविद नेथेनियल बौडिच ने लिखा है कि, "लापलास के ग्रंथ में जब भी 'यह स्पष्ट है कि...' से मेरा सामना होता है,

तो समझ जाता हूं कि विषय को स्पष्ट करने के लिए आगे कई घंटों तक माथापच्ची करनी होगी ।''

मगर लापालास ने विश्व-यांत्रिकी के विषय को गणित के बिना भी आकर्षक भाषा में एक पुस्तक में प्रस्तुत किया — **विश्व की योजना का विवरण** (1796 ई.)। इसी पुस्तक में लापलास ने सौर-मंडल की उत्पत्ति के प्रसिद्ध **नीहारिका सिद्धांत** का प्रतिपादन किया है । लापलास को पता नहीं था कि उनके भी पहले जर्मन दार्शनिक **कांट** ने 1755 ई. में यह कल्पना प्रस्तुत की थी ।

लापलास ने प्रायिकता सिद्धांत के बारे में भी एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की — **प्रायिकता का वैश्लेषिक सिद्धांत** (1812 ई.) । उन्होंने इस ग्रंथ के जटिल विषय को भी सरलता से समझाने के लिए एक पुस्तक की रचना की । लापलास के मतानुसार, प्रायिकता के सवाल इसलिए पैदा होते हैं कि घटनाओं को हम अंशतः समझते हैं और अशंतः नहीं समझ पाते । प्रायिकता से संबंधित लापलास का अनुसंधान-कार्य आगे के गणितज्ञों के लिए प्रेरक और पथप्रदर्शक साबित हुआ । अपने समूचे कृतित्व में लापलास, अठारहवीं सदी के अन्य अनेक वैज्ञानिकों की तरह, यांत्रिक भौतिकवाद का पुरजोर समर्थन करते हैं । उन्होंने यही सिद्ध करने का प्रयास किया कि सौर-मंडल एक निरंतर गतिशील विशाल मशीन है ।

लापलास ने फ्रांस की राजनीति में भी भरपूर भाग लिया । इसके लिए अवसरवादी बनने में भी उन्हें हिचक नहीं हुई । नेपोलियन ने उन्हें अनेक प्रकार से सम्मानित किया, काउंट बनाया, मंत्री भी बनाया, और उनसे मंत्रिपद छीन भी लिया । मगर जब नेपोलियन का तख्ता पलट गया तो लापलास लुई अठारहवें की राजशाही के समर्थक बने । उन्हें मार्क्विस बनाया गया और इकोल पोलीटेकनिक को पुनर्गठित करने की जिम्मेदारी सौंपी गई ।

लापलास ने अपने जीवन के अंतिम दिन पेरिस से नातिदूर अपनी इस्टेट में गुजारे । चंद दिनों की बीमारी के बाद 5 मार्च, 1827 को, 78 साल की आयु में, उनका देहांत हुआ । लापलास के सोचे-समझे अंतिम उद्‌गार थे : ''जो हम जानते हैं वह बहुत कम है; जो हम नहीं जानते वह बहुत अधिक है …।''

सहायक ग्रंथ

1. होवार्ड इवेस — **एन इंट्रोडक्शन टु द हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स** (पांचवां संस्करण), न्यूयार्क 1976
2. डेविड यूजेन स्मिथ — **हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स** (दो खंड), डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1958

3. डेविड यूजेन स्मिथ — **ए सोर्सबुक इन मैथेमेटिक्स** (दो खंड), डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1959
4. ई. टी. बेल — **मेन आफ मैथेमेटिक्स** (भाग 1), पेलिकन बुक, लंदन 1953
5. रॉबर्ट एदौआर्ड मॉरिट्ज — **ऑन मैथेमेटिक्स एंड मैथेमेटिशियन्स**, डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1958
6. जेम्स आर. न्यूमान (संपा.) — **द वर्ड आफ मैथेमेटिक्स** (4 खंड), न्यूयार्क 1956
7. उसेंस्की और हीस्लेट — **एलिमेंट्री नंबर थ्योरी**, न्यूयार्क 1939
8. अल्फ्रेड हूपर — **मेकर्स आफ मैथेमेटिक्स**, न्यूयार्क 1948
9. डिर्क जे. स्ट्रुइक — **ए कंसाइज हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स**, लंदन 1959
10. जेम्स आर. न्यूमान — **लापलास**, 'लाइव्स इन साइंस' से, साइंटिफिक अमेरिकन बुक, न्यूयार्क 1957

संदर्भ और टिप्पणियां

1. फ्रांसीसी इंजीनियर शार्ल ऑगस्त कूलोम (1736-1806 ई.) ने प्रमाणित किया कि न्यूटन का दूरी के वर्ग के व्युत्क्रमानुपात का नियम विद्युतीय और चुंबकीय आकर्षण तथा प्रतिकर्षण पर भी लागू होता है। कूलोम को इस विषय के गणितीय सिद्धांत का संस्थापक माना जाता है।

2. देलांबर के प्रयासों से लाग्राँज को बर्लिन की विज्ञान अकादमी में गणित के विभागाध्यक्ष का पद मिला था। उन्हीं की सिफारिश से लापलास पेरिस के सैनिक स्कूल में प्राध्यापक बने थे। लेजंद्र भी उन्हीं की सिफारिश से उसी स्कूल में प्राध्यापक बने थे। अठारहवीं सदी के यूरोप के अधिकांश वैज्ञानिकों के साथ देलांबर के मैत्री-संबंध थे।

जाँ ल रान देलांबर

इतना प्रभावशाली यह व्यक्ति कौन था?

देलांबर के जन्म की कथा बुद्ध के समकालीन चिकित्सक जीवक-जैसी है। 16 नवंबर, 1717 की जाड़े की रात को पेरिस के **सेंट जाँ ल रान** चर्च के पास एक सिपाही को एक नवजात शिशु पड़ा मिला। उसे जाँ ल रान नाम दिया गया और उसके लिए पालक खोजे गए। यही लावारिस बालक बाद में **जाँ ल रान देलांबर** (1717-1783 ई.) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जल्दी ही यह भी पता चल गया था कि देलांबर एक
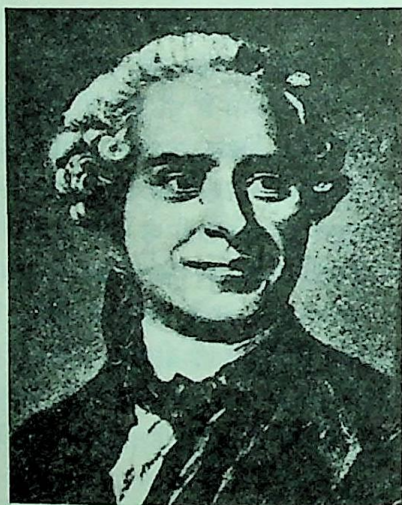
जनरल और ऊंचे कुल की एक महिला के अवैध पुत्र हैं । मगर देलांबर ने जीवनभर अपनी जन्मदात्री को मां नहीं माना; धाय मां को ही उन्होंने अपनी असली मां माना !

अठारह साल की उम्र में देलांबर ने स्नातक की उपाधि प्राप्त की । कानून और चिकित्सा का अध्ययन किया और अंत में गणित के अन्वेषण को अपना जीवन समर्पित कर दिया । 1743 ई. में गतिकी के बारे में उनका एक ग्रंथ प्रकाशित हुआ । द्रव-गतिकी, अवकलन-गणित, कंपायमान तंतु आदि से संबंधित उनकी गवेषणाएं महत्वपूर्ण हैं ।

यूरोप के बौद्धिक जागरण में फ्रांसीसी **विश्वकोश** (1751-1772) ने एक महान भूमिका अदा की है । इस विश्वकोश के प्रधान संपादक देनिस दिदरो थे और गणितीय विषयों के संपादक थे जाँ ल रान देलांबर । देलांबर को फ्रांसीसी अकादमी का आजीवन सचिव बनाया गया था । वाल्तेयर-जैसे प्रभावशाली व्यक्ति उनके मित्र थे । यही सब कारण हैं कि देलांबर अपने समय के यूरोप के अनेक गणितज्ञों की सहायता कर पाए ।

लाग्रॉंज, लापलास और लेजंद्र को फ्रांसीसी गणित की 'त्रिमूर्ति' माना जाता है । **आद्रिए मेरी लेजंद्र** (1752-1833 ई.) ने पेरिस में पढ़ाई की, पेरिस के सैनिक स्कूल में पांच साल तक गणित पढ़ाया, कई सरकारी पदों पर काम किया तथा इकोल नार्मल में प्राध्यापक और इकोल पोलीटेकनिक में परीक्षक रहे ।

आद्रिए मेरी लेजंद्र (1752-1833 ई.)

लेजंद्र की संख्या-सिद्धांत, परवलीय फलन (इलिप्टिक फंक्शन), और समाकलन गणित के क्षेत्र की गवेषणाएं बड़ी महत्वपूर्ण हैं । इन विषयों के बारे में उन्होंने जो ग्रंथ लिखे उनकी पाठ्य-पुस्तकों के रूप में खूब प्रसिद्धि रही । उन्होंने यूक्लिड की ज्यामिति के प्रमेयों तथा साध्यों को पृथक करके उन्हें एक नए बेहतर ढंग से एक पुस्तक में प्रस्तुत किया । इस पुस्तक के कई संस्करण निकले और यूरोप की कई भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ । लेजंद्र की इस पुस्तक के प्रकाशन के बाद यूक्लिड की ज्यामिति को मूल रूप में पढ़ाए जाने की परंपरा लगभग समाप्त हो गई ।

उच्च गणित के क्षेत्र की लेजंद्र की गवेषणाएं इतनी महत्वपूर्ण हैं कि मूर्धन्य गणितज्ञ फेलिक्स क्लाइन (1849-1929 ई.) ने उनकी तुलना महान **गौस**

(1777-1855 ई.) से की है। लेजंद्र का खोजकार्य गौस के लिए पथप्रदर्शक साबित हुआ।

लेजंद्र बेहद स्वाभिमानी थे। वे शासन के आदेशों के सामने नहीं झुके, तो उनकी पेंशन रोक दी गई। फ्रांस के इस महान गणितज्ञ के अंतिम दिन दुःख और दारिद्र्य में गुजरे!

3. आंग्ल गणितज्ञ वारिंग ने 1770 ई. में प्रकाशित अपनी एक पुस्तक में अभाज्य संख्याओं के एक अद्भुत गुणधर्म की जानकारी दी। यह जानकारी उन्हें जोन विल्सन नामक विज्ञान के एक अध्येता से मिली थी, इसलिए इसे **विल्सन का प्रमेय** कहा जाता है। मगर पता चलता है कि लाइबनिट्ज को भी अभाज्य संख्याओं के इस गुणधर्म की जानकारी थी। विल्सन का प्रमेय है :

   1. 2. 3⋯(अ− 1) + 1 को अभाज्य संख्या अ द्वारा भाग देना सदैव संभव है।

   वारिंग ने अभाज्य संख्याओं के इस गुणधर्म को सिद्ध करने में अपनी असमर्थता व्यक्त की। इस 'विल्सन-प्रमेय' की पहली उपपत्ति लाग्राँज ने 1771 ई. में प्रस्तुत की।

   लाग्राँज ने 1770 ई. में पहली बार यह भी सिद्ध किया कि प्रत्येक धन पूर्णांक को चार वर्गों के योग के रूप में व्यक्त किया जा सकता है।

   अर्थात्, जब स ≥ 0, तब समीकरण

   $$\text{स} = \text{य}_1^2 + \text{य}_2^2 + \text{य}_3^2 + \text{य}_4^2$$ का हल संभव है।

कार्ल फ्रेडरिक गौस

यदि संसार के शुरू से लेकर आज तक के एक महानतम गणितज्ञ का चुनाव करना पड़े तो हम काफी उलझन में पड़ जाते हैं । परंतु संसार के तीन सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञों का चुनाव करने में कोई कठिनाई नहीं है । ये तीन गणितज्ञ हैं — आर्किमीदीज़, न्यूटन और गौस । गौस ने भी केवल न्यूटन को ही 'महानतम' माना था ।

स्कूलों के विद्यार्थी आर्किमीदीज़ और न्यूटन के नाम से परिचित हैं । विद्यार्थियों को इनके बारे में कुछ किस्से भी मालूम हैं । आर्किमीदीज़ और न्यूटन के कुछ सिद्धांत भी स्कूलों में पढ़ाए जाते हैं । मगर स्कूलों के, विशेषकर हमारे देश के स्कूलों के, अधिकांश विद्यार्थी कार्ल फ्रेडरिक गौस के जीवन और कृतित्व से प्रायः अनभिज्ञ हैं ।

ऐसा क्यों ? गणित के प्रायः सभी इतिहासकार गौस को आर्किमीदीज़ और न्यूटन की कोटि का गणितज्ञ मानते हैं । गौस को उनके जीवनकाल में ही 'गणितज्ञों का राजकुमार' माना गया था । फिर क्या वजह है कि गौस को न्यूटन या आर्किमीदीज़ की तरह व्यापक प्रसिद्धि नहीं मिली ?

एक स्पष्ट कारण तो यह है कि गौस ने गणित के क्षेत्र में जो खोजकार्य किया वह ऊंचे स्तर का है और आज भी स्कूल की कक्षाओं में नहीं पढ़ाया जाता । एक अन्य कारण शायद यह भी है कि गौस जर्मनी में पैदा हुए थे । भारत पर अंग्रेजों के शासन का और अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा का एक यह परिणाम तो हुआ ही है कि आज भी हम इंग्लैंड के वैज्ञानिकों के बारे में ज्यादा जानते हैं, मगर फ्रांस, जर्मनी आदि अन्य देशों के महान वैज्ञानिकों के बारे में हमारे विद्यार्थी-वर्ग को अपेक्षाकृत कम जानकारी मिल पाई है ।

गौस निश्चय ही न्यूटन के स्तर के गणितज्ञ थे । खगोल-विज्ञान, भौतिकी तथा भूगणित के क्षेत्र की उनकी गवेषणाएं भी अत्यंत महत्व की हैं । मगर गौस के बारे में सबसे महत्व की बात यह है कि आधुनिक उच्च गणित के अधिकांश विषयों के स्रोत उनके खोजकार्य में मौजूद हैं । उच्च गणित के अ-यूक्लिडीय ज्यामिति, टॉपोलॉजी, सम्मिश्र संख्या, संख्या-सिद्धांत जैसे ये विषय कठिन हैं और उच्च कक्षाओं में ही पढ़ाए जाते हैं । इसलिए भी स्कूलों के विद्यार्थी गौस की

गवेषणाओं से, अतः उनके जीवन से भी, अपरिचित हैं ।
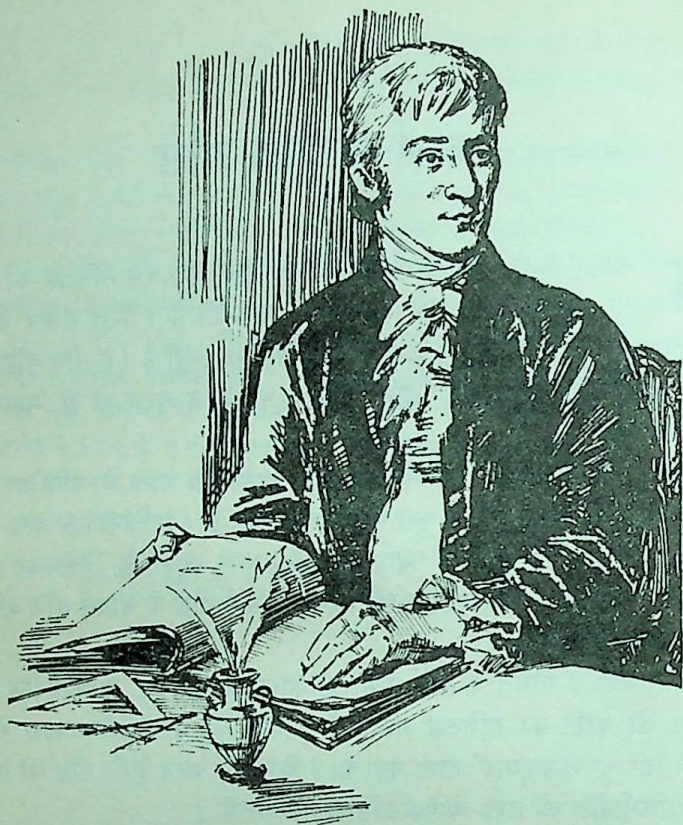
कार्ल फ्रेडरिक गौस (1777-1855 ई.)

गौस की संख्या-सिद्धांत (थ्योरी आफ नंबर्स) के क्षेत्र की गवेषणाएं विशेष महत्व की हैं । भारत की महान गणितीय प्रतिभा रामानुजन् (1887-1920 ई.) की गवेषणाएं भी संख्या-सिद्धांत से ही संबंधित हैं । गौस ने संख्या-सिद्धांत को 'उच्च अंकगणित' का नाम दिया था । अपने इस प्रिय विषय के बारे में गौस का प्रसिद्ध कथन है : "विज्ञान की रानी गणित है, और गणित की रानी अंकगणित है ।"

इन 'रानियों' के बीच में 'गणितज्ञों के राजकुमार' गौस की स्थिति को स्पष्ट करना सचमुच ही एक कठिन काम है । केवल संख्या-सिद्धांत के क्षेत्र की ही गौस की गवेषणाएं कितनी चमत्कारिक हैं, यह जानने के लिए प्रस्तुत है एक उदाहरण —

अभाज्य संख्याओं (प्राइम नंबर्स) पर विचार कीजिए । अभाज्य संख्याएं हैं :

2, 3, 5, 7, 11, 13, इत्यादि । इनकी अनंतता यूक्लिड (300 ई.पू.) ने ही सिद्ध कर दी थी । लेकिन इन संख्याओं के बारे में अनेक सवाल आज भी अनुत्तरित हैं । एक सवाल है : एक निश्चित बड़ी संख्या तक कितनी अभाज्य संख्याएं हो सकती हैं ?

गौस तब केवल चौदह साल के थे । एक दिन वह लॉगरिथम (लघुगणक) सारणियों की एक पुस्तक देख रहे थे । तब एकाएक उन्हें अभाज्य संख्याओं से संबंधित उपर्युक्त सवाल का उत्तर सूझ गया । उन्होंने पुस्तक के आखिरी पृष्ठ पर उत्तर लिख दिया —

$$\text{अ} \ (= \infty) \text{तक की अभाज्य संख्याएं} = \frac{\text{अ}}{\text{लॉग अ}}$$

इसका अर्थ यह है कि अ यदि एक काफी बड़ी संख्या है, तो अ को लॉग अ से भाग देने पर अ से छोटी कुल अभाज्य संख्याओं के लिए एक अच्छी सन्निकट संख्या मिल जाती है । अ का मान जितना ही बड़ा होगा, परिणाम उतना ही बेहतर होगा ।

है न चमत्कारिक खोज ? लॉगरिथम की सारणियों पर सोचते हुए एकाएक अभाज्य संख्याओं के वितरण से संबंधित एक समस्या का हल खोज निकालना एक महान मस्तिष्क के लिए ही संभव था । गौस के इस प्रमेय की उपपत्ति 1896 ई. में गणितज्ञ **हादामार** (1865-1963 ई.) और **दे ला वाली पूसीं** (1866-1962 ई.) ने प्रस्तुत की । रामानुजन् की संख्या-सिद्धांत के क्षेत्र की गवेषणाएं भी गौस के इस प्रमेय की कोटि की ही हैं ।

स्पष्ट है कि, रामानुजन् की गवेषणाओं की तरह, गौस की गवेषणाओं को भी उच्च गणित से अनभिज्ञ पाठकों के सामने प्रस्तुत करना संभव नहीं है । मगर यह तो बताया ही जा सकता है कि गौस का कृतित्व गणित के किन-किन विषयों से संबंधित है और उनका कितना बड़ा महत्व है । गौस की जीवन-गाथा भी कम दिलचस्प नहीं है । गौस, न्यूटन की तरह, एक आख्यान-पुरुष भले ही न बने हों (न्यूटन से संबंधित अनेक किस्से मनगढ़ंत हैं), मगर उनका व्यक्तित्व उन्हें न्यूटन से भी श्रेष्ठतर वैज्ञानिक सिद्ध करता है ।

कार्ल फ्रेडरिक गौस का जन्म ब्रुन्सविक नगर (ब्राउनस्वाइग, जर्मनी) के एक निर्धन परिवार में 30 अप्रैल, 1777 को हुआ था । अपने 78 साल के लंबे जीवन में गौस ने यूरोप की राजनीति में अनेक उतार-चढ़ाव देखे । उनके जन्म के समय जर्मनी में छोटे-बड़े करीब तीन सौ राज्य थे । जब फ्रांस की राज्यक्रांति शुरू हुई,

तब गौस 12 साल के थे । हजार साल पुराने 'पवित्र रोमन साम्राज्य' का अवसान हुआ, तो गौस 29 साल के थे और जब नेपोलियन की पराजय हुई, तो वे 38 साल के थे । 1848 ई. की क्रांति के समय गौस 70 साल के थे । इन सब उतार-चढ़ावों ने गौस के जीवन को भी प्रभावित किया ।

बपतिस्मा (नाम-संस्कार) के समय गौस का पूरा नाम था—योहान फ्रेडरिक कार्ल गौस । मगर बाद में अपनी सारी कृतियों में उन्होंने अपना नाम **कार्ल फ्रेडरिक गौस** ही लिखा ।

गौस के दादा, जो एक मामूली माली थे, 1740 ई. में ब्रुन्सविक-वोल्फेनबुटेल राज्य के ब्रुन्सविक नगर में आकर बसे थे । गौस के पिता माली तथा राजमिस्त्री का काम करके बड़ी मुश्किल से ही ब्रुन्सविक में अपने लिए एक छोटा घर खरीद पाए थे । वे कठोर स्वभाव के व्यक्ति थे । उनका बस चलता तो वे गौस को माली या मिस्त्री बनाकर ही छोड़ते । मगर गौस की मां ने वैसा नहीं होने दिया । मां डोरोथी और मामा फ्रेडरिक ने बालक गौस की हर प्रकार से रक्षा की और उसे उत्साहित किया । मां को विश्वास था कि उसका बेटा आगे जाकर एक बहुत बड़ा आदमी बनेगा । वह अक्सर अपने बेटे की प्रगति के बारे में दूसरों से पूछती रहती थीं ।

किस्सा तब का है जब गौस उन्नीस साल के थे । एक दिन डोरोथी ने अपने बेटे के गणित-मित्र वोल्फगांग बोल्याई[1] से पूछा : ''क्या गौस कुछ करने लायक बनेगा?'' बोल्याई का उत्तर था : ''वह तो यूरोप के सबसे बड़े गणितज्ञ हैं ।'' मां की आंखों से आंसू बहने लगे ।

गौस ने बचपन से ही अपनी प्रतिभा का परिचय दिया । उनकी स्मरण-शक्ति गजब की थी । अपनी प्रौढ़ावस्था में वे अक्सर कहा भी करते थे : ''मैंने बोलना सीखने से पहले ही गिनती सीख ली थी ।''

गौस के बचपन का एक किस्सा है । तब वे केवल तीन साल के थे । एक दिन उनके पिता मजदूरों की सप्ताहभर की मजदूरी चुकता कर रहे थे । बालक गौस भी पास ही खड़े थे और मन-ही-मन रकम जोड़ते जा रहे थे । पिता ने अंत में कुल रकम जोड़ी, तो बेटा बोल उठा : ''पिताजी, जोड़ गलत है; जोड़ होता है···।'' और, सचमुच ही गौस का जोड़ सही था !

सात साल के होने पर गौस स्कूल में दाखिल हुए । उन दिनों यूरोप के स्कूलों में शिक्षक बच्चों को बड़ी कड़ी सजाएं देते थे । मगर गौस की तेज बुद्धि ने शिक्षकों का मन जीत लिया । स्कूल के संचालक थे बीटनेर महाशय । वे बच्चों को जोड़ के ऐसे जटिल सवाल देते थे जिनके उत्तर वे स्वयं सूत्रों से प्राप्त करते थे । मिसाल के लिए, उनका सवाल होता — 'एक से सौ तक की सभी पूर्णांक संख्याओं का जोड़ बताओ ।' बच्चे बेचारे सारी संख्याओं को जोड़ने में जुट जाते

और अक्सर गलती कर बैठते । मगर स्वयं बीटनेर समांतर श्रेढ़ी (अरिथमेटिक प्रोग्रेशन) के सूत्र का उपयोग करके फौरन जान लेते थे कि उत्तर 5050 है ।

कक्षा में गौस ही अकेले विद्यार्थी थे जो समांतर श्रेढी से संबंधित जटिल से जटिल सवालों को फौरन हल कर देते थे । कैसे ?[2] इसलिए कि 10 साल के गौस ने स्वयं ही सूत्र खोज लिया था : योग = $\frac{(प_1 + प_न)\ न}{2}$ होगा, जहां $प_1$ पहला पद, $प_न$ अंतिम पद और न कुल पदों की संख्या है ।

गौस की प्रतिभा से बीटनेर इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्हें कहना पड़ा : "मैं गौस को और अधिक नहीं पढ़ा सकता ।" उन्होंने गौस को अंकगणित की एक अच्छी पाठ्य-पुस्तक लाकर दी और कहा : "इसे तुम स्वयं पढ़ो ।"

उस स्कूल में बीटनेर के एक सहयोगी शिक्षक थे **मार्टिन बार्टेल्स**, जो गौस से आठ साल बड़े थे और बाद में रूस के कजान विश्वविद्यालय में गणित के प्राध्यापक बने थे । गौस और बार्टेल्स में गहरी दोस्ती हो गई । दोनों ने मिलकर गणित के, विशेषकर बीजगणित के, अपने अध्ययन को आगे बढ़ाया । उसी दौरान गौस ने **द्विपद प्रमेय** का गहन अध्ययन किया । द्विपद प्रमेय (बाइनोमियल थ्योरम) है—

$$(1 + य)^न = 1 + \frac{न}{1} य + \frac{न(न-1)}{1 \times 2} य^2 + \frac{न(न-1)(न-2)}{1 \times 2 \times 3} य^3 + \cdots$$

इस प्रमेय में **न** कोई भी धन या ऋण संख्या हो सकती है । मगर जब हम **न** का मान कोई ऋण पूर्णांक लेते हैं, तो बड़े बेतुके परिणाम मिलते हैं । जैसे, $य = -2$ और $न = -1$ हो, तो परिणाम मिलता है —

$$-1 = 1 + 2 + 4 + 8 + \cdots, \text{ अनंत तक ।}$$

यदि अनंत श्रेणियों का सोच-समझकर प्रयोग न किया जाए, तो ऐसे ही बेतुके नतीजे निकलते हैं । अनंत श्रेणियों को न्यूटन, आयलर और लाग्राँज जैसे महान गणितज्ञ भी ठीक से समझ नहीं पाए थे । वस्तुतः ऐसी अनंत श्रेणी के बारे में सबसे पहले यह जानना जरूरी होता है कि वह **अभिसरित** (कन्वर्ज) होती है या नहीं ! गौस ने स्कूल के अपने विद्यार्थी जीवन में ही, न केवल **अभिसरण** (कन्वरजेंस) के महत्व को समझा, बल्कि द्विपद प्रमेय की व्यापक उपपत्ति (जब 'न' शून्य से छोटा पूर्णांक हो) भी प्रस्तुत कर दी । गौस ने अनंत श्रेणियों के लिए कठोर उपपत्तियां प्रस्तुत करके गणितीय विश्लेषण के आगे के बहुमुखी विकास के लिए मार्ग प्रशस्त किया ।

अपने विद्यार्थी जीवन में ही गौस ने द्विपद प्रमेय के लिए जो व्यापक उपपत्ति

प्रस्तुत की थी वह आज भी 12वीं कक्षा तक नहीं पढ़ाई जाती । अतः स्कूलों के अधिकांश विद्यार्थी महान गौस के कृतित्व से अपरिचित रह जाते हैं, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है ।

बीटनेर के सहयोग से गौस 12 साल की उम्र में माध्यमिक स्कूल में दाखिल हुए । वहां उन्होंने लैटिन भाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया । गौस की प्रतिभा ब्रुन्सविक में चर्चा का विषय बन गई । बीटनेर और बार्टेल्स उन्हें प्रभावशाली लोगों से मिलाने लगे । गौस जब 14 साल के थे, तब उन्हें ब्रुन्सविक के ड्यूक **कार्ल विलहेल्म फर्डिनांड** से मिलाया गया । ड्यूक तरुण गौस से बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने गौस के लिए छात्रवृत्ति की व्यवस्था कर दी । गौस आगे जब तक पढ़ते रहे, तब तक उन्हें ड्यूक की ओर से बराबर खर्च मिलता रहा ।

पंद्रह साल की उम्र में, 1792 ई. में, गौस ब्रुन्सविक के कारोलिन कालेज (अकादमी) में दाखिल हुए । कालेज में विज्ञान और भाषाओं के अध्ययन की अच्छी व्यवस्था थी । गौस ने वहां तीन साल (1792-95 ई.) तक अध्ययन किया । उन्होंने ग्रीक तथा लैटिन भाषाओं पर अच्छा अधिकार प्राप्त कर लिया । कालेज में एक बढ़िया पुस्तकालय भी था । गौस ने ग्रंथालय से न्यूटन, आयलर और लाग्राँज के ग्रंथ लाकर उनका गहन अध्ययन किया ।

अठारह साल की आयु में गौस आगे के अध्ययन के लिए गॉटिंगेन विश्वविद्यालय गए । गॉटिंगेन शहर ब्रुन्सविक के करीब सौ किलोमीटर दक्षिण में हान्नोवर (राज्य) के इलाके में है । यह विश्वविद्यालय अपनी उदार शिक्षा-नीति और अपने अच्छे ग्रंथालय के लिए प्रसिद्ध था । गौस जब गॉटिंगेन गए तो निश्चित नहीं कर पाए थे कि उन्हें आगे गणित को चुनना है या भाषाशास्त्र को । मगर वहां पहुंचने पर उन्होंने निश्चय कर लिया कि अपना जीवन उन्हें गणित को ही समर्पित करना है ।

गौस गॉटिंगेन में तीन साल (1795-98) रहे । वहां उन्होंने कई मित्र बनाए। हंगेरी के एक विद्यार्थी वोल्फगांग बोल्याई उनके गहरे मित्र बन गए । गणित के प्राध्यापक **कास्टनेर** ने भी उन्हें काफी प्रभावित किया । उसी दौरान गौस ने गणित के क्षेत्र में कई नई चीजें खोजीं । उन्नीस साल के गौस ने अपना गणितज्ञ का जीवन शुरू कर दिया ।

गौस ने 30 मार्च, 1796 से गणित के क्षेत्र के अपने आविष्कार संक्षेप में एक डायरी में लिखने शुरू कर दिए । गणित जगत को गौस की इस डायरी की जानकारी उनकी मृत्यु के 43 साल बाद मिली । तभी यह भी पता चला कि 19 साल की उम्र में ही गौस गणित के क्षेत्र में कई महान आविष्कार कर चुके थे । उनकी इस डायरी में ऐसे कई आविष्कार नमूद हैं जिन्हें उन्होंने कभी प्रकाशित नहीं किया ।[3] प्रस्तुत है गौस की डायरी का एक नमूना : 10 जुलाई, 1796 को

अपनी एक खोज़ को, आर्किमीदीज़ की तर्ज पर, वे नमूद करते हैं —

$$\text{ह्यूरेका (मिल गया) ! नंबर} = \Delta + \Delta + \Delta$$

इसका अर्थ यह है कि, प्रत्येक धन पूर्णांक तीन त्रिभुजीय संख्याओं का योग होता है । त्रिभुजीय संख्याएं हैं : 0, 1, 3, 6, 10, 15, 21,…।[4]

गौस ने अपनी डायरी में, रामानुजन् के नोटबुकों की तरह, केवल परिणाम ही दिए हैं, उनकी उपपत्तियां नहीं दी हैं । मगर उनके इन परिणामों को देखकर स्पष्ट हो जाता है कि वे 19 साल की छोटी उम्र में ही गणित के कई नए विषयों की आधारशिला रख चुके थे । गॉटिंगेन के उन्हीं दिनों में गौस ने अपनी पहली महान कृति **डिस्क्विजिशिओनेस् अरिथमेटिकाई** (अंकगणितीय अनुसंधान) तैयार की । इस कृति को अंतिम रूप देने के लिए वे सितंबर 1798 में हेल्मस्टेड्ट विश्वविद्यालय गए । वहां उन्होंने ग्रंथालय का उपयोग किया और गणितज्ञ योहान फ्रेडरिक फाफ्फ से उनकी मित्रता स्थापित हुई । गौस का उपर्युक्त ग्रंथ 1801 ई. में प्रकाशित हुआ । गौस ने अपनी यह पहली कृति ड्यूक फर्डिनांड को समर्पित की ।

तरुण गौस

तीन साल गॉटिंगेन में रहने के बाद 1798 ई. में, 21 साल की आयु में, गौस ब्रुन्सविक लौट आए । आगे 1807 ई. तक वे ब्रुन्सविक में ही रहे । ब्रुन्सविक लौटने पर ड्यूक के आग्रह पर गौस ने एक प्रबंध लिखा । इस प्रबंध पर 1799 ई. में हेल्मस्टेड्ट विश्वविद्यालय ने उन्हें 'डाक्टर' की उपाधि प्रदान की । इस प्रबंध में गौस ने पहली बार सिद्ध किया कि किसी भी बीजीय समीकरण के सभी मूल अ + i ब स्वरूप की संख्याएं होती हैं, जहां अ तथा ब 'वास्तविक संख्याएं' हैं और i का अर्थ है $\sqrt{-1}$

अ + i ब स्वरूप की संख्याएं **सम्मिश्र संख्याएं** (कॉम्प्लेक्स नंबर्स) कहलाती हैं। गौस के

पहले के कई गणितज्ञ सम्मिश्र संख्याओं से परिचित थे । मगर गौस पहले गणितज्ञ हैं जिन्होंने सम्मिश्र संख्याओं के लिए ज्यामितीय आधार प्रस्तुत किया — स्पष्ट किया कि प्रत्येक सम्मिश्र संख्या के लिए समतल पर एक निश्चित बिन्दु होता है ।

गौस का 'डिस्क्विजिशिओनेस् अरिथमेटिकाई' ग्रंथ इतना जटिल है कि आरंभ में अनेक समर्थ गणितज्ञों को भी इसे समझ पाने में काफी कठिनाई हुई । गौस के मित्र और शिष्य डिरिख्ले (1805-59 ई.) ने कई साल तक इस ग्रंथ का अध्ययन किया और इसमें प्रतिपादित विषयों का स्पष्टीकरण किया, तभी जाकर यह ग्रंथ कुछ सुगम बना ।[5] मगर इस ग्रंथ ने तत्काल ही यूरोप के सभी बड़े गणितज्ञों को प्रभावित किया । लाग्राँज ने और गौस से नाराज हुए लेजंद्र ने भी इस कृति की प्रशंसा की । गौस की इस कृति ने उन्हें यूरोप का सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ बना दिया ।

उन्नीसवीं सदी के पहले साल का पहला दिन (1 जनवरी, 1801) खगोल-विज्ञान के इतिहास में, और गौस के जीवन में भी, बड़े महत्व का साबित हुआ । उस दिन इतालवी खगोलविद जियूसेप्पे पियाजी ने आकाश में एक नए 'ग्रह' की खोज की । पहले इसे एक धूमकेतु समझा गया था, लेकिन बाद में स्पष्ट हुआ कि यह एक क्षुद्रग्रह है । इसे **सिरेस** (फसल की देवी) का नाम दिया गया । आज हम जानते हैं कि मंगल और बृहस्पति के बीच में अधिकांश क्षुद्रग्रह सूर्य की परिक्रमा करते रहते हैं । सिरेस आकाश में खोजा गया पहला क्षुद्रग्रह था।

पियाजी आकाश में सिरेस का थोड़ा-सा पथ ही निर्धारित कर पाए थे । करीब एक महीने बाद ही सिरेस सूर्य के पीछे उसके प्रकाश में गायब हो गया था। अब क्या करें ? सिरेस की पूर्ण कक्षा निर्धारित करने के बाद ही जाना जा सकता था कि अगली बार आकाश में यह ठीक कहां दिखाई देगा । सिरेस की कक्षा निर्धारित करना बड़ा कठिन काम था । गौस ने इस चुनौती को स्वीकार किया । उन्होंने बड़े परिश्रम से सिरेस की कक्षा निर्धारित की । गौस द्वारा निर्धारित कक्षा के अनुसार करीब एक साल बाद सिरेस को पुनः आकाश में खोज लिया गया ।

गौस की इस सफलता से उनका नाम यूरोपभर में मशहूर हो गया । उन्हें सेंट पीटर्सबर्ग वेधशाला का निदेशक बनने के लिए आमंत्रित किया गया । मगर गौस वहां नहीं गए । इस बीच उन्हें गॉटिंगेन वेधशाला का निदेशक बनाने के भी प्रयास शुरू हुए । उसी दौरान का एक किस्सा है । प्रख्यात भूवैज्ञानिक अलेक्जेंडर वान हम्बोल्ट (1769-1859 ई.) ने, जो गौस को गॉटिंगेन वेधशाला के निदेशक का पद दिलाना चाहते थे, फ्रांस के महान खगोलविद-गणितज्ञ लापलास से पूछा : ''इस समय जर्मनी में सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ कौन है?'' लापलास का उत्तर था : ''फाफ्फ'' ।[6]

"गौस के बारे में आपके क्या विचार हैं?" हम्बोल्ट ने पुनः पूछा।

"ओह, गौस ! वे तो संसार के सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ हैं।" लापलास का उत्तर था।

गौस के ब्रुन्सविक-निवास (1798-1807 ई.) के दिन बड़ी खुशी में गुजरे। ड्यूक से उन्हें पेंशन मिलती थी, इसलिए वे निश्चिंत होकर खोजकार्य में जुटे रहे। 1805 ई. में, 28 साल की आयु में, ब्रुन्सविक की एक तरुणी योहाना ओस्तोफ से उन्होंने विवाह किया। मगर तीन बच्चों को जन्म देने के बाद 1809 ई. में योहाना का निधन हो गया। नन्हे बच्चों की देखभाल के लिए गौस ने अगले वर्ष पुनः विवाह किया। दूसरी पत्नी से उनके तीन और बच्चे हुए। कोई भी बच्चा प्रतिभाशाली नहीं निकला। बाद में उनके दो बेटे अमरीका चले गए।

गौस के आश्रयदाता ड्यूक फर्डिनांड दिसंबर 1805 में नेपोलियन के साथ हुए एक युद्ध में बुरी तरह जख्मी हो गए और अगले साल उनकी मृत्यु हो गई। 1808 ई. में गौस के पिता भी चल बसे। मगर गौस की मां को 97 साल की लंबी आयु मिली। अपने जीवन के अंतिम 22 साल उसने अपने बेटे के घर में गुजारे। उसकी अंधावस्था के अंतिम चार सालों में (मृत्यु : 1839 ई.) गौस ने स्वयं अपनी मां की सेवा-सुश्रूषा की।

ड्यूक फर्डिनांड के देहांत (1806 ई.) के बाद गौस के लिए जरूरी हो गया कि वे अपने परिवार को चलाने के लिए कोई वैतनिक पद स्वीकार कर लें। इसमें कोई कठिनाई नहीं थी, क्योंकि गौस की कीर्ति सारे यूरोप में फैल चुकी थी। मगर गौस ने अंत में गॉटिंगेन वेधशाला के निदेशक का पद ही स्वीकार कर लिया। उन्हें वहां के विश्वविद्यालय में स्वेच्छा से गणित पढ़ाने का भी काम सौंपा गया। गौस 1807 ई. में सपरिवार गॉटिंगेन चले गए।

लगभग 55 साल की आयु में गौस (समकालीन रेखाचित्र : जे.बी. लिस्टिंग)

गॉटिंगेन में गौस को जो वेतन मिलता था वह उनके परिवार के गुजारे के लिए पर्याप्त था, मगर इतना अधिक नहीं था कि वे कुछ बचाकर रख पाते। ऐसी स्थिति में गॉटिंगेन पहुंचने के कुछ ही समय बाद गौस पर एक संकट आ पड़ा। विजित फ्रांस पराजित जर्मन राज्यों से युद्ध-शुल्क वसूल कर रहा था। गौस पर 2000 फ्रांक युद्ध-शुल्क लगाया गया। इतनी बड़ी रकम अदा करना

गौस के बस की बात नहीं थी। गौस यदि चाहते तो नेपोलियन से प्रार्थना करके युद्ध-शुल्क माफ भी करवा सकते थे। मगर स्वाभिमानी गौस ने वैसा नहीं किया।

गौस के कई वैज्ञानिक मित्र उनकी मदद करने को तैयार थे। खगोलविद ओल्बर्स[7] ने उन्हें दो हजार फ्रांक भेजे, मगर गौस ने वह रकम धन्यवाद सहित लौटा दी। फ्रांस में लापलास और लाग्रांज भी उनकी मदद करना चाहते थे, मगर गौस ने उसे भी स्वीकार नहीं कया। अंत में जर्मनी के ही एक गुमनाम व्यक्ति ने गौस को वह रकम भेज दी, जिसे वे लौटा नहीं सकते थे।

गॉटिंगेन पहुंचने के दो साल बाद, 1809 ई. में, गौस का दूसरा ग्रंथ प्रकाशित हुआ — **थ्योरिया मोटुस**···(शांकव-काटों के पथों में सूर्य की परिक्रमा करनेवाले खगोलीय पिंडों की गति का सिद्धांत)। इस ग्रंथ में गौस ने, न्यूटन और लापलास से काफी आगे बढ़कर, सूर्य की परिक्रमा करनेवाले सभी किस्मों के पिंडों (ग्रह, क्षुद्रग्रह, धूमकेतु) की सभी प्रकार की गतियों का व्यापक गणितीय विश्लेषण प्रस्तुत किया। गौस का यह खगोलीय गणित नए क्षुद्रग्रहों और धूमकेतुओं की कक्षाएं निर्धारित करने में बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ। गौस ने अपना पहला ग्रंथ (अंकगणितीय अनुसंधान) लैटिन भाषा में लिखा था। यह दूसरा ग्रंथ मूलतः उन्होंने जर्मन भाषा में लिखा। लेकिन बाद में, प्रकाशक के आग्रह पर, यह भी लैटिन में अनूदित होकर प्रकाशित हुआ।

22 अगस्त, 1811 को गौस ने सायंकालीन आकाश में एक नया धूमकेतु देखा। अपने नए गणित से गौस ने उस धूमकेतु की कक्षा निर्धारित की।

सन् 1811 का साल एक और दृष्टि से महत्वपूर्ण है। पहले हम बता चुके हैं कि गौस ने सम्मिश्र संख्याओं (अ + iब, जहां $i = \sqrt{-1}$) को 'काल्पनिक संख्याओं' से 'वास्तविक संख्याओं' में परिवर्तित कर दिया था। इन संख्याओं के अपने अध्ययन को आगे बढ़ाकर गौस ने सम्मिश्र संख्याओं के वैश्लेषिक फलनों का विकास किया। 1811 ई. में गौस ने अपने मित्र फ्रेडरिक विलहेल्म बेस्सेल[8] को एक पत्र में अपने इस खोजकार्य की जानकारी दी। यह उच्च गणित का विषय है।

गौस के अनुसंधान-कार्य के बारे में महत्व की एक बात को जान लेना बहुत जरूरी है। अपना अधिकांश अनुसंधान-कार्य उन्होंने प्रकाशित नहीं किया। अपने कई आविष्कार उन्होंने अपनी डायरी में संक्षेप में अंकित किए। अपने कई आविष्कारों की जानकारी अपने गणितज्ञ-मित्रों को उन्होंने केवल पत्रों के जरिए दी। गौस ने अपने केवल उसी खोजकार्य को प्रकाशित किया जिसे वे परिपूर्ण समझते थे। वे नहीं चाहते थे कि उनका कोई अनुसंधान-कार्य तनिक भी त्रुटिपूर्ण रहे और उस पर कोई उंगली उठाए। फलतः गौस के अनेक आविष्कार

उनके जीवनकाल में अप्रकाशित और अज्ञेय बने रहे । नतीजा यह हुआ कि गौस जिन चीजों की खोज कर चुके थे उन्हें खोजने के लिए दूसरे गणितज्ञों को अथक परिश्रम करना पड़ा । उदाहरण के लिए, गौस **अ-यूक्लिडीय ज्यामिति** के बुनियादी सिद्धांत को भलीभांति समझ गए थे, मगर उन्होंने इस विषय के अपने खोजकार्य को प्रकाशित नहीं किया । लोबाचेवस्की और बोल्याई को नए सिरे से अ-यूक्लिडीय ज्यामितियों की खोज करनी पड़ी । कहा जा सकता है कि गौस यदि अपनी सभी गवेषणाओं को प्रकाशित कर देते तो कई श्रेष्ठ गणितज्ञों का करीब आधी सदी का परिश्रम बच जाता ।

गॉटिंगेन की नई वेधशाला । पहले गौस और बाद में रीमान इस वेधशाला के अध्यक्ष रहे ।

गॉटिंगेन पहुंचने पर गौस ने वहां एक नई वेधशाला की स्थापना के लिए अथक प्रयास किए और उसके लिए यंत्र-उपकरण जुटाए । मगर उनका सारा समय खगोलीय खोजबीन में नहीं गया । उनका गणितीय गवेषणा का कार्य भी जारी रहा । गौस ने 1812 ई. में **हाइपरज्यामेट्रिक श्रेणी** से संबंधित अपना महत्वपूर्ण खोजकार्य प्रकाशित किया । इसमें उन्होंने पहली बार एक श्रेणी के अभिसरण (कन्वरजेंस) का व्यवस्थित विवेचन किया ।

गणित के विभिन्न विषयों की गौस की गवेषणाएं इतनी व्यापक हैं कि यहां उन सबकी चर्चा करना संभव नहीं है । संक्षेप में यही बताया जा सकता है कि 1800 से 1820 ई. तक उन्होंने प्रमुख रूप से खगोलीय अनुसंधान का कार्य किया। गौस 1821 से 1848 ई. तक हान्नोवर राज्य के वैज्ञानिक सलाहकार भी रहे । 1820 ई. के दशक में उन्होंने हान्नोवर के भूसर्वेक्षण में महत्वपूर्ण योग दिया। 1830-40 ई. के दशक में गणितीय भौतिकी के क्षेत्र में गवेषणा-कार्य किया । 1841-55 ई. के काल में उन्होंने नई ज्यामितियों के निर्माण का महत्वपूर्ण कार्य किया । जीवन के इस अंतिम दौर में उन्होंने कई नई भाषाएं भी

सीखीं । उन्होंने संस्कृत सीखने का भी प्रयास किया, मगर इसके अध्ययन को वे ज्यादा आगे नहीं बढ़ा पाए । अंग्रेजी साहित्य वे बड़े चाव से पढ़ते थे ।

गौस अपने गणितज्ञ-मित्रों को पत्र तो लिखते थे, मगर मिलने-जुलने और यात्राएं करने का उन्हें शौक नहीं था । 1831 ई. में उनकी दूसरी पत्नी, मिन्ना, का भी देहांत हो गया । उसके बाद गौस काफी उदास रहने लगे; मगर उनका अनुसंधान-कार्य सतत जारी रहा । बताया जाता है कि गौस अपने जीवन के अंतिम 23 सालों में केवल एक रात के लिए ही अपनी वेधशाला की छत के नीचे नहीं सोए ।

गौस को उनके अंतिम वर्षों में अनेक सम्मान मिले । हालांकि वे हमेशा प्रसन्नचित्त नहीं रहते थे, मगर जीवन के अंतिम दिनों तक गवेषणा-कार्य में जुटे रहे । गौस का सम्पूर्ण कृतित्व, जो न्यूटन के कृतित्व से भी बहुत ज्यादा है, उनकी मृत्यु के बाद 1863-1933 ई. के बीच कुल 12 खंडों में प्रकाशित हुआ ।

हान्नोवर और गॉटिंगेन के बीच रेलमार्ग खुला, तो 16 जून, 1854 को गौस उसके उद्घाटन समारोह में शरीक हुए । उसके बाद उनका स्वास्थ्य गिरता गया। 23 फरवरी, 1855 को, 78 साल की आयु में, गॉटिंगेन वेधशाला के उनके निवास-स्थान पर उनका देहांत हुआ । उसके तुरंत बाद हान्नोवर के शासक ने गौस के सम्मान में एक स्मृति-पदक तैयार करने का आदेश दिया । उस पर अभिलेख अंकित है —

> ''हान्नोवर के राजा जार्ज पंचम् की ओर से गणितज्ञों के राजकुमार के लिए''

तभी से महान गौस 'गणितज्ञों के राजकुमार' कहे जाते हैं ।

सहायक ग्रंथ

1. डब्ल्यू. के. बीह्लेर — **गौस (ए बायोग्राफिकल स्टडी)**, स्प्रिंगेर-वेरलाग, न्यूयार्क 1981
2. होवार्ड इवेस — **एन इन्ट्रोडक्शन टु द हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स** (पांचवां संस्करण), न्यूयार्क 1983
3. डेविड यूजेन स्मिथ — **ए सोर्सबुक इन मैथेमेटिक्स** (दो खंड), डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1959
4. डेविड यूजेन स्मिथ — **हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स** (दो खंड), डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1959
5. ई. टी. बेल — **मेन आफ मैथेमेटिक्स** (भाग 1), पेलिकन बुक, लंदन 1953
6. मॉरिस क्लाइन — **मैथेमेटिकल थॉट फ्राम एंशियंट टु माडर्न टाइम्स**, न्यूयार्क, 1972
7. डिर्क जे. स्त्रुइक — **ए कंसाइज हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स** लंदन 1959
8. जेम्स आर. न्यूमान — **द वर्ड आफ मैथेमेटिक्स** (चार खंड), न्यूयार्क 1956

9. उस्पेंस्की और हीस्लेट — **एलिमेंट्री नंबर थ्योरी**, न्यूयार्क 1939
10. लांसेलॉट हॉग्बेन — **मैथेमेटिक्स इन द मेकिंग**, लंदन 1960
11. डेविड बेरगामिनी — **मैथेमेटिक्स**, टाईम-लाइफ बुक, हांगकांग 1980
12. वी. स्मिल्गा — **इन द सर्च फार ब्यूटी**, मास्को 1970

संदर्भ और टिप्पणियां

1. हंगेरी के गणितज्ञ वोल्फगांग (फरकास) बोल्याई (1775-1856 ई.) गॉटिंगेन विश्वविद्यालय में गौस के सहपाठी (1796-98 ई.) थे । सन् 1799 में हंगेरी लौटने के बाद उन्होंने ज्यामिति के मूलाधार से संबंधित अपना अध्ययन जारी रखा और गौस के साथ पत्र-व्यवहार करते रहे । उनके पुत्र यानोस बोल्याई (1802-1860 ई.) का अ-यूक्लिडीय ज्यामिति से संबंधित महत्वपूर्ण कृतित्व उनकी पुस्तक **टेंटामेन** (1832 ई.) में ही, परिशिष्ट के रूप में, प्रकाशित हुआ था ।

   वोल्फगांग बोल्याई ने अपने आत्मचरित्र में गौस के बारे में लिखा है — "गौस से मेरा परिचय उस समय हुआ जब वे (गॉटिंगेन में) विद्यार्थी थे । वे अत्यंत विनयशील थे और उनमें दिखावा बिल्कुल नहीं था । उनके साथ सालों तक सम्पर्क रखने पर भी उनकी महानता को पहचानना कठिन था ।...अक्सर हम टहलने निकल पड़ते, और घंटों एक-दूसरे से एक शब्द भी बोले बिना चलते रहते — अपने-अपने चिंतन में खोए हुए !"
2. कार्ल गौस ने अंकगणितीय या समांतर श्रेढ़ी $1+2+3+\cdots 98+99+100$ का हल दिमाग में ही, यह सोचकर कि $100+1 = 101$, $99+2 = 101$, $98+3 = 101$ जैसे 50 जोड़े होते हैं और $101 \times 50 = 5050$, प्राप्त किया था ।
3. गौस की यह डायरी 1898 ई. में खोजी गई । इसमें गुप्त-लेखन के स्वरूप की कुल 146 संक्षिप्त प्रविष्टियां हैं, जिनमें से दो को छोड़कर, शेष सभी का लगभग पूर्णतः उद्घाटन हो गया है । अंतिम प्रविष्टि 9 जुलाई, 1814 की है । इस डायरी ने स्पष्ट कर दिया है कि गौस ने, दूसरे गणितज्ञों से पहले, कौन-कौन-सी चीजें खोज ली थीं ।
4. यूनानी गणितज्ञ ज्यामिति को ज्यादा महत्व देते थे, इसलिए कई संख्याक्रमों को ज्यामितीय आकृतियों तथा नामों से भी व्यक्त करते थे; जैसे, त्रिभुजीय संख्याएं, वर्ग संख्याएं, आदि ।

   त्रिभुजीय संख्याएं सूत्र $\frac{1}{2}$ प (प + 1) से प्राप्त होती हैं, और अगले पृष्ठपर दी गई त्रिभुजीय आकृतियों से भी ।
5. पेटर गुस्टाव लेजेउन डिरिख्ले ने गॉटिंगेन में अध्ययन किया, बेस्लाउ तथा बर्लिन में गणित के प्राध्यापक रहे, और 1855 ई. में गौस की मृत्यु के बाद गॉटिंगेन में उनके उत्तराधिकारी नियुक्त हुए ।

   डिरिख्ले ने गौस के कृतित्व को साफ-सुथरा बनाया । उन्होंने फूरिए श्रेणी के अभिसरण (कन्वरजेंस) का गहन विश्लेषण किया । वे अपने डिरिख्ले सीरीज, डिरिख्ले फंक्शन और डिरिख्ले प्रिंसिपल के लिए भलीभांति जाने जाते हैं । वे कार्ल गुस्टाव याकोबी के मित्र और रिश्तेदार थे ।
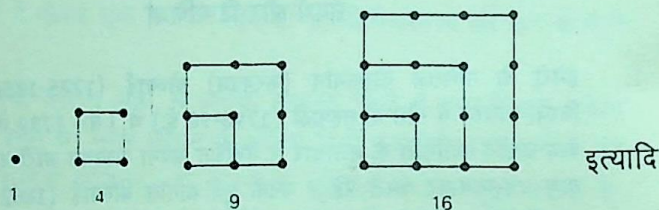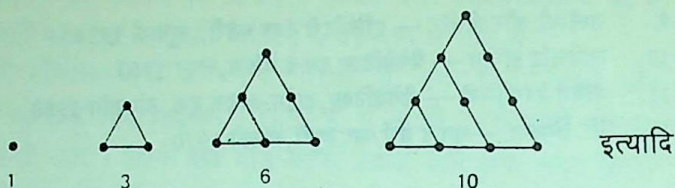
त्रिभुजीय संख्याएं (ऊपर) और वर्ग संख्याएं (नीचे)

डिरिख्ले और गौस के मस्तिष्क गॉटिंगेन विश्वविद्यालय के शरीरविज्ञान विभाग में सुरक्षित रखे गए हैं।

6. योहान फ्रेडरिक फाफ्फ (1765-1825 ई.) हेल्मस्टेड्ट विश्वविद्यालय में गणित के प्राध्यापक थे। गौस कई सप्ताह तक फाफ्फ के घर पर ठहरे थे और तब उन्होंने विश्वविद्यालय के ग्रंथालय का उपयोग किया था। गौस जब अपना शोध-प्रबंध तैयार कर रहे थे, तब फाफ्फ उनके मार्गदर्शक थे।

पेटर गुस्टाव लेजेउन डिरिख्ले (1805-59 ई.)

7. हैनरिख विलहेल्म ओल्बर्स (1758-1840 ई.) पेशे से एक सफल चिकित्सक थे और खगोल-विज्ञान में भी दिलचस्पी रखते थे। गौस से उनकी गहरी दोस्ती थी। ओल्बर्स ने 1802 ई. में दूसरे क्षुद्रग्रह पाल्लास की खोज की। उन्होंने कुछ धूमकेतुओं की कक्षाएं भी निर्धारित कीं।

   खगोल-विज्ञान में 'ओल्बर्स विरोधाभास' प्रसिद्ध है। ओल्बर्स के अनुसार, यदि अनगिनत तारे आकाश में एकरूप से फैले हुए हैं, तो रात में सारा आकाश खूब जगमगाना चाहिए। मगर आज हम जानते हैं कि वायुमंडल के ऊपर आकाश काला है। इस 'विरोधाभास' का समाधान यह है कि दूर के तारे (मंदाकिनियां) अधिक तेजी से दूर भाग रहे हैं और ब्रह्माण्ड का विस्तार हो रहा है।

8. गौस के गहरे मित्र फ्रेडरिक विलहेल्म बेसेल (1784-1846 ई.) एक उच्च कोटि के

गणितज्ञ और खगोलविद थे। उन्होंने ही पहली बार 1838 ई. में आकाश के एक तारे (हंस-61) की दूरी निर्धारित की थी। बेस्सेल कोनिग्सबर्ग वेधशाला के निदेशक रहे। उच्च गणित में 'बेस्सेल फलन' प्रसिद्ध है।

लोबाचेवस्की और बोल्याई

सदियों तक माने जाते रहे विश्वासों को चुनौती देना, उन्हें गलत साबित करना और उनके स्थान पर नए सिद्धांतों की स्थापना करना सचमुच ही बड़े साहस की बात है ।

पोलैंड के महान खगोलविद **कोपर्निकस** (1473-1543 ई.) ने ठीक यही किया था । कोपर्निकस के पहले के प्रायः सभी ज्योतिषियों का (भारतीय ज्योतिषियों का भी) यही विश्वास था कि पृथ्वी विश्व के केंद्र में स्थित है और सूर्य, ग्रह तथा तारे इसकी परिक्रमा करते हैं । सिकंदरिया के महान ज्योतिषी **तालेमी** (ईसा की दूसरी सदी) की भी यही मान्यता थी । ईसाई धर्म भी इसी मान्यता का समर्थक था ।

कोपर्निकस ने इस भूकेंद्रवादी मान्यता को चुनौती दी, इसे मिथ्या साबित किया और इसके स्थान पर एक नए सूर्यकेंद्रवादी सिद्धांत की स्थापना की । इस नए सिद्धांत को पेश करना इतने बड़े साहस का काम था कि कोपर्निकस अपने जीवन के अंतिम क्षणों में ही इसे प्रकाशित हुआ देख पाए ।

पिछली सदी के पूर्वार्ध में कुछ इसी तरह की घटना ज्यामिति (रेखागणित) के क्षेत्र में घटित हुई । आज स्कूलों में जो ज्यामिति पढ़ाई जाती है उसका बुनियादी ढांचा सिकंदरिया के यूनानी गणितज्ञ **यूक्लिड** (300 ई. पू.) ने तैयार किया था । यूक्लिड की ज्यामिति की पुस्तक करीब 2200 साल तक पाठ्य-पुस्तक के रूप में इस्तेमाल की जाती रही । ज्यामिति का मतलब था — यूक्लिड की ज्यामिति । केवल एक ही ज्यामिति का अस्तित्व था । और वह थी यूक्लिड की ज्यामिति । मान लिया गया था कि यूक्लिड की ज्यामिति ही भौतिक जगत की एकमात्र वास्तविक ज्यामिति है । यूक्लिड के प्रमेयों को पत्थर की लकीर मान लिया गया था । यूक्लिड की कुछ बुनियादी मान्यताओं पर ही प्रश्नचिह्न लगाए गए थे, मगर पिछली सदी के आरंभ तक किसी ने भी यह सोचने का साहस नहीं किया था कि यूक्लिड की ज्यामिति के अलावा भी अन्य किस्म की ज्यामितियों का अस्तित्व संभव है ।

इस तरह के विचार सबसे पहले, पिछली सदी के आरंभ में, महान जर्मन गणितज्ञ **कार्ल फ्रेडरिक गौस** (1777-1855 ई.) को सूझे थे । गौस को भलीभांति

स्पष्ट हो गया था कि यूक्लिड की ज्यामिति से भिन्न एक ज्यामिति का निर्माण करना संभव है । उदाहरण के लिए, गौस ने 1824 ई. में अपने एक गणितज्ञ-मित्र टौरिनुस को लिखा था कि, यदि यह मान लिया जाए कि त्रिभुज के भीतर के तीनों कोणों का योग 180° से कम होता है, तब भी यूक्लिड से भिन्न एक सुसंगत ज्यामिति का निर्माण करना संभव है । गौस ने इस नई ज्यामिति को **अ-यूक्लिडीय ज्यामिति** (नॉन-यूक्लिडियन ज्यॉमिट्री)का नाम दिया था । आज यूक्लिड से भिन्न कुछ ज्यामितियों के लिए गौस द्वारा दिए गए इसी नाम का इस्तेमाल होता है ।

मगर गौस ने स्वयं किसी अ-यूक्लिडीय ज्यामिति की स्थापना नहीं की । उन्हें शायद यह भय था कि यदि वे यूक्लिड की चिरस्थापित ज्यामिति के विरोध में एक नई ज्यामिति का प्रतिपादन करते हैं, तो गणितज्ञ उनका मखौल उड़ाएंगे । इसलिए गौस ने अपने अनुसंधानों को प्रकाशित नहीं किया । उन्होंने अपने कुछ अंतरंग मित्रों को पत्र लिखकर ही इस विषय की जानकारी दी ।

जो काम महान गौस के लिए संभव नहीं हुआ, उसे कर दिखाया रूस के कजान विश्वविद्यालय के गणितज्ञ **निकोलाई इवानोविच लोबाचेवस्की** (1792-1856 ई.) ने, 1826-30 ई. के दौर में । लोबाचेवस्की की नई ज्यामिति का तत्काल स्वागत नहीं हुआ, क्योंकि समकालीन गणितज्ञ उसे समझने में समर्थ नहीं थे । ज्यामिति से संबंधित प्रचलित मान्यताओं से लोबाचेवस्की के विचार इतने भिन्न थे, इतने क्रांतिकारी थे, कि उनकी मृत्यु के बाद ही उनकी अ-यूक्लिडीय ज्यामिति को व्यापक मान्यता मिल पाई । ब्रिटिश गणितज्ञ **विलियम क्लिफोर्ड** (1845-1879 ई.)[1] ने ठीक ही कहा है कि खगोल-विज्ञान के क्षेत्र में जो काम कोपर्निकस ने किया, ज्यामिति के क्षेत्र में वही काम लोबाचेवस्की ने किया । संयोग की बात यह है कि दोनों ही वैज्ञानिक स्लाव प्रजाति के थे ।

यह भी एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि अ-यूक्लिडीय ज्यामितियों का उदय यूरोप के तीन स्थानों में, स्वतंत्र रूप से, लगभग एक साथ ही हुआ । जिस समय लोबाचेवस्की कजान में अपनी नई ज्यामिति के निर्माण में जुटे थे, उसी समय मग्यार (हंगेरी) में एक तरुण गणितज्ञ **यानोस बोल्याई** (1802-1860 ई.) उसी तरह की एक नई ज्यामिति का सृजन कर रहे थे । हम बता ही चुके हैं कि अ-यूक्लिडीय ज्यामिति के विचार सबसे पहले, 1800 ई. के आसपास, गॉटिंगेन (जर्मनी) के गणितज्ञ गौस को सूझे थे । बाद में गॉटिंगेन के ही एक महान गणितज्ञ **बेर्नहार्ड रीमान** (1826-1866 ई.) ने अ-यूक्लिडीय ज्यामितियों का एक व्यापक सिद्धांत प्रस्तुत कर दिया ।

पिछले लेख में हम महान गौस के बारे में जानकारी दे चुके हैं । इस लेख में

हम लोबाचेवस्की और बोल्याई का परिचय देंगे । रीमान के जीवन और कृतित्व की जानकारी आगे एक स्वतंत्र लेख में दी जा रही है ।

आज भी स्कूलों में, थोड़े हेर-फेर के साथ, यूक्लिड की ही ज्यामिति पढ़ाई जाती है । बच्चे सोचते हैं कि यूक्लिड की ज्यामिति ही एकमात्र वास्तविक ज्यामिति है। अतः बच्चों को जब पहली बार बताया जाता है कि यूक्लिड से भिन्न ज्यामितियों का भी अस्तित्व है, तो उन्हें सहसा यकीन नहीं होता ।

आधुनिक गणित मुख्यतः तर्कशास्त्र पर आधारित है, इसलिए इसका दायरा अब बहुत विस्तृत हो गया है । संख्याओं का उदाहरण लीजिए । सदियों तक गणित मुख्यतः पूर्णांक या परिमेय संख्याओं के उपयोग तक सीमित रहा । अपरिमेय संख्याओं का, यहां तक कि ऋण संख्याओं का भी, इस्तेमाल करने में बड़े-बड़े गणितज्ञ भी हिचकते थे । मगर आज संख्याओं का दायरा **वास्तविक** (रीयल) और **सम्मिश्र** (कॉम्प्लेक्स) संख्याओं तक विस्तृत हो गया है । 'अनंत' की भी कई श्रेणियां हैं ।

इसी तरह, आज बीजगणित वह नहीं रहा जो कि ब्रह्मगुप्त (628 ई.) या भास्कराचार्य (1150 ई.) के समय में था । अब कई प्रकार के बीजगणितों का अस्तित्व है ।

यही बात ज्यामिति के बारे में है । पिछली करीब 23 सदियों से दुनियाभर में यूक्लिड की ज्यमिति पढ़ाई जा रही है, इसलिए हमारी यह दृढ़ मान्यता बन गई है कि यही ज्यामिति भौतिक विश्व की वास्तविक ज्यामिति है । हम सोचते हैं कि विश्व में कहीं भी जाने पर त्रिभुज के भीतरी कोणों का योग 180° ही होगा। मगर यह सत्य नहीं है । **आइंस्टाइन** ने अपने आपेक्षिकता के सिद्धांत में एक
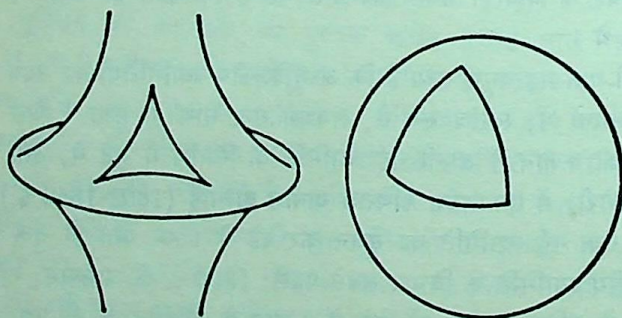
छद्मगोलक (स्यूडोस्फेयर) पर (बाएं) त्रिभुज के तीनों भीतरी कोणों का योग 180° से कम होता है, और गोल पर (दाएं) 180° से अधिक होता है ।

अ-यूक्लिडीय ज्यामिति का उपयोग किया है । और, अ-यूक्लिडीय ज्यामितियों में त्रिभुज के कोणों का योग 180° नहीं होता ।

आज हम जानते हैं कि, विशुद्ध गणित की दृष्टि से कई किस्म की ज्यामितियों का निर्माण किया जा सकता है । आधुनिक गणित की दृष्टि से महत्व का प्रश्न यह नहीं है कि "त्रिभुज के भीतरी कोणों का योग 180° होता है या नहीं?", बल्कि यह है कि "क्या तार्किक दृष्टि से यह आवश्यक है कि त्रिभुज के कोणों का योग 180° ही हो?"

ठीक यही सवाल प्रस्तुत करके गौस, लोबाचेवस्की और बोल्याई इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि तार्किक दृष्टि से ऐसी ज्यामिति का सृजन करना संभव है जिसमें त्रिभुज के तीनों भीतरी कोणों का योग 180° होना आवश्यक नहीं है । यूक्लिड की ज्यामिति के लिए यह आवश्यक है । यूक्लिडीय ज्यामिति और अ-यूक्लिडीय ज्यामितियों में यही बुनियादी अंतर है ।

लोबाचेवस्की और बोल्याई द्वारा संस्थापित अ-यूक्लिडीय ज्यामितियों का थोड़ा परिचय हम आगे देंगे । पहले इन गणितज्ञों के संघर्षमय जीवन को जान लेना उपयोगी होगा । लोबाचेवस्की को हम पहले लेंगे ।

निकोलाई इवानोविच लोबाचेवस्की का जन्म रूस के निज्नी नोवगोरद राज्य के मकारिएव जिले में 1 दिसंबर, 1792 ई. को हुआ था (उस समय रूस में प्रचलित ग्रेगोरी पंचांग 12 दिन पीछे था, इसलिए पुरानी पद्धति के अनुसार लोबाचेवस्की की जन्मतिथि 20 नवंबर, 1792 मानी जाती है) । निकोलाई के पिता पटवारी की हैसियत के एक सामान्य सरकारी मुलाजिम थे । लोबाचेवस्की के एक आरंभिक जीवनीकार ने लिखा है कि उनका जन्म दारिद्र्य और अभाव के परिवेश में हुआ था ।

निकोलाई जब सात साल के थे तभी उनके पिता का देहांत हुआ । तीन बेटों — अलेक्सांद्र, निकोलाई और अलेक्सेई — के लालन-पालन का बोझ 24 साल की तरुणी मां के कंधों पर आ पड़ा । मां प्रास्कोविया इवानोवना ने इस बोझ को किस तरह झेला, इसके बारे में कोई स्पष्ट विवरण नहीं मिलता ।

प्रास्कोविया अपने तीन बेटों को लेकर कजान पहुंची । कजान नगर वोल्गा नदी के तट पर बसा हुआ है । मां ने प्रयत्न करके अपने तीनों बेटों को कजान के सरकारी स्कूल (जिमनेशियम) में दाखिल कर दिया । निकोलाई ने सरकारी खर्च से 1807 ई. में, 14 साल की आयु में, स्कूल की पढ़ाई पूरी की । उसी साल उन्होंने कजान विश्वविद्यालय में दाखिला लिया ।

दो साल पहले (1805 ई. में) ही कजान विश्वविद्यालय की स्थापना हुई थी । आरंभ में विश्वविद्यालय उसी स्कूल (जिमनेशियम) में खुला, जहां लोबाचेवस्की
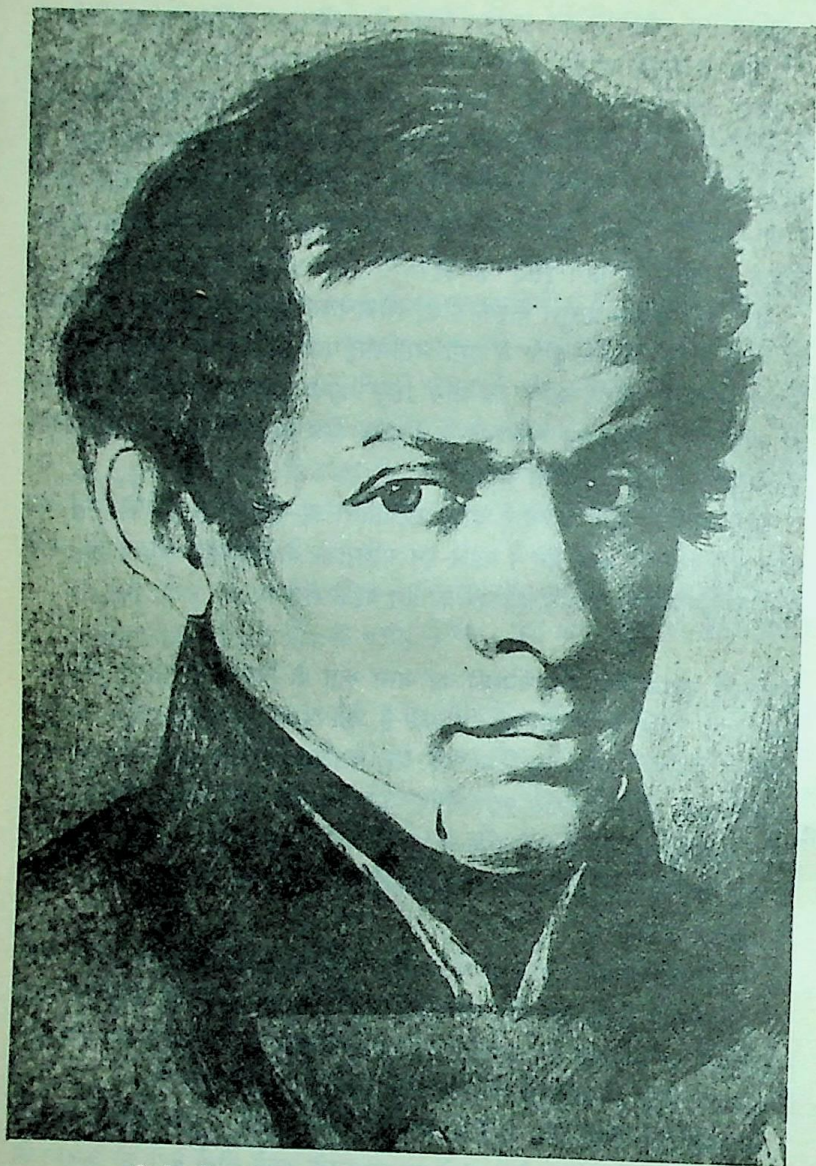
निकोलाई इवानोविच लोबाचेवस्की (1792-1856 ई.)

विद्यार्थी थे । 1807 ई. में विश्वविद्यालय में दाखिला लेने के बाद आगे के 40 साल लोबाचेवस्की ने वहीं पर गुजारे । पहले वे वहां विद्यार्थी रहे, फिर क्रमशः सहायक प्राध्यापक, प्राध्यापक, मुख्य ग्रंथपाल और अंत में विश्वविद्यालय के अध्यक्ष (रेक्टर) बने । लोबाचेवस्की के अध्यक्षकाल में कजान विश्वविद्यालय ने खूब उन्नति की । उनकी देखरेख में वहां नई इमारतें बनीं, वेधशाला स्थापित हुई, बढ़िया ग्रंथालय स्थापित हुआ, वैज्ञानिक उपकरण तैयार करने के लिए एक वर्कशाप बनी, और समूचे रूस के खनिजों का प्रतिनिधित्व करनेवाला एक विशाल संग्रह तैयार हुआ । लोबाचेवस्की के अथक प्रयासों से कजान विश्वविद्यालय यूरोप का एक प्रमुख शिक्षा-संस्थान बन गया ।

कजान विश्वविद्यालय ने बाद में अनेक महान हस्तियों को पैदा किया । यहां केवल दो का ही उल्लेख करना पर्याप्त होगा : तॉलस्ताय और लेनिन (व्लादिमीर उल्यानोव) ने कजान विश्वविद्यालय में ही शिक्षा प्राप्त की थी । 1887 ई. में विद्यार्थियों की एक हड़ताल में भाग लेने के कारण लेनिन को विश्वविद्यालय से निष्कासित कर दिया गया था । बाद में लेनिन से किसी ने पूछा था : "क्रांतिकारी संघर्ष में आपने पहला कदम कहां रखा था?" लेनिन का उत्तर था : "कजान विश्वविद्यालय में ।"

कजान विश्वविद्यालय शुरू से ही अपने क्रांतिकारी विचारों के लिए प्रसिद्ध रहा है । इसी विश्वविद्यालय में लोबाचेवस्की ने ज्यामिति के क्षेत्र में क्रांतिकारी विचार प्रस्तुत करके एक नई ज्यामिति का निर्माण किया था । लेकिन ये आगे की बातें हैं ।

लोबाचेवस्की ने जिस साल (1807 ई. में) विश्वविद्यालय में दाखिला लिया, उसी साल उनके बड़े भाई अलेक्सांद्र की मृत्यु हुई । निकोलाई को बड़ा सदमा पहुंचा । उन्होंने विश्वविद्यालय में चिकित्सा-विज्ञान का अध्ययन करने का निर्णय लिया । मगर दो साल बाद वे पुनः अपने प्रिय विषय गणित की ओर लौटे । उसी बीच विज्ञान के तीन विदेशी विद्वान कजान विश्वविद्यालय में प्राध्यापक नियुक्त हुए । वे तीन विद्वान थे — बार्टेल्स, लिट्रोव और ब्रोन्नेर । **बार्टेल्स** गणित के एक सुयोग्य अध्यापक थे ।[2] बार्टेल्स के सहयोग से लोबाचेवस्की ने गणितीय साहित्य का गहन अध्ययन किया । इसमें संदेह नहीं कि बार्टेल्स की प्रेरणा से ही लोबाचेवस्की ने गणित को अपने अनुसंधान का विषय बनाया ।

अठारह साल की आयु में, 1811 ई. में, लोबाचेवस्की ने 'मास्टर' की उपाधि प्राप्त की । आगे दो साल तक वे विश्वविद्यालय से ही जुड़े रहे । नया विश्वविद्यालय था, इसलिए उसके प्रशासन में बड़ी गड़बड़ियां थीं । 1814 ई. में लोबाचेवस्की विश्वविद्यालय में सहायक प्राध्यापक और 1816 ई. में पूर्ण प्राध्यापक नियुक्त हुए । तब से 24 साल के लोबाचेवस्की के जीवन का नया दौर

शुरू हुआ । उन्हें प्रशासन के थपेड़ों को झेलना पड़ा, मगर वे लगातार तरक्की करते गए । वे विभागाध्यक्ष बने, मुख्य ग्रंथपाल बने और विश्वविद्यालय की भवन-निर्माण समिति के सदस्य भी बने । अंत में, 1827 ई. में, वे कजान विश्वविद्यालय के अध्यक्ष (रेक्टर) नियुक्त हुए ।

विश्वविद्यालय के प्रशासन से संबंधित जिम्मेदारियों को संभालने के साथ-साथ लोबाचेवस्की गणितीय अनुसंधान में भी जुटे रहे । उन्होंने ज्यामिति का गहन अध्ययन किया था । लोबाचेवस्की ने 1823 ई. में ज्यामिति के बारे में एक पाठ्य-पुस्तक तैयार की थी । उस पुस्तक में ज्यामिति को जिस नए ढांचे में प्रस्तुत किया गया था उसे अधिकारियों द्वारा पसंद नहीं किया गया और पुस्तक अप्रकाशित रह गई । मगर उस पुस्तक को देखने से स्पष्ट होता है कि लोबाचेवस्की ने एक नई ज्यामिति के निर्माण की दिशा में सोचना शुरू कर दिया था ।

यूक्लिड ने अपनी ज्यामिति का समूचा ढांचा परिभाषाओं, अभिगृहीतों (पोस्टुलेट्स) और स्वयंसिद्धियों (एक्सियम्स) पर खड़ा किया है । यूक्लिड ने बिंदु, रेखा आदि की परिभाषाओं के बाद 5 अभिगृहीत दिए हैं । इनके बारे में उन्होंने शुरू में ही लिख दिया है : ''यदि हम यह स्वीकार कर लें··· ।'' अर्थात्, यूक्लिड की ज्यामिति के लिए हमें इन अभिगृहीतों को, बिना किसी संदेह के, स्वीकार कर लेना है । इनकी सत्यता के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं, ये स्वयंसिद्ध हैं ।

परंतु यूक्लिड के पांचवें अभिगृहीत के बारे में यह बात नहीं कही जा सकती। शायद स्वयं यूक्लिड को भी इस अभिगृहीत के स्वयंसिद्ध होने के बारे मे संदेह था। इसलिए उन्होंने अपने ग्रंथ में काफी बाद में जाकर, 28 प्रमेय प्रस्तुत करने के बाद, इसका समावेश किया था । यूक्लिड का पांचवां अभिगृहीत है —

अब एक सीधी रेखा है और इस रेखा के बाहर प एक निर्दिष्ट बिंदु है। तब प बिंदु से अब रेखा के समांतर एक, और केवल एक ही, रेखा खींची जा सकती है ।

चूंकि इस अभिगृहीत में **समांतर** (पैरेलल) शब्द महत्व का है, इसलिए इसे **समांतर अभिगृहीत** कहा जाता है । त्रिभुज के कोणों का योग 180° के बराबर होता है, यह प्रमेय इसी पांचवें अभिगृहीत के समतुल्य है ।

यूक्लिड के बाद अनेकानेक गणितज्ञों ने इस अभिगृहीत को दूसरे सरल अभिगृहीतों से सिद्ध करने के प्रयास किए । किंतु किसी को भी इसमें सफलता नहीं मिली । आरंभ में इस दिशा में लोबाचेवस्की ने भी प्रयास किए थे । मगर उन्हें जल्दी ही इस प्रयास की निरर्थकता स्पष्ट हो गई ।
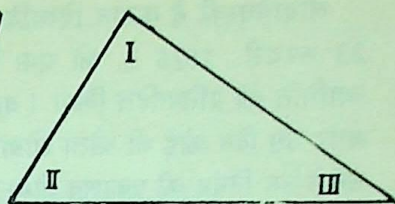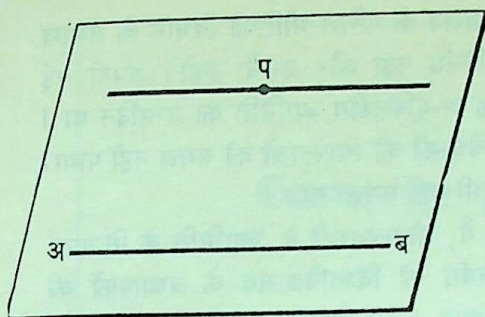
यूक्लिडीय ज्यामिति में अब रेखा के समांतर बाह्य बिंदु प से केवल एक ही रेखा खींची जा सकती है, और इसमें त्रिभुज के तीन भीतरी कोणों का योग 180° होता है

यूक्लिड के उपर्युक्त पांचवें अभिगृहीत के अनुसार बिंदु प से अब रेखा के समांतर केवल एक ही रेखा खींची जा सकती है। मगर लोबाचेवस्की ने मान लिया कि बिंदु प से अब रेखा के समांतर एक से अधिक ऐसी रेखाएं खींची जा सकती हैं जो अब रेखा से नहीं मिलतीं।
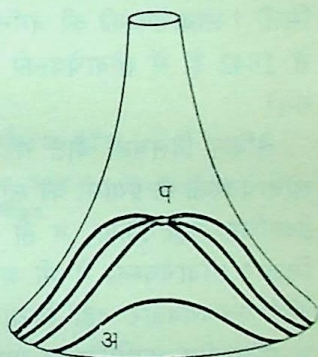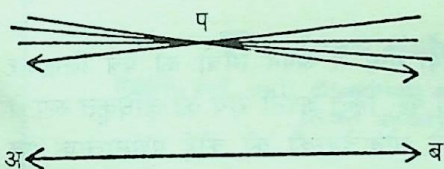
लोबाचेवस्की की ज्यामिति के अनुसार अब रेखा के समांतर बाह्य बिंदु प से एक से अधिक रेखाएं खींची जा सकती हैं; जैसे, छद्मगोलक पर (दाईं ओर)। और, इस ज्यामिति में त्रिभुज के तीन भीतरी कोणों का योग 180° से कम होता है

स्पष्ट प्रतीत होता है कि ऐसा संभव नहीं है। मगर लोबाचेवस्की के अभिगृहीत के आधार पर भी एक तार्किक और सुसंगत ज्यामिति का निर्माण किया जा सकता है। लोबाचेवस्की ने ठीक यही किया। उन्होंने अपनी नई ज्यामिति को 'काल्पनिक ज्यामिति' का नाम दिया था, मगर गौस ने पहले ही इसे अ-यूक्लिडीय ज्यामिति का नाम दे रखा था। लोबाचेवस्की की ज्यामिति को 'हाइपरबोलिक ज्यामिट्री' भी कहते हैं।

लोबाचेवस्की ने कजान विश्वविद्यालय के गणित-भौतिकी विभाग के सम्मुख 23 फरवरी, 1826 ई. को एक निबंध पढ़ा और उसमें उन्होंने अपनी नई ज्यामिति को प्रतिपादित किया। वह अ-यूक्लिडीय ज्यामिति का जन्मदिन था। मगर उस दिन कोई भी श्रोता लोबाचेवस्की की स्थापनाओं को समझ नहीं पाया। उनके उस निबंध को प्रकाशन योग्य भी नहीं समझा गया!

फिर तीन साल बाद, 1829 ई. में, लोबाचेवस्की ने 'ज्यामिति के सिद्धांत' नामक अपने एक विस्तृत शोध-निबंध को विश्वविद्यालय के अध्यापकों की पत्रिका **कजान संदेश** में प्रकाशित किया। उस निबंध में उन्होंने अ-यूक्लिडीय ज्यामिति का स्पष्ट विवेचन किया था।

लोबाचेवस्की के उस निबंध का भी स्वागत नहीं हुआ। उलटे, उसका मखौल उड़ाया गया और उसके खिलाफ व्यंग्यपूर्ण लेख लिखे गए। यहां तक कि रूस की विज्ञान अकादमी ने उसे प्रकाशित करने से इनकार कर दिया।

लोबाचेवस्की ने अ-यूक्लिडीय ज्यामिति के बारे में कई निबंध लिखे। 1840 ई. में उन्होंने अपनी एक कृति जर्मन भाषा में प्रकाशित की। तब पहली बार रूस के बाहर के गणितज्ञों को लोबाचेवस्की के कृतित्व के बारे में जानकारी मिली! लोबाचेवस्की की जर्मन कृति को गौस ने भी पढ़ा और गौस के ही प्रयास से 1842 ई. में लोबाचेवस्की गॉटिंगेन रॉयल सोसायटी के विदेशी सदस्य चुने गए।

लेकिन दिलचस्प बात यह है कि गौस ने अपने मित्रों को पत्र लिखकर लोबाचेवस्की के प्रयासों की स्तुति तो की, किंतु अपनी राय को अधिकृत रूप से प्रकाशित नहीं किया, न ही उन्होंने लोबाचेवस्की को कोई प्रशंसात्मक पत्र लिखा। लोबाचेवस्की ने भी अपनी अ-यूक्लिडीय ज्यामिति के बारे में गौस से कोई पत्र-व्यवहार नहीं किया। गौस यदि खुले तौर पर लोबाचेवस्की की अ-यूक्लिडीय ज्यामिति का समर्थन करते तो सारी स्थिति ही बदल जाती और लोबाचेवस्की अपने देश में एक महान गणितज्ञ के रूप में गौरवान्वित होते। मगर, दुर्भाग्य से, लोबाचेवस्की को, उनके जीवनकाल में, यह गौरव प्राप्त न हो सका।

लोबाचेवस्की ने विश्वविद्यालय की इतनी अधिक जिम्मेदारियां संभाली थीं कि समझ में नहीं आता कि वे अ-यूक्लिडीय ज्यामिति के सृजन के लिए समय कैसे निकाल पाए। 1827 ई. में वे विश्वविद्यालय के अध्यक्ष नियुक्त हुए थे और 1846 ई. तक इस पद पर बने रहे। 1830 ई. में रूस में हैजे की महामारी फैली थी। उस समय लोबाचेवस्की ने विश्वविद्यालय से संबंधित सभी कर्मचारियों और अध्यापकों के परिवारों को विश्वविद्यालय में शरण देकर और शेष दुनिया से पृथक करके इस प्रकोप से बचाया। उनकी इस व्यवस्था से कजान के केवल

Geometrische Untersuchungen

zur

Theorie der Parallellinien

von

Nicolaus Lobatschewsky,

Kaiserl. russ. wirkl. Staatsrathe und ord. Prof. der Mathematik
bei der Universität Kasan.

Berlin. 1840.

In der G. Fincke'schen Buchhandlung

अ-यूक्लिडीय ज्यामिति से संबंधित लोबाचेवस्की की जर्मन कृति (1840 ई.) का मुखपृष्ठ

दो प्रतिशत लोग ही हैजे के शिकार हुए ।

चालीस साल की आयु में, 1832 ई. में, कजान के एक सम्पन्न परिवार की तरुणी वार्या मोईसीवा से लोबाचेवस्की का विवाह हुआ । मगर उनका वैवाहिक जीवन सुखी नहीं रहा । उनके 15 या 18 बच्चे हुए, मगर उनमें से अधिकतर बचपन में ही गुजर गए । अपने अलेक्सेई नामक बेटे से उन्हें बेहद लगाव था । लेकिन 1853 ई. में अलेक्सेई की मृत्यु हुई तो लोबाचेवस्की को बड़ा सदमा पहुंचा । उसके बाद उनका स्वास्थ्य गिरता गया । उनकी आंखों की ज्योति भी जाती रही ।

उसके बाद लोबाचेवस्की केवल तीन साल और जीवित रहे । उस दौर में उन्हें एक के बाद एक कई संकटों का सामना करना पड़ा । लेकिन अब उन्हें किसी चीज से लगाव नहीं रह गया था । उनकी दिलचस्पी की केवल एक ही चीज रह गई थी—उनकी अपनी ज्यामिति । जीवन के अंतिम दिनों में, अंधावस्था में, लोबाचेवस्की ने अ-यूक्लिडीय ज्यामिति के बारे में एक और कृति बोल-बोल कर लिखवाई !

उसके कुछ ही दिन बाद, 24 फरवरी, 1856 ई. को, लोबाचेवस्की का देहांत हुआ । लोबाचेवस्की को अपने जीवन में कई उच्च पद मिले, उनके प्रशासनिक कार्यो का खूब गौरव भी हुआ, मगर उनका महान बौद्धिक कृतित्व—अ-यूक्लिडीय ज्यामिति के निर्माण का उनका कार्य—उनके जीवनकाल में उपेक्षित ही रह गया !

यानोस बोल्याई

घटना 1820 ई. की है । एक गणितज्ञ पिता अपने 18 साल के बेटे को पत्र लिखते हैं —

"तुम (यूक्लिड के) समांतर के अभिगृहीत को सिद्ध करने के चक्कर में मत पड़ो । इसके चक्कर में पड़कर तुम अपना समय और स्वास्थ्य बरबाद कर दोगे, फिर भी हाथ कुछ नहीं लगेगा । इस गहन अंधकार में तुम कोई रोशनी खोज नहीं पाओगे । भगवान के लिए, इस प्रयास को छोड़ दो···।"

पत्र-लेखक पिता थे हंगेरी के गणितज्ञ **फरकास (वोल्फगांग) बोल्याई** (1775-1856 ई.) और उनके तरुण बेटे थे **यानोस बोल्याई** (1802-1860 ई.)। उस समय फरकास हंगेरी के एक कालेज में गणित के प्राध्यापक थे । उन्होंने गॉटिंगेन विश्वविद्यालय में अध्ययन किया था । उन्हीं दिनों कार्ल फ्रेडरिक गौस से उनकी मित्रता स्थापित हुई थी । बोल्याई के हंगेरी वापस लौटने पर दोनों में दीर्घकाल तक पत्र-व्यवहार जारी रहा ।

फरकास बोल्याई ने यूक्लिड के पांचवें अभिगृहीत के बारे में गहन चिंतन किया था और निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि इसे सिद्ध करने के प्रयास व्यर्थ हैं। इसीलिए उन्होंने अपने बेटे को सलाह दी थी कि इसके चक्कर में मत पड़ो।

मगर यानोस एक प्रतिभाशाली और साहसी विद्यार्थी थे। पिता की देखरेख में आरंभिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद, 16 साल की आयु में, यानोस उच्च अध्ययन के लिए वीएना गए थे। अध्ययन पूरा करने के बाद, 21 साल की आयु में, वे सेना में भरती हो गए। 1825-26 ई. में उन्होंने यूक्लिड के समांतर अभिगृहीत पर गहन चिंतन किया और निष्कर्ष पर पहुंचे कि इस अभिगृहीत को अस्वीकार करके एक नई ज्यामिति का निर्माण किया जा सकता है। इस प्रकार यानोस बोल्याई ने जिस नई अ-यूक्लिडीय ज्यामिति का निर्माण किया वह उनके पिता द्वारा 1832 ई. में प्रकाशित गणित की एक पुस्तक के **परिशिष्ट** के रूप में प्रकाशित हुई।[3]

पिता फरकास बोल्याई चाहते थे कि उनके बेटे के इस कृतित्व के बारे में गौस अपनी राय दें। उन्होंने गौस को पत्र लिखे, मगर महान गौस लंबे समय तक चुप्पी साधे रहे। अंत में उन्होंने यानोस की प्रतिभा की प्रशंसा तो की, मगर यह नहीं ही लिखा कि यानोस बोल्याई ने जिस अ-यूक्लिडीय ज्यामिति का निर्माण किया है वह एक महान उपलब्धि है। उलटे, उन्होंने अपने अंतरंग मित्रों को लिखा कि बोल्याई ने जिस ज्यामिति का सृजन किया है वह उन्होंने पहले ही खोज ली थी।

बात सच भी थी। मगर गौस ने अपनी अ-यूक्लिडीय ज्यामिति को मूर्त रूप नहीं दिया था, प्रकाशित नहीं किया था। इसलिए उन्हें बोल्याई के स्वतंत्र कृतित्व का स्वागत करना चाहिए था, उसकी खुलेआम स्तुति करनी चाहिए थी।[4] परंतु गौस ने ऐसा नहीं किया। तरुण बोल्याई को बेहद सदमा पहुंचा। उन्होंने गणित के क्षेत्र में अन्वेषण-कार्य करना छोड़ दिया।

यानोस बोल्याई एक साहसी सैनिक थे, संगीत और काव्य से उन्हें प्रेम था, मगर उनके जीवन के अंतिम साल दुःख और निराशा में गुजरे। सत्तावन साल की आयु में, 1860 ई. में, यानोस बोल्याई का देहांत हुआ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोबाचेवस्की और बोल्याई ने लगभग एक ही समय में लगभग एक ही तरह की अ-यूक्लिडीय ज्यामितियों का स्वतंत्र रूप से सृजन किया था, हालांकि दोनों के तरीके भिन्न थे। यह भी एक महत्व की बात है कि करीब दो हजार साल के प्रयासों के बाद लगभग एक ही समय में गॉटिंगेन, बुडापेस्ट और कजान में अ-यूक्लिडीय ज्यामितियों ने एक साथ जन्म लिया।

लोबाचेवस्की और बोल्याई ने जिस अ-यूक्लिडीय ज्यामिति का निर्माण किया

था उसे आगे कुछ दशकों तक अधिकांश गणितज्ञों ने कोई महत्व नहीं दिया। जर्मनी के महान गणितज्ञ **बेर्नहार्ड रीमान** ने 1854 ई. में जब अ-यूक्लिडीय ज्यामितियों के बारे में एक व्यापक सिद्धांत प्रस्तुत किया, सिद्ध किया कि अनेकानेक अ-यूक्लिडीय ज्यामितियों का निर्माण करना संभव है, तभी जाकर गणितज्ञों ने इनके बारे में गंभीरता से सोचना शुरू किया। मगर अ-यूक्लिडीय ज्यामितियों के सिद्धांत को व्यापक मान्यता 1870 ई. के बाद ही मिली।

यहां हम अ-यूक्लिडीय ज्यामितियों का विवेचन नहीं कर पाएंगे। इन ज्यामितियों को समझने में अनेक कठिनाइयां हैं। यूक्लिड की ज्यामिति की विशेषता यह है कि इसे प्रत्यक्ष पहचाना जा सकता है। अ-यूक्लिडीय ज्यामितियों के बारे में ऐसा सहज संभव नहीं है। त्रिभुज के कोणों का योग 180° से कम या अधिक हो सकता है अथवा किसी प्रदत्त रेखा के समांतर एक बाह्य बिंदु से अनेक रेखाएं खींची जा सकती हैं, यह प्रत्यक्ष अनुभव करना संभव नहीं है। फिर भी अ-यूक्लिडीय ज्यामितियां, यूक्लिड की ज्यामिति की तरह ही, अपने-आप में परिपूर्ण हैं, तार्किक दृष्टि से सुसंगत हैं। और, आधुनिक गणित की दृष्टि से महत्व की बात भी यही है।

यूक्लिड के बाद करीब दो हजार साल तक अनेक गणितज्ञ समांतर के अभिगृहीत से जूझते रहे। पहली बार इटली के जेसुइट-पुरोहित गणितज्ञ **जिरोलामो साच्चेरी** (1667-1733 ई.) ने इस अभिगृहीत को अस्वीकार करके एक नई ज्यामिति का निर्माण करने में आंशिक सफलता प्राप्त की थी, मगर साच्चेरी ने अपने अन्वेषण को बीच में अधूरा ही छोड़ दिया।[5] अ-यूक्लिडीय ज्यामिति के निर्माण में पहली बार सफलता मिली लोबाचेवस्की और बोल्याई को। इनमें भी लोबाचेवस्की का कार्य अधिक व्यापक और परिपूर्ण था।

जब तक अकेली यूक्लिडीय ज्यामिति का अस्तित्व था, तब तक इसे ही भौतिक जगत की वास्तविक ज्यामिति माना जाता रहा। मगर अ-यूक्लिडीय ज्यामितियों का निर्माण होने पर स्थिति बदल गई। **अल्बर्ट आइंस्टाइन** (1879-1955 ई.) ने अपने आपेक्षिकता के सिद्धांत में ज्यामिति और गुरुत्वाकर्षण के बीच संबंध स्थापित किया और निष्कर्ष निकाला कि अ-यूक्लिडीय ज्यामिति ही विशाल विश्व की वास्तविक ज्यामिति है। मगर सीमित क्षेत्र में, पार्थिव विस्तार में, यूक्लिडीय ज्यामिति ही व्यावहारिक ज्यामिति है।

यूक्लिड की ज्यामिति करीब 2200 साल तक मानवीय चिंतन पर हावी रही। इसे ही परम सत्य ज्यामिति माना जाता रहा। यूक्लिड की ज्यामिति गणितीय और तार्किक चिंतन के लिए एक आदर्श ढांचा बन गई थी। लोबाचेवस्की ने इस विश्वास को चुनौती दी, इसे बेबुनियाद सिद्ध किया और विशुद्ध तार्किक चिंतन के आधार पर एक नई सुसंगत ज्यामिति का निर्माण किया। उनके बाद अन्य

प्रकार की अ-यूक्लिडीय ज्यामितियों का भी निर्माण हुआ, मगर इस दिशा में पहला चुनौती-भरा प्रयास लोबाचेवस्की ने ही किया था। लोबाचेवस्की को ठीक ही 'ज्यामिति का कोपर्निकस' कहा जाता है। लोबाचेवस्की ने गणित और चिंतन के क्षेत्र में एक नई दुनिया का उद्घाटन किया।

सहायक ग्रंथ

1. वी. कागान — **नि. लोबाचेवस्की**, मास्को 1957
2. ए. एस. स्मोगोर्जेवस्की — **लोबाचेवस्कीयन ज्यामिट्री**, मास्को 1976
3. डेविड यूजेन स्मिथ — **ए सोर्सबुक इन मैथेमेटिक्स** (दो खंड), डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1959
4. मॉरिस क्लाइन — **मैथेमेटिकल थॉट फ्राम एंशियंट टु माडर्न टाइम्स**, न्यूयार्क 1972
5. होवार्ड इवेस — **एन इंट्रोडक्शन टु द हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स**, न्यूयार्क 1983
6. ई. टी. बेल — **मेन आफ मैथेमेटिक्स** (भाग 2), पेलिकन बुक, लंदन 1953
7. जेम्स आर. न्यूमान — **द वर्ड आफ मैथेमेटिक्स** (चार खंड), न्यूयार्क 1956
8. वी. स्मिल्गा — **इन द सर्च फार ब्यूअटी**, मास्को 1970
9. इमरे टॉथ — **नॉन-यूक्लिडीयन ज्यामिट्री बिफोर यूक्लिड** (लेख), **साइंटिफिक अमेरिकन**, नवम्बर 1969

संदर्भ और टिप्पणियां

1. विलियम किंगडन क्लिफोर्ड एक प्रतिभाशाली गणितज्ञ थे। लंदन और कैम्ब्रिज में अध्ययन करने के बाद वे यूनिवर्सिटी कालेज, लंदन में गणित के प्राध्यापक बने थे। रीमान-तलों से संबंधित उनका कार्य प्रसिद्ध है। उन्होंने कुछ नए बीजगणितों को भी जन्म दिया, जो उनके नाम से जाने जाते हैं।

   क्लिफोर्ड ने प्रतिपादित किया था कि यूक्लिड के सामान्य नियम वास्तविक दिक् पर लागू नहीं होते, क्योंकि दिक् की वक्रता न केवल स्थान-स्थान पर बदलती रहती है, बल्कि द्रव्य की गति के कारण हर क्षण भी बदलती रहती है। क्लिफोर्ड ने बलपूर्वक कहा कि दिक् की इन 'पहाड़ियों' की उपेक्षा करके भौतिकीय नियमों का अन्वेषण करना संभव नहीं है।

   विलियम क्लिफोर्ड
   (1845-79 ई.)

   केवल 34 साल की छोटी आयु में क्लिफोर्ड का निधन हुआ। मगर उन्होंने आपेक्षिकता के सिद्धांत की स्थापना के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया था।
2. मार्टिन बार्टेल्स (1769-1836 ई.) ब्रुन्सविक (जर्मनी) के स्कूल में कार्ल फ्रेडरिक गौस

के अध्यापक रह चुके थे । वे गौस से आयु में केवल आठ साल बड़े थे, मगर उन्होंने बालक गौस की प्रतिभा को पहचाना और उसे गणित के गहन अध्ययन की ओर प्रेरित किया ।

इस प्रकार बार्टेल्स दो महान गणितज्ञों—गौस और लोबाचेवस्की—के अध्यापक और प्रेरणा-स्रोत बने ।

3. फरकास बोल्याई का गणित का ग्रंथ 1832-33 ई. में दो खंडों में प्रकाशित हुआ था । उनके बेटे यानोस बोल्याई का 26 पृष्ठों का प्रबंध उनके ग्रंथ के प्रथम खंड में परिशिष्ट के रूप में प्रकाशित हुआ था ।
4. देखिए आयलर ने लाग्राँज के साथ कैसी उदारता दिखलाई थी— 'लाग्राँज और लापलास' लेख ।
5. साच्चेरी के जीवन के बारे में बहुत कम जानकारी मिलती है । वे इटली के मिलान, पाविया, तुरीन आदि विश्वविद्यालयों में प्राध्यापक रहे । यूक्लिड के 'मूलतत्व' की **असंगति प्रदर्शन** (रिडक्शिओ एड एब्सर्डम्) की तार्किक विधि ने उन्हें बड़ा प्रभावित किया था । बाद में, जब वे पाविया विश्वविद्यालय में गणित के प्राध्यापक थे, तब उन्होंने यूक्लिड के समांतर अभिगृहीत के अध्ययन के लिए इस विधि का उपयोग किया। 'मूलतत्व' के आरंभिक 28 प्रमेयों का, जिनके लिए समांतर अभिगृहीत की आवश्यकता नहीं है, उपयोग करके उन्होंने एक चतुर्भुज पर विचार किया । प्रयास तो सही था, मगर एक मामले में जोर-जबरी से विरोधाभास को व्यक्त करके मार्ग से भटक गए ।

साच्चेरी की समांतर अभिगृहीत के अन्वेषण से संबंधित कृति, उनकी मृत्यु के कुछ महीने पहले, मिलान से 1733 ई. में प्रकाशित हुई । मगर समकालीन गणितज्ञों ने साच्चेरी के कृतित्व पर कोई ध्यान नहीं दिया । इटली के ही गणितज्ञ यूगेनिओ बेलत्रामी (1835-1900 ई.) साच्चेरी की कृति (यूक्लिड : सभी दोषों से मुक्त) को 1889 ई. में पुनः प्रकाश में लाए, तभी गणित-जगत को अ-यूक्लिडीय ज्यामिति के क्षेत्र के इस प्रथम अनुसंधान-कार्य के बारे में जानकारी मिली ।

अब तो ज्यामिति को यूक्लिड से ही मुक्ति मिल गई है !

कोशी, आबेल और याकोबी

उन्नीसवीं सदी के आरंभ से गणितीय अन्वेषण का एक नया दौर शुरू हुआ। न्यूटन के बाद अठारहवीं सदी में यूरोप में आयलर, लाग्राँज, लापलास और लेजंद्र जैसे महान गणितज्ञ पैदा हुए और उन्होंने गणित की विविध शाखाओं को समृद्ध बनाया। मगर उनके गणितीय खोजकार्य में आवश्यक परिपूर्णता नहीं आ पाई थी। गणित को तार्किक कठोरता की नींव पर खड़ा करने का प्रयास महान गौस ने किया था, परंतु उनका काफी अधिक गवेषणा-कार्य उनके जीवनकाल में अप्रकाशित रह गया और वे इस मामले में दूसरे तरुण गणितज्ञों को प्रेरित नहीं कर पाए।

फ्रांस की राज्यक्रांति के आरंभ (1789 ई.) के बाद यूरोप की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों में जो बदलाव आया और विचार-स्वातंत्र्य की जो नई लहर उठी, उसने गणितीय अन्वेषण को भी एक नई दिशा प्रदान की। गणितीय अनुसंधान का लक्ष्य केवल यांत्रिकी और खगोल-विज्ञान की सेवा करना नहीं रह गया। गणित ने अपने को आर्थिक जीवन और युद्धों की आवश्यकताओं से भी अलग कर लिया। उन्नीसवीं सदी के आरंभ से गणित 'विशुद्ध' और 'उपयोगी', इन दो भागों में बंट गया और विशेषीकरण का नया दौर शुरू हो गया। 'गणित के लिए गणित का अध्ययन' आरंभ हुआ।

उन्नीसवीं सदी के आरंभिक दशकों में गणित को यह नई दिशा प्रदान करने वाले यूरोप के तीन महान गणितज्ञ थे—कोशी, आबेल और याकोबी। फ्रांस के गणितज्ञ कोशी को 'क्रांति का शिशु' कहा जाता है, क्योंकि उनका जन्म फ्रांस की राज्यक्रांति के चंद सप्ताह बाद हुआ और उन्होंने बाद की राजनीतिक उथल-पुथल को चरम सीमा तक झेला। नार्वे के गणितज्ञ आबेल का जीवन घोर दरिद्रता में गुजरा और केवल 27 साल की छोटी आयु में उनका देहांत हुआ। याकोबी का जन्म जर्मनी में हुआ था। महान भारतीय गणितज्ञ रामानुजन् की तुलना अक्सर याकोबी की प्रतिभा के साथ की जाती है।

ये तीनों गणितज्ञ लगभग समकालीन थे। तीनों ही 'विशुद्ध' गणित के

आराधक थे । इसीलिए इन तीनों गणितज्ञों को हमने एक साथ लिया है । तीनों में कोशी ज्येष्ठ थे, इसलिए सबसे पहले हम उन्हीं का परिचय देंगे ।

ऑगस्तीन-लुई कोशी (1789-1857 ई.)

ऑगस्तीन-लुई कोशी
(1789-1857 ई.)

फ्रांस की राज्यक्रांति की शुरुआत 14 जुलाई, 1789 ई. को हुई । उस दिन पेरिस की जनता ने बेस्तील के कारावास पर हमला बोला और वहां के बंदियों को मुक्त किया । फ्रांस के राजा लुई 16वें को जब इसकी सूचना मिली तो उसके उद्‌गार थे—'यह तो विद्रोह है ।' एक दरबारी का जवाब था—'नहीं, महाराज, यह तो क्रांति है !'

सचमुच ही, यह उस महान क्रांति की पहली चिनगारी थी जिसने अंततः न केवल यूरोप का नक्शा बदल दिया, बल्कि यूरोप के आर्थिक, सामाजिक और बौद्धिक जीवन को भी बेहद प्रभावित किया ।

ऑगस्तीन-लुई कोशी का जन्म बेस्तील के पतन के कुछ ही सप्ताह बाद, 21 अगस्त, 1789 ई. को, पेरिस में हुआ था । बाद में क्रांति और प्रतिक्रांति का जो लंबा दौर चला, उसने न केवल कोशी के जीवन को, बल्कि उनके कृतित्व को भी खूब प्रभावित किया । गणित के क्षेत्र का कोशी का कार्य भी क्रांतिकारी था । इसीलिए कोशी को प्रायः 'क्रांति का शिशु' कहा जाता है ।

कोंशी के पिता लुई-फ्रांकोई एक सुसंस्कृत, सदाचारी, किंतु कट्टर कैथोलिक थे । बेस्तील के पतन के समय वे पेरिस में एक पुलिस-अधिकारी थे । यह एक करिश्मा ही समझिए कि राज्य-व्यवस्था से जुड़े हुए अन्य अनेक व्यक्तियों की तरह लुई-फ्रांकोई की गर्दन गिलेटिन से काट नहीं दी गई । उन्होंने पेरिस छोड़ दिया और परिवार को लेकर अपने देहात आर्कुए चले गए ।

बेस्तील के पतन के बाद फ्रांस में अराजकता का लंबा दौर चला । स्कूल बंद हो गए । खाने-पीने की चीजें प्राप्त करना कठिन हो गया । कोशी-परिवार के

आगे के करीब ग्यारह साल घोर दारिद्र्य में गुजरे । बालक कोशी के स्वास्थ्य पर भी इसका बड़ा असर हुआ । आगे अनेक सालों तक कोशी शारीरिक दृष्टि से बड़े कमजोर रहे ।

पिता ने अपने बेटे की पढ़ाई की जिम्मेदारी स्वयं अपने ऊपर ले ली । उन्होंने अपने बच्चों के लिए खुद पाठ्य-पुस्तकें लिखीं, जिनमें से कुछ कविता में थीं । इस तरह बालक कोशी ने फ्रांसीसी तथा लैटिन कविता पर अच्छा अधिकार प्राप्त कर लिया । कोशी-परिवार के देहाती निवास के नजदीक ही गणितज्ञ-खगोलविद लापलास (1749-1827 ई.) और रसायनज्ञ बेर्थोले (1748-1822 ई.) के निवास-स्थान थे । लापलास ने यह भी पहचान लिया कि बालक कोशी एक अद्भुत गणितीय प्रतिभा है । आगे जाकर कोशी का कार्य लापलास के लिए आतंक का विषय भी बन गया था । कारण यह था कि बाद में कोशी ने श्रेणियों के अभिसारी (कन्वर्जेन्ट) या अपसारी (डाइवर्जेन्ट) होने के बारे में दृढ़ नियम खोज निकाले थे । तब लापलास को अपने ग्रंथ में प्रयुक्त श्रेणियों की पुनः जांच करके देखनी पड़ी थी !

सन् 1800 ई. में कोशी-परिवार की परिस्थितियां फिर बदल गईं । ज्येष्ठ कोशी पेरिस के सीनेट के सचिव नियुक्त हुए । पिता के कार्यालय के एक कोने में ही किशोर कोशी की भी मेज-कुर्सी सजा दी गई । कभी-कभी गणितज्ञ लाग्राँज (1736-1813 ई.) भी उस कार्यालय में पहुंचते थे । लापलास की तरह लाग्राँज को भी किशोर कोशी की प्रतिभा ने प्रभावित किया । एक दिन, जब वहां लापलास और अन्य कई गण्यमान्य व्यक्ति उपस्थित थे, लाग्राँज ने कोने की ओर इशारा करते हुए कहा—'उस किशोर को देख रहे हैं आप ? एक दिन वह गणित की दौड़ में हम सबको पीछे छोड़ देगा ।'

तेरह साल के कोशी पेरिस के एक स्कूल में दाखिल हुए । वहां उन्होंने कई पुरस्कार प्राप्त किए, छात्रवृत्तियां भी हासिल कीं । 1805 ई. में, सोलह साल की आयु में, उन्होंने पोलीटेकनिक की परीक्षा में दूसरा स्थान प्राप्त किया । उसके बाद उन्होंने सिविल इंजीनियरी के स्कूल में दाखिला लिया । वहां तीन साल की पढ़ाई पूरी करने के तुरंत बाद, 21 साल की आयु में, सैनिक इंजीनियर के महत्वपूर्ण पद पर तरुण कोशी की नियुक्ति हुई । नेपोलियन ने उन्हें चेरबोर्ग बंदरगाह की सैनिक दृष्टि से किलेबंदी करने का काम सौंपा । कोशी अपने साथ चार ग्रंथ लेकर चेरबोर्ग पहुंचे । इनमें एक ग्रंथ था लापलास का 'खगोल-यांत्रिकी', और दूसरा था लाग्राँज का 'वैश्लेषिक यांत्रिकी' । कोशी करीब तीन साल तक चेरबोर्ग में रहे । सैनिक इंजीनियरी का उनका कार्य बड़ी जिम्मेदारी का था, फिर भी गणितीय अनुसंधान के लिए उन्होंने समय निकाला और उसे जारी रखा । उसी दौरान 'बहुफलकों के सिद्धांत' (थ्योरी आफ़

पोलीहेड्रा) और 'सममित फलनों' (सिमिट्रिक फंक्शन्स) के बारे में उनका गवेषणा-कार्य प्रकाशित हुआ ।

चौबीस साल की आयु में, 1813 ई. में, कोशी पेरिस लौटे । गणित-जगत में उनकी कीर्ति फैल चुकी थी । पेरिस में बस जाने के बाद कोशी ने लगातार कई महत्वपूर्ण शोध-निबंध प्रकाशित किए और 1816 ई. में विज्ञान अकादमी का पुरस्कार भी जीता । वे पोलीटेकनिक में अध्यापक नियुक्त हुए । जल्दी ही कालेज द फ्रांस और सारबोन विश्वविद्यालय में प्राध्यापक भी नियुक्त हुए । फ्रांस के सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ के रूप में कोशी की गणना होने लगी । उस समय यूरोप में उनसे श्रेष्ठतर गणितज्ञ केवल गौस ही थे । कोशी इतनी तेजी से शोध-निबंध प्रस्तुत करते जा रहे थे कि विज्ञान अकादमी के लिए उन्हें छापना मुश्किल हो रहा था । सत्ताईस साल की छोटी आयु में कोशी फ्रांस की विज्ञान अकादमी के सदस्य चुने गए ।

सन् 1818 ई. में कोशी का विवाह हुआ । उनकी तरह उनकी पत्नी भी कट्टर कैथोलिक थीं । उनकी दो पुत्रियां हुईं ।

कोशी राज-परिवार के भक्त थे । 1830 ई. की क्रांति में चार्लेस-दशम् को गद्दी छोड़कर फ्रांस से भाग जाना पड़ा, तो बेचारे कोशी को भी अपना परिवार पीछे पेरिस में छोड़कर पहले स्विट्जरलैंड में और फिर तुरीन (इटली) में शरण लेनी पड़ी । उन्हें तुरीन में गणितीय भौतिकी का प्राध्यापक-पद मिला ।

सन् 1833 ई. में निर्वासित चार्लेस-दशम् ने कोशी को याद किया और उन्हें अपने 13 साल के उत्तराधिकारी का शिक्षक नियुक्त करके प्राग बुला लिया । यह कोई सुखकर कार्य नहीं था, मगर राजभक्त कोशी ने इसे स्वीकार कर लिया ।

इस बीच कोशी के मित्र उन्हें पेरिस वापस बुलाने की व्यवस्था में जुटे रहे । अकादमी के सदस्यों को शासन के प्रति निष्ठा की शपथ लेनी पड़ती थी । कोशी की सुविधा के लिए उस नियम को हटा दिया गया । कोशी मूर्ख राजकुमार की शिक्षा की जिम्मेदारी से मुक्ति पाकर पेरिस लौट आए । मगर उनकी कठिनाइयों का अंत नहीं हुआ । नए शासन के प्रति निष्ठा की शपथ लेने से इनकार करने के कारण कालेज द फ्रांस में कोशी को पद नहीं मिला । 'ब्यूरो द लांगिच्यूड' में पद मिला, पर बाद में वहां भी निष्ठा की शपथ लेने की समस्या पैदा हुई । बाद में कोशी ने अपने वैचारिक स्वातंत्र्य का मामला स्वयं ही फ्रांस की जनता के सामने पेश किया । उसमें कोशी की विजय हुई । उन्हें शासन के प्रति वफादारी की शपथ लेने की जरूरत नहीं रह गई । कोशी सारबोन विश्वविद्यालय में पढ़ाते रहे और एक के बाद एक शोध-निबंध प्रस्तुत करते रहे । कोशी कभी-कभी सप्ताह में दो निबंध प्रस्तुत कर देते थे । उनके ये निबंध भी काफी लंबे होते थे । अंततः अकादमी को नियम बनाना पड़ा कि उसके बुलेटिन *काम्ते* रेंदु में चार पृष्ठों से

अधिक का कोई निबंध प्रकाशित नहीं होगा । कोशी ने अपने जीवनकाल में करीब 800 शोध-निबंध प्रकाशित किए । कोशी का समस्त कृतित्व 27 जिल्दों में प्रकाशित हुआ है ।

कोशी अपने जीवन के अंतिम दिन तक सक्रिय बने रहे । मामूली बुखार आने पर 23 मई, 1857 ई. को, 68 साल की आयु में, उनकी अचानक मृत्यु हुई । मृत्यु के चंद घंटे पहले तक वे पेरिस के आर्कबिशप से एक मसले पर चर्चा कर रहे थे । आर्कबिशप से कहे उनके अंतिम उद्‌गार थे—'आदमी तों दुनिया से उठ जाते हैं, मगर उनके कार्य कायम रहते हैं ।'

कोशी धर्मांधता की सीमा तक कट्टर कैथोलिक थे । वे राज-परिवार के भक्त थे । इसलिए उन पर धार्मिक तथा राजनीतिक पक्षपात के भी आरोप लगाए गए हैं । मगर कोशी का गणितीय गवेषणा-कार्य अत्यंत महत्व का है । कोशी का कृतित्व उच्च गणित से संबंधित होने के कारण यहां उसकी चर्चा संभव नहीं है, फिर भी यह बता देना उपयोगी होगा कि उन्होंने गणित की किन शाखाओं को समृद्ध बनाया ।

कोशी के पहले यह जानने के लिए कोई दृढ़ परीक्षण नहीं था कि कोई अनंत श्रेणी अभिसारी है या अपसारी । कोशी ने पहली बार अभिसारी श्रेणी के निर्धारण के एक परीक्षण (टेस्ट) की खोज की । उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि अपसारी श्रेणी का समाकलन संभव नहीं होता । आज अनंत श्रेणियों का अध्ययन कोशी द्वारा निर्धारित परीक्षणों के अनुसार ही होता है ।

कोशी ने कलन-गणित पर तीन ग्रंथों की रचना की । उन्होंने **सीमा** (लिमिट) और **सातत्य** (कंटिन्यूइटी) की धारणाओं का परिष्कार किया और इनकी सहायता से कलन-गणित के रूप को निखारा । कोशी की सम्मिश्र संख्याओं (कॉम्प्लेक्स नम्बर्स) से संबंधित गवेषणाएं बड़े महत्व की हैं । सम्मिश्र समाकलन से संबंधित एक महत्वपूर्ण प्रमेय **कोशी प्रमेय** के नाम से जाना जाता है ।

कोशी ने 1845 ई. के आसपास **प्रतिस्थापन सिद्धांत** (थ्योरी आफ सब्स्टिट्यूशन्स) के बारे में कई शोध-निबंध प्रकाशित किए । बाद में यह विषय **परिमित समूह सिद्धांत** (थ्योरी आफ फाइनाइट ग्रुप्स) के रूप में विकसित हुआ ।

कोशी की गणितीय गवेषणाओं की सूची काफी लंबी है । कोशी का सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह रहा कि उन्होंने गणितीय विश्लेषण को दृढ़ आधार प्रदान किया और आधुनिक विशुद्ध गणित के तीव्र विकास के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया । कोशी की तरह ही गणितीय विश्लेषण को कठोर आधार प्रदान करनेवाले दूसरे समकालीन गणितज्ञ थे नार्वे-निवासी आबेल ।

नील्स हेनरिक आबेल (1802-1829 ई.)

नील्स हेनरिक आबेल
(1802-1829 ई.)

आबेल ने कुल मिलाकर सत्ताईस साल का जीवन पाया, और इतने छोटे जीवन में भी उन्होंने घोर दरिद्रता का सामना किया। फिर भी उनकी गवेषणाएं इतनी महत्वपूर्ण हैं कि उन्हें उन्नीसवीं सदी का एक महान गणितज्ञ माना जाता है। फ्रांस के गणितज्ञ **हर्मिट** (1822-1901)[1] ने आबेल के बारे में लिखा है : ''उन्होंने इतना काम कर छोड़ा है कि गणितज्ञ उससे 500 साल तक व्यस्त रहेंगे।''

नील्स हेनरिक आबेल का जन्म नार्वे के फिन्दो गांव में 5 अगस्त, 1802 ई. को हुआ था। परिवार निर्धन, किंतु सुसंस्कृत था। पिता गांव के पादरी थे। निर्धनता के बावजूद आबेल के बचपन के दिन प्रसन्नता में गुजरे। उनकी आरंभिक शिक्षा गांव के स्कूल में हुई।

उन दिनों यूरोप के, विशेषकर नार्वे के, स्कूलों में अध्यापक विद्यार्थियों की खूब पिटाई करते थे। एक दिन आबेल के एक सहपाठी को अध्यापक ने इतना अधिक मारा कि उसकी मृत्यु हो गई! अध्यापक को स्कूल से निकाल दिया गया। उसके स्थान पर बर्न्ट माइकेल होमबोए (1795-1850 ई.) नामक एक नए अध्यापक की नियुक्ति हुई। होमबोए एक दयालु अध्यापक थे और गणित के अच्छे जानकार थे। उस समय आबेल 15 साल के थे। होमबोए की प्रेरणा से गणित के अध्ययन में आबेल की दिलचस्पी बढ़ती गई। आबेल ने न्यूटन, आयलर और लाग्राँज के ग्रंथों का अध्ययन आरंभ कर दिया। होमबोए की प्रेरणा से आबेल ने गौस की उच्च अंकगणित से संबंधित कृति का भी अध्ययन आरंभ कर दिया। बाद में किसी ने आबेल से पूछा था—''आप गणित का तेजी से अध्ययन करके अग्रिम पंक्ति में कैसे पहुंचे ?'' आबेल का उत्तर था —''महान गणितज्ञों की मूल कृतियों को पढ़कर।''

आबेल के पहले के आयलर और लाग्राँज-जैसे गणितज्ञों द्वारा प्रस्तुत अनेक प्रमेयों की उपपत्तियां अधूरी थीं, दोषपूर्ण थीं। आबेल की तीव्र बुद्धि ने उन उपपत्तियों की त्रुटियों को पहचाना और उन्हें ठीक करना उन्होंने अपना लक्ष्य बना लिया। न्यूटन और आयलर ने विशिष्ट स्थितियों के लिए **द्विपद प्रमेय** की

उपपत्तियां प्रस्तुत की थीं । आबेल ने पहली बार द्विपद प्रमेय के लिए एक व्यापक उपपत्ति प्रस्तुत कर दी ।

सन् 1820 में, चालीस साल की आयु में, आबेल के पिता का देहांत हुआ । आबेल तब 18 साल के थे । मां और छह भाई-बहनों के भरण-पोषण की जिम्मेदारी आबेल के कंधों पर आ पड़ी । आबेल आशावादी थे । वे हताश नहीं हुए । उन्होंने निजी तौर पर विद्यार्थियों को पढ़ाने का काम शुरू कर दिया । मगर एक की कमाई से आठ प्राणियों के लिए मुश्किल से ही भोजन जुट पाता था । बीच-बीच में होमबोए भी मदद करते थे । घोर दरिद्रता की उस दशा में भी आबेल ने अपना अध्ययन जारी रखा और गणितीय खोजबीन में भी जुटे रहे । मगर अथक परिश्रम और दौड़-धूप के कारण उनका स्वास्थ्य सदा के लिए चौपट हो गया ।

उन्हीं दिनों आबेल को लगा कि उन्होंने पंचम् घात के सार्विक समीकरण (क्विंटिक) को हल करने की एक विधि खोज ली है । मगर जल्दी ही उन्हें स्पष्ट हुआ कि उनकी विधि में दोष है । आबेल पुनः खोजबीन में जुट गए, और अंत में निष्कर्ष पर पहुंचे कि पंचम् घात के समीकरण का बीजगणितीय हल प्राप्त करना असंभव है । यह एक महान खोज थी । इसकी चर्चा हम आगे करेंगे । उस समय आबेल उन्नीस साल के थे ।

सन् 1822 में आबेल ने क्रिश्चियानिया विश्वविद्यालय में अपनी पढ़ाई पूरी की । होमबोए और अन्य हितैषी उनकी आर्थिक मदद कर रहे थे । तब आबेल को लगा कि उन्हें फ्रांस तथा जर्मनी की गणितीय यात्रा करनी चाहिए, 'गणितज्ञों के राजकुमार' गौस से मिलना चाहिए । आबेल के मित्र उनके लिए सरकारी सहायता प्राप्त करने में जुट गए । देश की हालत अच्छी नहीं थी । यूरोप की गणितीय यात्रा के लिए तो मदद नहीं मिली, मगर विश्वविद्यालय में रहकर फ्रांसीसी और जर्मन भाषाओं का ज्ञान बढ़ाने के लिए उन्हें छात्रवृत्ति मिल गई । आबेल आगे डेढ़ साल तक उन भाषाओं का अध्ययन करते रहे और गणितीय खोजकार्य में भी जुटे रहे । उसी दौरान क्रेली केम्प नामक एक तरुणी से उनकी सगाई पक्की हो गई । अंत में, अगस्त 1825 में, मित्रों के प्रयास करने पर, शासन ने आबेल की यूरोप की एक साल की गणितीय यात्रा के लिए छात्रवृत्ति देना मंजूर कर लिया ।

लेकिन उसके करीब एक साल पहले की एक मार्मिक घटना का यहां जिक्र करना जरूरी है । आबेल ने जैसे-तैसे कुछ पैसा जोड़कर अपने एक शोध-निबंध के मुद्रण की व्यवस्था की । विषय वही था—पंचम् घात के सार्विक समीकरण का बीजीय हल असंभव है । आबेल ने सोचा था कि यह निबंध यूरोप की उनकी गणितीय यात्रा के लिए पासपोर्ट का काम करेगा । उन्हें उम्मीद थी कि महान

गौस उनके निबंध का स्वागत करेंगे ।

मगर जो हुआ, वह गणित के इतिहास की एक बहुत बड़ी 'दुर्घटना' है । गौस को आबेल का निबंध मिला । उन्होंने शीर्षक पढ़ा, और कुछ इस प्रकार कहा—'एक और मूर्खतापूर्ण निबंध आ गया ।' यह कहकर गौस ने आबेल के उस निबंध को रद्दी की टोकरी में फेंक दिया ! आबेल को जब इसकी जानकारी मिली तो उनके मन में गौस के लिए नफरत पैदा हो गई । उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे गौस से कभी नहीं मिलेंगे ।

अपने परिवार के पोषण की कुछ व्यवस्था करके 23 साल के आबेल सितंबर 1825 में यूरोप की यात्रा के लिए रवाना हुए । गौस से मिलने गॉटिंगेन न जाकर वे सीधे बर्लिन गए । बर्लिन में आबेल का क्रेल्ले नामक एक महत्वपूर्ण व्यक्ति से परिचय हुआ । **ऑगस्त लिओपोल्ड क्रेल्ले** (1780-1855 ई.) एक गणित-प्रेमी सिविल इंजीनियर थे । उन्होंने गणित की एक पत्रिका प्रकाशित करने की योजना बनाई थी । *क्रेल्लेज जर्नल* नाम से गणित-जगत में मशहूर इस पत्रिका का प्रकाशन 1826 ई. में आरंभ हुआ । क्रेल्ले ने आबेल की प्रतिभा को पहचाना । दोनों में स्नेह-संबंध स्थापित हुए । पत्रिका के पहले अंक में ही क्रेल्ले ने आबेल का निबंध प्रकाशित किया । पत्रिका के शुरू के तीन खंडों में आबेल के कुल 22 शोध-निबंध प्रकाशित हुए । क्रेल्ले की कृपा से आबेल का बर्लिन का निवासकाल सुखमय रहा । वे गणितज्ञों से मिलते रहे, खोजकार्य में जुटे रहे ।

जुलाई 1826 में आबेल पेरिस पहुंचे । एक मामूली-सा कमरा किराये पर लिया । कोशी, लेजंद्र आदि फ्रांसीसी गणितज्ञों से संपर्क स्थापित किया । पेरिस के निवासकाल में आबेल ने **अबीजीय फलनों** (ट्रांसेन्डेंटल फंक्शन्स) के बारे में एक शोध-निबंध की रचना की । यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण निबंध था । लेजंद्र ने बाद में आबेल की इस कृति को आधुनिक गणित का एक महान स्मारक कहा था। हर्मिट ने इसी के बारे में कहा था कि आबेल का यह कृतित्व गणितज्ञों को आगे के 500 साल तक व्यस्त रखेगा ।

आबेल ने अपना यह निबंध फ्रांस की विज्ञान अकादमी में प्रस्तुत करने के लिए कोशी को सौंप दिया और कुछ दिनों के लिए पेरिस से बाहर चले गए । कोशी अपने ही काम में व्यस्त थे । एक अन्य गणितज्ञ ने अक्तूबर 1826 में आबेल का यह निबंध अकादमी के सामने प्रस्तुत किया । निबंध की जांच के लिए अकादमी ने कोशी और लेजंद्र को निर्णायक नियुक्त किया । वयोवृद्ध लेजंद्र ने शिकायत की कि निबंध की हस्तलिखित प्रति अस्पष्ट है, लेखक से दूसरी साफ प्रति तैयार कराई जाए । कोशी उस मूल प्रति को अपने घर ले गए और बाद में भूल गए कि उन्होंने उसे कहां रखा है !

आबेल 1827 ई. में स्वदेश लौटे । उन्होंने लेजंद्र को पत्र लिखकर निबंध के

बारे में पूछताछ की, मगर निबंध नहीं मिला । आबेल की मृत्यु (1829 ई.) के बाद उनके निबंध की जोरशोर से तलाश करवाई गई, जर्मन गणितज्ञ याकोबी ने इस संबंध में अकादमी को कई पत्र लिखे, नार्वे की सरकार ने भी अकादमी पर जोर डाला, तभी जाकर 1830 ई. में कोशी ने आबेल के उस निबंध की हस्तलिपि खोज निकाली । उसी साल फ्रांस की विज्ञान अकादमी ने आबेल के उस निबंध को गणित का अपना पुरस्कार (ग्राँ प्रि) प्रदान किया, मगर उसे ग्रहण करने के लिए आबेल इस दुनिया में नहीं थे! आबेल की वह महान कृति अंत में, उनकी मृत्यु के बारह साल बाद, 1841 ई. में प्रकाशित हुई । उस कृति के साथ अंतिम दुर्घटना यह हुई कि जब प्रूफ देखे जा रहे थे तब संपादक या मुद्रक की लापरवाही से मूल हस्तलिपि भी कहीं गायब हो गई !

पेरिस के निवासकाल में आबेल का स्वास्थ्य चौपट हो गया था । चिकित्सक ने बताया कि उन्हें फेफड़े की टी.बी. हो गई है । घोर आशावादी आबेल ने यकीन नहीं किया । वे पेरिस से बर्लिन लौटे । उनके पास का पैसा समाप्त हो गया था । होमबोए ने उन्हें कुछ रकम भेज दी । क्रेल्ले प्रयत्न कर रहे थे कि बर्लिन विश्वविद्यालय में आबेल को प्राध्यापक-पद मिल जाए । आबेल को उम्मीद थी कि उन्हें अपने विश्वविद्यालय में ही प्राध्यापक का पद मिल जाएगा । आबेल मई 1827 में क्रिश्चियानिया लौटे ।

मगर आबेल को अपने विश्वविद्यालय में स्थान नहीं मिला । होमबोए और अन्य हितैषी उनकी मदद करते रहे । आबेल निजी तौर पर विद्यार्थियों को पढ़ाते रहे और जैसे-तैसे अपने आश्रितों की जीविका चलाते रहे । उनकी हालत बड़ी दयनीय थी । स्वास्थ्य गिरता जा रहा था । अंत में जनवरी 1829 में आबेल को स्पष्ट आभास हो गया कि वे ज्यादा दिनों तक जीवित नहीं रहेंगे । आबेल ने अपने जीवन के अंतिम दिन एक अंग्रेज परिवार में गुजारे । उनकी मंगेतर क्रेली केम्प वहां मास्टरानी थी । आबेल ने अपने एक मित्र क्रीलहाउ से आग्रह किया कि वह उनकी मृत्यु के बाद क्रेली से विवाह कर ले । क्रेली और क्रीलहाउ, दोनों ने आबेल के अनुरोध को स्वीकार कर लिया । क्रेली ने आबेल को अपने पास रखकर अंतिम क्षण तक उनकी सेवा-सुश्रूषा की । सत्ताईस साल की छोटी आयु में, 6 अप्रैल, 1829 को, गणित की इस महान प्रतिभा ने अंतिम सांस ली । आबेल की मृत्यु के दो दिन बाद क्रेल्ले का पत्र मिला कि बर्लिन विश्वविद्यालय ने उन्हें गणित का प्राध्यापक नियुक्त करना स्वीकार कर लिया है !

बीजगणित के क्षेत्र में आबेल का सबसे महत्वपूर्ण कार्य था यह सिद्ध करना कि पंचम् घात के सार्विक समीकरण का बीजीय हल, यानी जोड़, घटा, गुणा, भाग तथा वर्गमूल की क्रियाओं से हल, संभव नहीं । प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा

चतुर्थ घात के समीकरणों को हल करने की विधियां मालूम थीं। आबेल के पहले के अनेक गणितज्ञों ने पंचम् घात के सार्विक समीकरण को हल करने के प्रयास किए थे।[2] आबेल ने भी प्रयास किया था। मगर सफलता नहीं मिली। अंत में उन्नीस साल के आबेल ने ही यह सिद्ध किया कि — $क य^5 + ख य^4 + ग य^3 + घ य^2 + च य + छ = 0$ समीकरण का बीजीय हल संभव नहीं। यह एक महान खोज थी। इस खोज ने गणितीय अनुसंधान के लिए एक नया मार्ग खोल दिया।

आबेल ने विश्लेषण के क्षेत्र में भी महान कार्य किया। उन्होंने अभिसारी श्रेणियों, दीर्घवृत्तीय फलनों आदि पर कई शोध-निबंध प्रकाशित किए। फलतः आधुनिक गणित के कई विषय आबेल के नाम से जाने जाते हैं। जैसे, **आबेल प्रमेय**, **आबेलीय समाकल** (आबेलियन इंटेग्रल्स), **आबेलीय समूह** (आबेलियन ग्रुप्स), **आबेलीय फलन** आदि।

आबेल ने अनंत श्रेणियों के सिद्धांत को दृढ़ आधार प्रदान किया। उन्होंने 1826 ई. में अपने गणितज्ञ-मित्र होमबोए को लिखा था — 'यदि कोई कहे कि $0 = 1^न + 2^न + 3^न + 4^न + \cdots$, जिसमें **न** कोई धन पूर्णांक है, तो क्या आप इससे अधिक मूर्खतापूर्ण बात की कल्पना कर सकते हैं ?'

आबेल ने छब्बीस साल आठ महीनों के अपने छोटे जीवन में अपार कष्ट सहे, गौस और कोशी-जैसे महान गणितज्ञों ने उनके कृतित्व के प्रति अक्षम्य लापरवाही बरती, अपने जीवनकाल में उन्हें पद और सम्मान भी नहीं मिला, फिर भी आबेल जीवन के अंतिम दिनों तक आशावादी बने रहे। उन्हें किसी से कोई गिला-शिकवा नहीं था। आज आबेल को उन्नीसवीं सदी का एक महान गणितज्ञ माना जाता है। आधुनिक गणित को सुदृढ़ बनाने में और इसके विकास में आबेल ने जो महती योग दिया, वह चिरस्मरणीय रहेगा।

कार्ल गुस्ताव याकूब याकोबी (1804-1851 ई.)

याकोबी में गजब की गणना-शक्ति थी और उन्होंने संख्या-सिद्धांत के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण प्रमेयों तथा सूत्रों की खोज की थी, इसलिए भारतीय प्रतिभा रामानुजन् (1887-1920 ई.) की तुलना अक्सर याकोबी के साथ की जाती है। मगर इन दोनों प्रतिभाओं में देश-काल का ही नहीं, परिस्थितियों का भी बड़ा अंतर था।

कार्ल गुस्ताव याकूब याकोबी का जन्म पोट्सडाम (प्रशिया, जर्मनी) में एक संपन्न साहूकार के परिवार में 10 दिसंबर, 1904 ई. को हुआ था। गणित की आरंभिक शिक्षा उन्हें अपने मामा से मिली। स्थानीय स्कूल की पढ़ाई पूरी करने के बाद याकोबी 17 साल की आयु में बर्लिन विश्वविद्यालय में दाखिल हुए।
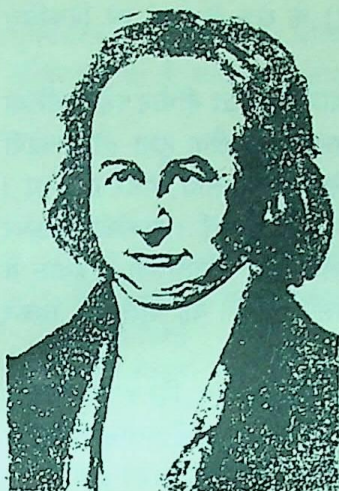
कार्ल गुस्ताव याकूब याकोबी
(1804-1851 ई.)

गणित के अलावा भाषाशास्त्र में भी उनकी गहरी दिलचस्पी थी, मगर अंत में गणितीय खोजकार्य को ही याकोबी ने अपने जीवन का लक्ष्य बनाया। आबेल की तरह उन्होंने भी आयलर, लाग्राँज, गौस आदि के मूल ग्रंथों का गहन अध्ययन किया। ये सब सुविधाएं रामानुजन् के लिए उपलब्ध नहीं थीं।

याकोबी ने 1825 ई. में **आंशिक भिन्नों** पर एक प्रबंध लिखा और विश्वविद्यालय से 'डाक्टर' की उपाधि प्राप्त की। उसके बाद उन्होंने विश्वविद्यालय में कलन-गणित पढ़ाना शुरू कर दिया। वे एक योग्य शिक्षक थे। अपने व्याख्यानों में वे नूतन गवेषणाओं की जानकारी दिया करते थे और अपने विद्यार्थियों को अनुसंधान-कार्य के लिए प्रेरित करते थे। उनका एक विद्यार्थी, जिसमें आत्मविश्वास की कमी थी, अनुसंधान-कार्य आरंभ करने के पहले उस विषय का सारा साहित्य पढ़ लेना चाहता था। याकोबी ने उसे सबक सिखाया—''यदि तुम्हारे पिता ने जिद की होती कि किसी एक लड़की से विवाह करने के पहले वह दुनिया की सारी लड़कियों से परिचय प्राप्त कर लेंगे, तो न उनका विवाह होता, न ही तुम पैदा होते !''

याकोबी का लगभग समूचा जीवन अध्यापन-कार्य और अनुसंधान-कार्य में गुजरा। 1826 ई. में कोनिग्सबर्ग विश्वविद्यालय में अध्यापक बने। वहां उन्होंने संख्या-सिद्धांत पर अपना कार्य प्रकाशित किया। महान गौस ने उस कार्य की स्तुति की, तो 23 साल के याकोबी को सहायक प्राध्यापक का पद मिला। काश, आबेल के लिए भी गौस ऐसा ही कुछ कर पाते ! याकोबी को प्राध्यापक का पद मिला, तो दूसरे अध्यापक नाराज हो गए। लेकिन 1829 ई. में याकोबी ने दीर्घवृत्तीय फलनों के बारे में अपना महान प्रबंध प्रकाशित किया, तो सबने उनकी प्रतिभा की प्रशंसा की।

सन् 1832 में याकोबी के पिता का देहांत हुआ। आठ साल बाद, 1840 ई. में परिवार की सारी संपत्ति तिरोहित हो गई। मगर याकोबी ने गणितीय अनुसंधान का अपना कार्य जारी रखा। 1842 ई. में याकोबी मैंचेस्टर गए और वहां आयरलैंड के महान गणितज्ञ हैमिल्टन ***(1805-1865 ई.)*** से मिले। बाद में

याकोबी ने हैमिल्टन के गतिकी (डायनेमिक्स) के क्षेत्र के कार्य को विकसित किया।

इंग्लैंड से वापस लौटने के एक साल बाद याकोबी सख्त बीमार पड़े। प्रशिया के राजा ने उन्हें आर्थिक सहायता दी। स्वास्थ्य कुछ ठीक हुआ तो याकोबी राजनीति के चक्कर में फंस गए। संसद के लिए चुनाव लड़ा, मगर हार गए। राजा की ओर से मिलने वाली आर्थिक सहायता बंद हो गई। याकोबी के ऊपर पत्नी और सात छोटे बच्चों के पोषण की जिम्मेदारी थी। हितैषियों के प्रयास से राजा की ओर से याकोबी को पुनः मदद मिलने लगी। वह बर्लिन में रहकर अनुसंधान-कार्य करते रहे।

ज्यादा परिश्रम करने के कारण याकोबी का स्वास्थ्य प्रायः बिगड़ जाता था। मगर उनकी मृत्यु अत्यधिक परिश्रम के कारण नहीं हुई। सैंतालीस साल की आयु में, 18 फरवरी, 1851 को, याकोबी का देहांत चेचक के कारण हुआ!

आबेल की तरह याकोबी का भी महान कार्य दीर्घवृत्तीय फलनों से संबंधित था। दीर्घवृत्तीय फलनों में सम्मिश्र संख्याओं पर भी विचार करना पड़ता है। याकोबी ने सम्मिश्र संख्याओं का उपयोग करके समाकलन गणित के दायरे को खूब विस्तृत किया। याकोबी पहले गणितज्ञ थे जिन्होंने संख्या-सिद्धांत में दीर्घवृत्तीय फलनों का उपयोग किया। याकोबी ने आबेलीय फलनों के विकास में भी महत्वपूर्ण योग दिया।

याकोबी का गतिकी के क्षेत्र का कार्य भी बड़ा महत्वपूर्ण है। क्वांतम यांत्रिकी के विकास में **हैमिल्टन-याकोबी समीकरण** ने महत्व की भूमिका अदा की है। **सारणिक सिद्धांत** (थ्योरी आफ डिटरमिनेंट्स) आधुनिक गणित का एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय है। एक प्रकार का सारणिक **याकोबियन** के नाम से जाना जाता है।

याकोबी, रामानुजन् की तरह, विशुद्ध गणित के आराधक थे। फ्रांसीसी भौतिकीविद-गणितज्ञ **फूरिए** (1768-1830 ई.)[3] ने एक बार कहा था कि आबेल और याकोबी व्यर्थ ही अपना समय दीर्घवृत्तीय फलनों पर खर्च कर रहे हैं, जबकि ऊष्मा से संबंधित कई समस्याएं सुलझानी बाकी हैं। याकोबी ने जवाब दिया : "श्रीमान फूरिए के मतानुसार यह सही है कि गणित का उद्देश्य लोकोपयोगी बनना और प्राकृतिक घटनाओं की व्याख्या करना है, परंतु उनके जैसे वैज्ञानिक को यह जानना चाहिए कि विज्ञान का परम लक्ष्य मानव मस्तिष्क को गौरवशाली बनाना है; इसलिए संख्याओं से संबंधित कोई प्रश्न उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना कि विश्व-व्यवस्था से संबंधित कोई सवाल।"

समय ने याकोबी के कथन को सही सिद्ध कर दिया। आज फूरिए के

भौतिकीय गणित को नहीं, बल्कि विशुद्ध वैश्लेषिक गणित के क्षेत्र की उनकी गवेषणाओं को ही ज्यादा महत्वपूर्ण माना जाता है।

सहायक ग्रंथ

1. ई. टी. बेल — **मेन आफ मैथेमेटिक्स** (दो भाग), पेलिकन बुक, लंदन 1953
2. होवार्ड इवेस — **एन इन्ट्रोडक्शन टु दि हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स** (पांचवां संस्करण), न्यूयार्क 1983
3. मॉरिस क्लाइन — **मैथेमेटिकल थॉट फ्राम एंशियंट टु माडर्न टाइम्स**, न्यूयार्क 1922
4. डिर्क जे. स्त्रुइक — **ए कंसाइज हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स**, लंदन 1959
5. ए. आई. मार्कुशेविच — **सीरीज**, दिल्ली 1967

संदर्भ और टिप्पणियां

1. शार्ल हर्मिट इकोल पोलीटेकनिक और सारबोन विश्वविद्यालय में गणित के प्राध्यापक थे। हर्मिट का योगदान गणित के कई क्षेत्रों में रहा, मगर उनकी दो महत्वपूर्ण उपलब्धियां हैं : (1) दीर्घवृत्तीय फलनों के जरिए पंचम् घात के व्यापक समीकरण का हल, और (2) e एक अबीजीय (ट्रांसेन्डेंटल) संख्या होने का प्रूफ, जो उन्होंने 1873 ई. में प्रस्तुत किया। हर्मिट की विधि का उपयोग करके लिंडेमान (1852-1939 ई.) ने 1882 ई. मे प्रमाणित किया था कि π एक अबीजीय संख्या है।

   हर्मिट दाएं पैर से लंगड़े थे, इसलिए सैनिक सेवा से उन्हें पूरी मुक्ति मिल गई थी।
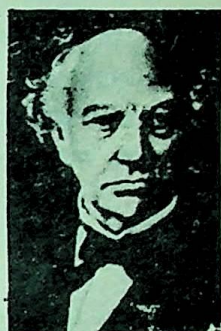
शार्ल हर्मिट
(1822-1901 ई.)

2. पंचम् घात के सार्विक समीकरण का हल खोजने का प्रयास आयलर और लाग्रॉंज ने भी किया था, मगर असफल रहे।
3. जोसफ फूरिए एक दरजी के बेटे थे और आठ साल की उम्र में ही अनाथ हो गए थे। एक सैनिक स्कूल में उनकी पढ़ाई हुई, और बाद में वहीं पर वे अध्यापक बने। बाद में वे इकोल पोलीटेकनिक में प्राध्यापक नियुक्त हुए।

   प्राध्यापक का पद छोड़कर वे नेपोलियन के मिस्री अभियान में शामिल हुए। 1801 ई. में फ्रांस लौटने पर फूरिए ने ऊष्मा के बहाव के बारे में अपना गवेषणा-कार्य आरंभ किया। 1816 ई. में उन्होंने अपनी कृति **ऊष्मा का वैश्लेषिक सिद्धांत** प्रकाशित की।

   फूरिए ने दावा किया था कि *सभी* फलनों को

ज्याँ बप्तिस्त जोसफ फूरिए
(1768-1830 ई.)

त्रिकोणमितीय श्रेणी में व्यक्त करना संभव है । यह दावा अतिरंजित था । मगर जिन बहुत-से फलनों को त्रिकोणमितीय श्रेणी में प्रस्तुत किया जा सकता है, उन्हें अब **फूरिए श्रेणी** के नाम से जाना जाता है ।

इवारिस गाल्वा

घटना पेरिस की है । 29 मई, 1832 ई. की रात । बीस साल का एक फ्रांसीसी तरुण अपने एक मित्र ऑगस्त केवालिए को पत्र लिखता है :

> *''मेरे प्यारे दोस्त ,*
>
> *गणितीय विश्लेषण के क्षेत्र में मैंने कुछ नए आविष्कार किए हैं । इनमें से कुछ का संबंध समीकरणों के सिद्धांत से है, और कुछ का संबंध पूर्णांकीय फलनों से है । समीकरण-सिद्धांत में मैंने खोज की है कि किन स्थितियों में जोड़, घटा, गुणा, भाग तथा मूल प्राप्त करने की क्रियाओं द्वारा समीकरणों को हल करना संभव हो सकता है । इस प्रयास में मुझे ऐसे समीकरण के भी सभी रूपांतरों को व्यक्त करने में सफलता मिली है जिसका हल प्राप्त करना संभव नहीं है।···*
>
> *अपने सर्वाधिक महत्वपूर्ण अनुसंधानों का सार-संक्षेप मैं नीचे प्रस्तुत कर रहा हूं ।''*

उसके बाद वह तरुण रातभर जागकर अपने अनुसंधान-कार्य को अत्यंत संक्षेप में कागज के कुछ पन्नों पर उतारता है । बीच-बीच में यह भी लिखता जाता है—''मेरे पास पर्याप्त समय नहीं है ।''

पत्र के अंत में वह तरुण लिखता है :

> *''मेरे प्यारे ऑगस्त, तुम जानते हो कि मैंने केवल इन्हीं विषयों के बारे में खोजबीन नहीं की है । ···लेकिन अब मेरे पास समय नहीं है ।···यहां जो चीजें मैंने प्रस्तुत की हैं वे पिछले करीब एक साल से मेरे दिमाग में थीं··· । याकोबी या गौस से कहो कि वे इनके बारे में अपनी खुली राय दें—इनकी सत्यता के बारे में उतनी नहीं, जितनी कि इन प्रमेयों के महत्व के बारे में ।*
>
> *मुझे विश्वास है कि कालांतर में लोग मेरे इन बेतरतीब*

हस्तलिखितों की छानबीन करके इनमें उपयोगी चीजें प्राप्त करेंगे ।

अलविदा दोस्त !

इ. गाल्वा''

गाल्वा ने रातभर जागकर अपने महत्वपूर्ण खोजकार्य को संक्षेप में कागज के पन्नों पर क्यों उतारा ? बीच-बीच में उसने कई बार क्यों लिखा कि उसके पास पर्याप्त समय नहीं है ? क्यों उसने अपने प्यारे दोस्त से अंतिम अलविदा ली ?

यह जानने के लिए पढ़िए उसी रात दो अन्य मित्रों को लिखा हुआ गाल्वा का एक संक्षिप्त पत्र :

''दो देशप्रेमियों ने मुझे चुनौती दी है । चुनौती को अस्वीकार करना मेरे लिए असंभव था । तुम में से किसी को भी सूचित न कर पाने के लिए मैं क्षमा चाहता हूं । मगर मेरे विरोधियों ने मुझसे वचन लिया है कि मैं अपने किसी भी देशप्रेमी मित्र को सूचना नहीं दूंगा । मैं विवश हूं । स्थिति को टालने का मैंने हर संभव प्रयास किया··· । मेरी याद बरकरार रखना । भाग्य ने मुझे इतना जीवन नहीं दिया है कि मेरा देश मेरे नाम को जान सके ।

मैं मरने जा रहा हूं, मित्र तुम्हारा,

इ. गाल्वा''

उस रात लिखे गए यही थे गाल्वा के अंतिम शब्द । अगले दिन, 30 मई, 1832 को, प्रातःकाल वह अपने प्रतिद्वंद्वियों की चुनौती का सामना करने पेरिस के पास के एक वन में पहुंच गया । तय हुआ था कि वह और उसका एक प्रतिद्वंद्वी 25 कदम के फासले से एक-दूसरे को पिस्तौल की गोली का निशाना बनाएंगे । 'सम्मान की रक्षा' के लिए ऐसे द्वंद्वयुद्ध लड़ने का उन दिनों फ्रांस में रिवाज था । गाल्वा कुशल निशानेबाज नहीं थे, इसलिए वे जानते थे कि उनकी मृत्यु सुनिश्चित है । हुआ भी ऐसा ही । अंतड़ियों में गोली घुसने के बाद गाल्वा गिर पड़े । नौ बजे वहां से गुजर रहे एक किसान ने उन्हें अस्पताल में पहुंचा दिया।

गाल्वा का छोटा भाई, जिसे इस द्वंद्वयुद्ध के बारे में सूचना मिल गई थी, रोते हुए अस्पताल पहुंचा । अनुज को धीरज देने के लिए गाल्वा ने कहा : ''रोओ मत, बीस साल की आयु में मृत्यु को गले लगाने के लिए मुझे अपना सारा साहस जुटाने दो ।'' मृत्युशय्या पर लेटे गाल्वा ने किसी पुरोहित की सेवाएं भी स्वीकार नहीं कीं । अगले दिन, 31 मई, 1832 को, एकदम सुबह गाल्वा का देहांत
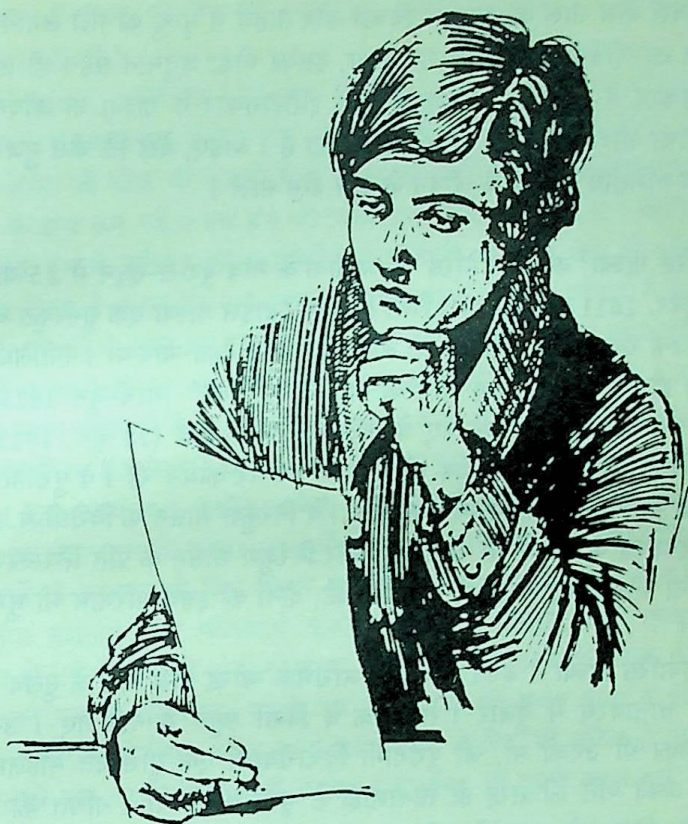
इवारिस गाल्वा (1811-1832 ई.)

हुआ। उस समय वह केवल बीस साल और सात महीने के थे।

बीस साल की छोटी आयु में मृत्यु को वरण करनेवाले गाल्वा को आज आधुनिक उच्च बीजगणित का संस्थापक और आधुनिक गणित का एक महान निर्माता माना जाता है। गाल्वा द्वारा संस्थापित **समूह सिद्धांत** (थ्योरी आफ ग्रुप्स) आज समूचे आधुनिक गणित का, और सैद्धांतिक भौतिकी का भी, आधारस्तंभ बन गया है।

गाल्वा को अपनी अल्पायु में केवल तीन-चार साल तक ही गणितीय खोजकार्य करने का मौका मिला। अपने पीछे वे कुल मिलाकर केवल 60 हस्तलिखित पन्ने ही छोड़ गए थे। उनका यह क्रांतिकारी गवेषणा-कार्य उनकी मृत्यु के चौदह साल बाद प्रकाशित हुआ, प्रकाश में आया। गाल्वा का गवेषणा-कार्य आज भी गणित को आगे बढ़ाने में योग दे रहा है। आज गाल्वा की गणना संसार के महान गणितज्ञों में की जाती है।

केवल बीस साल की आयु में स्वेच्छा और साहस से मृत्यु को गले लगाने वाले गाल्वा का जीवन-चरित्र कैसा रहा होगा, इसका थोड़ा अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है । गणित के एक प्रख्यात इतिहासकार ने गाल्वा के जीवन को ''प्रतिभा और मूर्खता का संगम'' तक कहा है । आइए, देखें कि कैसे गुजरे इस महान गणितीय प्रतिभा के जीवन के कुल बीस साल ।

इवारिस गाल्वा[1] का जन्म पेरिस के नजदीक के गांव बूर-ल-राइन में 25 या 26 अक्तूबर, 1811 को हुआ था । पिता निकोल-गेब्राइल गाल्वा एक सुसंस्कृत व्यक्ति थे । उन्हें राजशाही से घोर नफरत और स्वातंत्र्य से बेहद प्यार था । नेपोलियन के एल्बा द्वीप से भाग निकल आने के बाद के 'सौ दिन' (मार्च-जून 1815) के दौरान वे गांव के मेयर चुने गए थे, और वाटरलू के युद्ध (18 जून, 1815) में नेपोलियन की पराजय के बाद भी वे अपने पद पर कायम रहे । वे पुरोहितों के विरुद्ध ग्रामवासियों का समर्थन करते थे । वे निरंकुश शासन के विरोधी थे । बड़े बेटे इवारिस के मन में भी राजाशाही और निरंकुश शासन के प्रति तिरस्कार की भावना पनपती गई । बाद में बाप और बेटे, दोनों को इसके परिणाम भी भुगतने पड़े ।

इवारिस गाल्वा ने अपने जीवन के आरंभिक ग्यारह साल गांव के सुखद और शांत वातावरण में गुजारे । तब तक वे किसी स्कूल में नहीं गए । उनकी शिक्षिका थी उनकी मां, जो पुरोगामी विचारोंवाली एक सुशिक्षित महिला थी और अपने पति की तरह ही तानाशाही से घृणा करती थी । गणित की एक महान प्रतिभा को जन्म देनेवाली वह मां अपने बेटे की असामयिक मृत्यु के बाद 40 साल और जिंदा रही और उसने वे दिन भी देखे जब अंततः उसके बेटे का कालजयी कृतित्व गणित-जगत में गौरवान्वित हुआ ।

यहां यह जान लेना उपयोगी होगा कि गणित की भारतीय प्रतिभा रामानुजन् (1887-1920 ई.) की तरह गाल्वा की गणितीय प्रतिभा भी वंशानुगत नहीं थी। रामानुजन् की तरह गाल्वा भी परीक्षाओं में असफल रहे । रामानुजन् की तरह गाल्वा ने भी गणितीय अनुसंधान का अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त किया ।

बारह साल की आयु में, 1823 ई. में, गाल्वा पेरिस में लुई-ल-ग्राँ के लाइसे (सरकारी स्कूल या कालेज) में दाखिल हुए । स्कूल क्या था, जेल थी । क्रांति के बाद फ्रांस का राजनीतिक माहौल बड़ा अस्थिर था । स्कूल के संचालक का व्यवहार तानाशाह-जैसा था । उसने कुछ विद्रोही विद्यार्थियों को स्कूल से निकाल दिया । गाल्वा उनमें नहीं था, मगर इस घटना का उस पर बड़ा असर हुआ । पहले साल गाल्वा की पढ़ाई ठीक-ठाक रही । मगर दूसरे साल की उसकी पढ़ाई अपूर्ण समझी गई और उसे अगली कक्षा में नहीं चढ़ाया गया । लैटिन और ग्रीक

के अध्ययन में गाल्वा की दिलचस्पी घटती जा रही थी और गणित के अध्ययन में बढ़ती जा रही थी ।

मगर स्कूल में पढ़ाया जा रहा गणित प्रारंभिक स्तर का था और पाठ्य-पुस्तकें नीरस थीं । उबाऊ वातावरण की उस दशा में गाल्वा ने अपने लिए स्वयं गणित-जगत की खोज की । उन्हीं दिनों **लेजंद्र** की ज्यामिति की अत्युत्तम पुस्तक गाल्वा के हाथ लग गई । इस ग्रंथ की चर्चा हम पहले कर चुके हैं । लेजंद्र ने अपने इस ग्रंथ में यूक्लिड की ज्यामिति का फ्रांसीसी भाषा में बड़ा ही सुस्पष्ट विवेचन किया है । इस ग्रंथ का समग्र अध्ययन करने के लिए गणित के अच्छे विद्यार्थी को भी दो साल का समय लगता था । मगर गाल्वा ने स्वयं अपने प्रयास से थोड़े समय में ही इस ग्रंथ की ज्यामिति पर अधिकार प्राप्त कर लिया । तरुण गाल्वा महान गणितज्ञों के मूल ग्रंथों का अध्ययन करने में जोर-शोर से जुट गए ।

बीजगणित (विश्लेषण) के अध्ययन के लिए गाल्वा ने **लाग्रांज** के ग्रंथ को चुना । कुछ समय बाद उन्होंने **आबेल** की कृतियों का भी अध्ययन किया । चौदह या पंद्रह साल के गाल्वा उन कृतियों का अध्ययन कर रहे थे जो परिपक्व गणितज्ञों के अध्ययन के लिए लिखी गई थीं । दिमाग में ही कठिन-से-कठिन गणितीय गणनाएं तथा गवेषणाएं करने की अद्‌भुत क्षमता उनमें एकाएक जाग्रत हो गई थी । दूसरी ओर, स्कूल का सामान्य गणित उनके लिए एक नीरस चीज बन गया । परिणामतः उनकी इस नई स्थिति को समझ पाना न केवल उनके अध्यापकों के लिए, बल्कि उनके माता-पिता के लिए भी कठिन हो गया । गाल्वा को एक तरफ प्रतिभाशाली समझा जाने लगा, तो दूसरी तरफ मूर्ख और हठधर्मी !

आबेल के संदर्भ में पंचम् घात के समीकरण की चर्चा हम पहले कर चुके हैं । कुछ समय के लिए आबेल को लगा था कि उन्होंने इस समीकरण को हल करने का तरीका खोज लिया है, मगर जल्दी ही उन्हें अपनी गलती का पता चल गया। सोलह साल के गाल्वा ने अनजाने में उसी गलती को पुनः दोहराया । मगर गाल्वा अब बड़ी तेजी से गणितीय अनुसंधान की गहराई में उतरते जा रहे थे ।

उसी समय सोलह साल के गाल्वा ने **इकोल पोलीटेकनिक** की प्रवेश-परीक्षा में बैठने का निर्णय किया । फ्रांस की राज्यक्रांति के दौरान स्थापित यह कालेज विज्ञान व गणित के अध्ययन के लिए उस समय सर्वोत्तम शिक्षण संस्था थी । गाल्वा के गणित के शिक्षक **वेरनिए** ने उन्हें ठीक से तैयारी करने का सुझाव दिया, मगर गाल्वा ने उस पर ध्यान नहीं दिया । फलतः प्रवेश-परीक्षा में वे फेल हो गए ।

उसी दौरान सत्रह साल के गाल्वा लुई-ल-ग्राँ के कालेज में उच्च गणित के अध्यापक **लुई-पॉल-एमिल रिचार्ड** के निकट सम्पर्क में आए । रिचार्ड ने गाल्वा

की प्रतिभा को फौरन पहचान लिया । वे उन्हें गणितीय अनुसंधान के लिए प्रोत्साहित करने लगे, उनकी स्तुति करने लगे । परिणामतः गाल्वा ने उस दौरान समीकरणों के सिद्धांत के क्षेत्र में अत्यंत महत्व का खोजकार्य किया । उसी दौरान मार्च 1829 में **वितत भिन्नों** (कंटिन्यूड फ्रैक्शन्स) के बारे में गाल्वा का पहला शोध-निबंध प्रकाशित हुआ । गाल्वा की पहचान एक गणितज्ञ के रूप में होने लगी ।

सत्रह साल के गाल्वा ने गणित के क्षेत्र में और भी कई महत्वपूर्ण चीजें खोजी थीं । गाल्वा ने अपनी वे गवेषणाएं फ्रांस की विज्ञान अकादमी के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए गणितज्ञ **कोशी** को सौंपीं । कोशी की लापरवाही से आबेल को कितनी बड़ी क्षति पहुंची थी, यह हम पहले बता चुके हैं । महान कोशी ने गाल्वा के निबंधों के साथ भी वैसी ही लापरवाही बरती । कोशी उन निबंधों को अकादमी में प्रस्तुत करना भूल गए । इतना ही नहीं, उनके पास से वे निबंध लापता हो गए ! गाल्वा को जब इसकी जानकारी मिली, तो अकादमियों और अकादमिशियनों के प्रति उनके मन में घोर नफरत पैदा हो गई । इधर स्कूल में भी उनके साथ एक सामान्य विद्यार्थी की तरह सलूक किया जा रहा था, जबकि वे एक श्रेष्ठ गणितज्ञ की हैसियत रखते थे । गाल्वा को अपने समय के समाज से घृणा होने लगी ।

गाल्वा अब अठारहवें साल में थे । वे पुनः पोलीटेकनिक की प्रवेश-परीक्षा में बैठे । जहां परीक्षार्थी से परीक्षक कम योग्य हों, वहां नतीजा स्पष्ट था । गाल्वा पुनः फेल हो गए । इसका आभास गाल्वा को पहले ही हो गया था । मौखिक परीक्षा के दौरान, चाक और लकड़ी का डस्टर लेकर जब गाल्वा ब्लैकबोर्ड के पास खड़े थे, तो उनके परीक्षकों ने उनसे गणित के ऊट-पटांग सवाल पूछे । गाल्वा को पाटी या ब्लैकबोर्ड पर सवाल हल करने की आदत नहीं थी । वे दिमाग में गणनाएं करके सीधे ही हल प्राप्त कर लेते थे । गाल्वा ने जब देखा कि परीक्षक बेतुके सवाल पूछकर उन्हें परेशान कर रहे हैं, तो वे समझ गए कि उनका फेल होना निश्चित है और पोलीटेकनिक के दरवाजे उनके लिए बंद ही रहेंगे । गाल्वा को एकाएक गुस्सा आ गया । उन्होंने परीक्षक को लकड़ी के डस्टर का निशाना बनाया !

हम पहले बता चुके हैं कि गाल्वा के मेयर पिता ग्रामवासियों के हित-रक्षक और पुरोहित-वर्ग के विरोधी थे । अब बदली हुई राजनीतिक परिस्थितियों में पुरोहित-वर्ग को बदला लेने का मौका मिला । उन्होंने गाल्वा के पिता के खिलाफ जेहाद छेड़ दिया, उन्हें तरह-तरह से अपमानित करना शुरू किया । अंत में एक दिन पिता अकेले ही पेरिस पहुंचे और वहां के एक मकान में उन्होंने आत्महत्या कर ली । वह स्थान इवारिस के स्कूल से ज्यादा दूर नहीं था । सामाजिक अन्याय

के प्रति तरुण गाल्वा का मन घृणा से भर गया।

पोलीटेकनिक की परीक्षा में दूसरी बार फेल होने के बाद गाल्वा अध्यापक बनने के इरादे से नार्मल स्कूल में अध्ययन करने लगे। मगर यहां भी उन्हें राहत नहीं मिली। परीक्षा में बैठे तो परीक्षकों ने यहां भी उन्हें अध्यापक बनने के काबिल नहीं समझा।

सन् 1830 में गाल्वा अब 19 साल के थे। उस साल उन्होंने तीन शोध-निबंध तैयार किए। इनका संबंध बीजीय समीकरणों के सिद्धांत से था। ये गणित को बहुत आगे पहुंचा देने वाले अत्यंत महत्वपूर्ण निबंध थे। गाल्वा ने इन निबंधों को विज्ञान अकादमी की ग्राँ पुरस्कार-प्रतियोगिता में प्रस्तुत करने का निर्णय किया। इस पुरस्कार-प्रतियोगिता की बड़ी ख्याति थी और केवल चोटी के गणितज्ञ ही इसमें भाग लेते थे। गाल्वा के निबंध निश्चय ही पुरस्कार पाने योग्य थे। गाल्वा ने इनके बारे में ठीक ही कहा था : ''मेरी इन गवेषणाओं को पढ़ने के बाद बहुत-से गणितज्ञों को अपना गवेषणा-कार्य बीच में ही छोड़ देना पड़ेगा।''

गाल्वा के निबंध अकादमी के सचिव के पास सुरक्षित पहुंच गए। सचिव उन्हें जांचने के लिए अपने घर ले गए। मगर निबंधों की जांच करने के पहले ही उनकी मृत्यु हो गई। सचिव की मृत्यु के बाद उनके कागज-पत्रों की छानबीन की गई तो उनमें गाल्वा के निबंध कहीं नहीं मिले! गाल्वा को कितना सदमा पहुंचा होगा, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। 1830 ई. की क्रांति का दौर शुरू हो गया था। गाल्वा जनता के अधिकारों के लिए लड़नेवाले एक रिपब्लिकन के रूप में राजनीति में कूद पड़े। वे विद्यार्थियों के आंदोलन के प्रखर प्रवक्ता बन गए। नतीजा यह हुआ कि उन्हें कालेज से निकाल दिया गया।

उसके बाद गाल्वा ने उच्च बीजगणित की शिक्षा देने के लिए एक निजी कक्षा खोली। मगर उन्हें कोई विद्यार्थी नहीं मिला। तब गाल्वा नेशनल गार्ड के तोपखाने की एक बटैलियन में शामिल हो गए। परंतु गणित को उन्होंने एकदम छोड़ नहीं दिया था। उसी दौरान उन्होंने एक और—अंतिम बार—प्रयास किया और समीकरणों के व्यापक हल के बारे में एक शोध-निबंध तैयार करके विज्ञान अकादमी को भेज दिया। प्रसिद्ध गणितज्ञ-भौतिकीविद **प्वासों**[2] निर्णायक नियुक्त हुए। प्वासों ने निर्णय दिया — निबंध अबोधगम्य है। उसके बाद गाल्वा ने गणित छोड़ दिया और क्रांतिकारी राजनीति में सक्रिय हो गए।

गाल्वा के जिस गवेषणा-कार्य को 'अबोधगम्य' समझा गया था वह आज 'गाल्वा सिद्धांत' के नाम से जाना जाता है और उसे आधुनिक गणित की एक महान उपलब्धि माना जाता है।

गाल्वा अब जोर-शोर से राजनीति में सक्रिय हो गए थे। 9 मई, 1831 की घटना है। गाल्वा जिस बटैलियन में शामिल हुए थे उसे तोड़ दिया गया था।

इसका विरोध करने के लिए उस दिन पेरिस के एक रेस्तोरॉं में करीब 200 रिपब्लिकन जमा हुए । खूब हो-हल्ला हुआ । उसी समय गाल्वा ने अपने जेबी चाकू को निकालकर और उसे ऊपर उठाकर घोषणा की—"राजा लुई फिलिप के लिए ।"[3]

दूसरे दिन गाल्वा को बंदी बनाकर जेल में डाल दिया गया । मुकदमा चला । बचाव पक्ष के वकील ने दलील दी कि गाल्वा के असली शब्द थे—"राजा लुई फिलिप के लिए—यदि वह देशद्रोही बनता है ।" न्यायाधीश दयालु थे । गाल्वा छूट गए ।

मगर करीब एक महीने बाद 'खतरनाक उग्रवादी' गाल्वा को पुनः गिरफ्तार कर लिया गया । रिपब्लिकन एक बड़े जलसे का आयोजन करने जा रहे थे । इसलिए अधिकारियों ने गाल्वा-जैसे उग्रवादियों को पहले ही बंदी बना लेना ठीक समझा था । मगर गाल्वा के विरुद्ध आरोप सिद्ध करना आसान नहीं था । अंत में उन पर यही आरोप लगाया गया कि उन्होंने बरखास्त की गई तोपखाना-बटैलियन की पोशाक पहन रखी थी । गाल्वा को छह महीने के कारावास की सजा मिली ।

जेल में गाल्वा का जीवन बड़ा कष्टप्रद रहा । 1832 ई. में पेरिस में हैजा फैला तो उन्हें कुछ दिन तक अस्पताल में रखने के बाद अंत में पैरोल पर छोड़ दिया गया । बाहर आने पर उनका जीवन बड़ा ही अस्त-व्यस्त रहा । उसी दौरान एक फड़तूस लड़की से उनका प्रेम-संबंध भी जुड़ा ।

फिर 29 मई, 1832 का वह दिन आया जब गाल्वा के प्रतिद्वंद्वियों ने उन्हें 'सम्मान की रक्षा' के लिए चुनौती दी । ठीक-ठीक क्या घटित हुआ, इसके बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती । शायद किसी लड़की को लेकर या किसी राजनीतिक मसले को लेकर कोई फसाद पैदा हो गया और प्रतिद्वंद्वियों ने उन्हें चुनौती दे डाली । गाल्वा ने चुनौती स्वीकार कर ली और रातभर जागकर अत्यंत संक्षेप में गणित की अपनी प्रमुख गवेषणाओं को कागज के पन्नों पर उतारा । दूसरे दिन सुबह अवश्यंभावी मृत्यु को गले लगाने के लिए गाल्वा पेरिस के बाहर के वन में पहुंच गए । उसके बाद की शोकांतिका को हम बता चुके हैं ।

जैसा कि हम बता चुके हैं, गाल्वा का समस्त गवेषणा-कार्य कागज के 60 छोटे पन्नों तक सीमित रहा । उनकी मृत्यु के चौदह साल बाद, 1846 ई. में, उनका यह गवेषणा-कार्य गणित की एक शोध-पत्रिका में प्रकाशित हुआ । संपादक की टिप्पणी थी : "इवारिस गाल्वा का प्रमुख खोजकार्य यह जानना है कि जोड़, घटा, गुणा, भाग तथा मूल प्राप्त करने की क्रियाओं के जरिए किन स्थितियों में किसी समीकरण को हल करना संभव हो सकता है । लेखक ने व्यापक सिद्धांत की नींव रखी है । ···लुई-ल ग्राँ के कालेज में पढ़ते समय सोलह

साल के एक विद्यार्थी ने इस अत्यंत जटिल विषय को खोजकार्य के लिए चुना था।''

समीकरणों के मूल प्राप्त करने के प्रयासों का इतिहास बड़ा लंबा है। वर्ग-समीकरण के दो मूल प्राप्त करने की विधि प्राचीन काल में ही खोज ली गई थी, भारतीय गणितज्ञों द्वारा भी। मध्ययुग में तृतीय और चुतर्थ घात के बीजीय समीकरणों को हल करने के सूत्र भी उपलब्ध हो गए। फिर गणितज्ञ पंचम् घात के समीकरण के हल के लिए सूत्र खोजने में जुट गए। महान गौस प्रमाणित कर चुके थे कि बीजीय समीकरण जितने घातवाला होता है, उतने ही उसके मूल होते हैं। मगर करीब 300 सालों के प्रयासों के बाद भी पंचम् घात के समीकरण के हल के लिए उन्नीसवीं सदी के आरंभ तक कोई सूत्र उपलब्ध नहीं हुआ था। अंत में आबेल और गाल्वा की प्रतिभाओं ने इस समस्या का समाधान खोज निकाला।

आबेल ने सिद्ध किया कि चतुर्थ घात से अधिक उंचे घातवाले बीजीय समीकरणों का जोड़, गुणन आदि की सामान्य क्रियाओं से हल प्राप्त करना संभव नहीं है।

बीजीय समीकरणों के हल की इस समस्या के लिए इवारिस गाल्वा ने एक नया मार्ग अपनाया। किसी समीकरण को हल करने का अर्थ है उसके मूल खोजना। गाल्वा ने अपने अन्वेषण को किसी एक निश्चित घातवाले समीकरण तक सीमित नहीं रखा। उन्हाने सभी घातोंवाले समीकरणों पर विचार किया।

यहां यह जान लेना उपयोगी होगा कि व्यावहारिक उपयोग के लिए किसी समीकरण के ठीक-ठीक हल प्राप्त करना आवश्यक नहीं होता। मूलों के सन्निकट मान प्राप्त करना ही पर्याप्त होता है। ऐसे सन्निकट मान प्राप्त करने के लिए गणितज्ञ, विधियां प्रस्तुत कर देते हैं। भौतिकीविदों और इंजीनियरों की जरूरतों के लिए ये विधियां पर्याप्त होती हैं। अब तो कंप्यूटरों का उपयोग करके समीकरणों के काफी सूक्ष्म हल प्राप्त किए जा सकते हैं। मगर आक्षरिक स्थिरांकोंवाले व्यापक समीकरणों का अध्ययन सन्निकट विधियों से नहीं किया जा सकता।

गाल्वा की पहली महत्वपूर्ण खोज यह थी कि उन्होंने अनिर्धार्यतावाले समीकरणों के मूलों के बीच कुछ सुनिश्चित संबंध खोज निकाले। जैसे, एक मूल दो अन्य मूलों का एक निश्चित फलन (फंक्शन) है।

मगर गाल्वा की सबसे बड़ी खोज यह है कि उन्होंने समीकरणों के गुणधर्मो का अध्ययन करने के लिए व्यापक विधियों का सृजन किया। उसके लिए उन्होंने **ग्रुप** (समूह या वर्ग) की व्यापक धारणा का उपयोग किया।

गणित में 'ग्रुप' किसी भी स्वरूपवाले तत्वों या घटकों का एक ऐसा समूह

होता है जिसके लिए एक निश्चित क्रिया (आपरेशन), जिसे 'ग्रुप आपरेशन' कहते हैं, सुपरिभाषित रहती है । यह क्रिया ग्रुप के हर दो घटकों के बीच संबंध स्थापित करती है । जैसे, घटक अ और ब का तीसरे घटक अ + ब के साथ । इस प्रक्रिया में अंकगणित के नियमों की तरह की ही चंद क्रियाओं का उपयोग होता है । उदाहरण के लिए, इसमें भी ग्रुप के किन्हीं तीन घटकों अ ब क पर साहचर्य का नियम लागू होता है : (अ + ब) + क = अ + (ब + क) । और कभी-कभी क्रमविनिमय का भी नियम लागू होता है : अ + ब = ब + अ । मगर हमेशा नहीं ।

'ग्रुप' किसी भी स्वरूप के घटकों से बना हो सकता है—संख्याओं, फलनों, घूर्णनों या अन्य गतियों से । ग्रुप के घटकों को गणितीय संकेतों में व्यक्त करके इनका अध्ययन किया जाता है । ग्रुप की धारणा की इसी व्यापकता के कारण यह अध्ययन गणित के विविध अंगों के अन्वेषण में बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है ।

गाल्वा ने समीकरणों के गुणधर्मों के अन्वेषण के लिए ग्रुप की धारणा का उपयोग किया । उन्होंने एक खास प्रकार के समीकरण के मूलों को ग्रुप मानकर फिर उन मूलों के बीच के संबंधों की छानबीन की । इस प्रकार, ग्रुपों का अन्वेषण करके उन्होने कसौटियां खोज निकालीं कि किन बीजीय समीकरणों का हल संभव है, और किनका नहीं । गणित के क्षेत्र में यह एक महान उपलब्धि थी। गणितज्ञों को सदियों से परेशान करती आ रही एक जटिल समस्या का गाल्वा ने एक व्यापक समाधान प्रस्तुत कर दिया था । आज संख्या, समुच्चय, फलन आदि की धारणाओं की तरह ग्रुप की धारणा भी समूचे आधुनिक गणित का आधारस्तंभ बन गई है ।

गणित में अवकल समीकरणों (डिफरेंशियल इक्वेशंस) का बड़ा महत्व है । अवकल समीकरणों के गुणधर्मों के गहन अन्वेषण के लिए नार्वे के गणितज्ञ **सोफुस ली** (1842-1899 ई.) ने ग्रुप सिद्धांत का उपयोग किया ।[4] ग्रुप सिद्धांत ने ज्यामिति के अध्ययन को भी काफी बदला है । 1872 ई. में प्रसिद्ध जर्मन गणितज्ञ **फेलिक्स क्लाइन** (1849-1925 ई.) ने ज्यामिति की प्रत्येक शाखा के साथ एक विशिष्ट ग्रुप का संबंध स्थापित किया । बाद में ग्रुप की धारणा का **क्वांटम सिद्धांत** में भी उपयोग हुआ । अब ग्रुप सिद्धांत का गणित सैद्धांतिक भौतिकी के क्षेत्र के अन्वेषण-कार्य के लिए प्रमुख साधन बन गया है ।

ग्रुप सिद्धांत की नींव, सोलह-सत्रह साल की अल्पायु में, इवारिस गाल्वा ने रखी थी ।

यह सच है कि प्रतिभाएं आसमान से नहीं टपकतीं । प्रतिभाएं भी सामाजिक परिवेश में ही पैदा होती हैं, पनपती हैं । मगर कभी-कभी, विशेषकर गणित के क्षेत्र में, कुछ ऐसी असाधारण प्रतिभाएं पैदा होती हैं जिनका अमूर्त कृतित्व समकालीन सामाजिक संदर्भों की सीमाओं को लांघकर भविष्य के दायरे में पहुंच

जाता है । ठीक-ठीक नहीं जानते कि ऐसा क्यों होता है । मगर इवारिस गाल्वा ऐसी ही एक विलक्षण प्रतिभा थे । श्रीनिवास रामानुजन् भी ऐसी ही एक महान प्रतिभा थे ।

सहायक ग्रंथ

1. ई.टी. बेल — **मेन आफ मैथेमेटिक्स** (भाग 2), पेलिकन बुक, लंदन 1953
2. डेविड यूजेन स्मिथ — **ए सोर्सबुक इन मैथेमेटिक्स** (दो भाग), डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1959
3. होवार्ड इवेस — **एन इंट्रोडक्शन टु द हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स** (पांचवां संस्करण), न्यूयार्क 1983
4. मॉरिस क्लाइन — **मैथेमेटिकल थॉट फ्राम एंशियंट टु मार्डन टाइम्स**, न्यूयार्क 1972

संदर्भ और टिप्पणियां

1. गाल्वा को कभी-कभी 'गेलॉय' या 'गाल्या' भी लिखा या बोला जाता है । मगर सही उच्चारण 'गाल्वा' ही है ।
2. फ्रांसीसी गणितज्ञ-भौतिकीविद सिमेओं डेनिस प्वासों (1781-1840 ई.) एक सैनिक पिता के पुत्र थे । आरंभिक शिक्षा उन्हें अपने पिता से ही मिली । शुरू में, परिवार के सदस्यों के आग्रह पर, चिकित्सा का अध्ययन किया । मगर बाद में गणित की ओर झुके और इकोल पोलीटेकनिक में नाम लिखाया । बाद में वहीं पर अध्यापक बने । अनंतर प्वासों कई जगह प्राध्यापक रहे और उन्होंने कई शासकीय पद भी संभाले ।

   प्वासों ने गणित-भौतिकी के कई क्षेत्रों में मौलिक खोजकार्य किया । प्वासों स्थिरांक, प्वासों अनुपात, प्वासों समीकरण, प्वासों नियम, आदि के रूप में विद्यार्थी उन्हें आज भी स्मरण करते हैं ।

सिमेओं प्वासों (1781-1840 ई.)

3. सन् 1830 की क्रांति में शार्ल दशम् को सिंहासन से उतारकर लुई फिलिप को राजा बनाया गया था ।
4. गाल्वा की गवेषणाओं का व्यापक विवेचन कैमिल जोर्दां (1838-1922 ई.)ने पहली बार 1870 ई. में अपनी एक कृति में किया था ।

जॉर्ज बूल

सन् 1937 की बात है । अमरीका के एक तरुण वैज्ञानिक **क्लाउदे ई. शान्नोन** विद्युत परिपथों के स्वयमेव चालू-बंद होने की व्यवस्था का अध्ययन कर रहे थे । तब उन्हें लगा कि यह व्यवस्था एक विशेष किस्म के बीजगणित के जरिए व्यक्त की जा सकती है । उन्होंने जो प्रबंध लिखा, उसमें उन्होंने दो बातें स्पष्ट कीं—

1. एक ऐसा बीजगणित है जो स्विचन परिपथों (स्विचिंग सर्क्यूट्स) पर लागू होता है ।
2. वह तर्कशास्त्र का बीजगणित है ।

यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण खोज थी । शान्नोन द्वारा तर्कशास्त्र के बीजगणित और स्वचालित स्विचन परिपथों का पारस्परिक संबंध स्पष्ट किए जाने के बाद ही आधुनिक इलेक्ट्रानिक कंप्यूटरों का विकास हुआ ।

शान्नोन ने जिसे 'तर्कशास्त्र का बीजगणित' कहा वह पहले से तैयार था । इस बीजगणित की स्थापना जॉर्ज बूल ने 1854 ई. में प्रकाशित अपने ग्रंथ **चिंतन के सिद्धांत** (लॉज आफ थॉट) में की थी । बूल द्वारा संस्थापित यह बीजगणित आज 'बूलीय बीजगणित' के नाम से भी जाना जाता है ।

बीजगणित का अध्ययन प्राचीन काल से होता आ रहा है । भारतीय और इस्लामी गणितज्ञों ने इसके विकास में भरपूर योगदान किया था । मगर तब बीजगणित का संबंध केवल समीकरणों और संख्या-गणनाओं से था, और अव्यक्त राशियां केवल संख्याओं की ही सूचक होती थीं । बीजगणित में प्रयुक्त होनेवाली जोड़, गुणा आदि की क्रियाएं अंकगणित की क्रियाओं-जैसी ही थीं ।

परंतु करीब डेढ़ सौ साल पहले एक नए किस्म के बीजगणित ने जन्म लिया । इस बीजगणित में विचारों को संकेतों या प्रतीकों में व्यक्त किया गया और इन विचारों के मेलजोल को +, −, × जैसे चिह्नों से व्यक्त करके तार्किक परिणाम प्राप्त किए गए । इस तरह, पिछले करीब डेढ़ सौ सालों में अनेक प्रकार के बीजगणितों का विकास किया गया । इन अमूर्त बीजगणितों की संख्या अब 200 से भी ऊपर पहुंच गई है । आधुनिक गणित में इन अमूर्त बीजगणितों के लिए

विशिष्ट संकेतों और शब्दावली का व्यापक उपयोग होता है ।

जॉर्ज बूल को इस नए बीजगणित का संस्थापक माना जाता है । **बर्ट्रण्ड रसेल** ने 1901 ई. में लिखा था : "शुद्ध गणित की खोज जॉर्ज बूल ने अपनी 'चिंतन के सिद्धांत' नामक कृति में की ।...उनके ग्रंथ में प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र का विवेचन है । और, प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र का मतलब है गणित ।"

रसेल का यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है । तर्कशास्त्र और गणितशास्त्र अन्योन्याश्रित हैं । बूल के पहले कई गणितज्ञों ने तर्कशास्त्र को बीजगणित के ढांचे में प्रस्तुत करने के सपने देखे थे । बूल ने इस सपने को साकार बनाया ।

जॉर्ज बूल की संघर्षमय जीवन-गाथा प्रमाणित करती है कि गरीबी, देरी से प्राप्त शिक्षा और सुख-सुविधाओं का अभाव, आदि प्रतिकूल परिस्थितियां भी गणित के अन्वेषण में बाधक नहीं बन सकतीं । उनका जन्म 2 नवंबर, 1815 को पूर्वी इंग्लैंड के लिंकन नगर में हुआ था । पिता जॉन बूल व्यवसाय से मोची थे और उनकी अपनी एक छोटी-सी दुकान भी थी । जॉन बूल भले ही मोची रहे हों, मगर वे एक चिंतनशील व्यक्ति थे और उन्हें प्रकाशीय यंत्र बनाने का शौक था । वे एक कुशल दुकानदार नहीं थे, इसलिए उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी ।

परिवार की निम्न हैसियत के कारण जॉर्ज को अच्छी शिक्षा की सुविधाएं नहीं मिलीं । उसे एक घटिया स्कूल में दाखिला लेना पड़ा । उस स्कूल में लैटिन और ग्रीक भाषाएं नहीं पढ़ाई जाती थीं । मगर जॉर्ज ने इन शास्त्रीय भाषाओं को सीखने का दृढ़ निश्चय कर लिया । उसके पिता के एक दुकानदार-मित्र थोड़ी-सी लैटिन जानते थे । जॉर्ज ने उनसे लैटिन व्याकरण की आरंभिक जानकारी प्राप्त की । इस तरह बारह साल के जॉर्ज ने लैटिन का काफी अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था । उसके बाद उन्होंने स्वयं ही ग्रीक भाषा भी सीखी ।

जॉर्ज को गणित की थोड़ी-बहुत आरंभिक शिक्षा अपने पिता से मिली । मगर आरंभ में जॉर्ज की गणित में कोई दिलचस्पी नहीं थी । लैटिन और ग्रीक के अध्ययन में उनकी ज्यादा दिलचस्पी थी, शायद इसलिए कि वे ईसाई पुरोहित बनना चाहते थे ।

परिवार की हालत खस्ता थी । इसलिए 16 साल के जॉर्ज को आगे पढ़ाई जारी रखने का विचार छोड़ देना पड़ा । आगे के करीब चार साल तक उन्होंने स्कूलों में अध्यापक का काम किया और पैसा-पैसा बचाकर अपने माता-पिता की मदद की । उसी दौरान उन्होंने फ्रांसीसी, जर्मन और इतालवी भाषाओं पर भी अधिकार प्राप्त कर लिया ।

अंत में, बीस साल की आयु में, जॉर्ज बूल ने लिंकन में स्वयं अपना एक स्कूल
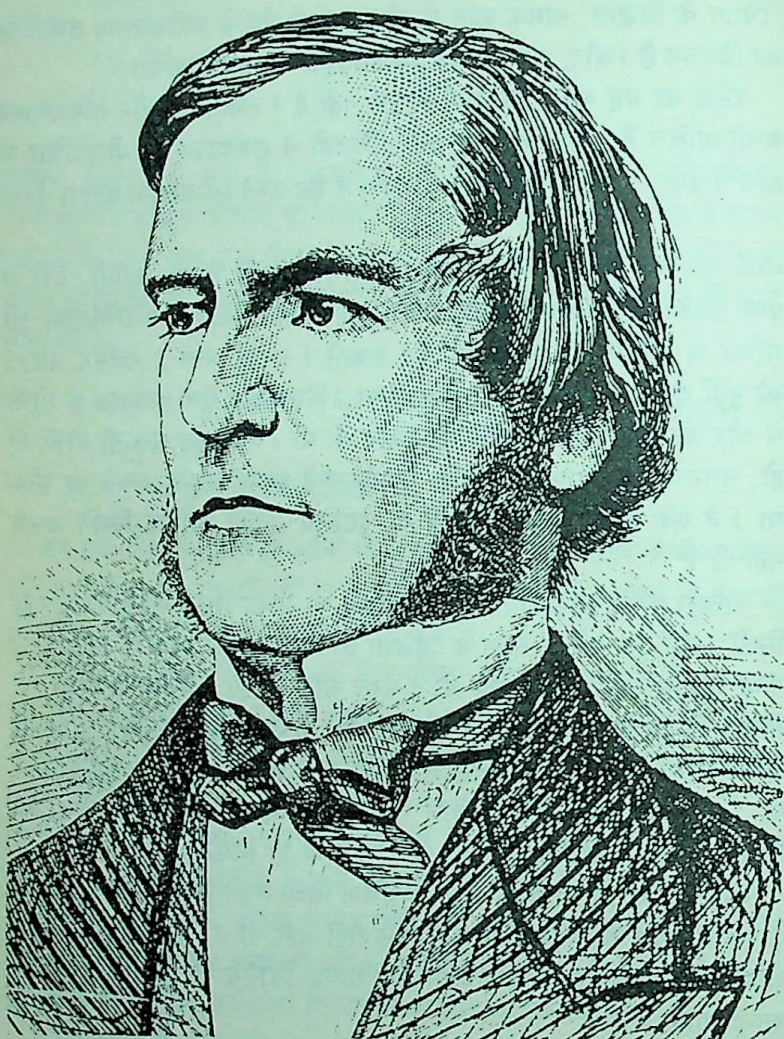
जॉर्ज बूल (1815-1864 ई.)

खोला । उसके साथ ही उनके जीवन ने एक नया मोड़ लिया । अपने स्कूल के विद्यार्थियों को गणित पढ़ाने के लिए उन्हें स्वयं गणित पढ़ना पड़ा । बचपन में पिता से उन्होंने थोड़ा-सा ही प्रारंभिक गणित पढ़ा था । अब बूल ने गणित की पाठ्य-पुस्तकों को पढ़ना शुरू किया । मगर उस समय की गणित की पाठ्य-पुस्तकें उन्हें बड़ी बेढंगी लगीं । सोचने लगे — क्या किया जाए ?

जॉर्ज बूल ने आबेल और गाल्वा का अनुकरण किया । आबेल और गाल्वा ने गणितज्ञों की मूल कृतियों से गणित का ज्ञान अर्जित किया था । बूल ने आबेल और गाल्वा की मूल कृतियां पढ़ीं । फिर उन्होंने लापलास और लाग्राँज के ग्रंथों का अध्ययन किया । बूल की गणित की जानकारी बहुत सीमित थी । अतः लापलास और लाग्राँज के ग्रंथों का अध्ययन करनेवाले बीस साल के बूल की बौद्धिक क्षमता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है । लापलास का 'विश्व यांत्रिकी' ग्रंथ कितना जटिल है, इसकी जानकारी हम पहले दे चुके हैं । लाग्राँज के 'वैश्लेषिक यांत्रिकी' ग्रंथ में शुरू से लेकर अंत तक एक भी आकृति नहीं है । बूल ने बिना किसी की मदद के स्वयं ही इन ग्रंथों का अध्ययन किया । लिंकन में 1834 ई. में एक नया यांत्रिक संस्थान खुला था । मित्रों की मदद से बूल को वहां के ग्रंथालय से गणित की पुस्तकें और पत्रिकाएं पढ़ने को मिलने लगीं ।

उसी दौरान बूल ने गणित के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण खोज की । यह थी **निश्चरों** (इनवेरियंट्स) की खोज । इस खोज की अधिक चर्चा हम गणितज्ञ केली और सिल्वेस्टर के संदर्भ में आगे करेंगे । मगर यहां इतना बता देना जरूरी है कि 'निश्चरता का गणितीय सिद्धांत' यदि तैयार नहीं होता, तो आइंस्टाइन (1879-1955 ई.) के लिए आपेक्षिकता का सिद्धांत भी विकसित कर पाना संभव न होता ।

बूल के समय में गणित के शोध-निबंधों के प्रकाशन के लिए आज-जैसी प्रचुर सुविधाएं उपलब्ध नहीं थीं । कुछ संस्थाओं की अपनी पत्रिकाएं थीं, मगर उनमें संस्थाओं के सदस्यों के ही निबंध प्रकाशित होते थे । सौभाग्य से, स्कॉटलैंड के गणितज्ञ डंकन फर्क्यूहर्सन ग्रेगोरी (1813-1844 ई.) के संपादकत्व में 1837 ई. में *द कैम्ब्रिज मैथेमेटिकल जर्नल* नामक एक नई पत्रिका प्रकाशित हुई । बूल ने अपने कुछ निबंध उस पत्रिका में प्रकाशनार्थ भेजे । निबंधों की मौलिकता और शैली से ग्रेगोरी बड़े प्रभावित हुए । पत्रिका में बूल के निबंध छपने लगे ।

उन दिनों इंग्लैंड के कुछ गणितज्ञ एक नए किस्म के बीजगणित का विकास करने में जुटे हुए थे । इनमें प्रमुख थे जॉर्ज पिकॉक[1], चार्लेस बैबेज[2] और अगस्तस दे मोर्गन[3] । पिकॉक ने 1830 ई. में प्रकाशित बीजगणित से संबंधित अपने एक ग्रंथ में स्पष्ट किया कि य+र = र+य, य र = र य, य(र+ल) =

य र+य ल जैसे संबंधों में यह जरूरी नहीं कि य, र, ल, ... केवल संख्याओं के ही द्योतक हों । उन्होंने कहा कि य, र, ल,··· आदि महज ऐच्छिक संकेत हैं और ये सिर्फ संख्याओं को सूचित नहीं करते । इन संकेतों के मेल-जोल को कुछ क्रियाओं द्वारा व्यक्त किया जाता है । इन क्रियाओं या परिकर्मों के लिए हम +, –, ×, ÷ जैसे चिह्नों का प्रयोग करते हैं । नए बीजगणित में इन क्रियाओं को य, र, ल,··· जैसे संकेतों से पृथक करके स्वतंत्र अर्थ प्रदान किए गए । इस प्रकार विभिन्न प्रकार के अमूर्त बीजगणित अस्तित्व में आते गए ।

उसी दौरान **अगस्तस दे मोर्गेन** (1806-1871 ई.) जैसे कुछ गणितज्ञ तर्कशास्त्र को बीजगणित के क्षेत्र में लाने के प्रयास में जुटे हुए थे । अन्य शब्दों में, अरस्तू के परंपरागत तर्कशास्त्र को प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र के स्तर पर उठाने के प्रयास किए जा रहे थे । जॉर्ज बूल भी इसी दिशा में कार्य कर रहे थे ।

उसी समय की एक घटना है । सर विलयम हैमिल्टन (1788-1856 ई.) नाम के एक दार्शनिक थे । सर विलियम रोवेन हैमिल्टन (1805-65 ई.) नाम के एक प्रख्यात गणितज्ञ भी उस समय जीवित थे । ऊपर हम बता चुके हैं कि गणितज्ञ दे मोर्गेन उस समय प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र के क्षेत्र में कार्य कर रहे थे । दार्शनिक हैमिल्टन ने आरोप लगाया कि दे मोर्गेन ने उनके कुछ विचार चुराए हैं। वस्तुतः यह आरोप सही नहीं था । दे मोर्गेन ने हैमिल्टन के झूठे आरोप का करारा जवाब दिया ।

तब तक जॉर्ज बूल और दे मोर्गेन की मित्रता स्थापित हो चुकी थी, क्योंकि दोनों ही प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र के विकास में जुटे हुए थे । बूल भलीभांति जानते थे कि हैमिल्टन ने दे मोर्गेन पर सरासर झूठा आरोप लगाया है । इसे सिद्ध करने के लिए जॉर्ज बूल ने 1848 ई. में एक प्रबंध प्रकाशित किया—**तर्कशास्त्र का गणितीय विश्लेषण** (द मैथेमेटिकल एनेलेसिस आफ लॉजिक) । तर्कशास्त्र को प्रतीकों के ढांचे में ढालने का विचार महान लाइबनिट्ज को भी सूझा था । मगर इसे साकार रूप देने में पहली बार सफलता मिली जॉर्ज बूल को । स्मरण रहे कि उस समय बूल एक मामूली स्कूल-मास्टर थे !

बूल की इस कृति ने दे मोर्गेन को बड़ा प्रभावित किया । इस छोटी-सी पुस्तक ने बूल के लिए उन्नति और सुविधा के द्वार भी खोल दिए । उन्हें 1849 ई. में आयरलैंड के तत्कालीन कॉर्क नगर के क्वीन्स कालेज में गणित के प्राध्यापक का पद मिला । उनकी आर्थिक चिंताएं खत्म हुईं और स्कूल के नीरस गणित को पढ़ाने से भी मुक्ति मिल गई । उस समय बूल 34 साल के थे ।

इस उम्र तक बहुत-से गणितज्ञ अपना प्रमुख खोजकार्य कर चुके होते हैं । मगर बूल का महान कृतित्व प्राध्यापक बनने के पांच साल बाद 1854 ई. में प्रकाशित हुआ । इस महान कृति का नाम है—'चिंतन के सिद्धांत' (द लॉज

आफ थॉट) । इस कृति में बूल ने तर्कशास्त्र को बीजगणित के एक सरल ढांचे में प्रस्तुत कर दिया है । बूल के प्रयासों से तर्कशास्त्र, पहली बार, गणित के दायरे में पहुंच गया ।

बूल के आरंभिक प्रयास के बाद प्रतीकात्मक या गणितीय तर्कशास्त्र ने खूब विकास किया है । आज गणित के स्वरूप और इसके आधारतत्वों को स्पष्ट करने के लिए गणितीय तर्कशास्त्र का सहारा लेना परमावश्यक हो गया है ।

यहां हम बूलीय तर्कशास्त्र या बूलीय बीजगणित का व्यापक विवेचन नहीं कर पाएंगे । इतना ही बता देना पर्याप्त होगा कि बूल ने गणितीय क्रियाओं के +, × जैसे चिह्नों पर पृथक् रूप से विचार किया और पता लगाया कि इनका अपना एक स्वतंत्र प्रतीकात्मक बीजगणित है । बूलीय बीजगणित की अपनी कुछ विशेषताएं हैं । जैसे, इसमें—

य + य = य, और
य × य = य होता है ।

जॉर्ज बूल का कृतित्व काफी समय तक उपेक्षित पड़ा रहा । गणितज्ञ इसे तर्कशास्त्र के क्षेत्र का कार्य मानते रहे और दार्शनिक इसे गणित के क्षेत्र का कार्य समझते रहे । वर्तमान सदी के आरंभ में जब यह सुस्पष्ट हुआ कि तर्कशास्त्र और गणित अन्योन्याश्रित हैं, तभी जाकर बूल के महान कृतित्व का महत्व स्पष्ट हुआ। अब गणित के स्वरूप और इसकी आधारशिलाओं का अन्वेषण करने के लिए प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र की विधियों का व्यापक उपयोग होता है ।

अब बूलीय बीजगणित एक काफी व्यापक विषय बन गया है और जालक सिद्धांत (लैटिस थ्योरी), प्रायिकता सिद्धांत, सूचना सिद्धांत, समुच्चय सिद्धांत आदि कई क्षेत्रों में इसका उपयोग होता है । आज बूलीय बीजगणित का टेलीफोन परिपथों को निर्धारित करने में और इलेक्ट्रानिक कंप्यूटरों के सिलिकन चिप्पड़ों पर स्थापित किए जानेवाले अंगीभूत परिपथों के 'फाटकों' के निर्धारण में उपयोग होता है । बूलीय बीजगणित का उपयोग करके ही कंप्यूटर को गणनाओं का एक शक्तिशाली साधन बनाना संभव हुआ है ।

अपनी महान कृति 'चिंतन के सिद्धांत' के प्रकाशन के एक साल बाद, चालीस साल की आयु में, जॉर्ज बूल का मेरी एवरेस्ट के साथ विवाह हुआ । मेरी सर जॉर्ज एवरेस्ट (1790-1866 ई.) की भतीजी थीं । ये वही सर एवरेस्ट हैं जो बाद में भारत आए और सर्वेयर-जनरल नियुक्त हुए । हिमालय के सबसे ऊंचे पर्वत-शिखर को इन्हीं का नाम दिया गया । मेरी एवरेस्ट की गणित में भी दिलचस्पी थी । पति की मृत्यु के बाद उन्होंने **बूल का मनोविज्ञान** नामक एक पुस्तक भी लिखी । इसमें मेरी ने अपने पति के बारे में कुछ संस्मरण दिए हैं और

उनकी चिंतन-प्रणाली का खुलासा किया है ।

जॉर्ज बूल ने अपने जीवनकाल में गणित की दो पाठ्य-पुस्तकें, गणितीय तर्कशास्त्र के बारे में दो ग्रंथ और करीब 50 शोध-निबंध प्रकाशित किए । 1857 ई. में वे रॉयल सोसायटी के फैलो चुने गए । एक मोची के निर्धन परिवार में पैदा हुए बालक का, अच्छी और ऊंची शिक्षा प्राप्त न करने पर भी, गणित का प्राध्यापक और रॉयल सोसायटी का फैलो बनना गणित के इतिहास की सचमुच ही अनोखी घटना है ।

दिसंबर 1864 का एक दिन । खूब पानी बरस रहा था । फिर भी बूल विद्यार्थियों को पढ़ाने कालेज पहुंचे । भीग गए । न्युमोनिया हुआ, और 8 दिसंबर 1864 को, 49 साल की आयु में, उन्होंने इस दुनिया से बिदा ली ।

बूल के समय में तर्कशास्त्रियों ने उनके विचारों को संदेह की दृष्टि से देखा था। आज बूलीय तर्कशास्त्र आधुनिक गणित और इलेक्ट्रानिक कंप्यूटरों की गणना-पद्धति के लिए बुनियादी आधार बन गया है !

सहायक ग्रंथ

1. होवार्ड इवेस — **एन इंट्रोडक्शन टु द हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स** (पांचवां संस्करण), न्यूयार्क 1983
2. ई. टी. बेल — **मेन आफ मैथेमेटिक्स** (भाग 2), पेलिकन बुक, 1953
3. जेम्स आर. न्यूमान (संपादक) — **द वर्ड आफ मैथेमेटिक्स** (चार भाग), न्यूयार्क 1956
4. डेविड बेरगामिनी — **मैथेमेटिक्स** (दूसरा संस्करण), टाइम-लाइफ बुक, हांगकांग 1980
5. एडमंड काल्लिस बेर्कले — **जाइंट ब्रेन्स**, न्यूयार्क 1961
6. आई. एम. याग्लोम — **एन अन-यूजवल अल्जेब्रा**, मास्को 1978
7. संपादित— **लाइव्ज इन साइंस**, ए साइंटिफिक अमेरिकन बुक, न्यूयार्क 1957

संदर्भ और टिप्पणियां

1. जॉर्ज पिकॉक (1791-1858 ई.) की पढ़ाई कैम्ब्रिज में हुई और बाद में वे वहीं पर अध्यापक नियुक्त हुए । 1830 ई. में पिकॉक का **बीजगणित** *(ट्रीटीज आफ अल्जेब्रा)* ग्रंथ प्रकाशित हुआ, जिसमें उन्होंने यूक्लिड के 'मूलतत्व' की तरह बीजगणित का तार्किक प्रस्तुतीकरण करने का प्रयास किया । इसलिए पिकॉक को 'बीजगणित का यूक्लिड' कहा गया ।

   पिकॉक ने पहली बार बीजगणित के बुनियादी सिद्धांतों का अध्ययन प्रस्तुत किया । उन्होंने बीजगणित के दो भेद किए—'अंकगणितीय बीजगणित' और 'प्रतीकात्मक

बीजगणित' ।

2. चार्लेस बैबेज (1792-1871 ई.) डेवोनशायर के एक बैंकर के बेटे थे । उनकी पढ़ाई कैम्ब्रिज के ट्रिनिटी कालेज में हुई । उस दौरान जार्ज पिकॉक और विलियम हर्शेल के बेटे जोन हर्शेल (1792-1871 ई.) उनके सहपाठी और घनिष्ठ मित्र थे । तीनों ने मिलकर 'एनेलिटिकल सोसायटी' की स्थापना की थी, जिसका उद्देश्य था न्यूटन के गणितीय चिह्नों के स्थान पर लाइबनिट्ज के चिह्नों को प्रचलित कराना ।
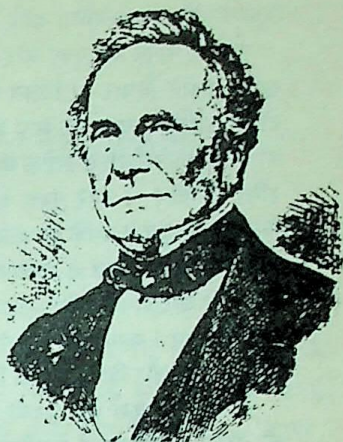
चार्लेस बैबेज (1792-1871 ई.)

बैबेज को आधुनिक कंप्यूटर का जनक माना जाता है । उन्होंने गणक-यंत्रों की कई योजनाएं तैयार की थीं । दो-तीन तरह के गणक-यंत्र तैयार करने में अपना, और शासन का भी, काफी धन खर्च किया, मगर उन्हें सफलता नहीं मिली । उनकी योजना तो सही थी, परंतु साधन समुन्नत नहीं थे ।

बैबेज के अंतिम दिन मानसिक क्लेश में गुजरे ।

3. **अगस्तस दे मोर्गेन** (1806-1871 ई.) : दे मोर्गेन द्वारा मार्ग प्रशस्त किए जाने के बाद ही जॉर्ज बूल प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र के अन्वेषण में अथवा एक नए किस्म के बीजगणित की स्थापना में समर्थ हुए थे । दे मोर्गेन एक प्रतिभाशाली गणितज्ञ, योग्य शिक्षक और गणितीय विषयों के प्रभावशाली लेखक थे । गणितज्ञों और गणित के विषयों के बारे में उन्होंने बहुत सारे कथा-किस्से, चुटकुले और विरोधाभास एकत्र किए थे । यही कारण है कि गणित के इतिहास में दे मोर्गेन के कथनों को खूब उद्धृत किया जाता है ।

अगस्तस दे मोर्गेन का जन्म 1806 ई. में तमिलनाडु के मदुरा नगर में हुआ था । उस समय उनके पिता ईस्ट इंडिया कंपनी की सेवा में थे । अगस्तस की एक आंख बचपन में ही बेकार हो गई थी । आरंभिक पढ़ाई इंग्लैंड के निजी स्कूलों में हुई । आगे की पढ़ाई कैम्ब्रिज के ट्रिनिटी कालेज में हुई । विविध विषय पढ़ने का शौक था और रटने से नफरत थी, इसलिए परीक्षा में उच्च श्रेणी नहीं प्राप्त कर सके । ईसाइयत में भी गहरी आस्था नहीं थी । इसलिए आगे की एम.ए. की पढ़ाई के लिए दे मोर्गेन को छात्रवृत्ति नहीं मिली । कानून की ओर झुके, मगर उसमें मन नहीं लगा ।

अंत में, 1828 ई. में, दे मोर्गेन को लंदन के नए स्थापित यूनिवर्सिटी कालेज में गणित के प्राध्यापक का पद मिला । इस पद पर उन्होंने, बीच के पांच सालों को छोड़कर, पूरे तीस साल तक काम किया ।

दे मोर्गेन एक सुयोग्य अध्यापक थे । उन्हें प्रतियोगिता परीक्षाओं से बडी चिढ़ थी । उनके भाषण व्यंग्यपूर्ण और आकर्षक होते थे ।

दे मोर्गेन ने अनेक विषयों पर लिखा है, परंतु गणित, तर्कशास्त्र तथा प्रायिकता

सिद्धांत के क्षेत्र का उनका कार्य विशेष महत्व का है । उन्होंने अंकगणित, बीजगणित, त्रिकोणमिति, कलन-गणित आदि विषयों पर उत्तम पाठ्य-पुस्तकें लिखीं ।

मगर दे मोर्गन का मुख्य और प्रेरणाप्रद योगदान प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र के क्षेत्र में रहा । उन्होंने विचार या चिंतन को प्रतीकों से व्यक्त करने की संभावना के बारे में सोचा। उन्होंने पहचाना कि अन्य अनेक विषयों की तरह तर्कशास्त्र के अध्ययन के लिए भी इसके अपने विशिष्ट प्रतीक या संकेत होने चाहिए । उन्होंने तर्कशास्त्र और विशुद्ध गणित के बीच के गहरे संबंध को पहचाना और इस दिशा में पथप्रदर्शक का कार्य किया। जॉर्ज बूल ने उनके इस कार्य को आगे बढ़ाया ।

दे मोर्गन को गणित के प्राध्यापक के रूप में जो वेतन मिलता था वह उनके परिवार — पत्नी और पांच बच्चों — के लिए पर्याप्त नहीं था । उन्हें पुस्तकें खरीदने का भी बड़ा शौक था । अपना खर्च चलाने के लिए उन्हें विविध विषयों पर खूब लिखना पड़ा । उन्होंने कोशों और विश्वकोशों के लिए सैकड़ों लेख लिखे ।

दे मोर्गन के कुछ लेख उनकी मृत्यु के बाद **बजट आफ पैराडाक्सेस** (विरोधाभासों की गठरी) नामक ग्रंथ में प्रकाशित हुए । इस ग्रंथ को काफी प्रसिद्धि मिली और इसके कथनों को अक्सर उद्धृत किया जाता है । इस ग्रंथ में दे मोर्गन द्वारा एकत्र किए गए विज्ञान तथा वैज्ञानिकों से संबंधित अनोखी घटनाओं, कथा-किस्सों, पहेलियों आदि का संकलन हुआ है । विज्ञान के इतिहासकारों के लिए यह ग्रंथ बड़ा ही उपयोगी है ।

दे मोर्गन की मृत्यु 18 मार्च, 1871 को हुई । उनकी पत्नी सोफिया एलिजाबेथ ने अपने पति के बारे में एक पुस्तक लिखी । दे मोर्गन के पुत्र विलियम ने एक उपन्यासकार के रूप में ख्याति प्राप्त की ।

प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र के एक संस्थापक के रूप में दे मोर्गन को सदैव स्मरण किया जाएगा । हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि उनका जन्म भारतभूमि में हुआ था ।

हैमिल्टन, केली और सिल्वेस्टर

किस्सा आयरलैंड का है, करीब डेढ़ सौ साल पुराना । डब्लिन शहर के नजदीक की डनसिंक वेधशाला के अध्यक्ष विलियम रोवेन हैमिल्टन कई सालों से गणित की एक समस्या सुलझाने में जुटे हुए थे । उनके आठ-नौ साल के दो बेटों को भी थोड़ा अंदाजा था कि समस्या किस तरह की है । रोज सुबह परिवार के सदस्य नाश्ते के लिए एकत्र होते, तो बच्चे पिता से पूछते —''पापा, क्या अब आप त्रिकों (ट्रिपलेट्स) को गुणा कर सकते हैं ?'' निराशा में सिर हिलाते हुए गणितज्ञ पिता उत्तर देते—''नहीं, मैं उन्हें केवल जोड़ और घटा ही सकता हूं ।''

हैमिल्टन डब्लिन के ट्रिनिटी कालेज में गणित-ज्योतिष भी पढ़ाते थे । एक दिन की बात है । वे पैदल ही डनसिंक से डब्लिन जा रहे थे । थोड़े विश्राम के लिए रास्ते के एक पुल के पत्थर पर बैठे, तो उन्हें एकाएक उस गणितीय समस्या का हल सूझ गया । वे जान गए कि समस्या के हल के लिए उन्हें त्रिकों की नहीं, बल्कि **चतुष्कों**, यानी चार संख्याओं के समूह की जरूरत है । बताया जाता है कि हैमिल्टन ने अपनी उस खोज से संबंधित सूत्र को उसी समय पुल के उस पत्थर पर चाकू से उकेर दिया । सूत्र है :

$$i^2 = j^2 = k^2 = ijk = -1$$

वह 16 अक्तूबर, 1843 का दिन था ।[1] हैमिल्टन के इस सूत्र के साथ उस दिन पहली बार एक नए किस्म के बीजगणित का सूत्रपात हुआ था । हैमिल्टन ने चार संख्याओं के समूह को **क्वाटरनिओन** यानी **चतुष्टयी** का नाम दिया । अब वे इन चतुष्टयों को उसी प्रकार गुणा कर सकते थे जैसेकि पूर्णांकों या परिमेय संख्याओं या सम्मिश्र (कॉम्प्लेक्स) संख्याओं को किया जा सकता है । मगर इन चतुष्टयों के गुणन में एक विशेषता थी । इनके संबंध में **गुणन का क्रमविनिमय नियम** टूट जाता है । गुणन के क्रमविनिमय नियम के अनुसार अ × ब = ब × अ। मगर हैमिल्टन के चतुष्टयों के लिए अ × ब = – ब × अ ।

यह एक नई खोज थी, एक नया बीजगणित था । उस समय से बीजगणित केवल संख्याओं और अंकगणित की क्रियाओं तक सीमित नहीं रहा । चतुष्टयों
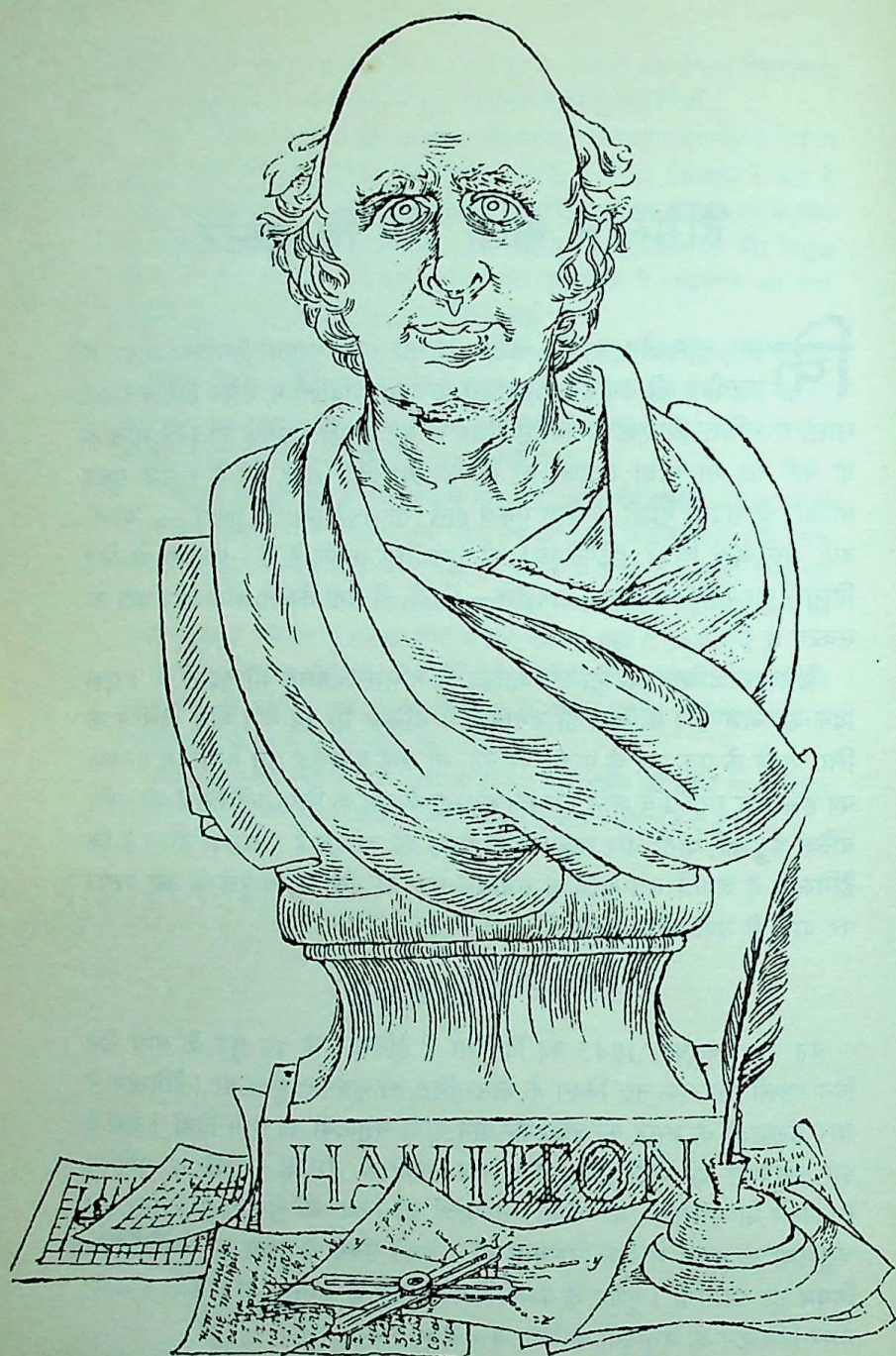
विलियम रोवेन हैमिल्टन (1805-1865 ई.)

का बीजगणित सदिशों (वेक्टर्स) की घुमावों-जैसी ज्यामितीय क्रियाओं को व्यक्त करता है । हैमिल्टन के बाद ऐसे कई नए बीजगणितों को जन्म दिया गया । हैमिल्टन के समकालीन गणितज्ञ **आर्थर केली** और **जेम्स जोसेफ सिल्वेस्टर** ने भी नए बीजगणितों का सृजन किया । ये तीनों गणितज्ञ ब्रिटिश-द्वीपवासी थे और इन्हें आधुनिक बीजगणित के जन्मदाता माना जाता है, इसीलिए यहां इनकी चर्चा हम एक साथ कर रहे हैं । हैमिल्टन तीनों में सबसे बड़े थे और उन्हें न्यूटन के बाद का सबसे बड़ा आंग्लभाषी गणितज्ञ माना जाता है, इसलिए सर्वप्रथम उन्हीं का परिचय ।

विलियम रोवेन हैमिल्टन का जन्म 3 अगस्त, 1805 को आयरलैंड के डब्लिन नगर में हुआ था । उनके पिता वकील थे । मगर बालक विलियम का पालन-पोषण माता-पिता ने नहीं किया । विलियम जब एक साल का था तभी उसकी शिक्षा-दीक्षा की जिम्मेदारी पादरी-चाचा जेम्स हैमिल्टन को सौंप दी गई थी । विलियम जब बारह साल का था, तो उसके पिता का देहांत हुआ, और उसके दो साल बाद उसकी मां भी गुजर गई ।

चाचा की देखरेख में शिक्षा प्राप्त करके विलियम ने बचपन में ही विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया । तीन साल की आयु में वह अच्छी तरह अंग्रेजी पढ़ लेता था और अंकगणित के सवाल हल करता था । पांच साल की आयु में वह लैटिन, ग्रीक तथा हिब्रू भाषाएं पढ़ लेता था और इनका अनुवाद कर सकता था। आठ साल की उम्र में उसने इतालवी और फ्रांसीसी भाषाएं सीख ली थीं । दसवें साल में पहुंचा तो उसने अरबी और संस्कृत भाषाएं सीखनी आरंभ कर दी थीं । तेरह साल का होने पर विलियम यह कहने में समर्थ हो गया कि उसने अपने जीवन के तेरह सालों में तेरह भाषाएं सीख ली हैं । चौदहवें साल में उसने डब्लिन की यात्रा पर आए ईरानी राजदूत को फारसी में स्वागत-पत्र लिखा !

अन्य मामलों में विलियम हैमिल्टन एक सामान्य किशोर था । उसे तैराकी का शौक था । वह पशु-पक्षियों को बेहद प्यार करता था । उसे कविताएं लिखने का भी शौक था ।

विलियम हैमिल्टन जब पंद्रह साल के थे, तो एक घटना ने उनके जीवन को एक नई दिशा प्रदान की । लगभग उसी उम्र का **जेराह कोलबर्न** नामक एक अमरीकी किशोर अपनी गणना-शक्ति का प्रदर्शन करने डब्लिन आया । वह 8^{16} कितना होता है? (उत्तर : 28,14,74,97,67,10,656); 2,47,483 के गुणनखंड बताओ ? (उत्तर : 941 और 263); 21,734×543 कितना होता है? (उत्तर: 1,18,01,562)-जैसे सवालों के चंद सेकंडों में तत्काल उत्तर प्रस्तुत कर देता था ![2]

पंद्रह साल के हैमिल्टन कोलबर्न की गणना-शक्ति से बड़े प्रभावित हुए । बाद में हैमिल्टन ने लिखा था — "उसके बाद मैं भी अंकगणित की गणनाएं दिमाग में करता रहा । संख्याओं से संबंधित वर्गमूल और घनमूल जैसी क्रियाएं मैं दिमाग में ही करने लगा ।" हैमिल्टन ने गणितज्ञ बनने का निश्चय कर लिया ।

गणना-शक्ति का प्रदर्शन करना एक बात है, गणितज्ञ बनना दूसरी बात । जेराह कोलबर्न आगे जाकर गणित के क्षेत्र में कुछ भी नहीं कर पाया । उसकी गणना-शक्ति भी जाती रही । हैमिल्टन को न्यूटन के बाद आंग्ल-जगत का सबसे बड़ा गणितज्ञ माना जाता है ।

सोलह साल की आयु में हैमिल्टन ने न्यूटन के ग्रंथ **प्रिंसिपिया** और लापलास के ग्रंथ **विश्व-यांत्रिकी** का अध्ययन किया । तब तक उन्होंने किसी स्कूल में दाखिला नहीं लिया था । हैमिल्टन का तब तक का सारा अध्ययन चाचा की देखरेख में चल रहा था ।

अठारह साल की आयु में, 1823 ई. में, हैमिल्टन ने डब्लिन के ट्रिनिटी कालेज में प्रवेश लिया । कालेज का उनका जीवन बड़ा गौरवशाली रहा । कालेज में दाखिल होने के पहले ही हैमिल्टन ने प्रकाश-किरणों के बारे में गहराई से सोचना शुरू कर दिया था । जब वह 21 साल के हुए, तो उन्होंने 'किरणों की प्रणालियों के सिद्धांत' के बारे में एक प्रबंध तैयार किया और उसे रॉयल आयरिश अकादमी के विचारार्थ भेज दिया । यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रबंध था। प्रकाश की किरणें एक स्थान से दूसरे स्थान तक यात्रा करते समय सदैव उस पथ में यात्रा करती हैं जिसमें न्यूनतम समय (या 'प्रयास') लगता है । इस मान्यता के आधार पर हैमिल्टन ने प्रकाश-किरणों की एक नई ज्यामिति के निर्माण का प्रयास किया ।

हैमिल्टन जब अभी ट्रिनिटी कालेज में स्नातक कक्षा के विद्यार्थी ही थे कि उनकी परिस्थितियों में एकाएक एक बड़ा परिवर्तन आया । ट्रिनिटी कालेज में खगोल-विज्ञान के प्राध्यापक डा. जोन ब्रिंकले ने 1826 ई. में अपना पद छोड़ दिया । उस पद को भरने के लिए विज्ञापन दिया गया । कई प्रतिष्ठित खगोलविदों ने आवेदन-पत्र भेजे । मगर प्राध्यापक का वह पद मिला स्नातक कक्षा के विद्यार्थी हैमिल्टन को! हैमिल्टन ने आवेदन-पत्र भी नहीं भेजा था । फिर भी बाईस साल के हैमिल्टन को सर्वसम्मति से प्राध्यापक चुन लिया गया !

ट्रिनिटी कालेज में खगोल-विज्ञान का प्राध्यापक होने का मतलब था आयरलैंड का राज-खगोलविद होना और साथ ही डब्लिन से नातिदूर के डनसिंक स्थान की वेधशाला का अध्यक्ष भी होना । स्पष्ट है कि हैमिल्टन को ये सुविधाएं उनके खोजकार्य के लिए ही प्रदान की गई थीं ।

प्राध्यापक बन जाने पर हैमिल्टन ने डनसिंक वेधशाला (डब्लिन से करीब

आठ कि.मी. दूर) को अपना निवास-स्थान बनाया । हैमिल्टन के खोजकार्य का खूब गौरव हो रहा था और उन्हें सुविधाएं मिली थीं, मगर उनका निजी जीवन सुखी नहीं था । प्राध्यापक बनने के पहले एक तरुणी से उनके प्रेम-संबंध स्थापित हुए थे । मगर उस लड़की ने जब एक अन्य व्यक्ति से विवाह कर लिया, तो हैमिल्टन को बड़ा सदमा पहुंचा । उन्होंने डूबकर आत्महत्या तक करने के बारे में सोचा था !

डनसिंक वेधशाला में स्थायी निवास बनाने के बाद 26 साल के हैमिल्टन के एक अन्य तरुणी **हेलेन मारिया बेली** के साथ प्रेम-संबंध बने । दो साल बाद, 1833 ई. में, दोनों का विवाह हुआ । मगर यह विवाह सफल नहीं रहा । श्रीमती हैमिल्टन कमजोर शरीर की और बड़ी नजाकत वाली महिला थी । उससे हैमिल्टन को दो पुत्र और एक पुत्री हुई । मगर वह एक गृहिणी की जिम्मेदारियों को संभालने में असमर्थ रही । वह दो साल के लिए अपनी बहन के पास लंदन चली गई, तो हैमिल्टन की जीवनचर्या बिगड़ गई और वे शराब के आदी हो गए।

गृहस्थ-जीवन सुखमय न होने पर भी हैमिल्टन खोजकार्य में जुटे रहे । 1824 ई. में, जब हैमिल्टन 29 साल के थे, उन्होंने अपने चाचा को लिखा था कि वे किरणों के अध्ययन के लिए प्रतिपादित अपने सिद्धांत को व्यापक बनाकर उसे समूचे गतिविज्ञान के लिए उपयोगी बनाना चाहते हैं । और, ऐसे समीकरण तैयार करने में अगले साल उन्हें सफलता भी मिल गई । हैमिल्टन के इन समीकरणों का महत्व करीब सौ साल बाद तब अधिक स्पष्ट हुआ, जब इन्हें
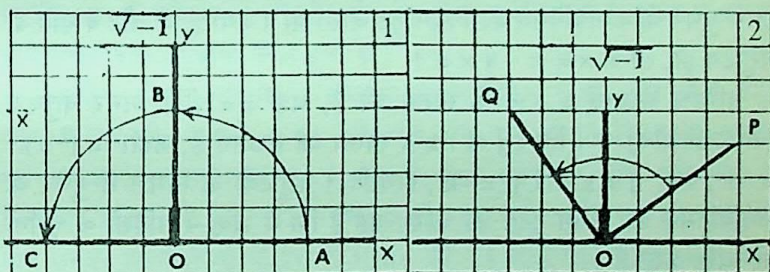
सम्मिश्र संख्या (अ + $\sqrt{-1}$ ब) वास्तविक संख्या और काल्पनिक संख्या के मेल से बनती है । यह संख्या एक रेखाखंड की दिशा तथा लंबाई दर्शाती है (सदिश) । सम्मिश्र संख्या पर की जाने वाली जोड़, घटा या गुणन की क्रियाएं घूर्णन की ज्यामितीय क्रिया के तुल्य होती हैं । X-अक्ष को वास्तविक घटक का और Y–अक्ष को काल्पनिक घटक का सूचक मानें, तो $\sqrt{-1}$ से गुणा करने का अर्थ होगा 90° का घुमाव और $\sqrt{-1}$ से दो बार (यानी −1 से) गुणा करने का अर्थ होगा 180° का घुमाव (आकृति 1) । रेखारंभ X-अक्ष से न हो, तब भी $\sqrt{-1}$ से गुणा करने का अर्थ होगा 90° का घुमाव (आकृति 2) ।

क्वांटम सिद्धांत से संबंधित तरंग-यांत्रिकी के निर्माण के लिए उपयोगी पाया गया।

गतिणीय प्रकाशिकी (आप्टिक्स) के क्षेत्र का हैमिल्टन का कार्य तो महत्वपूर्ण था ही, मगर चतुष्टयों (क्वाटरनिओन) से संबंधित उनका कार्य और भी अधिक महत्वपूर्ण एवं क्रांतिकारी था। उस समय तक यह स्पष्ट हो गया था कि एक निश्चित दिशा वाले रेखाखण्ड (सदिश) को समतल में एक सम्मिश्र संख्या द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। सम्मिश्र संख्या (कॉम्प्लेक्स नंबर) का मतलब है अ + i ब जैसी संख्या, जहां $i = \sqrt{-1}$। सम्मिश्र संख्या के दो घटक (अ, ब) समतल में किसी भी **सदिश** (वेक्टर) की स्थिति स्पष्ट कर देने के लिए पर्याप्त हैं। मजे की बात यह है कि इन युग्म (जुड़वां) संख्याओं पर भी वे सभी बीजगणितीय नियम लागू होते हैं जो कि पूर्णांक या परिमेय संख्याओं पर लागू होते हैं। अर्थात्, सम्मिश्र संख्याओं पर +, −, ×, ÷ की क्रियाएं लागू होती हैं।

चूंकि समतल में सदिशों की ज्यामिति को जुड़वां संख्याओं (सम्मिश्रों) से व्यक्त किया जा सकता है, इसलिए हैमिल्टन ने अनुमान लगाया कि तीन आयामों वाले दिक् में सदिशों की ज्यामिति को त्रिकों (ट्रिप्लेट्स) से व्यक्त करना संभव होगा। मगर कई सालों तक सोचने के बाद 1843 ई. में एक दिन अचानक उन्हें पता चला कि इसके लिए त्रिकों की नहीं, बल्कि चतुष्टयों की जरूरत है। इतना ही नहीं, इन चतुष्टयों को एक संयुक्त संख्या मानकर वे इनका गुणन भी कर सकते थे; परंतु चतुष्टयों का यह गुणन सामान्य गुणन से भिन्न था। इसमें गुणन के क्रमविनिमय का नियम टूट जाता था। अर्थात्, अ और ब यदि दो चतुष्टय हों, तो अ × ब = −ब × अ।

सम्मिश्र संख्याएं अ + iब के स्वरूप की हैं, जहां $i = \sqrt{-1}$; मगर चतुष्टय (क्वाटरनिओन) अ + i ब + j क + k ड स्वरूप की संख्याएँ हैं, जहां $i^2 = j^2 = k^2 = -1$, परंतु $ij = k$ और $ji = -k$, इत्यादि। चतुष्टयों के मामले में गुणन के क्रमविनिमय का नियम टूटने का कारण यह है कि ये दिक् में सदिशों के घूर्णनों को व्यक्त करते हैं।

चतुष्टयों के मामले में गुणन के क्रमविनिमय नियम का टूट जाना एक नई खोज थी, एक नए किस्म के बीजगणित की शुरुआत थी, एक सनसनीखेज उपलब्धि थी। हैमिल्टन के बाद परंपरागत नियमों को तिलांजलि देकर विविध प्रकार के बीजगणितों का सृजन किया गया। जर्मन गणितज्ञ **हरमान गुन्थेर ग्रासमान** (1809-77 ई.) ने 1844 ई. में एक ग्रंथ प्रकाशित करके उसमें नए स्वरूप के अनेक बीजगणितों की जानकारी दी।[3]

चतुष्टयों की खोज (1843 ई.) करने के बाद हैमिल्टन ने जीवन के शेष 22 साल इनका बीजगणित विकसित करने में गुजारे। बाद में अमरीकी गणितज्ञ व
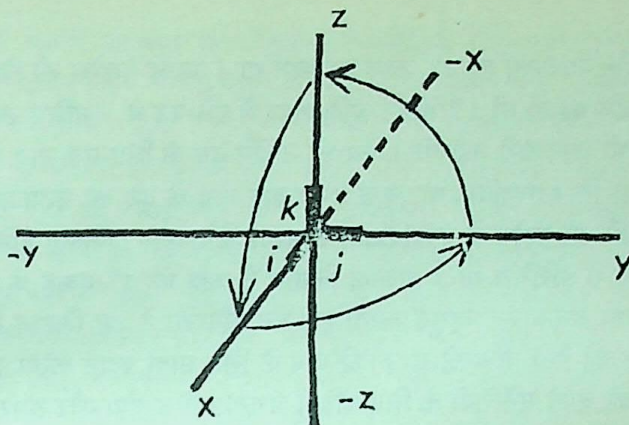
एक सदिश (वेक्टर) को तीन विमाओं में परस्पर लंब वाले तीन अक्षों की निर्देशांक प्रणाली में तीन इकाई-सदिशों i, j, k से व्यक्त किया जाता है (X -अक्ष पाठक की ओर निर्देश करता है, और Y तथा Z अक्ष पृष्ठ के तल में हैं) । i से गुणा करने का अर्थ होगा Y व Z के तल में 90° का घुमाव । इसी तरह j और k से गुणा करने के भी अर्थ होंगे । साथ ही, $i \times j = k$, और $j \times i = -k$ । अन्य शब्दों में, यहां गुणन के क्रमविनिमय का नियम टूट जाता है ।

भौतिकीवेत्ता **योशिआ विलार्ड गिब्स** (1839-1903 ई.) ने हैमिल्टन के इन चतुष्टयों का **सदिश विश्लेषण** (वेक्टर एनालेसिस) के रूप में परिष्कार किया । आगे जाकर **अदिश** (स्केलर) और **सदिश** (वेक्टर) को समेटते हुए **प्रदिश** (टेंसर) के एक अत्यंत व्यापक बीजगणित को जन्म दिया गया । आइंस्टाइन के आपेक्षिकता के सिद्धांत में और विश्वोत्पत्ति के अन्य सिद्धांतों के सृजन में प्रदिश बीजगणित बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है ।

वैवाहिक जीवन सुखमय न होने के कारण हैमिल्टन की जीवनचर्या बड़ी अस्त-व्यस्त रही । उन्हें शराब की लत लग गई थी । फिर भी उनका गवेषणा-कार्य सतत जारी रहा । अंत में, साठ साल की आयु होने पर, 2 सितंबर, 1865 को इस महान गणितज्ञ की मृत्यु हुई । हैमिल्टन की मृत्यु के बाद उनकी हस्तलिपियों के ढेरों में भोजन की कई सारी प्लेटें मिलीं; रोटी और आलू-चॉप के टुकड़े मिले ! इससे पता चलता है कि गणितीय खोजकार्य के समय उन्हें खाने की भी सुध-बुध नहीं रहती थी ।

हैमिल्टन ने कवि-हृदय पाया था । उन्होंने अनेक कविताएं भी लिखीं । विलियम वर्ड्स्वर्थ (1770-1850 ई.) उनके घनिष्ठ मित्र थे । कवि कॉलेरिज (1772-1834 ई.) भी उनके मित्र थे ।

अन्य अनेक गणितज्ञों की तरह हैमिल्टन के बारे में भी कई रोचक किस्से प्रसिद्ध हैं । बाद में डब्लिन के ट्रिनिटी कालेज में हैमिल्टन के ही प्राध्यापक-पद की शोभा बढ़ानेवाले प्रसिद्ध गणितज्ञ **सर एडमंड व्हिटेकर** ने एक किस्सा बताया है[4]:

डनसिंक वेधशाला का 17 एकड़ का फार्म था। उसकी देखरेख की जिम्मेदारी भी हैमिल्टन की ही थी। हैमिल्टन चूंकि शहर में पले-बढ़े थे, इसलिए उन्हें खेती की कुछ भी जानकारी नहीं थी। फिर भी उन्होंने दूध के लिए एक गाय पाल ली थी। जैसा कि स्वाभाविक था, कुछ समय बाद गाय के दूध का उत्पादन घटता गया। हैमिल्टन पड़ौस के एक किसान से सलाह लेने पहुंचे। किसान हैमिल्टन के कृषि-ज्ञान से परिचित था। चालाक किसान ने कहा कि 17 एकड़ के फार्म में उनकी गाय अकेलापन महसूस करती है। तब हैमिल्टन ने उस किसान से करार किया कि वह पैसों के बदले में उनकी गाय के लिए साथी प्रदान करेगा। फलतः किसान को अपने मवेशियों के लिए बढ़िया चरागाह मिल गया और ऊपर से कुछ रकम भी !

ऐसे थे हैमिल्टन, जिनकी गणितीय उपलब्धियां आपेक्षिकता के सिद्धांत और क्वांटम सिद्धांत, दोनों के लिए उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

× × ×

हैमिल्टन द्वारा 1843 ई. में चतुष्टयों (क्वाटरनिओन) के एक नए बीजगणित की खोज किए जाने के बाद नए-नए बीजगणितों की बाढ़-सी आ गई। आंग्ल-जगत के जॉर्ज बूल, आर्थर केली और जेम्स जोसेफ सिल्वेस्टर जैसे गणितज्ञों ने नए बीजगणितों की स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान किया। जॉर्ज बूल ने बीजगणितीय संकेतों का तर्कशास्त्र के लिए उपयोग किया और गणित तथा तर्कशास्त्र, दोनों को सुदृढ़ नींव प्रदान की। बूल ने निश्चरों (इनवेरियंट्स) के बीजगणितीय सिद्धांत की भी नींव रखी थी। आगे जाकर केली और सिल्वेस्टर ने निश्चरता के सिद्धांत को विकसित किया। केली ने एक नए किस्म के बीजगणित – **–आव्यूह बीजगणित** (मेट्रिक्स अल्जेब्रा) — को जन्म दिया। हैमिल्टन के चतुष्टयों की तरह केली के आव्यूहों पर भी गुणन के क्रमविनिमय का नियम लागू नहीं होता। आज आव्यूहों का गणित तथा भौतिकी के प्रायः सभी क्षेत्रों में व्यापक उपयोग होता है।

केली और सिल्वेस्टर के स्वभावों में और परिस्थितियों में आकाश-पाताल का अंतर था। स्वभाव-वैषम्य के बावजूद दोनों में गहरी मित्रता स्थापित हुई और दोनों ने गणितीय खोजकार्य के लिए एक-दूसरे को प्रेरित किया, एक-दूसरे को सहयोग दिया। इसलिए दोनों की चर्चा प्रायः साथ-साथ होती है।

आर्थर केली का जन्म 16 अगस्त, 1821 को इंग्लैंड के सर्रे प्रदेश के रिचमांड स्थान पर हुआ था। उनके पिता एक अंग्रेज व्यापारी थे और प्रायः पेट्रोग्राड में रहकर रूस के साथ व्यापार करते थे। आर्थर जब आठ साल के थे, तो उनके

पिता ने व्यापार का धंधा छोड़ दिया और इंग्लैंड में रहने लगे। चौदह साल की आयु में आर्थर लंदन के एक स्कूल में दाखिल हुए। वहां उन्होंने अपनी गणितीय प्रतिभा का परिचय दिया । पिता ने सत्रह साल के आर्थर को कैम्ब्रिज के ट्रिनिटी कालेज में भरती कर दिया। वहां आर्थर केली ने सर्वोच्च सम्मान के साथ परीक्षाएं पास कीं, फैलोशिप प्राप्त की, मगर धर्म संबंधी अपनी कुछ विशिष्ट मान्यताओं के कारण वे विश्वविद्यालय में अध्यापक का पद नहीं पा सके। परंतु तब तक केली ने अपने शोध-निबंध प्रकाशित करने शुरू कर दिए थे । उनका पहला शोध-निबंध बीस साल की आयु में, 1841 में प्रकाशित हुआ था। पच्चीस साल की आयु में 1846 ई. में जब उन्होंने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय छोड़ा, तो उनके अनेक शोध-निबंध प्रकाशित हो चुके थे।
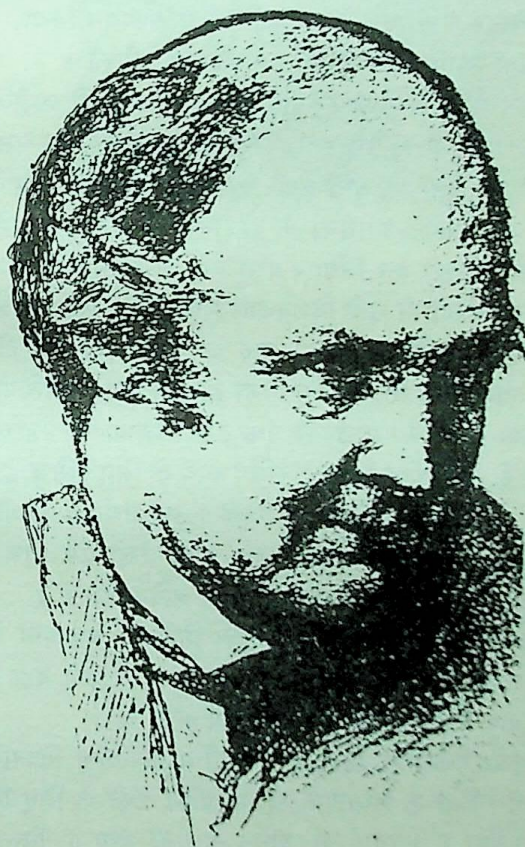
आर्थर केली (1821-1895 ई.)

प्राध्यापक का पद नहीं मिला, तो केली ने कानून का अध्ययन किया और 1849 ई. से आगे के चौदह साल तक वकालत का धंधा किया। मगर यह पेशा उन्होंने गुजारे के लिए अख्तियार किया था। वकालत के दौरान भी उनका खोजकार्य सतत जारी रहा। उन चौदह सालों में उन्होंने लगभग 250 शोध-निबंध तैयार किए । उसी दौरान केली और सिल्वेस्टर एक-दूसरे के निकट संपर्क में आए । सिल्वेस्टर उस समय लंदन की एक कंपनी में बीमाविज्ञ (ऐक्चुएरी) थे ।

जेम्स जोसेफ सिल्वेस्टर का जन्म लंदन के एक यहूदी परिवार में 3 सितंबर, 1814 को हुआ था। स्कूली शिक्षा प्राप्त करने के बाद सिल्वेस्टर लंदन विश्वविद्यालय में दाखिल हुए, जहां कुछ महीनों तक वे दे मोर्गेन के शिष्य रहे । उसके बाद सिल्वेस्टर ने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में अध्ययन किया, मगर यहूदी होने के कारण उन्हें उपाधि नहीं मिली, न ही फैलोशिप मिली !

अंत में चौबीस साल के सिल्वेस्टर को लंदन के यूनिवर्सिटी कालेज में विज्ञान के प्राध्यापक का पद मिला। उस पद पर वे दो साल तक रहे। उस बीच उन्हें रॉयल सोसायटी का फैलो भी चुना गया। मगर अंत में विज्ञान पढ़ाने में उनका मन नहीं लगा और उन्होंने अमरीका के वर्जिनिया विश्वविद्यालय में गणित के प्राध्यापक का पद स्वीकार कर लिया । परंतु वहां दो विद्यार्थियों के साथ फसाद हो जाने के कारण जल्दी ही उन्हें विश्विद्यालय छोड़ देना पड़ा। सिल्वेस्टर लंदन लौट आए । उन्होंने बीमाविज्ञ का काम शुरू कर दिया और साथ ही कानून का अध्ययन भी । उसी दौरान सिल्वेस्टर ने निजी तौर पर कुछ विद्यार्थियों को गणित पढ़ाना शुरू किया । उस समय उनकी एक तरुणी शिष्या थी फ्लोरेंस नाइटेंगेल (1820-1910 ई.), जो बाद में अपने नर्सिंग कार्य के लिए प्रसिद्ध हुई ।

सिल्वेस्टर ने 1850 ई. में वकालत शुरू की । उसी समय केली और सिल्वेस्टर एक-दूसरे के निकट सम्पर्क में आए । उस समय केली 29 साल के थे और सिल्वेस्टर 36 साल के । उस समय तक दोनों ही अविवाहित थे ।

सिल्वेस्टर 1855 ई. में वुलविच की रॉयल मिलिटरी अकादमी में गणित के प्राध्यापक नियुक्त हुए। सोलह साल बाद 1870 ई. में उन्हें वहां से अवकाश मिला । उसके बाद वे लंदन में रहकर खोजकार्य करते रहे ।

बाल्टिमोर (अमरीका) में 1875 ई. में जोन्स हॉपकिन्स विश्वविद्यालय की स्थापना हुई, तो गणित के प्राध्यापक का पद ग्रहण करने के लिए सिल्वेस्टर को आमंत्रित किया गया । 1876 ई. में, बासठ साल की आयु में, सिल्वेस्टर ने पुनः अटलांटिक महासागर पार किया । उनका गणितज्ञ का जीवन नए सिरे से शुरू हुआ । वे जोरशोर से गणितीय अनुसंधान में जुट गए । विश्वविद्यालय ने
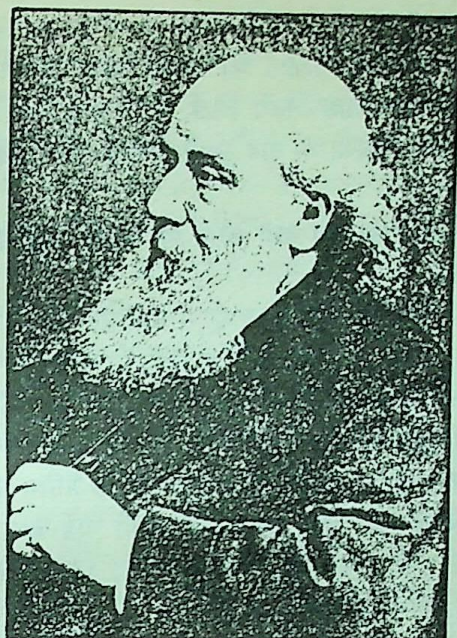
जेम्स जोसेफ सिल्वेस्टर (1814-1897 ई.)

878 ई. में 'गणित के अमरीकी जर्नल' की स्थापना की और उसके संपादन की जिम्मेदारी सिल्वेस्टर को सौंपी ।

उधर आर्थर केली 1863 ई. में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में गणित के प्राध्यापक बन गए थे । उसी साल उन्होंने 42 साल की आयु में विवाह कर लिया। उसके बाद केली का जीवन लगभग पूर्णतः गणित के लिए समर्पित रहा । केली 1881-82 ई. में जोन्स हॉपकिन्स में एक साल के लिए गणितीय विषयों पर भाषण देने गए, तो पुनः सिल्वेस्टर के संपर्क में आए ।

the circle can be described under the action of the single force $(SP)^{-\frac{1}{2}(n-1)}(P\nu)^{-\frac{1}{2}(n+1)}$, or (therefore) under the action of the forces to I, I'. Would you please forward the problems to Miller. Believe me, yours sincerely

A. Cayley

Cambridge 20th Nov.

केली द्वारा सिल्वेस्टर को लिखे गए एक पत्र का अंश ।

लंदन लौट आने के बाद केली अपने जीवन के अंतिम सप्ताह तक खोजकार्य में जुटे रहे । 26 जनवरी, 1895 को उनका देहांत हुआ। केली ने अपने जीवनकाल में कुल 966 शोध-निबंध लिखे, जो 13 बड़ी जिल्दों में प्रकाशित हुए। उन्हें आयलर और कोशी के बाद सबसे अधिक शोध-निबंध लिखने वाला गणितज्ञ माना जाता है ।

केली को उपन्यास पढ़ने का बड़ा शौक था । उन्हें पर्वतारोहण में भी बड़ी दिलचस्पी थी ।

ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में 1883 ई. में ज्यामिति के सेविलियन प्राध्यापक का पद खाली हुआ, तो उसे ग्रहण करने के लिए सिल्वेस्टर को आमंत्रित किया गया। 69 साल के सिल्वेस्टर ऑक्सफोर्ड पहुंचे। अठहत्तर साल की आयु में 1893 ई. में सिल्वेस्टर ने आक्सफोर्ड से अवकाश ग्रहण किया और लंदन में रहने लगे । उनकी दृष्टि कमजोर होती गई। सिल्वेस्टर के जीवन के अंतिम साल अकेलेपन में गुजरे । उन्होने विवाह नहीं किया था । उनके सभी भाई-बहन गुजर चुके थे । अंत में वे पक्षाघात के शिकार हुए और 15 मार्च, 1897 को, 83 साल की दीर्घायु में, उनका देहांत हुआ।

सिल्वेस्टर ने गणित के अनेक विषयों पर निबंध लिखे और बहुत से नए शब्द पहली बार गणित में इस्तेमाल किए । इसलिए उन्हें 'गणित का एडम' भी कहा जाता है । सिल्वेस्टर को काव्य-रचना का भी शौक था । उन्हें संगीत से भी लगाव था ।

केली और सिल्वेस्टर जब लंदन में वकालत कर रहे थे, तो दोनों ने मिलकर निश्चरता के बीजगणितीय सिद्धांत के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की । विविध प्रकार के रूपांतरणों के बाद भी जो गुणधर्म कायम रहते हैं, उन्हें निश्चर (इन्वेरियंट्स) कहते हैं । एक सरल उदाहरण लीजिए । एक कागज पर एक-दूसरे को काटनेवाली कई सारी सीधी व वक्र रेखाएं खींची जाती हैं । तब उस कागज को इच्छानुसार मरोड़ा जाता है । यह प्रयोग रबड़-शीट पर आकृतियां खींचकर भी किया जा सकता है । कागज या रबड़ को मरोड़ने या तानने के बाद उन आकृतियों के कौन-से गुणधर्म पूर्ववत् कायम रहते हैं?

स्पष्ट है कि इन रूपांतरणों में रेखाओं की लंबाइयां और आकृतियों के कोण तथा क्षेत्रफल निश्चर नहीं रहते । मगर रेखाओं में बिंदुओं का क्रम निश्चर बना रहता है । अतः हम कहते हैं कि कागज को मरोड़ने या रबड़-शीट को तानने-जैसे रूपांतरों में बिंदुओं का क्रम निश्चर बना रहता है । प्रकृति में निश्चरता के ऐसे अनेकानेक उदाहरण देखने को मिलते हैं ।

निश्चरता का सिद्धांत आज एक व्यापक विषय बन गया है । केली और

सिल्वेस्टर ने बीजीय समीकरणों में निश्चर गुणधर्मों की खोज की थी । इन्हें निश्चरता के सिद्धांत का संस्थापक माना जाता है । आगे जाकर रीमान, लेवी-सिविटा, सोफुस ली, आइंस्टाइन आदि ने इस सिद्धांत का विकास किया ।

आर्थर केली ने 1858 में एक नए किस्म के बीजगणित को जन्म दिया । इसे **आव्यूह (मेट्रिक) बीजगणित** कहते हैं । हैमिल्टन के चतुष्टयों की तरह केली की आव्यूह संख्याएं भी क्रियाओं तथा स्थानांतरणों को व्यक्त करती हैं । इसलिए आव्यूहों के बीजगणित में भी गुणन के क्रमविनिमय का नियम (अ ब = ब अ) टूट जाता है। इसमें अ ब = − ब अ होता है ।

केली ने एक अमूर्त बीजगणित का सृजन किया था । मगर आव्यूहों का यही बीजगणित हाइजेन्बर्ग के हाथों 1925 ई. में क्वांटम यांत्रिकी के निर्माण के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ । गणित के इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जब विशुद्ध गणित के सिद्धांत बाद में जाकर भौतिकीय सिद्धांतों के सृजन में उपयोगी सिद्ध हुए । हैमिल्टन, केली और सिल्वेस्टर, तीनों ही गणितज्ञों का कृतित्व बीसवीं सदी में आकर आपेक्षिकता तथा क्वांटम सिद्धांतों के सृजन के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है ।

सहायक ग्रंथ

1. जेम्स आर. न्यूमान (संपादक) — **द वर्ड आफ मैथेमेटिक्स** (चार खंड), न्यूयार्क 1956
2. होवार्ड इवेस — **एन इन्ट्रोडक्शन टु द हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स** (पांचवां संस्करण), न्यूयार्क 1983
3. डेविड यूजेन स्मिथ — **ए सोर्सबुक इन मैथेमेटिक्स** (दो भाग), डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1959
4. ई.टी. बेल — **मेन आफ मैथेमेटिक्स** (भाग 2), पेलिकन बुक, लंदन 1953
5. रॉबर्ट एदुआर्द मोरिट्ज— **ऑन मैथेमेटिक्स एंड मैथेमेटिशियंस**, डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1958
6. संपादित — **लाइव्ज इन साइंस**, ए साइंटिफिक अमेरिकन बुक, न्यूयार्क 1957
7. सर एडमंड व्हिटेकर — **फ्राम यूक्लिड टु एडिंग्टन**, डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1958
8. डिर्क जे. स्त्रुइक — **ए कंसाइज हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स**, लंदन 1959.
9. हेइमो राउ (संपादक) — **साउथ एशियन स्टडीज** (भाग 2), मैक्स मूलेर भवन प्रकाशन, नई दिल्ली, 1965

संदर्भ और टिप्पणियां

1. डब्लिन के पास के रॉयल कनाल के नजदीक के ब्रौघम ब्रिज के एक प्रस्तर पर गणित के

इतिहास की इस महत्वपूर्ण घटना को अंकित कर दिया गया है। देखिए होवार्ड इवेस, पृ. 380-81।

2. जेराह कोलबर्न का जन्म 1804 ई. में अमरीका में हुआ था। वह एक किसान का बेटा था। छह साल की छोटी उम्र से ही जेराह ने अपनी गणना-शक्ति का प्रदर्शन शुरू कर दिया था। वह इंग्लैंड भी पहुंचा और वहां कई शहरों में उसने अपनी अद्‌भुत क्षमता का प्रदर्शन किया।

पेरिस और लंदन में जेराह की अच्छी शिक्षा की व्यवस्था की गई। मगर उसकी गणना-शक्ति जाती रही। उसका बाद का जीवन बड़ा बेतरतीब रहा। उसने कई सारे पेशे अपनाए। गणित से उसका कोई वास्ता नहीं रहा। छत्तीस साल की आयु में, 1840 ई. में, जेराह कोलबर्न का देहांत हुआ।

देखिए 'द वर्ड आफ मैथेमेटिक्स' (खंड 1) में डब्ल्यू. डब्ल्यू. राउज बाल का लेख, पृ. 467-87। राउज बाल ने इस विषय पर एक उत्तम ग्रंथ भी लिखा है—**मैथेमेटिकल रिक्रिएशंस एंड एसेज।**

3. ग्रासमान को उन्नीसवीं सदी का एक बहुत बड़ा गणितज्ञ माना जाता है। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। वैदिक वाङ्मय और भाषाशास्त्र के क्षेत्रों में भी उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा।

हरमान ग्रासमान का जन्म बाल्टिक सागर-तट के जर्मनी के स्टेट्टिन नगर में 1809 ई. में हुआ था। वहीं के एक सरकारी स्कूल में, जहां उनके पिता गणित के अध्यापक थे, हरमान की आरंभिक पढ़ाई हुई। अठारह साल की आयु में वह दर्शन और धर्मशास्त्र की पढ़ाई करने बर्लिन विश्वविद्यालय गए। वहां अलग से गणित का भी अध्ययन किया। बर्लिन के औद्योगिक स्कूल में ग्रासमान 1834 ई. में अध्यापक नियुक्त हुए, मगर दो साल बाद स्टेट्टिन लौट आए। अंततः वे उसी स्कूल में गणित के अध्यापक बने जहां उनके पिता ने गणित पढ़ाया था। ग्रासमान जीवन के अंतिम समय तक स्कूल में गणित के अध्यापक बने रहे।

ग्रासमान ने 1844 ई. में अपना *आउसडेहनुंग्लेहरे* (व्याप्ति या विस्तार का सिद्धांत या व्याप्ति का कलन-गणित) ग्रंथ प्रकाशित किया। विषय नया, शैली क्लिष्ट, इसलिए इस ग्रंथ पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। यहां तक कि इसकी समीक्षा करनेवाला भी कोई नहीं मिला! केवल जर्मन गणितज्ञ अगस्टस फर्डिनांड मोबियूस (1790-1868 ई.) ही समझ पाए कि ग्रासमान ने गणित की एक नई शाखा को जन्म दिया है। उस समय ग्रासमान का कृतित्व उपेक्षित ही रह गया।

हरमान गुन्थेर ग्रासमान

ग्रासमान ने 1862 ई. में अपने ग्रंथ का एक नया सरल संस्करण प्रकाशित किया। उसका भी विशेष स्वागत नहीं हुआ। हताश होकर और यह कहकर कि 'गणित तो खोपड़ी खानेवाला विषय है', उन्होंने गणित के अन्वेषण-कार्य को त्याग दिया और 'महज मौज के लिए' संस्कृत के अध्ययन में जुट गए।

आगे ग्रासमान ने **ऋग्वेद** का जर्मन काव्यानुवाद किया, जो दो खंडों में प्रकाशित हुआ (1879 ई.)। उन्होंने **ऋग्वेद** के शब्दों का एक कोश भी प्रकाशित किया। ग्रासमान ने

तुलनात्मक भाषा-विज्ञान पर भी कुछ लेख लिखे ।

ग्रासमान ने भौतिकी (ध्वनि-विज्ञान) के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण आविष्कार किए । उन्होंने दो साप्ताहिक प्रकाशित किए और कुछ पाठ्य-पुस्तकें भी लिखीं । साथ ही, अपने आठ बच्चों की पढ़ाई पर पूरा ध्यान दिया । यह सब उन्होंने स्कूल का एक सामान्य अध्यापक बने रहकर किया । अड़सठ साल की आयु में 1877 ई. में स्टेट्टिन में ग्रासमान का निधन हुआ ।

ग्रासमान का बेटा हरमान ग्रासमान (जन्म : 1859 ई.) भी गणितज्ञ बना और उसने प्रक्षेपीय ज्यामिति पर एक ग्रंथ लिखा ।

ग्रासमान के **ऋग्वेद** संबंधी कृतित्व का आज केवल ऐतिहासिक महत्व है, क्योंकि उनके बाद **ऋग्वेद** के कई बेहतर अनुवाद हुए । मगर उनका गणितीय अन्वेषण क्रांतिकारी सिद्ध हुआ । उन्होंने विविध प्रकार के बीजगणितों के सृजन के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया । ग्रासमान के कृतित्व का व्यापक महत्व 20वीं सदी में आकर ज्यादा स्पष्ट हुआ ।

4. एडमंड व्हिटेकर का अध्ययन कैम्ब्रिज में हुआ, जहां आर्थर केली उनके एक अध्यापक थे । 1906 ई. में व्हिटेकर आयरलैंड के राज-खगोलविद नियुक्त हुए और उसके साथ ही उन्होंने डब्लिन विश्वविद्यालय में वह प्राध्यापक-पद ग्रहण किया जिसकी शोभा हैमिल्टन ने बढ़ाई थी । जी.एच. हार्डी (रामानुजन् के गुरु), जेम्स जीन, आर्थर एडिंग्टन आदि व्हिटेकर के विद्यार्थी थे । व्हिटेकर का प्रसिद्ध ग्रंथ है—**मॉडर्न एनेलेसिस** (आधुनिक विश्लेषण) । 1956 ई. में, 83 साल की आयु में, व्हिटेकर का निधन हुआ ।

हैमिल्टन से संबंधित व्हिटेकर का निबंध साइंटिफिक अमेरिकन बुक **लाइव्ज इन साइंस**, न्यूयार्क 1957, में प्रकाशित हुआ है ।

कार्ल वायरस्ट्रास

घटना 1853 ई. की है। कार्ल वायरस्ट्रास तब 38 साल के थे और ब्राउन्सबर्ग (जर्मनी) के हाईस्कूल में अध्यापक थे। उन दिनों वे तन-मन से गणितीय अनुसंधान में जुटे हुए थे।

एक दिन सुबह हाईस्कूल के अध्यक्ष को एक कक्षा में बड़ा शोर-गुल होता सुनाई दिया। उन्होंने कक्षा में जाकर देखा, तब पता चला कि वह वायरस्ट्रास की कक्षा है, मगर वे वहां मौजूद नहीं हैं। पूछताछ करने पर पता चला कि वायरस्ट्रास स्कूल ही नहीं आए हैं!

अध्यक्ष महोदय को चिंता हुई। वे वायरस्ट्रास के निवास-स्थान पहुंचे और दरवाजा ठकठकाया। भीतर से आवाज आई— ''चले आइए अंदर।'' अध्यक्ष अंदर गए, तो देखा कि खिड़कियों पर परदे पड़े हैं और वायरस्ट्रास लैंप की रोशनी में काम कर रहे हैं, गणितीय अनुसंधान में जुटे हुए हैं। उन्हें पता ही नहीं चला था कि सुबह हो गई है। वे रातभर काम करते रहे।

अध्यक्ष ने बताया कि सुबह हुए काफी समय हो गया है और उनकी कक्षा के विद्यार्थी ऊधम मचा रहे हैं। वायरस्ट्रास का जवाब था—''मैं इस काम को बीच में नहीं छोड़ सकता था। यह अत्यंत महत्व की खोज होगी। गणित की दुनिया में इसकी बड़ी चर्चा होगी।''

कुछ दिन बाद वायरस्ट्रास ने अपनी उस खोज के बारे में एक शोध निबंध तैयार किया। निबंध का विषय था—**आबेलीय फलन**। वायरस्ट्रास ने अपने उस निबंध को क्रेल्ले द्वारा संस्थापित 'शुद्ध और उपयोगी गणित की पत्रिका' में प्रकाशनार्थ भेज दिया। ऑगस्त लियोपोल्ड क्रेल्ले (1780-1855 ई.) ने 1826 ई. में इस पत्रिका को स्थापित किया था। इसके प्रथम अंक से ही इसमें आबेल के शोध-निबंध प्रकाशित हुए थे। यह पत्रिका अब 'क्रेल्ले का जर्नल' के नाम से प्रसिद्ध हो गई थी।

तब तक वायरस्ट्रास के गणित संबंधी कुछ लेख स्कूलों के सामान्य बुलेटिनों में ही प्रकाशित हुए थे। जब पहली बार क्रेल्ले के जर्नल में उनका शोध-निबंध प्रकाशित हुआ, तो गणित-जगत में खलबली मच गई। विशेष बात यह थी कि पहले किसी को भी यह जानकारी नहीं थी कि वायरस्ट्रास इतने महत्वपूर्ण विषय

पर खोजकार्य कर रहे हैं ।

शोध-निबंध के प्रकाशित होने पर वायरस्ट्रास का खूब सम्मान होने लगा । कोनिग्सबर्ग विश्वविद्यालय में गणित के प्राध्यापक एफ. जे. रिशेलोट (1808-1875 ई.) उनका निबंध पढ़कर बड़े प्रभावित हुए । उन्होंने अपने विश्वविद्यालय पर इस बात के लिए जोर डाला कि वह वायरस्ट्रास को 'डाक्टर' की मानोपाधि प्रदान करे । इतना ही नहीं, स्वयं रिशेलोट वह उपाधि लेकर ब्राउन्सबर्ग पहुंचे । वायरस्ट्रास के सम्मान में हाईस्कूल के अध्यक्ष द्वारा आयोजित

कार्ल वायरस्ट्रास (1815-1897 ई.)

भोज में रिशेलोट के उद्‌गार थे—''अब हम सबको वायरस्ट्रास के रूप में एक गुरु मिल गए हैं ।''

शिक्षा मंत्रालय ने वायरस्ट्रास की पदोन्नति की और खोजकार्य के लिए उन्हें एक साल का अवकाश प्रदान किया । उस समय क्रेल्ले के जर्नल के संपादक कार्ल विल्हेल्म बोरशार्ट (1817-1880 ई.) थे । वायरस्ट्रास को बधाई देने वे ब्राउन्सबर्ग आए । उसके बाद से दोनों में गहरी मित्रता बनी रही ।

वायरस्ट्रास के उस शोध-निबंध ने उनके जीवन को एक नई दिशा प्रदान की । उसके बाद स्कूल के अध्यापन-कार्य से उन्हें मुक्ति मिल गई । जुलाई 1856 ई. में बर्लिन के रॉयल पोलिटेकनिक स्कूल में उन्हें गणित के प्राध्यापक का पद मिला। उस पद के अलावा उसी साल उन्हें बर्लिन विश्वविद्यालय में गणित के सहायक प्राध्यापक के पद पर नियुक्त किया गया । उसी साल वायरस्ट्रास बर्लिन अकादमी के सदस्य चुने गए ।

वायरस्ट्रास तब 41 साल के थे । उस उम्र में पहुंचने पर उनके जीवन में एकाएक महती परिवर्तन आया था । उसके बाद ही वायरस्ट्रास को गणितीय अनुसंधान के लिए पर्याप्त समय व सुविधाएं मिलीं । चालीस साल की उम्र के बाद ही एक वास्तविक गणितज्ञ के रूप में वायरस्ट्रास के जीवन की शुरुआत हुई ।

गणित का इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि अधिकांश गणितज्ञ पैंतीस-चालीस साल की आयु तक अपना महत्वपूर्ण गवेषणा-कार्य कर चुके होते हैं । इसलिए प्रायः यही समझा जाता है कि जिसे गणित के क्षेत्र में कोई महत्वपूर्ण खोजकार्य करना हो या जिसे एक श्रेष्ठ गणितज्ञ बनना हो, तो उसे छोटी उम्र से ही गणित के गहन अध्ययन में जुट जाना चाहिए । यह भी समझा जाता है कि स्कूल में अध्यापन-कार्य करते हुए गणितीय खोजबीन को जारी रख पाना संभव नहीं है ।

कार्ल वायरस्ट्रास इन मान्यताओं के लिए एक अद्वितीय अपवाद सिद्ध होते हैं। चालीस साल की उम्र के बाद ही वायरस्ट्रास को अकादमिक वातावरण में प्रवेश मिला और उसके बाद ही उन्होंने गणित के क्षेत्र में महत्वपूर्ण खोजकार्य किया । बाद में भी अध्यापन का कार्य उन्होंने बड़े मनोयोग से किया और गणित के एक महान अध्यापक के रूप में प्रसिद्ध हुए । वायरस्ट्रास के कई गणितीय आविष्कारों की जानकारी गणित-जगत को उनके प्रकाशित शोध-निबंधों के जरिए नहीं, बल्कि उनके भाषणों के उनके विद्यार्थियों द्वारा लिए गए नोट्स से मिली है । वायरस्ट्रास अपने अत्यंत सुस्पष्ट गणितीय विवेचन के लिए प्रसिद्ध थे । गणितीय विश्लेषण को वायरस्ट्रास ने सुदृढ़ तार्किक आधार प्रदान किया । उन्हें 'आधुनिक विश्लेषण का पिता' माना जाता है ।

कार्ल थियोडोर वायरस्ट्रास का जन्म वेस्टफेलिया (जर्मनी) के एक गांव ओस्टेनफेल्ड में 31 अक्तूबर, 1815 को हुआ था। उसी साल, करीब चार महीने पहले, वाटरलू का प्रसिद्ध युद्ध हुआ था। कार्ल के पिता पहले शिक्षक रह चुके थे। कार्ल के जन्म के कुछ समय बाद उनके पिता नमक-शुल्क अधिकारी नियुक्त हुए और परिवार वेस्टर्नकोट्टेन गांव रहने चला गया।

कार्ल की मां के बारे में कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती। वह जब ग्यारह साल का ही था, तभी मां का देहांत हो गया था। कार्ल का एक छोटा भाई पीटर और दो छोटी बहनें थीं — क्लारा और एलिसा। कार्ल की मां की मृत्यु के बाद अगले साल उनके पिता ने दूसरा विवाह कर लिया। कार्ल, उनके भाई पीटर और दोनों बहनें आजन्म अविवाहित रहे। दोनों बहनें अपने गणितज्ञ भाई के साथ ही रहीं और उनकी देखभाल करती रहीं।

वेस्टर्नकोट्टेन गांव में कोई स्कूल नहीं था। इसलिए चौदह साल के कार्ल को मुन्स्टेर नगर के पास के पाडेरबोर्न स्थान के स्कूल में दाखिल किया गया। वहां 1829 से 1935 ई. तक कार्ल ने हाईस्कूल की पढ़ाई पूरी की। उन्होंने जर्मन, लैटिन, ग्रीक तथा गणित विषयों में पुरस्कार प्राप्त किए, मगर हस्तलेखन में उन्हें कभी कोई पुरस्कार नहीं मिला।

पिता ने तय किया कि कार्ल आगे विश्वविद्यालय में वाणिज्य और कानून विषय पढ़ेंगे। उन्नीस साल के कार्ल को बॉन विश्वविद्यालय के कानून विभाग में दाखिल कर दिया गया। मगर कानून और वाणिज्य के अध्ययन में कार्ल वायरस्ट्रास का मन नहीं लगा। उन्होंने बॉन विश्वविद्यालय में अपने चार साल मौज-मस्ती में गुजारे। पट्टेबाजी (फेंसिंग) में भी नाम कमाया!

साथ ही, वायरस्ट्रास ने गणित का अपना स्वतंत्र अध्ययन भी जारी रखा। उसी दौरान उन्होंने लापलास के 'विश्व यांत्रिकी' ग्रंथ का अध्ययन किया। याकोबी की कृतियों का भी अध्ययन किया।

चार साल बॉन में रहने के बाद 1838 ई. में कार्ल वायरस्ट्रास, बिना कोई उपाधि हासिल किए, घर लौट आए। घर में कुहराम मच गया। परिवार के लोग समझ नहीं पा रहे थे कि अब आगे कार्ल से क्या कराया जाए। उस समय वह 23 साल के थे।

अंत में परिवार के एक हितैषी ने सलाह दी कि कार्ल को मुन्स्टेर जाकर स्कूल के अध्यापक का डिप्लोमा प्राप्त करना चाहिए। कार्ल ने सलाह मान ली। वह मुन्स्टेर की शिक्षण अकादमी में दाखिल हुए। वहां **क्रिस्टोफ गुडेरमान** (1798-1852 ई.) गणित के प्राध्यापक थे। उन्होंने वायरस्ट्रास को बड़ा प्रभावित किया। गुडेरमान **घात श्रेणी** (पॉवर सीरीज) को विशेष महत्व देते थे। आगे जाकर वायरस्ट्रास ने विश्लेषण की कुछ विधियों का विकास करने में घात

श्रेणी का व्यापक उपयोग किया था।

अंततः 1842 ई. में, छब्बीस साल की आयु होने पर, कार्ल वायरस्ट्रास ने हाईस्कूल में अध्यापक बनने की योग्यता हासिल की। उसी साल वायरस्ट्रास डेउश-क्रोने के कैथोलिक स्कूल में अध्यापक नियुक्त हुए। वहां उन्होंने छह साल तक अध्यापन-कार्य किया।

कार्ल वायरस्ट्रास ने अध्यापन के कार्य के साथ-साथ गणितीय खोजबीन का कार्य भी जारी रखा। आबेल के महान कृतित्व से उन्हें प्रेरणा मिलती थी। उस गांव में उच्च गणित के ग्रंथ उपलब्ध नहीं थे। स्कूल में विज्ञान की पत्रिकाएं भी नहीं पहुंचती थीं। वायरस्ट्रास के पास इतना पैसा नहीं बच पाता था कि वह विद्वानों के साथ वैज्ञानिक पत्र-व्यवहार कर सकते।

उन दिनों जर्मनी के स्कूल कभी-कदा अपने 'बुलेटिन' प्रकाशित करते थे। उनमें स्कूल के अध्यापकों के लेख प्रकाशित होते थे। डेउश-क्रोने के स्कूल द्वारा प्रकाशित ऐसे ही एक बुलेटिन में 1843 ई. में वायरस्ट्रास का पहला शोध-निबंध प्रकाशित हुआ। यह निबंध क्रमगुणित फलन (फैक्टोरियल फंक्शन) के बारे में था और बड़े महत्व का था। मगर उस समय उस निबंध पर गणितज्ञों का ध्यान नहीं गया। वायरस्ट्रास का वह निबंध चौदह साल बाद, संशोधित होकर, क्रेल्ले के जर्नल में पुनः प्रकाशित हुआ!

डेउश-क्रोने के स्कूल में छह साल तक पढ़ाने के बाद 1848 ई. में, तैंतीस साल की आयु में वायरस्ट्रास ब्राउन्सबर्ग के कैथोलिक हाईस्कूल में अध्यापक नियुक्त हुए। यहां उन्होंने छह साल तक अध्यापन-कार्य किया। स्कूल के अध्यक्ष उनका बड़ा सम्मान करते थे।

वायरस्ट्रास ने ब्राउन्सबर्ग के हाईस्कूल की ओर से प्रकाशित 1848-49 ई. के 'बुलेटिन' में अपना एक शोध-निबंध प्रकाशित किया। वह निबंध आबेलीय समाकलों के सिद्धांत के बारे में था। यदि जर्मनी के तत्कालीन गणितज्ञों की नजर में वह निबंध पड़ता, तो वायरस्ट्रास की प्रतिभा को फौरन पहचान लिया जाता। मगर किसी को भी इस बात का अंदाजा नहीं था कि विशुद्ध गणित से संबंधित अत्यंत महत्व के शोध-निबंध किसी हाईस्कूल के 'बुलेटिन' में भी प्रकाशित हो सकते हैं!

वायरस्ट्रास की प्रतिभा की पहचान होने में और पांच साल का समय लगा। आरंभ में हमने वायरस्ट्रास के बारे में एक किस्सा बताया है। एक दिन वे रातभर खोजकार्य में जुटे रहे और सुबह समय पर कक्षा में नहीं पहुंच पाए। उस रात वायरस्ट्रास आबेलीय फलनों पर ही चिंतन कर रहे थे।

उस घटना के कुछ दिन बाद वायरस्ट्रास छुट्टी के दिन बिताने वेस्टर्नकोट्टेन गांव में अपने पिता के पास गए। वहां उन्होंने आबेलीय फलनों के बारे में एक

शोध-निबंध तैयार किया और उसे क्रेल्ले के जर्नल में प्रकाशन के लिए भेज दिया। निबंध स्वीकार हुआ, प्रकाशित हुआ । उस शोध-निबंध से गणित-जगत को पहली बार पता चला कि ब्राउन्सबर्ग के हाईस्कूल का एक अध्यापक गणित की एक महान प्रतिभा है ।

वायरस्ट्रास बर्लिन में गणित के प्राध्यापक बने और उनका नया जीवन शुरू हो गया । तब वे 41 साल के थे । अपने जीवन के आगे के 40 साल उन्होंने बर्लिन में ही गुजारे । उनकी दो अविवाहित बहनें उनके साथ ही रहीं । उनके पिता भी अपने अंतिम वर्षों में उनके साथ ही रहे । हम पहले बता ही चुके हैं कि वायरस्ट्रास, उनके भाई पीटर और उनकी दोनों बहनें, सभी अविवाहित रहे ।

बर्लिन के नए वातावरण ने वायरस्ट्रास में नया जोश पैदा कर दिया । एक कुशल और अनुभवी अध्यापक तो वे थे ही, बर्लिन में आकर और भी अधिक मनोयोग से अपने विद्यार्थियों को पढ़ाने लगे । साथ में गणितीय अनुसंधान का कार्य भी चलता रहा । कार्याधिक्य के कारण वायरस्ट्रास का स्वास्थ्य चौपट हो गया । आराम के लिए छुट्टी ली और कुछ स्वस्थ होकर लौटे । मगर मार्च 1860 में एक दिन कक्षा में भाषण देते-देते ही गिर पड़े !

उसके बाद चक्कर आने का यह रोग उनका जीवन-साथी बन गया । उस घटना के बाद वायरस्ट्रास ने कक्षा में पढ़ाने का एक नया तरीका अपनाया । वे कक्षा के किसी तेज विद्यार्थी को बुलाकर उससे श्यामपट पर अपनी टिप्पणियों की नकल करवाते थे । एक विद्यार्थी अपने को बड़ा बुद्धिमान समझता था । वह अपनी ओर से भी कुछ जोड़ दिया करता था । तब वायरस्ट्रास कुर्सी से उठकर उसका लिखा हुआ मिटा देते थे और उसे कहते थे कि वही लिखो जो मैं बताता हूं । प्राध्यापक और विद्यार्थी में बहस होती । अंत में विजय प्राध्यापक की ही होती ।

वायरस्ट्रास अपने विद्यार्थियों के साथ मित्रवत् व्यवहार करते थे । अपने किसी विद्यार्थी के साथ बातचीत करते हुए पैदल ही घर लौटने में उन्हें बड़ा सुख मिलता था । सारे यूरोप में उनकी कीर्ति फैल गई थी, मगर बड़प्पन का अभिमान उनमें तनिक भी नहीं था । अपने कुछ चुनिंदा विद्यार्थियों के साथ एक ही मेज पर बैठकर बीयर या शराब के घूंट पीने में उन्हें बेहद आनंद मिलता था ।

वायरस्ट्रास एक सहृदय और दयावान व्यक्ति थे । क्रेल्ले के जर्नल के संपादक बोरशार्ट ने उन्हें अपने छह बच्चों का सरंक्षक नियुक्त किया था । बोरशार्ट की मृत्यु के बाद उनकी विधवा की उत्तराधिकार-संबंधी कानूनी समस्याओं में वायरस्ट्रास ने भरपूर सहयोग दिया ।

पता चलता है कि बहुत-से गणितज्ञ संगीत-प्रेमी रहे हैं । मगर वायरस्ट्रास को संगीत में कोई दिलचस्पी नहीं थी । बहनों के जोर देने पर 35-36 की आयु में

एक बार उन्होंने संगीत सीखने की कोशिश भी की थी, मगर सफलता नहीं मिली। परंतु उन्हें कविता से प्रेम था। उन्होंने स्वयं भी कुछ कविताएं लिखीं। वायरस्ट्रास का एक प्रसिद्ध कथन भी है : "यह एक सचाई है कि कोई भी गणितज्ञ, जब तक वह थोड़ा-बहुत कवि भी न हो, एक परिपूर्ण गणितज्ञ कदापि नहीं हो सकता।"

बर्लिन में बस जाने के कुछ साल बाद, कार्याधिक्य के कारण, वायरस्ट्रास ने पोलिटेकनिक में प्राध्यापक का पद छोड़ दिया और उन्होंने अपनी गतिविधियों को विश्वविद्यालय तक ही सीमित रखा। 1864 ई. में वायरस्ट्रास के लिए बर्लिन विश्वविद्यालय में गणित के प्राध्यापक का एक विशिष्ट पद बनाया गया। उसी समय गणित के प्राध्यापक के रूप में एक अन्य पद पर सुप्रसिद्ध गणितज्ञ **एन्र्स्ट कुम्मेर** (1810-1893 ई.) विराजमान थे। कुम्मेर ने संख्या-सिद्धांत के क्षेत्र में बड़े महत्व का खोजकार्य किया है।

गौस्टा मिताग-लेफलर
(1846-1927 ई.)

तत्कालीन यूरोप में वायरस्ट्रास का कितना बड़ा सम्मान था, यह एक घटना से ही स्पष्ट हो जाता है। उस समय फ्रांस और प्रशिया में प्रतिद्वंद्विता चल रही थी, फिर भी दोनों राज्यों के गणितज्ञों ने एक-दूसरे के प्रति अपना मन मैला नहीं किया। घटना 1873 ई. की है। स्टाकहोम से **गौस्टा मिताग-लेफलर** (1846-1927 ई.)[1] पेरिस पहुंचे और उन्होंने गणितज्ञ **शार्ल हर्मिट** (1822-1901 ई.) के सामने उपस्थित होकर उनकी देखरेख में विश्लेषण के क्षेत्र में गवेषणा-कार्य करने की इच्छा व्यक्त की। हर्मिट बोले—"आपने गलती की है। आपको बर्लिन जाकर वायरस्ट्रास के निर्देशन में काम करना चाहिए। वे हम सबके गुरु हैं।"

मिताग-लेफलर ने हर्मिट की सलाह मान ली। वे बर्लिन पहुंचे और वायरस्ट्रास की देखरेख में खोजकार्य करके फलनों के सिद्धांत के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया। बाद में मिताग-लेफलर ने कहा था—"हर्मिट एक फ्रांसीसी थे, देशभक्त थे। मगर मैंने जाना कि साथ ही वह एक सच्चे गणितज्ञ भी थे।"

जिस किसी ने भी वायरस्ट्रस के साथ अध्ययन किया उसके लिए वे एक बढ़िया शिक्षक, मित्र और सहृदय सलाहकार साबित हुए। वायरस्ट्रास परिपूर्णता

पर पहुंचने के बाद ही अपनी गवेषणाओं को प्रकाशित करते थे । सम्मिश्र चर के फलनों के सिद्धांत (थ्योरी आफ फंक्शन्स आफ कॉम्पलेक्स वेरिएबल) पर उनके व्याख्यान सुनने के लिए यूरोप के कोने-कोने से अध्येता बर्लिन पहुंचते थे । 1883-84 ई. में दीर्घवृत्तीय फलनों (इलिप्टिक फंक्शन्स) पर उनके व्याख्यान सुनने के लिए इतने अधिक विद्यार्थी एकत्र हुए कि एक बड़े हॉल का इंतजाम करना पड़ा । वायरस्ट्रास के व्याख्यानों के नोट्स को बाद में कई गणितज्ञों ने विस्तृत करके पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया !

वायरस्ट्रास के कई शिष्य नामी गणितज्ञ हुए और उन्होंने गणित के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया । 1870 ई. में, जब वायरस्ट्रास 55 साल के थे, बीस साल की **सोफिया कोवालेवस्काया** (1850-1891 ई.) उनकी शिष्या बनी । सोफिया कोवालेवस्काया और अन्य कई महिला-गणितज्ञों का विस्तृत परिचय अलग से अंत में दिया जा रहा है । फिर भी, वायरस्ट्रास की इस प्रिय शिष्या का यहां थोड़ा परिचय देना जरूरी है ।

सोफिया कोवालेवस्काया
(1850-1891 ई.)

सोफिया का जन्म रूस के एक धनी परिवार में 1850 ई. में हुआ था । उसका देहांत स्टाकहोम में 1891 ई. में हुआ, वायरस्ट्रास की मृत्यु के छह साल पहले । सोफिया एक साहसी और खूबसूरत तरुणी थी । गणित का अध्ययन करने 19 साल की आयु में वह जर्मनी के हैडेलबर्ग विश्वविद्यालय आई थी । अगले वर्ष वायरस्ट्रास से गणित की शिक्षा ग्रहण करने के लिए वह बर्लिन पहुंची ।

महिला होने के कारण उसे विश्वविद्यालय में प्रवेश नहीं मिला, तो वायरस्ट्रास ने उसकी शिक्षा की जिम्मेदारी स्वयं अपने ऊपर ले ली । सोफिया ने 1870 ई. से 1874 ई. तक वायरस्ट्रास की देखरेख में गणित का अध्ययन किया । 1874 ई. में उसे गॉटिंगेन विश्वविद्यालय ने 'डाक्टर' की उपाधि प्रदान की । उसी साल सोफिया रूस लौट गई । उसका और वायरस्ट्रास का पत्र-व्यवहार जारी रहा । बीच में कुछ साल तक सोफिया अन्य कामों में उलझी रही, मगर बाद में पुनः गणित के अनुसंधान में जोर-शोर से जुट गई । उसके एक शोध-कार्य के लिए उसे पेरिस अकादमी का प्रसिद्ध **प्रि बॉर्दी** पुरस्कार मिला । अपने जीवन के अंतिम सालों में वह स्टाकहोम विश्वविद्यालय में गणित की प्राध्यापिका नियुक्त हुई थी ।

सोफिया कोवालेवस्काया और वायरस्ट्रास के बीच हुए पत्र-व्यवहार को देखने से पता चलता है कि दोनों के बीच स्नेह के कोमल संबंध स्थापित हो गए थे। हम बता चुके हैं कि वायरस्ट्रास अपने गवेषणा-कार्य को प्रकाशित करने में कोई जल्दबाजी नहीं करते थे। उनकी गवेषणाएं सालों तक अप्रकाशित ही रह जाती थीं। उनकी कई हस्तलिपियां उनके विद्यार्थियों के पास ही रह जाती थीं। सोफिया ने वायरस्ट्रास को समझाया कि उन्हें अपनी पांडुलिपियों के बारे में सावधान रहना चाहिए। मगर वायरस्ट्रास ने सोफिया के सुझाव पर कोई ध्यान नहीं दिया। जीवन के अंतिम दिनों में वायरस्ट्रास ने अपने शोध-निबंधों का एक संकलन (वेर्के) प्रकाशित किया, तो पता चला कि उनके कई परिणामों को दूसरों ने पहले ही प्रकाशित कर दिया है!

वायरस्ट्रास जब भी किसी यात्रा पर जाते, तो अपने साथ लकड़ी का एक बड़ा बक्सा ले जाते थे। उसमें उनके अधूरे शोध-निबंध और गवेषणा-कार्य से संबंधित कागज-पत्र रहते थे। 1880 ई. में, जब वे एक यात्रा पर थे, तो उनका वह बक्सा कहीं खो गया और पुनः कभी नहीं मिला!

वायरस्ट्रास के आरंभिक शोध-निबंध दीर्घवृत्तीय समाकलों, आबेलीय फलनों और बीजीय अवकल समीकरणों से संबंधित थे। मगर उनका सबसे महत्वपूर्ण कार्य है घात श्रेणी की बुनियाद पर सम्मिश्र फलनों के सिद्धांत का महल खड़ा करना। हम पहले ही बता चुके हैं कि वायरस्ट्रास घात श्रेणी (पॉवर सीरीज) को बड़ा महत्व देते थे। घात श्रेणी निम्न प्रकार की होती है—

$$a_0 + a_1x + a_2x^2 + \ldots + a_nx^n + \ldots$$

जहां a_0 $a_1 \ldots a_n, \ldots$ स्थिरांक हैं और x कोई वास्तविक या सम्मिश्र चर संख्या है।

गणितीय भौतिकी में इस घात श्रेणी का बड़ा महत्व है। वायरस्ट्रास ने इस श्रेणी के अभिसरण (कन्वरजेंस) के लिए नियम खोज निकाले हैं। उन्ह सीमा (लिमिट) और सातत्य (कंटिन्यूइटी) की धारणाओं से संबंधित कठिनाइयों के लिए स्पष्ट समाधान प्राप्त किए।

बर्ट्रांड रसेल ने लिखा है : एलिया के **जेनो** (लगभग 450 ई. पू.) ने जिन तीन धारणाओं के बारे में पहेलियों को जन्म दिया था वे हैं — परमाल्प या अत्यणु (इन्फिनिटेसिमल), अनंत (इन्फिनिटी) और सातत्य (कंटिन्यूइटी)। जेनो के समय से लेकर हमारे समय तक हर पीढ़ी की सर्वश्रेष्ठ प्रतिभाओं ने इन समस्याओं को सुलझाने के प्रयास किए, किंतु किसी को पूर्ण सफलता नहीं मिली। वायरस्ट्रास, डेडेकिंड और कांतोर ने इन समस्याओं को पूर्ण रूप से सुलझा दिया है।···यह इस युग की संभवतः सबसे बड़ी उपलब्धि है। परमाल्प की समस्या

वायरस्ट्रास ने सुलझाई । बाकी दो समस्याओं का आंशिक समाधान डेडेकिंड ने और पूर्ण समाधान कांतोर ने प्रस्तुत कर दिया ।[2]

वायरस्ट्रास उन गणितज्ञों में से थे जो गणित को तर्कशास्त्र की बुनियाद पर खड़ा देखना चाहते हैं । वायरस्ट्रास की यह मान्यता थी कि फलन सिद्धांत का विकास पूर्णतः तार्किक दृष्टि से होना चाहिए । इसके लिए ज्यामितीय आकृतियों का सहारा नहीं लेना चाहिए । वायरस्ट्रास अपनी कठोर तर्क-प्रणाली के लिए प्रसिद्ध हो गए । उन्होंने 'विश्लेषण का अंकगणितीकरण' करने में भरपूर योग दिया ।

वायरस्ट्रास के पहले गणितज्ञों का विश्वास था कि सारे सतत फलन अवकलनशील होते हैं । अन्य शब्दों में, जो वक्र सर्वत्र सतत (कंटिन्यूअस) होते हैं उनके प्रत्येक बिंदु से स्पर्शरेखा (टैंजेंट) खींची जा सकती है । परंतु उन्होंने यह खोज करके गणित-जगत को चकित कर दिया कि कुछ ऐसे भी वक्र हैं जो सर्वत्र सतत हैं पर कहीं पर भी अवकलनशील नहीं हैं ! अर्थात्, एक ऐसे गतिशील बिंदु की कल्पना की जा सकती है जिसका किसी भी क्षण कोई सुनिश्चित वेग नहीं होता । ऐसे 'अलौकिक' वक्र का जो पहला उदाहरण वायरस्ट्रास ने प्रस्तुत किया था उसके समीकरण हैं :

$$x = \sin\theta$$

$$y = \sum_{n=1}^{\infty} \frac{1}{2^n} \cos 3^n\theta$$

इस सतत वक्र के लिए किसी भी बिंदु पर स्पर्शरेखा प्राप्त करने के लिए $\frac{dx}{d\theta}$ व $\frac{dy}{d\theta}$ दोनों का अस्तित्व आवश्यक है । मगर वायरस्ट्रास ने सिद्ध किया कि θ के सभी मानों के लिए $\frac{dy}{d\theta}$ का कोई अस्तित्व नहीं है। वायरस्ट्रास द्वारा खोजे गए इस अद्भुत वक्र की तरह के अब कई वक्र खोजे गए हैं ।[3]

वस्तुतः एक ऐसे फलन का जो सर्वत्र सतत होने पर भी कहीं भी अवकलनशील नहीं है, पहला उदाहरण बेर्नार्ड बोल्ट्झानो[4] ने 1834 ई. में, वायरस्ट्रास के काफी पहले, प्रस्तुत किया था । मगर तब उस खोज पर किसी का ध्यान नहीं गया था।[5]

बर्लिन में 82 साल की आयु में 19 फरवरी, 1897 के दिन कार्ल वायरस्ट्रास का देहांत हुआ । वे कैथोलिक मतावलंबी थे । मगर वायरस्ट्रास की अंतिम इच्छा यह थी कि अंतिम संस्कार के समय पुरोहित उनकी प्रशंसा में कुछ न कहे !

कार्ल वायरस्ट्रास आधुनिक युग के निश्चय ही एक महान गणितज्ञ थे । परंतु उससे भी बढ़कर वे एक आदर्श और श्रेष्ठतम अध्यापक थे । वायरस्ट्रास का जीवन प्रमाणित करता है कि स्कूल का अध्यापक बने रहकर और प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करके भी गणित के क्षेत्र में मौलिक अनुसंधान-कार्य किया जा सकता है ।

सहायक ग्रंथ

1. जेम्स आर. न्यूमान (संपादक) — **द वर्ड आफ मैथेमेटिक्स** (चार खंड), न्यूयार्क 1956
2. होवार्ड इवेस — **एन इंट्रोडक्शन टु द हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स** (पांचवां संस्करण), न्यूयार्क 1983
3. मॉरिस क्लाइन — **मैथेमेटिकल थॉट फ्राम एंशियंट टु माडर्न टाइम्स**, न्यूयार्क 1972
4. कार्ल बी. बोयेर — **द हिस्ट्री आफ द कैल्कुलस एंड इट्स कॉन्सेप्चुअल डेवलपमेंट**, डोवर प्रकाशन, न्यूयार्क 1959
5. रॉबर्ट एदुआर्द मोरिट्ज — **ऑन मैथेमेटिक्स एंड मैथेमेटिशियंस**, डोवर प्रकाशन, न्यूयार्क 1958
6. मेश्कोवस्की — **वेज आफ थॉट आफ ग्रेट मैथेमेटिशियंस**, होल्डेन-डे, द मैथेसिस सीरीज
7. ई. टी. बेल — **मेन आफ मैथेमेटिक्स** (भाग 2), पेलिकन बुक, लंदन 1953
8. पेलागेया कोचिना — **लव एंड मैथेमेटिक्स : सोफ्या कोवालेवस्काया**, मीर प्रकाशन, मास्को 1985

संदर्भ और टिप्पणियां

1. मिताग-लेफलर अपने समय के एक श्रेष्ठ गणितज्ञ थे । स्टाकहोम से 1882 ई. से प्रकाशित होनेवाली गणित की शोध-पत्रिका *आक्टा मैथेमेटिका* के वे संस्थापक-संपादक थे ।
2. *आन मैथेमेटिक्स एंड मैथेमेटिशियंस* में उद्धृत, नं. 1938, पृ. 332 ।
3. देखिए *द वर्ड आफ मैथेमेटिक्स* (खंड 3) में हांस हान का लेख : 'द क्राइसिस इन इंट्यूएशन', पृ. 1956-76.

   ऐसे एक वक्र का सृजन स्वीडेन के गणितज्ञ हेल्गे वोन कॉख (1870-1924 ई.) ने किया, जो 'कॉख वक्र' कहलाता है ।

'कॉख़ वक्र' का निर्माण : आकृति में इस वक्र के सृजन के आरंभिक स्तर दर्शाए गए हैं । इस तरह के 'शिखर' तैयार करते जाने की अंतहीन प्रक्रिया एक ऐसे वक्र का सृजन करती है, जो सर्वत्र सतत तो होता है, मगर कहीं भी अवकलनशील नहीं होता ।

अंततः जो वक्र तैयार होगा उसमें अ के चाहे जितने समीप का अंश लिया जाए, उसके बिंदु 60° के सेक्टर में (तीसरे स्तर की आकृति की तरह $प_1$ $प_3$ से $प_2$ $प_4$ तक) वितरित रहेंगे, और एक निश्चित सीमा (लिमिट) को प्राप्त नहीं करेंगे ।
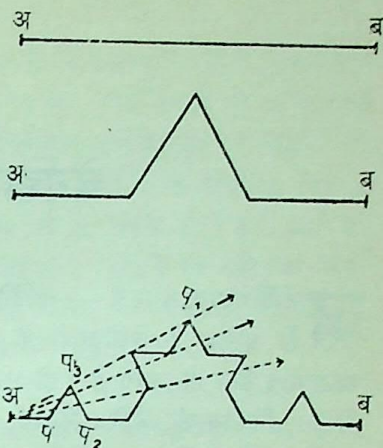
4. बेर्नार्ड बोल्ट्झानो (1781-1848 ई.) कैथोलिक धर्मशास्त्री, दार्शनिक और गणितज्ञ थे। उनका जन्म और निधन प्राग में हुआ, मगर उनके पिता मूलतः मिलान (इटली) के थे । बेर्नार्ड बोल्ट्झानो ने *'अनंत की पहेलियां'* नामक एक पुस्तक लिखी थी, जो उनकी मृत्यु के बाद 1851 ई. में प्रकाशित हुई ।
5. देखिए कार्ल बी. बोयेर, पृष्ठ 268-71.

बेर्नार्ड बोल्ट्झानो (1781-1848 ई.)

बेर्नहार्ड रीमान

जर्मनी में एक नगर है — गॉटिंगेन । गॉटिंगेन विश्वविद्यालय का नाम सुनते ही गणित के अध्येताओं के मन में इस विद्यापीठ के प्रति सहज ही श्रद्धाभाव पैदा हो जाता है । हो भी क्यों नहीं, कार्ल फ्रेडरिक गौस, डिरिख्ले, रीमान, मिंकोवस्की, डेविड हिल्बर्ट, फेलिक्स क्लाइन, रिचार्ड डेडेकिंड, एडमंड लांदौ, अंर्स्ट जेरमेलो, कार्ल रुंगे, हरमान वाइल, एम्मा नोएथेर आदि अनेक महान गणितज्ञ इस विश्वविद्यालय में अध्यापक रहे हैं !

अ-यूक्लिडीय ज्यामिति का जन्म गॉटिंगेन विश्वविद्यालय में ही हुआ । गौस (1777-1855 ई.) इस विषय के आदि-प्रवर्तक थे । लोबाचेवस्की (1793-1856 ई.) की अ-यूक्लिडीय ज्यामिति का सर्वप्रथम गॉटिंगेन के गणितज्ञों ने ही स्वागत किया था । बेर्नहार्ड रीमान (1826-1866 ई.) ने बहु-आयामी दिक् और अपनी विशिष्ट अ-यूक्लिडीय ज्यामिति का प्रतिपादन गॉटिंगेन में ही किया था । सभी अ-यूक्लिडीय ज्यामितियों को एक सूत्र में बांधने का काम फेलिक्स क्लाइन (1849-1925 ई.) ने गॉटिंगेन में ही किया । गॉटिंगेन में ही डेविड हिल्बर्ट (1862-1943 ई.) ने ज्यामितियों के लिए सुदृढ़ तार्किक आधार प्रदान किया ।

मगर सबसे महत्व की बात यह है कि आइंस्टाइन (1879-1955 ई.) ने आपेक्षिकता के अपने सिद्धांत को गणित के जिस ढांचे में प्रस्तुत किया है उसे सर्वप्रथम गॉटिंगेन के गणितज्ञों ने ही खोजा था । आइंस्टाइन ने रीमान की अ-यूक्लिडीय ज्यामिति का उपयोग किया । उन्होंने हरमान मिंकोवस्की (1864-1909 ई.) द्वारा दिक्काल के चार-आयामी स्वरूप के लिए विकसित किए गए गणितीय ढांचे का उपयोग किया । मिंकोवस्की ने 1908 ई. में यह गणितीय ढांचा तब तैयार किया था, जब वे गॉटिंगेन में थे ।

आइंस्टाइन-जैसे महान भौतिकीविद भी गॉटिंगेन के गणितज्ञों से थोड़ा-बहुत आतंकित रहे हैं । आइंस्टाइन ने एक बार हंसी-मजाक में कहा भी था : ''गॉटिंगेन के लोग कभी-कभी मुझे बड़ा प्रभावित करते हैं — इसलिए नहीं कि किसी चीज को स्पष्टता से सूत्रबद्ध करने में वे सहायता देते हैं, बल्कि इसलिए कि वे हम भौतिकीविदों को मानो केवल यही दिखाना चाहते हैं कि वे हमसे

कितने अधिक बुद्धिमान हैं ।''

गॉटिंगेन के गणितज्ञों ने भौतिकी के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान किया है । गौस और रीमान इसके उदाहरण हैं । फिर भी, गॉटिंगेन के ही गणित का उपयोग करके गॉटिंगेन का ही कोई भौतिकीविद आपेक्षिकता के सिद्धांत का सृजन नहीं कर पाया । कारण शायद यह था कि गॉटिंगेन के वैज्ञानिक दिक् व काल की परंपरागत तथा गणितीय धारणाओं से ही चिपके रहे । इसी बात को स्पष्ट करते हुए एक बार **डेविड हिल्बर्ट** ने कहा था : ''हमारी इस गणितीय नगरी गॉटिंगेन की सड़कों पर चलने वाला प्रत्येक बालक चार-आयामी ज्यामिति के बारे में आइंस्टाइन की अपेक्षा ज्यादा जानकारी रखता है । फिर भी सफलता आइंस्टाइन को मिली, हमारे गणितज्ञों को नहीं ।'' इस कथन के जरिए हिल्बर्ट यही कहना चाहते थे कि आइंस्टाइन दिक् और काल संबंधी परंपरागत धारणाओं से तनिक भी प्रभावित नहीं थे ।
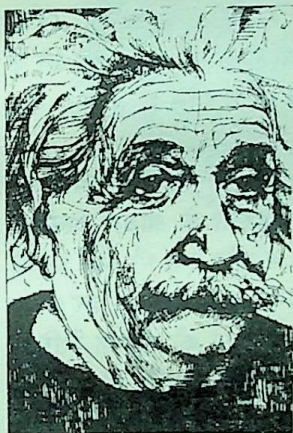
अल्बर्ट आइंस्टाइन
(1879-1955 ई.)

ऐसा था गॉटिंगेन विश्वविद्यालय । इस विश्वविद्यालय की स्थापना जर्मनी के हान्नोवर राज्य के शासक जॉर्ज-द्वितीय ने 1736 ई. में की थी । जर्मनी में हिटलर का शासन शुरू होने पर गॉटिंगेन का गौरवशाली युग समाप्त हो गया । मगर गणित के इतिहास में गॉटिंगेन के साथ गौस और रीमान जैसे महान गणितज्ञों के संबंध चिरस्मरणीय बने रहेंगे । गॉटिंगेन विश्वविद्यालय में 10 जून, 1854 के दिन दिया गया एक 'भाषण' गणित और भौतिकी के इतिहास में सदैव याद किया जाता रहेगा । भाषणकर्ता थे बेर्नहार्ड रीमान ।

रीमान गॉटिंगेन विश्वविद्यालय में अपनी पढ़ाई पूरी कर चुके थे । उन्होंने उसी विश्वविद्यालय से 'डाक्टर' की उपाधि भी प्राप्त कर ली थी । इस उपाधि के लिए उन्होंने 'सम्मिश्र संख्याओं के फलनों के व्यापक सिद्धांत' पर जो शोध-प्रबंध प्रस्तुत किया था उसकी महान गौस ने भूरि-भूरि स्तुति की थी ।

उसके बाद रीमान को आशा बंधी कि उन्हें विश्वविद्यालय में अध्यापन-कार्य करने का अवसर मिलेगा । उस समय की परंपरा के अनुसार जर्मनी के विश्वविद्यालयों में अध्यापकों को आरंभ में अवैतनिक पद स्वीकार करना पड़ता था । ऐसे अध्यापक को **प्रिवातदोजेंत** (निजी अध्यापक) कहते थे । विद्यार्थियों से

मिलनेवाली फीस ही प्रिवातदोजेंत का वेतन होता था। बावजूद इसके, उस जमाने में विश्वविद्यालय में यह पद प्राप्त करना आसान काम नहीं था। पद मिल जाने पर भी एक कठोर परीक्षण से गुजरना पड़ता था। अध्यापक को फैकल्टी के सदस्यों के सामने अपने अध्ययन के एक विषय पर भाषण देना पड़ता था।

रीमान ने अपने भाषण के लिए तीन विषय सुझाए। पहले दो विषयों का उन्होंने अच्छी तरह अध्ययन किया था। रीमान ने तीसरा विषय भी जोड़ दिया था — ज्यामिति के आधार-तत्व। मगर उन्होंने इस विषय का विशेष अध्ययन नहीं किया था। उन्हें विश्वास था कि उन्हें पहले या दूसरे विषय पर ही भाषण देने को कहा जाएगा। परंपरा भी यही थी। रीमान ने अपने भाषण के लिए पहला विषय त्रिकोणमितीय श्रेणी (फूरिए श्रेणी) सुझाया था और उन्होंने इस विषय की अच्छी तैयारी भी की थी।

मगर गौस ने तीसरे विषय को पसंद किया। गौस एक लंबे अरसे से ज्यामिति के आधार-तत्वों के बारे में चिंतन करते आए थे। गौस जानने के लिए उत्सुक थे कि इस विषय के बारे में उनके प्रतिभाशाली शिष्य के क्या विचार हैं। रीमान को तीसरे विषय पर भाषण देने को कहा गया, तो वे उलझन में पड़ गए। फिर भी उन्होंने तैयारी की और 10 जून, 1854 को फैकल्टी के सन्मुख भाषण देने के लिए उपस्थित हो गए। श्रोताओं में 77 साल के महान गौस भी मौजूद थे। रीमान उस समय 28 साल के थे।

उस दिन रीमान ने गॉटिंगेन में जो भाषण दिया उसका अंग्रेजी अनुवाद मेरे सामने है।[1] शीर्षक का हिंदी अनुवाद है — **ज्यामिति के आधार-तत्वों से संबंधित परिकल्पनाओं के बारे में**। कुल 14 पृष्ठ। आकृति एक भी नहीं। कोई सूत्र भी नहीं। सिर्फ विशुद्ध विवेचन। रीमान ने अपने उस भाषण में हर प्रकार के वक्र-पृष्ठी और बहु-आयामी दिक् (स्पेस) में मापन करने की व्यापक विधियां प्रस्तुत कर दीं। आधुनिक गणित के क्षेत्र में यह एक महान उपलब्धि थी। इसकी अधिक चर्चा हम आगे करेंगे। यहां इतना ही उल्लेख करना पर्याप्त होगा कि रीमान ने अ-यूक्लिडीय ज्यामिति और वक्र-पृष्ठों के मापन की धारणाओं को मिलाकर **अवकल ज्यामिति** (डिफरेंशियल ज्यामिति) का एक शक्तिशाली ढांचा खड़ा किया। रीमान का यही गणितीय ढांचा आगे जाकर आइंस्टाइन के आपेक्षिकता के सिद्धांत के लिए उपयोगी बना।

भाषण सुनने के बाद गौस ने अपने शिष्य की मुक्तकंठ से प्रशंसा की। यह एक बहुत बड़ी बात थी, क्योंकि गौस क्वचित् ही किसी की प्रशंसा करते थे। भाषण की सफलता के बाद रीमान ने गॉटिंगेन विश्वविद्यालय में 'प्राइवेट शिक्षक' के रूप में अध्यापन-कार्य शुरू कर दिया। रीमान को आशा थी कि उन्हें केवल दो-तीन विद्यार्थी ही मिलेंगे। मगर उन्हें आठ विद्यार्थी मिले! रीमान ने
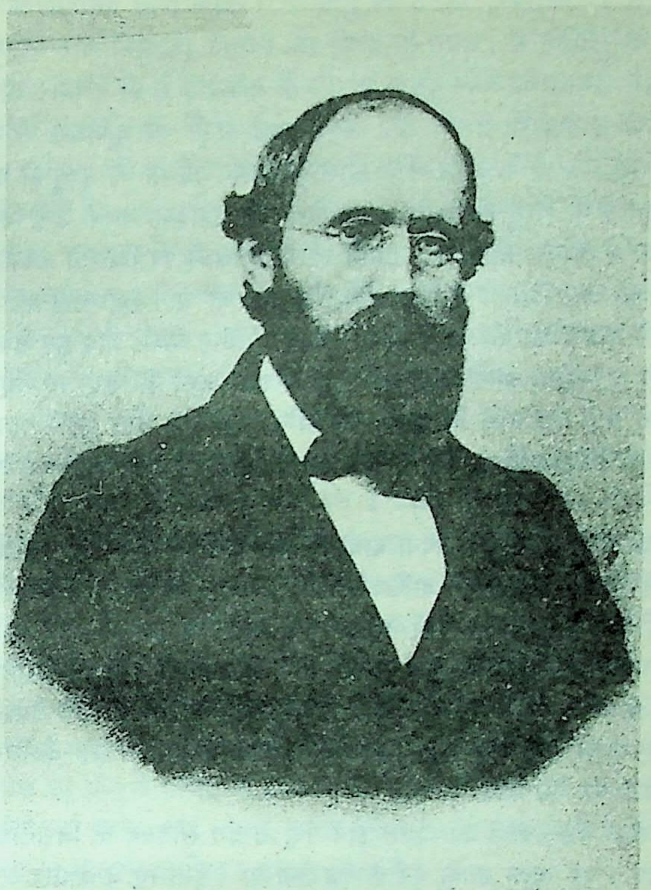
बेर्नहार्ड रीमान
(1826-1866 ई.)

इस सफलता का सुखद समाचार अपने पिता को दिया । उनके परिवार की आर्थिक स्थिति दयनीय थी । रीमान अध्यापक बनकर अपने गुजारे के लिए कमाने लग गए, तो उनके जीवन का एक नया अध्याय शुरू हो गया ।

रीमान ने आयलर या कोशी की तरह बहुत ज्यादा नहीं लिखा । उनका समस्त कृतित्व केवल एक जिल्द में संकलित है ।[2] रीमान को लंबी आयु नहीं मिली । वे केवल 40 साल जीवित रहे । बचपन से ही उनका स्वास्थ्य कमजोर रहा । मगर उन्हें उर्वर मस्तिष्क मिला था । रीमान का क्रांतिकारी कृतित्व स्वर्णाक्षरों में अंकित करने लायक है ।

ग्यार्ग फ्रेडरिक बेर्नहार्ड रीमान का जन्म जर्मनी के हान्नोवर राज्य के एक गांव

ब्रेसेलेंज में 17 सितंबर, 1826 को हुआ था। उनके पिता ईसाइयों के लूथरीय संप्रदाय के पुरोहित थे। माता-पिता की छह संतानों (दो पुत्रों और चार पुत्रियों) में बेर्नहार्ड रीमान का नंबर दूसरा था। बड़ी कठिनाई से ही परिवार का निर्वाह चलता था। बाद में रीमान और उनके भाई-बहनों को कुपोषण के परिणाम भुगतने पड़े। बच्चों के बड़े होने के पहले ही रीमान की मां की मृत्यु हो गई।

रीमान अभी शिशु ही थे कि उनके पिता का तबादला करके उन्हें क्विकबोर्न स्थान का पौरोहित्य सौंपा गया। वहां स्थायी हो जाने पर पिता ने अपने बेटे को पढ़ाना शुरू कर दिया। वे एक बढ़िया शिक्षक भी थे। छह साल की आयु में रीमान ने अंकगणित की पढ़ाई आरंभ की। रीमान न केवल दिए हुए सवाल हल कर लेते थे, बल्कि अपने भाई-बहनों को परेशान करने के लिए नए-नए सवाल भी गढ़ते थे। दस साल के रीमान को गणित पढ़ाने के लिए शुल्ज नामक एक शिक्षक को नियुक्त किया गया। मगर रीमान जल्दी ही अपने शिक्षक से आगे बढ़ गए।

चौदह साल के रीमान अपनी दादी के पास हान्नोवर रहने चले गए और वहां के जिमनेशियम (स्कूल) में दाखिला लिया। रीमान अत्यंत संकोची स्वभाव के थे। परिवार से पृथक् हो जाने के कारण वे बड़ा अकेलापन महसूस करते थे। उन्हें अपने भाई-बहनों की याद सताती थी। जेबखर्च में से बचत करके वे उन्हें उपहार भेजा करते थे। उन्हीं दिनों रीमान ने एक ऐसा कैलेंडर तैयार किया जिसका सतत इस्तेमाल किया जा सकता था। रीमान ने वह कैलेंडर अपने मात-पिता को भेंट किया।

दो साल बाद, दादी का देहांत होने पर, रीमान लीनेबर्ग के जिमनेशियम में पढ़ने गए। यह स्कूल उनके घर के नजदीक था। इसलिए वे अक्सर अपने घर चले जाते थे। रीमान के लिए वे बड़े सुख के दिन थे। उसी दौरान रीमान ने अपनी गणितीय प्रतिभा का परिचय दिया। रीमान की प्रतिभा को पहचानकर जिमनेशियम के अध्यक्ष श्मालफुस महाशय ने उन्हें अपने निजी पुस्तकालय का इस्तेमाल करने की अनुमति दे दी। श्मालफुस के सुझाव पर रीमान स्वतः अध्ययन करने के लिए फ्रांसीसी गणितज्ञ लेजंद्र (1752-1833 ई.) का 'संख्या-सिद्धांत' ग्रंथ ले गए। रीमान ने 859 पृष्ठों के उस ग्रंथ को छह दिन बाद ही लौटा दिया, तो श्मालफुस ने उनसे पूछा—"ग्रंथ कहां तक पढ़ा ?" रीमान का उत्तर था —"अद्‌भुत ग्रंथ है। मैंने इसे पूर्ण समझ लिया है।"

बात सच थी। कुछ अरसे बाद इस ग्रंथ के विषयों को लेकर रीमान की परीक्षा ली गई तो उन्होंने, ग्रंथ को पुनः देखे बिना ही, एकदम सही उत्तर दिए थे। उन्हीं दिनों रीमान ने आयलर (1707-1783 ई.) की कृतियों का भी

अध्ययन किया ।

उन्नीस साल की आयु में, 1846 ई. में, भाषा-विज्ञान और धर्मशास्त्र विषय लेकर रीमान ने गॉटिंगेन विश्वविद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा पास की । आगे के अध्ययन के लिए धर्मशास्त्र विषय लेकर रीमान अपने पिता की तरह पुरोहित बन सकते थे, परिवार को आर्थिक मदद देने योग्य बन सकते थे ! मगर गणित में रीमान की गहरी दिलचस्पी थी । अंततः पिता ने बेर्नहार्ड को गणित का अध्ययन जारी रखने की इजाजत दे दी । रीमान ने गॉटिंगेन विश्वविद्यालय में गणित और भौतिकी का अध्ययन आरंभ कर दिया । वे गौस के लेक्चर बड़े चाव से सुनते थे।

मगर गॉटिंगेन की शिक्षा-पद्धति पुराने ढर्रे की थी । इसलिए एक साल बाद रीमान बर्लिन विश्वविद्यालय चले गए । वहां वे याकोबी (1804-51 ई.), डिरिख्ले (1805-59 ई.), स्टाइनेर (1796-1863 ई.)[3] और आइजेन्स्टाइन-जैसे योग्य अध्यापकों के सान्निध्य में आए । रीमान ने याकोबी से उच्च बीजगणित पढ़ा, डिरिख्ले से विश्लेषण व संख्या-सिद्धांत पढ़ा, स्टाइनेर से उन्होंने आधुनिक ज्यामिति पढ़ी और आइजेन्स्टाइन से उन्होंने दीर्घवृत्तीय फलनों के बारे में विशद जानकारी प्राप्त की। **फर्डिनांड आइजेन्स्टाइन** से रीमान ने एक और चीज हासिल की—आत्मविश्वास । आइजेन्स्टाइन, जो कि रीमान से केवल तीन साल बड़े थे, गौस के प्रिय शिष्य थे । गौस बहुत कम ही किसी की स्तुति करते थे । मगर आइजेन्स्टाइन की तुलना उन्होंने आर्किमीदीज़ और न्यूटन के साथ की थी ! आइजेन्स्टाइन (1823-1852 ई.) का बचपन दारिद्र्य में गुजरा, उन्नीस साल की आयु में गणित के प्रति उनकी दिलचस्पी बढ़ी और 29 साल की अल्पायु में उनका देहांत हुआ । मगर उनका कृतित्व इतना महत्वपूर्ण है कि उन्हें अपने समय का एक श्रेष्ठ गणितज्ञ समझा जाता है ।

आइजेन्स्टाइन का मुख्य कार्य संख्या-सिद्धांत, दीर्घवृत्तीय फलनों तथा सम्मिश्र राशियों से संबंधित है ।

आज **सम्मिश्र चर फलनों का सिद्धांत** (थ्योरी आफ फंक्शन्स आफ ए कॉम्पलेक्स वेरिएबल) आधुनिक विशुद्ध गणित का एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय है । इस विषय (सम्मिश्र विश्लेषण) का विकास रीमान ने ही किया था । जब रीमान बर्लिन विश्वविद्यालय में पढ़ रहे थे, जब वे केवल 21 साल के थे, तभी सम्मिश्र विश्लेषण के बारे में उनके विचारों में प्रौढ़ता आ गई थी ।

रीमान ने दो साल बर्लिन विश्वविद्यालय में गुजारे । फिर 1849 ई. में वे 'डाक्टरेट' की तैयारी करने के लिए गॉटिंगेन लौट आए । वहां विशुद्ध गणित के साथ-साथ वे भौतिकी का भी गहन अध्ययन करते रहे । अंत में नवंबर 1851 में रीमान ने अपना शोध-प्रबंध प्रस्तुत कर दिया । प्रबंध का विषय था— सम्मिश्र चर के फलनों के व्यापक सिद्धांत के लिए मूलाधार । परीक्षक थे— कार्ल फ्रेडरिक

गौस !

जैसाकि हम पहले बता चुके हैं, गौस किसी की स्तुति करने में बड़े ही कंजूस थे । मगर पच्चीस साल के रीमान का प्रबंध इतना महत्वपूर्ण था कि गौस उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके । गौस ने प्रबंध के बारे में अपनी अधिकृत रिपोर्ट दी—''हेर रीमान ने जो प्रबंध प्रस्तुत किया है उससे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि लेखक ने विषय का गहन व व्यापक अध्ययन किया है और उन्हें सचमुच ही एक सृजनशील, सक्रिय, मौलिक एवं गणितीय मस्तिष्क मिला है । प्रस्तुतीकरण स्पष्ट, संक्षिप्त और कई स्थलों पर अति सुंदर है । अधिकांश पाठक स्थापना में अधिक स्पष्टता पसंद करते । कुल मिलाकर समूचा प्रबंध एक ठोस व बहुमूल्य कार्य है, जो 'डाक्टरेट' के स्तर का ही नहीं, उससे भी कहीं अधिक ऊंचा है ।''

'डाक्टर' की उपाधि मिल जाने पर रीमान ने अपने पिता को लिखा—''प्रबंध की सफलता के कारण मेरा उत्साह बढ़ गया है। मुझे उम्मीद है कि मैं व्याख्याता बनूंगा ।''

रीमान गॉटिंगेन विश्वविद्यालय में व्याख्याता (निजी अध्यापक) किस प्रकार बने, इसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं । नियुक्ति के लिए उन्होंने जो भाषण तैयार किया था वह गणित के क्षेत्र में एक ऐतिहासिक उपलब्धि सिद्ध हुआ ।

सन् 1855 में गौस का निधन हुआ । गॉटिंगेन में गौस का पद डिरिख्ले को मिला । तब रीमान के मित्रों ने चाहा कि डिरिख्ले का सहायक प्राध्यापक का पद रीमान को मिले । मगर विश्वविद्यालय की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण वह वैतनिक पद रीमान को नहीं मिला । हां, विश्वविद्यालय ने रीमान के गुजारे के लिए कुछ आर्थिक मदद की व्यवस्था कर दी । रीमान तब तक प्राइवेट विद्यार्थियों से मिलने वाली फीस से ही अपनी जीविका चलाते थे । अब पहली बार उन्हें वेतन के नाम पर थोड़ा-बहुत पैसा मिलने लगा । भविष्य अनिश्चित था।

उन्हीं दिनों रीमान के पिता का देहांत हुआ । उनकी एक बहन भी चल बसी। अब बचीं तीन बहनें और एक भाई । भाई एक डाकखाने में क्लर्क की नौकरी करते थे । मगर उनका वेतन गणितज्ञ रीमान की आय से काफी अधिक था । इसलिए तीनों बहनें रीमान के भाई के साथ रहने चली गईं ।

रीमान अध्यापन और अन्वेषण कार्य भं जुटे रहे । अब वे तीस साल के हो गए थे । उसी दौरान उन्होंने आबेलीय फलनों के क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य किया।

उसी समय, 1857 ई. में, रीमान को सहायक प्राध्यापक का पद मिला और उनके वेतन में थोड़ी वृद्धि हुई । किंतु साथ ही उन्हें एक भारी विपदा का सामना करना पड़ा । उनके भाई की मृत्यु हो गई । तीनों बहनों के पालन की जिम्मेदारी

रीमान के सिर पर आ पड़ी । बड़ी तंगी में गुजारा चलता था । कुछ दिन बाद एक बहन का देहांत हो गया, तो थोड़ी-सी सहूलियत हो गई । अभाव और विपदाओं के उस दौर में रीमान का खोजकार्य जारी रहा । उसी दौरान उन्होंने विद्युत-गतिकी पर एक शोध-निबंध लिखा ।

मई 1859 में डिरिख्ले का निधन हुआ । रीमान के लिए डिरिख्ले के मन में बड़ा स्नेह था । अब रीमान की कीर्ति भी काफी फैल गई थी । अतः डिरिख्ले का रिक्त पद रीमान को प्रदान करने का शासन ने फैसला ले लिया । इस तरह, रीमान महान गौस के दूसरे उत्तराधिकारी बने । उस समय वे 33 साल के थे । गौस गॉटिंगेन वेधशाला के भवन में रहते थे । रीमान को भी निवास के लिए वही स्थान मिला, तो उन्हें बड़ी सुविधा हुई ।

रीमान की ख्याति अब समूचे यूरोप में फैल गई थी । उन्होंने बर्लिन की यात्रा की, तो कुम्मेर, क्रोनेखेर और वायरस्ट्रास-जैसे श्रेष्ठ गणितज्ञों ने उनका गुणगान किया । लंदन की रॉयल सोसायटी और पेरिस की विज्ञान अकादमी ने रीमान को अपना सदस्य चुना । रीमान ने 1860 ई. में पेरिस की यात्रा की । उसी साल उन्होंने ऊष्मा के चालन के बारे में एक महत्वपूर्ण शोध-निबंध प्रकाशित किया । उस निबंध में रीमान ने जो गणितीय ढांचा प्रस्तुत किया वह कालांतर में आपेक्षिकता के सिद्धांत के लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ ।

प्राध्यापक बनने पर रीमान की आर्थिक स्थिति में कुछ सुधार हुआ, तो 36 साल की आयु में रीमान ने **एलिसे कोख** नामक तरुणी से विवाह कर लिया । मगर कुछ दिन बाद, जून 1862 में, रीमान को पार्श्वशूल की बीमारी ने घेर लिया । कुछ राहत मिली, तो उन्हें क्षयरोग हो गया । मित्रों के प्रयास करने पर शासन ने रीमान को इटली जाकर स्वास्थ्य में सुधार करने के लिए सुविधा प्रदान की । रीमान ने शीतकाल के दिन इटली के सुखद वातावरण में गुजारे । थोड़ा स्वास्थ्य-लाभ करके गॉटिंगेन लौटे तो पुनः बीमार पड़ गए । अगले शीतकाल में, 1863 ई. में, पुनः इटली गए, और पीसा के पास के एक मकान में रहे । वहीं पर उनके **इडा** नामक एक पुत्री हुई ।

रीमान शीतकाल में इटली जाते रहे । मगर उनके स्वास्थ्य में स्थायी सुधार नहीं हुआ । बीच-बीच में स्वास्थ्य थोड़ा सुधर जाता, तो खोजकार्य में जुट जाते थे । मगर रीमान के हाथ में लिए हुए कई काम अधूरे ही रह गए । अंततः इटली के सेलास्का स्थान पर 20 जुलाई, 1866 को, चालीस साल की आयु में, बेर्नहार्ड रीमान का निधन हो गया ।

बताया जाता है कि रीमान-परिवार को खाने-पीने की सुविधाएं नहीं मिलीं, इसलिए अधिकांश सदस्य कम उम्र में ही चल बसे । बेर्नहार्ड का स्वास्थ्य भी जीवनभर कमजोर ही रहा । उन्हें भौतिक सुख-सविधाएं भी नहीं मिलीं । वे

अपनी कई योजनाओं को पूरा नहीं कर पाए । रीमान को यदि कुछ अधिक लंबी आयु और स्वस्थ शरीर मिलता, तो वे उन्नीसवीं सदी के न्यूटन या आइंस्टाइन बनने की क्षमता रखते थे । फिर भी, रीमान ने जो कार्य किया वह उन्हें संसार का एक महान गणितज्ञ सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है ।

रीमान का कृतित्व आधुनिक उच्च गणित के क्षेत्र का है, इसलिए उसका विवेचन कर पाना यहां संभव नहीं होगा । हम केवल इतना ही बता पाएंगे कि रीमान ने गणित के किन क्षेत्रों में अपना योगदान किया और उनका कितना बड़ा महत्व है ।

हम बता चुके हैं कि रीमान जब हाईस्कूल (जिमनेशियम) के विद्यार्थी थे, तो उन्होंने लेजंद्र का संख्या-सिद्धांत से संबंधित 859 पृष्ठों का ग्रंथ केवल छह दिनों में पूरा पढ़ लिया था ! उसी ग्रंथ के कारण अभाज्य (प्राइम) संख्याओं के अध्ययन में रीमान की दिलचस्पी बढ़ी । जिस संख्या को एक और स्वयं के अलावा अन्य किसी संख्या से भाग नहीं दिया जा सकता, उसे अभाज्य संख्या कहते हैं । अभाज्य संख्याएं अनंत हैं । एक निश्चित अभाज्य संख्या से छोटी कुल कितनी अभाज्य संख्याएं हो सकती हैं, यह जानना गणितज्ञों के सामने आज भी एक पहेली है । केवल सन्निकट मान के लिए ही सूत्र प्रस्तुत किए जा सकते हैं । लेजंद्र ने अपने ग्रंथ में ऐसा ही एक सूत्र दिया था ।

रीमान एक बेहतर सूत्र की खोज में जुट गए । इस समस्या का समाधान खोजने के प्रयास में रीमान ने निम्नलिखित अनंत श्रेणी का अनुशीलन आरंभ कर दिया —

$$\zeta\,(\text{न}) = 1 + \frac{1}{2^{\text{न}}} + \frac{1}{3^{\text{न}}} + \frac{1}{4^{\text{न}}} + \cdots$$

यहां 'न' एक सम्मिश्र संख्या (कॉम्पलेक्स नंबर) है । सम्मिश्र संख्याएं ($\text{क} + \sqrt{-1}\,\text{ख}$) की कोटि की होती हैं । इस अनंत श्रेणी को 'जीटा फलन' के नाम से जाना जाता है । इस जीटा फलन को और सम्मिश्र संख्याओं के क्षेत्र में इसके विस्तार को लेकर कई समस्याएं आज भी अनुत्तरित हैं । इनमें एक है **रीमान-परिकल्पना** । 1859 ई. में रीमान ने यह परिकल्पना प्रस्तुत की थी । उच्च गणित का विषय होने के कारण हम यहां इस विषय की गहराई में नहीं जाएंगे । केवल इतना ही बताना पर्याप्त होगा कि फर्मा (1601-1665 ई.) के प्रसिद्ध प्रमेय की तरह रीमान-परिकल्पना भी आज तक पूर्णतः प्रमाणित नहीं हो पाई है !

रीमान द्वारा प्रतिपादित अ-यूक्लिडीय ज्यामिति की थोड़ी चर्चा हम पहले कर
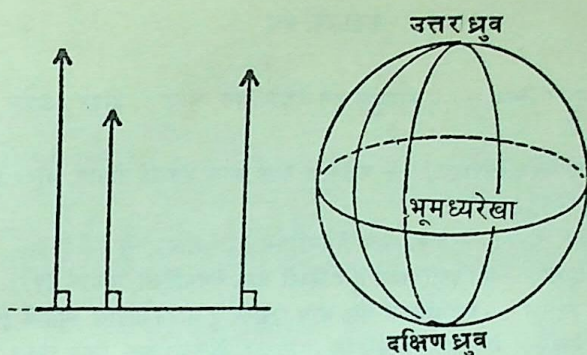
समतल में एक रेखा के साथ 90° का कोण बनानेवाली सभी रेखाएं एक-दूसरे के समांतर होती हैं (बाएं) । दूसरी ओर, पृथ्वी की वक्र सतह पर सभी याम्योत्तर रेखाएं भूमध्यरेखा के साथ 90° का कोण बनाती हैं, मगर दोनों ध्रुवों पर पहुंचकर एक-दूसरे से मिल जाती हैं (दाएं) । रीमानीय ज्यामिति में भी ऐसा ही होता है—इसमें समांतर रेखाएं नहीं होतीं । रीमान-दिक् में बिंदुओं के बीच के लघुतम पथ वक्ररूप होते हैं, इसमें त्रिभुजों को सरकाया जाए तो वे विकृत हो जाते हैं और तदनुसार उनके भीतरी कोणों का योग भी बदलता जाता है—यूक्लिडीय ज्यामिति की तरह सदैव 180° नहीं रहता ।

चुके हैं । रीमान ने बहु-आयाम वाले वक्र-दिकों (स्पेसेज) पर विचार करके इन्हें मापने की विधियां प्रस्तुत कीं । रीमान की अ-यूक्लिडीय ज्यामिति में त्रिभुजों के तीनों कोणों का योग 180 अंशों से अधिक होता है । रीमान की अ-यूक्लिडीय ज्यामिति **दीर्घवृत्तीय ज्यामिति** के नाम से जानी जाती है । इसमें अनंत लंबाई की कोई सीधी रेखा नहीं होती । सभी सीधी रेखाएं स्वयं से आकर मिलती हैं, समान लंबाई की होती हैं और दिक् (स्पेस) सीमाबद्ध है । हम बता चुके हैं कि रीमान का यह कार्य आइंस्टाइन के आपेक्षिकता के सिद्धांत के लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है । इसी प्रकार, सम्मिश्र चर के फलनों से संबंधित रीमान का खोजकार्य भी बड़ा क्रांतिकारी सिद्ध हुआ ।

आज **टॉपोलॉजी** उच्च गणित का एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय है ।[4] आयलर (1707-1783 ई.) के समय में एक मामूली सवाल से इस विषय की शुरुआत हुई थी ।[5] रीमान ने इस विषय के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया । रीमान ने गणितीय भौतिकी के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण कार्य किया ।

भरपूर बौद्धिक क्षमता होने पर भी बेर्नहार्ड रीमान अपनी सदी के आइंस्टाइन नहीं बन पाए । मगर उन्होंने आपेक्षिकता के सिद्धांत के महल के निर्माण के लिए सुदृढ़ नींव निश्चय ही रख दी थी । रीमान का केवल यही योगदान उनकी कीर्ति को चिरस्थायी बनाए रखने के लिए पर्याप्त है ।

सहायक ग्रंथ

1. डेविड यूजेन स्मिथ — **ए सोर्सबुक इन मैथेमेटिक्स**, भाग 2, डोवर प्रकाशन, न्यूयार्क 1959
2. हाइनरिख वेबेर (संपादक) — **कलेक्टेड वर्क्स आफ बेर्नहार्ड रीमान**, डोवर प्रकाशन, न्यूयार्क 1953
3. जेम्स आर. न्यूमान — **द वर्ड आफ मैथेमेटिक्स** (चार भाग), न्यूयार्क 1956
4. होवार्ड इवेस — **एन इन्ट्रोडक्शन टु द हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स**, न्यूयार्क 1972
5. मॉरिस क्लाइन — **मैथेमेटिकल थॉट फ्राम एंशियंट टु मार्डन टाइम्स**, न्यूयार्क 1972
6. ई. टी. बेल — **मेन आफ मैथेमेटिक्स** (भाग 2), पेलिकन बुक, लंदन 1953
7. डेविड बेरगामिनी — **मैथेमेटिक्स**, टाइम-लाइफ बुक, हांगकांग 1980
8. डिर्क जे. स्त्रुइक — **ए कंसाइज हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स**, लंदन 1959
9. इम्रे टॉथ — **नॉन-यूक्लिडीयन ज्यामिट्री बिफोर यूक्लिड**, (लेख), **साइंटिफिक अमेरिकन**, नवम्बर 1969

संदर्भ और टिप्पणियां

1. देखिए, डेविड यूजेन स्मिथ, भाग 2, पृष्ठ 411-425
2. **कलेक्टेड वर्क्स आफ बेर्नहार्ड रीमान**, संपादक : हाइनरिख वेबेर, डोवर प्रकाशन, न्यूयार्क 1953
3. याकोब स्टाइनेर का जन्म (1796 ई.) स्विट्जरलैंड के एक गरीब किसान परिवार में हुआ, इसलिए चौदह साल की उम्र तक उन्होंने लिखना-पढ़ना कुछ भी नहीं सीखा था । सत्रह साल के स्टाइनेर को शिक्षाविद पेस्तालोज्जी (1746-1827 ई.) ने अपने स्कूल में दाखिल किया और उनमें गणित के प्रति प्रेम पैदा किया। स्टाइनेर ने हाइडेलबर्ग से मैट्रिक की परीक्षा पास की । उसके बाद वे गणित के अध्यापक बने । साथ ही गणितीय विषयों पर उनके शोध-निबंध *क्रेल्ले के जर्नल* में छपने लगे।

याकोब स्टाइनेर (1796-1863 ई.)

याकोबी, क्रेल्ले आदि के प्रयासों से 1834 ई. में स्टाइनेर बर्लिन विश्वविद्यालय में गणित के प्राध्यापक बने । जीवन के अंतिम दिनों तक वे अध्यापक बने रहे । मृत्यु बर्न (स्विट्जरलैंड) में 1863 ई. में हुई ।

स्टाइनेर एक महान ज्यामितिकार थे । गणित के कुछ इतिहासकार उन्हें एपोलोनियस के बाद का सबसे बड़ा ज्यामितिकार मानते हैं । स्टाइनेर ने प्रक्षेपीय

ज्यामिति के विवेचन के लिए वैश्लेषिक विधि के स्थान पर संश्लेषिक विधि को अपनाया। स्टाइनेर की प्रमुख कृति—'ज्यामितीय रूपों के अन्योन्याश्रय का विधिवत विवेचन'—1832 ई. में प्रकाशित हुई थी।

4. टॉपोलॉजी, सरल शब्दों में कहें तो, तोड़-मरोड़ की ज्यामिति है। इसका संबंध उन बुनियादी ज्यामितीय गुणधर्मों से है जो वस्तु के तानने, मरोड़ने या अन्य किसी प्रकार से आकार-प्रकार को बदलने पर भी बरकरार रहते हैं। आरंभ में इस अध्ययन को *एनेलेसिस सिटुस्* (स्थिति का विश्लेषण) कहा जाता था। टॉपोलाजी को 'रबर-शीट ज्यामिति' भी कहते हैं। आज टॉपोलॉजी एक बहुत ही विकसित विषय बन गया है।
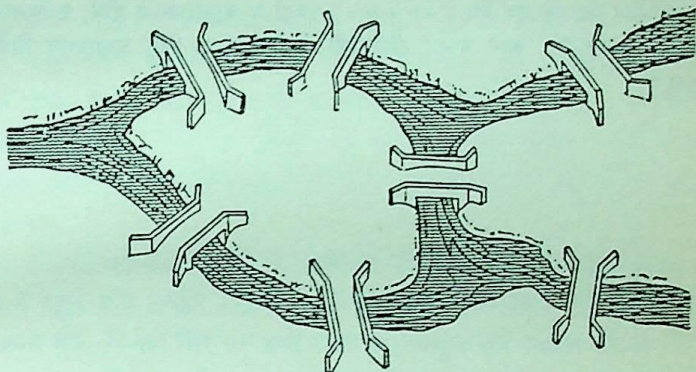
कोनिग्सबर्ग के पुल
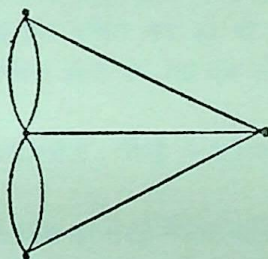
इस समस्या में द्वीपों और पुलों के आकार-प्रकार महत्व के नहीं हैं, इसलिए यह टॉपोलॉजी का सवाल है। आयलर ने भूक्षेत्रों को बिंदुओं (शीर्षों) से और पुलों को रेखाओं से व्यक्त करके इस समस्या को एक 'नेटवर्क' की समस्या में बदल दिया। इस नेटवर्क में प्रत्येक बिंदु पर 2, 4, 6··· (सम संख्याएं) रेखाएं आकर मिलती होतीं तभी, किसी भी पुल से दो बार गुजरे बिना, पूरी यात्रा की जा सकती थी। मगर यहां ऐसा नहीं है।

5. सवाल कोनिग्सबर्ग नगर के पुलों से संबंधित था। आयलर के समय में यूरोप में कोनिग्सबर्ग से बहने वाली प्रेगेल नदी में दो टापू (द्वीप) थे और उस पर सात पुल बने

हुए थे। नगरवासी उन सातों पुलों को एक ही यात्रा में, किसी भी पुल पर से दो बार न जाकर, पार करने का प्रयास करते रहते थे, मगर सफलता नहीं मिलती थी। आयलर ने, जो उस समय सेंट पीटर्सबर्ग में थे, इस दिलचस्प समाचार को सुना और जुट गए समाधान खोजने में।

समस्या का हल प्राप्त करने के लिए आयलर ने भूक्षेत्रों को बिंदुओं से और पुलों को सीधी तथा वक्र रेखाओं से व्यक्त किया। तब आयलर ने जांचा कि यह आकृति पेंसिल को सतत चलाकर बनाई जा सकती है या नहीं। उत्तर मिला — नहीं। अपने इस हल को व्यापक बनाकर आयलर ने 1735 ई. में इसे प्रकाशित किया।

आयलर का यह सूत्र कि $V - E + F = 2$ (जहां V बहुफलक के शीर्ष, E किनारे और F फलक हैं), आगे जाकर टॉपोलॉजी के विकास के लिए आधारभूत सिद्ध हुआ।

हेनरी प्वाँकारे

किस्सा करीब सौ साल पुराना है । फ्रांस के गणितज्ञ हेनरी प्वाँकारे के शोध-निबंधों की गणित-जगत में धूम मची हुई थी ! इंग्लैंड के प्रसिद्ध गणितज्ञ जेम्स जोसेफ सिल्वेस्टर (1814-97 ई.) 1885 ई. में पेरिस की यात्रा पर गए, तो उन्होंने सोचा कि प्वाँकारे से भी मिल लिया जाए । उस समय सिल्वेस्टर ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में गणित के प्राध्यापक थे और उनकी आयु 71 साल थी ।

तीन मंजिलों की संकरी सीढ़ियां चढ़ने के बाद सिल्वेस्टर एक खुले हवादार बरामदे में पहुंचे और उन्होंने पहली बार हेनरी प्वाँकारे को देखा, तो चकित रह गए । अपने गंजे, चिकने सिर पर हाथ फेरते हुए सन्मुख खड़े व्यक्ति को दो-तीन मिनट तक मंत्रमुग्ध-से देखते रह गए, मौन । सोचने लगे—जिसके शोध-निबंधों की बाढ़-सी आ गई है वह इतना सुकुमार, इतना तरुण !

प्वाँकारे तब केवल तीस साल के थे, मगर अपने समय के सर्वश्रेष्ठ फ्रांसीसी गणितज्ञ के रूप में उन्होंने ख्याति अर्जित कर ली थी । वैज्ञानिक जगत में प्वाँकारे को कितना अधिक सम्मान प्राप्त था, यह एक और दिलचस्प किस्से से स्पष्ट हो जाता है ।

बात प्रथम महायुद्ध के समय की है । किसी ने बर्ट्राण्ड रसेल (1872-1970 ई.) से पूछा :

''आपकी दृष्टि में आधुनिक फ्रांस का सबसे महान व्यक्ति कौन है ?''

''प्वाँकारे'', रसेल ने तत्काल उत्तर दिया ।

''क्या ! वह आदमी ?'' प्रश्नकर्ता ने आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछा । उसने समझा कि रसेल का आशय फ्रांसीसी गणतंत्र के तत्कालीन राष्ट्रपति रेमाँ प्वाँकारे (1860-1934 ई.) से है । अतः रसेल को स्पष्ट करना पड़ा :

''मेरा आशय रेमाँ के चचेरे भाई हेनरी प्वाँकारे से है ।''

रसेल स्वयं अपने समय के एक महान चिंतक और तार्किक गणितज्ञ थे । उन्होंने हेनरी प्वाँकारे को ठीक ही आधुनिक फ्रांस की महाविभूति कहा था । प्वाँकारे अपने समय के संसार के सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ थे । उन्होंने गणित की सभी प्रमुख शाखाओं में महत्वपूर्ण मौलिक खोजकार्य किया, इसलिए उन्हें गणित के

हेनरी प्वाँकारे (1854-1812 ई.)

क्षेत्र का 'अंतिम सर्वज्ञ' समझा जाता है ।

आधुनिक गणित अब कई प्रमुख शाखाओं में बँट गया है । एक शाखा में खोजकार्य करनेवाले के लिए यह समझ पाना कठिन हो जाता है कि दूसरी शाखा में क्या हो रहा है । हेनरी प्वाँकारे ऐसे गणितज्ञ थे जिन्होंने गणित की चारों प्रमुख शाखाओं—अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति और विश्लेषण—के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया । इतना ही नहीं, उन्होंने खगोल-विज्ञान और गणितीय भौतिकी के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण खोजकार्य किया । प्वाँकारे एक उच्च कोटि के दार्शनिक – गणितज्ञ भी थे । पिछली सदी के अंतिम चरण तक महान गौस को गणित के क्षेत्र का 'अंतिम सर्वज्ञ' समझा जाता था । वर्तमान सदी के आरंभ में 'अंतिम सर्वज्ञ' की हैसियत प्वाँकारे को मिली । अब गणित का इतना अधिक विस्तार हो गया है कि शायद ही कभी कोई दूसरा गौस या प्वाँकारे पैदा हो ।

प्वाँकारे ने कुल 34 साल (1874-1912 ई.) तक गवेषणा-कार्य किया । इस अवधि का उनका समग्र कृतित्व इतना विस्तृत और मौलिक है कि सहसा यकीन नहीं होता कि यह एक ही व्यक्ति का योगदान है । प्वाँकारे ने करीब 500 शोध-प्रबंध प्रकाशित किए । इसके अलावा, गणितीय भौतिकी, सैद्धांतिक भौतिकी, खगोल-भौतिकी आदि विषयों से संबंधित उनके करीब 30 ग्रंथ प्रकाशित हुए । प्वाँकारे ने विज्ञान के दार्शनिक पहलू पर भी कुछ पुस्तकें लिखी हैं । लोकप्रिय विज्ञान पर लिखे उनके लेख संसार की कई भाषाओं में अनूदित हुए और बड़े चाव से पढ़े गए । प्वाँकारे के **विज्ञान और परिकल्पना** ग्रंथ को और 'गणितीय सृजन' नामक निबंध को खूब प्रसिद्ध मिली है ।

इस प्रकार, प्वाँकारे के कृतित्व को आधुनिक गणित की एक अमूल्य निधि समझा जाता है । इस महान गणितज्ञ का जीवन-चरित्र भी कम दिलचस्प नहीं है।

हेनरी प्वाँकारे का जन्म फ्रांस के नान्सी नगर में 19 अप्रैल, 1854 को हुआ था । पिता लिआँ प्वाँकारे स्थानीय विश्वविद्यालय में चिकित्सा के प्राध्यापक थे और वे एक कुशल चिकित्सक माने जाते थे । हेनरी के चाचा एन्तोई प्वाँकारे एक उच्च पदासीन सरकारी इंजीनियर थे । उनके एक बेटे रेमाँ ने कानून का अध्ययन किया और बाद में वे फ्रांसीसी गणतंत्र के राष्ट्रपति बने ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हेनरी प्वाँकारे का जन्म एक सम्पन्न और सुसंस्कृत परिवार में हुआ था । हेनरी की आरंभिक शिक्षा उनकी मां की देखरेख में हुई । हेनरी की एक बहन भी थी । सुशिक्षित व दक्ष मां की देखरेख में बालक हेनरी का तेजी से विकास हुआ । मगर हेनरी के शारीरिक विकास में कुछ

न्यूनताएं भी प्रकट हुईं । उसकी बोली साफ नहीं थी । वह दोनों हाथों से लिख सकता था, परंतु उसकी लिखावट अच्छी नहीं थी । हेनरी जब पांच साल का था, तो वह डिप्थीरिया का शिकार हुआ । परिणामतः वह जीवनभर के लिए दुर्बल व संकोची बन गया ।

हेनरी प्वाँकारे की स्मरण-शक्ति बड़ी विलक्षण थी । किसी पुस्तक को एक बार पढ़ लेने पर ही उन्हें स्मरण रह जाता था कि कौन-सी बात किस पृष्ठ पर और किस पंक्ति में है ! देखने में आता है कि अधिकांश गणितज्ञ प्रमेयों और सूत्रों को अपनी दृष्टि के जरिए आत्मसात करते हैं, स्मरण रखते हैं । मगर प्वाँकारे की बात निराली थी । उनकी आंखें कमजोर थीं । जब वे उच्च कक्षाओं के विद्यार्थी बने, तो उन्हें श्यामपट्ट पर लिखा हुआ साफ-साफ नजर नहीं आता था । इसलिए वे कक्षा में पीछे बैठते थे और केवल कानों से लेक्चर सुनते थे, लिखते कुछ भी नहीं थे !

गणितज्ञों के भुलक्कड़ स्वभाव के बारे में जो ढेर सारे किस्से प्रचलित हैं उनमें से अधिकांश मनगढंत हैं । मगर पता चलता है कि प्वाँकारे न केवल भुलक्कड़ थे, बल्कि कुछ हद तक असामाजिक भी थे । बताया जाता है कि जब वे किसी होटल में ठहरते, तो वहां की चादरें-तौलिए भी अपने बक्से में रख लिया करते थे !

प्वाँकारे के भुलक्कड़ स्वभाव का एक और पहलू एक किस्से से स्पष्ट हो जाता है । फिनलैंड का एक गणितज्ञ प्वाँकारे से कुछ महत्व के वैज्ञानिक विषयों पर विचार-विमर्श करने के लिए पेरिस आया । सेविका ने उनके आने की सूचना प्वाँकारे को दी, तब भी वे उनका स्वागत करने बाहर नहीं आए, बल्कि अपने अध्ययन-कक्ष में चहलकदमी करते हुए सोचते रहे । आगंतुक बैठक में प्वाँकारे के पधारने का इंतजार करते रहे । अंततः तीन घंटे बाद प्वाँकारे ने परदों को हटाकर बैठक में झाँका और बोले : "आप मेरे काम में विघ्न डाल रहे हैं ।" सुदूर फिनलैंड से आए वे गणितज्ञ उठकर चले गए !

मगर प्वाँकारे काफी कोमल स्वभाव के व्यक्ति थे । उन्हें पशु-पक्षियों से बेहद प्यार था । बचपन में एक बार, निशाना न साधने पर भी, उनकी बंदूक की गोली से एक पक्षी मर गया था । उस दिन से उन्हें बदूंक से विरक्ति हो गई ।

प्वाँकारे की गणित के प्रति गहरी दिलचस्पी तब बढ़ी जब वे पंद्रह साल के हुए । उनके गणितीय अध्ययन की जीवनभर एक प्रमुख विशेषता यह रही कि वे टहलते हुए दिमाग में ही समस्या के बारे में सोचते रहते थे । दिमाग में समस्या का पूर्ण हल प्राप्त हो जाने के बाद ही वे उसे कागज पर उतारते थे । वे प्रायः एक ही बैठक में अपने शोध-निबंध को पूरा लिख डालते थे । उन्होंने शास्त्रीय भाषाओं और शैली पर अच्छा अधिकार प्राप्त कर लिया था । फ्रांस और प्रशिया

के बीच 1870 ई. में हुए युद्ध के दौरान सोलह साल के प्वाँकारे ने अपने देश की दुर्दशा देखी और साथ ही हमलावरों की जर्मन भाषा भी सीखी । मगर प्वाँकारे के मन में जर्मन गणितज्ञों के प्रति सदैव सम्मान बना रहा ।

सत्रह साल की आयु में, 1871 ई. में, प्वाँकारे ने स्नातक की परीक्षा पास की। इस परीक्षा में गणित विषय में वह बड़ी मुश्किल से ही पास हुए । वजह यह थी कि वह परीक्षा देने देर से पहुंचे थे और गणित के एक सरल प्रश्न को भी हल करने में गलती कर बैठे थे । मगर प्रमुख परीक्षक प्वाँकारे की प्रतिभा से परिचित थे । प्वाँकारे उत्तीर्ण हुए ।

उसके बाद प्वाँकारे वनविद्या संस्थान की प्रवेश-परीक्षा में बैठे और गणित में प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया । तब से प्वाँकारे की गणितीय प्रतिभा प्रस्फुटित होने लगी । उनके सहपाठी यदि उनसे गणित के किसी सवाल का हल पूछते, तो फौरन उत्तर मिल जाता था ।

पाठकों को फ्रांसीसी गणितज्ञ इवारिस गाल्वा (1811-32 ई.) की जीवन-कथा याद होगी । परीक्षक गाल्वा की गणितीय प्रतिभा को पहचानने में असफल रहे । परिणामतः गाल्वा के लिए उन्नति के रास्ते बंद रहे और बीस साल की अल्पायु में उनकी मृत्यु हुई । आरंभ में रामानुजन् (1887-1920 ई.) को भी गाल्वा-जैसी परिस्थितियों का ही सामना करना पड़ा था । भारत में शिक्षण की दशा आज भी लगभग वैसी ही है, जैसी कि रामानुजन् के समय में थी।

लेकिन फ्रांसीसियों ने गाल्वा के उदाहरण से अच्छा सबक सीख लिया था । प्वाँकारे जब पोलीटेकनिक में पहुंचे, तो उन्होंने अपनी गणितीय प्रतिभा का भरपूर परिचय दिया । मगर शारीरिक कसरतों और चित्रांकन तथा रेखांकन में वे एकदम कोरे थे । उनके रेखांकनों का प्रायः मजाक उड़ाया जाता था । प्वाँकारे को रेखांकन के पर्चे में शून्य मिला ! परीक्षा के नियम के अनुसार, किसी विद्यार्थी को यदि किसी विषय में शून्य मिल जाता था, तो उसे अगली कक्षा में प्रवेश नहीं मिलता था । प्वाँकारे की प्रतिभा से परीक्षक भलीभांति परिचित थे । वह नहीं चाहते थे प्वाँकारे फेल हो जाएं । इसलिए, कहा जाता है कि, परीक्षक ने शून्य के पहले दशमलव बिंदु और शून्य के आगे 1 का अंक रख दिया । अर्थात्, प्वाँकारे को रेखांकन में .01 अंक मिले और वे परीक्षा में उत्तीर्ण हुए !

पोलीटेकनिक में पढ़ाई पूरी करने के बाद इक्कीस साल के प्वाँकारे ने इंजीनियर बनने के इरादे से 1875 ई. में खनिज विद्यालय में दाखिला लिया । तकनीकी अध्ययन के अलावा उन्हें जो समय मिलता, उसे वे गणित के अध्ययन में लगाते थे । उन्हीं दिनों उन्होंने अवकल समीकरणों (डिफरेंशियल इक्वेशंस) से संबंधित एक व्यापक समस्या का अध्ययन किया । तीन साल बाद प्वाँकारे ने

उसी समस्या के बारे में 'डाक्टर' की उपाधि के लिए पेरिस विश्वविद्यालय में एक शोध-प्रबंध प्रस्तुत किया। परीक्षक ने प्रबंध को उपाधि के योग्य पाया और टिप्पणी जोड़ी कि प्रबंध में इतनी उपयोगी सामग्री है कि उससे कई प्रबंध तैयार हो सकते हैं !

प्वाँकारे अंतःप्रज्ञा के धनी थे, इसलिए वे सीधे ही हल प्राप्त कर लेते थे। बीच के चरणों में न उलझकर वे सीधे ही परिणाम पर पहुंच जाते थे। इसलिए उनके गणितीय विचारों को सहजता से समझने में कइयों को काफी कठिनाई होती थी। प्वाँकारे के दिमाग में विचारों की बाढ़-सी आती थी और उसमें वे बहते जाते थे। महान गौस के दिमाग में भी गणितीय विचार ऐसे ही कोलाहल मचाते रहते थे, मगर वे सोच-समझकर बहुत थोड़ा ही लिखते थे। प्वाँकारे की स्थिति भिन्न थी। वे बेरोकटोक लिखते ही जाते थे और पीछे मुड़कर देखने या जांचने की जरूरत नहीं समझते थे। यही वजह थी कि प्वाँकारे इतना अधिक लिख पाए।

प्वाँकारे को खनन इंजीनियर का पेशा रास नहीं आया। उनकी दिलचस्पी गणित में थी। 'डाक्टर' की उपाधि के लिए प्रस्तुत किए गए प्रबंध से उनके लिए गणितज्ञ के पेशे का रास्ता खुल गया था। दिसंबर 1879 में **काएन** (पश्चिमोत्तर फ्रांस) के विद्यापीठ में प्वाँकारे को गणितीय विश्लेषण के प्राध्यापक का पद मिला। दो साल बाद, 27 साल की आयु में, पेरिस विश्वविद्यालय में उनकी नियुक्ति हुई। तब से प्वाँकारे का शेष जीवन प्रायः पेरिस में ही गुजरा।

प्वाँकारे का गणितीय अन्वेषक का जीवन 1879 ई. में काएन में प्राध्यापक बनने के साथ शुरू हुआ। उनकी मृत्यु 1912 ई. में हुई। बीच के इन 34 सालों में प्वाँकारे ने कितना सारा काम किया, इसका जिक्र हम पहले कर ही चुके हैं। यहां प्वाँकारे के समस्त गवेषणा-कार्य का विवेचन करना तो दूर रहा, नामोल्लेख कर पाना भी संभव नहीं है। इसलिए हम उनकी चंद प्रमुख उपलब्धियों की ही यहां थोड़ी चर्चा करेंगे।

अवकल समीकरणों पर विचार करते हुए प्वाँकारे ने 1880 ई. में, जब वे छब्बीस साल के थे, दीर्घवृत्तीय फलनों के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण आविष्कार किए। हम जानते हैं कि कुछ फलन *आवर्त* (पिरिओडिक) होते हैं। ऐसे फलनों में चर का मान एक निश्चित मात्रा में बढ़ाया जाए, तो वह फलन पुनः अपने आरंभिक मान पर लौटता है। त्रिकोणमितीय फलन आवर्त होते हैं। जैसे —

$$\sin(z+2\pi) = \sin(z+4\pi) = \sin(z+6\pi) = \sin z$$

दीर्घवृत्तीय फलन के दो आवर्तनांक होते हैं। मान लीजिए कि ये p_1 और p_2 हैं। तब —

$$E(z+p_1) = E(z), \quad E(z+p_2) = E(z)$$

ऐसे फलन को **द्वि-आवर्त** कहते हैं। प्वाँकारे ने सिद्ध किया कि आवर्तता एक अन्य सार्विक गुण की महज एक विशिष्ट दशा है। वह सार्विक गुण यह है कि, कुछ फलन ऐसे होते हैं कि चर के बहुत-से मानों में से कोई भी एक रख देने से फलन का मान ज्यों-का-त्यों बना रहता है। प्वाँकारे ने सिद्ध किया कि ऐसे मानों की संख्या अनंत किंतु गणनीय है।

पिछली सदी के नौवें दशक के दौरान प्वाँकारे ने ऐसे कई फलनों का सृजन करके उनके गुणधर्म निर्धारित किए। इस विषय से संबंधित उनके कई महत्वपूर्ण शोध-निबंध प्रकाशित हुए। प्वाँकारे ने इन फलनों को जर्मन गणितज्ञ लाज़ारुस फुक्स (1833-1902 ई.) के नाम पर **फुक्सीय फलन** नाम दिया था।[1] आज इन फलनों को हम **स्व-आकारी** (आटोमार्फिक) फलनों के नाम से जानते हैं। आधुनिक गणित में इन *स्वाकारी* फलनों का बड़ा महत्व है। स्वाकारी फलनों के अंतर्गत दीर्घवृत्तीय फलनों का समावेश होता है और दीर्घवृत्तीय फलनों के अन्तर्गत त्रिकोणमितीय फलनों का।

फुक्सीय या स्वाकारी फलनों की सृजन-प्रक्रिया के बारे में प्वाँकारे ने अपने प्रसिद्ध निबंध 'गणितीय सृजन' में बड़ी दिलचस्प मनोवैज्ञानिक जानकारी दी है। प्वाँकारे इन फलनों के बारे में करीब पंद्रह दिन तक गहन चिंतन करते रहे। मगर उन्हें कोई सफलता नहीं मिली। तब एक दिन, आदत न होने पर भी, उन्होंने ब्लैक काफी पी। उसके बाद वह सो नहीं पाए। सोचते रहे। उनके दिमाग में विचार मंडराते रहे। सुबह होने तक उन्हें एक विशिष्ट प्रकार के फुक्सीय फलनों का अस्तित्व सुस्पष्ट हो गया। तब परिणामों को कागज पर उतारने में उन्हें ज्यादा समय नहीं लगा।[2]

उसके बाद प्वाँकारे फुक्सीय फलनों के अधिक व्यापक गुणधर्मों की खोजबीन में जुट गए और उस प्रयास में उन्होंने एक ऐसी श्रेणी की खोज की, जिसे उन्होंने **थीटा-फुक्सीय** का नाम दिया।[3]

उस समय प्वाँकारे काएन में रहते थे। श्रेणी का सृजन करने के बाद प्वाँकारे भूवैज्ञानिकों के एक यात्रा-दल में शामिल हुए। यात्रा के दौरान वे अपने गणितीय गवेषणा-कार्य को एकदम भूल गए थे। एक दिन वे एक गाड़ी में चढ़ने ही जा रहे थे कि एकाएक उनके दिमाग में फुक्सीय फलनों के बारे में एक महत्वपूर्ण विचार कौंधा। उनको एकाएक स्पष्ट हुआ कि फुक्सीय फलनों को परिभाषित करने के लिए उन्होंने जिन रूपांतरणों का उपयोग किया है वे

अ-यूक्लिडीय ज्यामिति के रूपांतरणों के समतुल्य हैं । यात्रा से काएन लौटने के बाद प्वाँकारे ने एकाएक प्रकट हुए उस विचार की जाँच की और उसे सही पाया।[4]

गणितज्ञ किस प्रकार सृजन करते हैं, यह मनोविश्लेषण का एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय है । प्वाँकारे ने अपनी सृजन-प्रक्रिया के बारे में स्वयं कुछ घटनाएं उदाहरण के तौर पर प्रस्तुत की हैं । कुछ अन्य गणितज्ञों के बारे में भी ऐसी घटनाएं सुनने को मिलती हैं । इनमें चमत्कार-जैसी कोई बात नहीं है । रामानुजन् और रीमान को भी कई गणितीय परिणाम एकाएक ही प्राप्त हुए थे । ऐसी स्थितियों में अंतःप्रज्ञा निश्चय ही महत्व की भूमिका अदा करती है ।[5]

प्वाँकारे ने विश्लेषण पर असाधारण अधिकार प्राप्त कर लिया था । उन्होंने सैद्धांतिक खगोल-विज्ञान को एक नए धरातल पर उठाने में विश्लेषण का भरपूर इस्तेमाल किया । न्यूटन, आयलर, लाग्राँज और लापलास ने सैद्धांतिक खगोल-विज्ञान के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया था । मगर उन्नसवीं सदी में खगोल-विज्ञान के अन्वेषण के लिए कई सारी नई गणितीय तकनीकें उपलब्ध हुई थीं । उनका उपयोग करने वाले प्वाँकारे पहले गणितज्ञ थे ।

एक उदाहरण लीजिए । हम जानते हैं कि हर पिंड हर अन्य पिंड को आकर्षित करता है । दो पिंडों के बीच के आकर्षण के लिए न्यूटन ने एक नियम भी दिया है । मगर विश्व में हम सर्वत्र देखते हैं कि समस्या केवल दो पिंडों के बीच के आकर्षण तक सीमित नहीं रहती । अनेक पिंड एकसाथ एक-दूसरे को आकर्षित करते रहते हैं । पृथ्वी को केवल सूर्य ही नहीं, चंद्र तथा थोड़ी-बहुत मात्रा में मंगल, शुक्र आदि ग्रह भी आकर्षित करते रहते हैं । अतः बुनियादी समस्या दो पिंडों के बीच की नहीं, बल्कि अनेकानेक पिंडों के बीच के आकर्षण की है ।

दो पिंडों के बीच के आकर्षण की समस्या न्यूटन ने पूर्णतः सुलझा दी थी । तीन पिंडों के बीच के आकर्षण की समस्या को भी काफी हद तक सुलझा लिया गया है । मगर असली समस्या है अनेकानेक पिंडों के बीच के आकर्षण की । इसे हल करने के लिए स्वीडेन के राजा ने 1887 ई. में एक पुरस्कार भी घोषित किया था । प्वाँकारे इस समस्या को पूर्णतः हल नहीं कर पाए, फिर भी पुरस्कार उन्हीं को मिला । पुरस्कार के लिए निर्णायक मंडल के सदस्य थे— वायरस्ट्रास, हर्मिट और मिताग-लेफलर । वायरस्ट्रास ने अपना निर्णय देते हुए स्वीडेन के गणितज्ञ मिताग-लेफलर को लिखा— प्वाँकारे का ''यह कृतित्व प्रस्तावित समस्या का पूर्ण हल प्रस्तुत नहीं करता, फिर भी इसका महत्व इतना अधिक है कि इसके प्रकाशित होने पर खगोल-यांत्रिकी के इतिहास में एक नए अध्याय का आरंभ होगा ।'' प्वाँकारे को पुरस्कार मिल गया । फ्रांस ने भी अपने इस

वैज्ञानिक को अपना सर्वोच्च सम्मान प्रदान किया ।

प्वाँकारे ने पिछली सदी के अंतिम दशक में खगोल-यांत्रिकी पर तीन खंडों में एक ग्रंथ प्रकाशित किया । फिर वर्तमान सदी के प्रथम दशक में सैद्धांतिक खगोल-विज्ञान के बारे में तीन खंडों में उन्होंने एक और ग्रंथ प्रकाशित किया । इस ग्रंथ में प्वाँकारे ने प्रमाणित किया है कि यदि द्रव से बना हुआ कोई पिंड घूर्णन करता है तो वह कौन-सा आकार ग्रहण करेगा । उन्होंने सिद्ध किया कि अधिकाधिक रफ्तार से घूर्णन करनेवाला ऐसा गोलाकार पिंड क्रमशः अंडाकार और नाशपाती का आकार ग्रहण करके अंत में एक पेट निकले हुए पिंड में बदलकर अपनी द्रव्यराशि को दो असमान भागों में विभक्त कर देगा ।

प्वाँकारे ने गणित और भौतिकी के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में महत्वपूर्ण योग दिया है । उन्होंने प्रायिकता सिद्धांत (थ्योरी आफ प्रोबेबिलिटी) के क्षेत्र में भी काम किया है । **संयोग** (चांस) के बारे में लिखे अपने विस्तृत निबंध में उन्होंने संयोग के विभिन्न अर्थों का बढ़िया विवेचन किया है ।[6] प्वाँकारे ने, आइंस्टाइन के कुछ ही समय पहले, आपेक्षिकता के सिद्धांत के बारे में काफी महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत कर दिए थे ।

गाल्वा (1811-1832 ई.) या आबेल (1802-29 ई.) की तरह प्वाँकारे की उपेक्षा नहीं हुई । उन्हें अपने समय के सर्वोच्च सम्मान व पुरस्कार प्राप्त हुए । वे 1887 ई. में बत्तीस साल की आयु में ही फ्रांस की विज्ञान अकादमी के सदस्य चुने गए थे । बावन साल की आयु में, 1906 ई. में, वे विज्ञान अकादमी के अध्यक्ष चुने गए । एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक को मिलने वाला यह सर्वोच्च सम्मान था । प्वाँकारे को फ्रांस की साहित्य अकादमी का भी सदस्य चुना गया था । एक वैज्ञानिक को उसके निबंधों की साहित्यिक शैली के लिए यह सम्मान मिलना सचमुच ही बहुत बड़ी बात थी ।

प्वाँकारे का जीवन सुखमय रहा । 1904 ई. में वे अमरीका की यात्रा पर गए थे, अन्यथा उनका अधिकांश जीवन पेरिस में ही गुजरा । उनके एक पुत्र और तीन पुत्रियां हुईं ।

प्वाँकारे 1908 ई. में रोम में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय गणितीय कांग्रेस में शामिल हुए । उन्होंने 'गणितीय भौतिकी का भविष्य' विषय पर एक निबंध तैयार किया था । किंतु बीमार पड़ने के कारण वे स्वयं अपना निबंध नहीं पढ़ पाए । इटली में ही उनकी प्रास्टेट ग्रंथि की सूजन का आपरेशन हुआ । लगा कि उन्हें पुनः स्वास्थ्य-लाभ हो गया है । पेरिस लौटकर वे पुनः जोर-शोर से खोजकार्य में जुट गए ।

मगर 1912 ई. में पुनः बीमार पड़ गए । 9 जुलाई को पुनः आपरेशन हुआ । परंतु वे बच नहीं पाए । 17 जुलाई, 1912 को, उनसठवें साल में, हेनरी प्वाँकारे

का देहांत हुआ ।

प्वाँकारे ने अपना गवेषणा-कार्य उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के संधिकाल में किया था । इस तरह उन्हें बीसवीं सदी के अन्वेषकों का पथप्रदर्शक माना जा सकता है । उन्होंने गणित के दार्शनिक पहलू पर भी गहन चिंतन किया था । प्वाँकारे के निबंध उनके अपने गवेषणा-कार्य पर तो भरपूर प्रकाश डालते ही हैं, दूसरे गणितज्ञों की सृजन-प्रक्रिया को भी समझने में सहायता देते हैं ।

सहायक ग्रंथ

1. जेम्स आर. न्यूमान — **द वर्ड आफ मैथेमेटिक्स** (चार भाग), न्यूयार्क 1956
2. ई. टी. बेल — **मेन आफ मैथेमेटिक्स** (भाग 2), पेलिकन बुक, लंदन 1953
3. होवार्ड इवेस — **एन इंट्रोडक्शन टु द हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स**, न्यूयार्क 1983
4. जैक्व हादामार — **द साइकोलाजी आफ इन्वेन्शन इन द मैथेमेटिकल फील्ड**, डोवर प्रकाशन, न्यूयार्क 1954
5. डिर्क जे. स्त्रुइक — **ए कंसाइज हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स**, लंदन 1959
6. हेनरी प्वाँकारे — **द वैल्यू आफ साइंस**, डोवर प्रकाशन, न्यूयार्क 1958

संदर्भ और टिप्पणियां

1. लाजारुस फुख्स (1833-1902 ई.) गॉटिंगेन, हाइडेलबर्ग और बर्लिन विश्वविद्यालयों में गणित के प्राध्यापक रहे । फुख्स अपने लेक्चरों को पहले से तैयार नहीं करते थे, बल्कि उन्हें जो बताना होता था उसे वे मौके पर ही प्रस्तुत कर देते थे । इस प्रकार, उनके विद्यार्थियों को ''गणित के एक श्रेष्ठतम मस्तिष्क को प्रत्यक्ष क्रियाशील देखने का सुअवसर मिलता था ।''

   फुख्स ने एकघात अवकल समीकरणों के क्षेत्र में महत्वपूर्ण गवेषणा-कार्य किया ।
2. मेरे सामने इस निबंध का अंग्रेजी अनुवाद है—'मैथेमेटिकल क्रिएशन' । प्वाँकारे का यह निबंध मेरे ग्रंथ-संग्रह की गणितज्ञ हादामार की प्रसिद्ध पुस्तक में पिछले करीब तीन दशकों से रखा हुआ है, अलग से । जहां तक मुझे स्मरण आता है, प्वाँकारे का यह प्रसिद्ध निबंध 'मेंटर बुक' सीरीज में प्रकाशित पुस्तक **द क्रिएटिव प्रोसस** में संकलित हुआ था ।

   प्वाँकारे का यह निबंध **द वर्ड आफ मैथेमेटिक्स**, खंड 4, में भी संकलित है ।
3. उपर्युक्त ग्रंथ (1), पृ. 2044.
4. वही, पृ. 2044-45.
5. देखिए जैक्व हादामार की पुस्तक । मगर उसमें भारतीय प्रतिभा रामानुजन् की चिंतन-प्रणाली की कोई चर्चा नहीं !
6. यह लेख **द वर्ड आफ मैथेमेटिक्स**, खंड 2 (पृ. 1380-94), में संकलित है, जहां संपादक जेम्स आर. न्यूमान ने प्वाँकारे का परिचय भी दिया है ।

ग्यार्ग कांतोर

गणित में शून्य, अनंत और परमाल्प (अत्यंत सूक्ष्म या अत्यणु) की धारणाओं का बड़ा महत्व है। प्राचीन भारत के गणितज्ञों ने इन तीनों ही धारणाओं पर गहराई से चिंतन किया था। शून्य सहित केवल दस संकेतों से सारी संख्याओं को व्यक्त करने वाली दाशमिक स्थानमान अंक-पद्धति की खोज भारत में ही हुई थी। ब्रह्मगुप्त (628 ई.) ने शून्य की परिभाषा दी है : अ − अ = 0। बाद में भास्कराचार्य (1150 ई.) आदि गणितज्ञों ने शून्य की परमाल्प के रूप में भी कल्पना की।

अत्यल्प और अनंत की धारणाएं ज्यादा जटिल हैं। इस विश्व में अनंत कुछ भी नहीं है। समूचे ब्रह्मांड में अणु-परमाणु भी अनंत नहीं हैं। मगर गणित में हमें पग-पग पर अनंत के दर्शन होते हैं। संख्या-क्रम 1, 2, 3, 4, 5, ··· 19, 20, ··· अनंत है। किन्हीं भी दो भिन्नों के बीच में अनंत भिन्न खोजे जा सकते हैं। हम यह भी जानते हैं कि किसी राशि को शून्य से भाग दिया जाए, तो परिणाम को हम प्रायः 'अनंत' मानते हैं; यथा —

$$\frac{\text{अ}}{0} = \text{अनंत } (\infty)$$

किसी भी राशि को शून्य से भाग देने पर जो लब्धि मिलती है, उसे भास्कराचार्य ने खहर (जिसके हर स्थान में 'ख' यानी शून्य हो) कहा है। इस ख-हर (अनंत) मान के बारे में भास्कराचार्य अपने **बीजगणित** में कहते हैं —

अस्मिन् विकारः खहरे न राशावपि प्रविष्टेष्वपि निःसृतेषु ।
बहुष्वपि स्याल्लय सृष्टिकालेऽनन्तेऽच्युते भूतगणेषु यद्वत् ॥ 4 ॥

अर्थात्, जिस प्रकार अनंत और अच्युत ईश्वर में, प्रलय के समय बहुत-से भूतगणों का प्रवेश होने से अथवा सृष्टि के समय उनके निकल जाने से, कोई विकार नहीं होता, उसी प्रकार इस शून्य हर वाली (ख-हर) राशि में बहुत बड़ी संख्या को भी जोड़ने अथवा घटाने पर कोई परिवर्तन नहीं होता।

अतः भास्कराचार्य जानते थे कि

$$\frac{\text{अ}}{0} = \infty, \quad \infty + \text{क} = \infty, \infty - \text{क} = \infty$$

जहां 'क' चाहे कितनी भी बड़ी संख्या हो ।

फिर भी, अनंत और परमाल्प से संबंधित सारी समस्याएं सुलझीं नहीं । प्राचीन काल से ही अनंत और परमाल्प की धारणाओं को लेकर पहेलियां पैदा होती रही हैं । ऐसी कुछ पहेलियां एलिया (इटली) निवासी यूनानी विचारक **जेनो** (ईसा पूर्व 5वीं सदी) ने प्रस्तुत की थीं ।[1] लाइबनिट्ज (1646-1716 ई.) और गैलीलियो (1564-1643 ई.) ने भी अनंत के बारे में गहन चिंतन किया था । महान गौस (1777-1855 ई.) 'वास्तविक अनंत' को अस्वीकार करते थे और उन्होंने $\frac{1}{\infty} = 0$ तथा $\frac{1}{0} = \infty$ को निरर्थक माना था ।

अनंत और परमाल्प की समस्याएं पिछली सदी तक सुलझी नहीं थीं । कलन-गणित परमाल्प की धारणा पर आधारित है । अंततः वायरस्ट्रास (1815-97 ई.) ने परमाल्प का समाधान प्रस्तुत कर दिया ।

अनंत का समाधान ज्यादा जटिल था । आस्ट्रिया के कैथोलिक धर्मशास्त्री, दार्शनिक और गणितज्ञ **बेर्नहार्ड बोल्ट्झानो** (1781-1848 ई.) ने 'अनंत' तथा 'सातत्य' की धारणाओं के बारे में गहन चिंतन किया था और इनसे संबंधित पहेलियों के बारे में एक ग्रंथ की रचना की थी । **अनंत की पहेलियां** नामक बोल्ट्झानो की यह पुस्तक उनकी मृत्यु के बाद 1851 ई. में प्रकाशित हुई ।[2]

बोल्ट्झानो की पुस्तक ने अनंत के अन्वेषण का मार्ग प्रशस्त कर दिया । अनंत की व्याख्या करनेवाले गणितज्ञ ग्यार्ग कांतोर और रिचार्ड डेडेकिंड (1831-1916 ई.)[3] दोनों ही बोल्ट्झानो की पुस्तक के ऋणी हैं ।

ग्यार्ग कांतोर ने पहली बार अनंत की व्यापक व्याख्या प्रस्तुत की । उन्होंने अनेक कोटि के अनंतों का उद्‌घाटन किया । उन्होंने अनंतों का एक नया अंकगणित तैयार किया । कांतोर ने **समुच्चय सिद्धांत** (थ्योरी आफ सेट्स) की स्थापना की । आज समूचा गणित समुच्चय सिद्धांत की नींव पर खड़ा किया जा रहा है । समुच्चय सिद्धांत ने टॉपोलॉजी-जैसे महत्वपूर्ण विषय के विकास में महती योग दिया है । सारांश यह कि, कांतोर का समुच्चय सिद्धांत प्रायः समूचे आधुनिक गणित के लिए आधारस्तंभ बन गया है । आज हमारे देश में भी हाईस्कूल की कक्षाओं से ही समुच्चय सिद्धांत की पढ़ाई आरंभ हो जाती है ।

मगर 'अनंत के व्याख्याता' और 'समुच्चय सिद्धांत के संस्थापक' ग्यार्ग कांतोर का जीवन सुखमय नहीं रहा । उनके जीवनकाल में कई बड़े गणितज्ञों ने अनंत संबंधी उनकी मान्यताओं को स्वीकार नहीं किया, उनका मखौल उड़ाया गया । उन्हें बर्लिन विश्वविद्यालय में प्राध्यापक का पद नहीं मिला । अपने जीवन के अंतिम कई वर्ष उन्हें मानसिक चिकित्सालय (पागलखाने) में गुजारने पड़े । अंततः पागलखाने में ही कांतोर का देहांत हुआ !
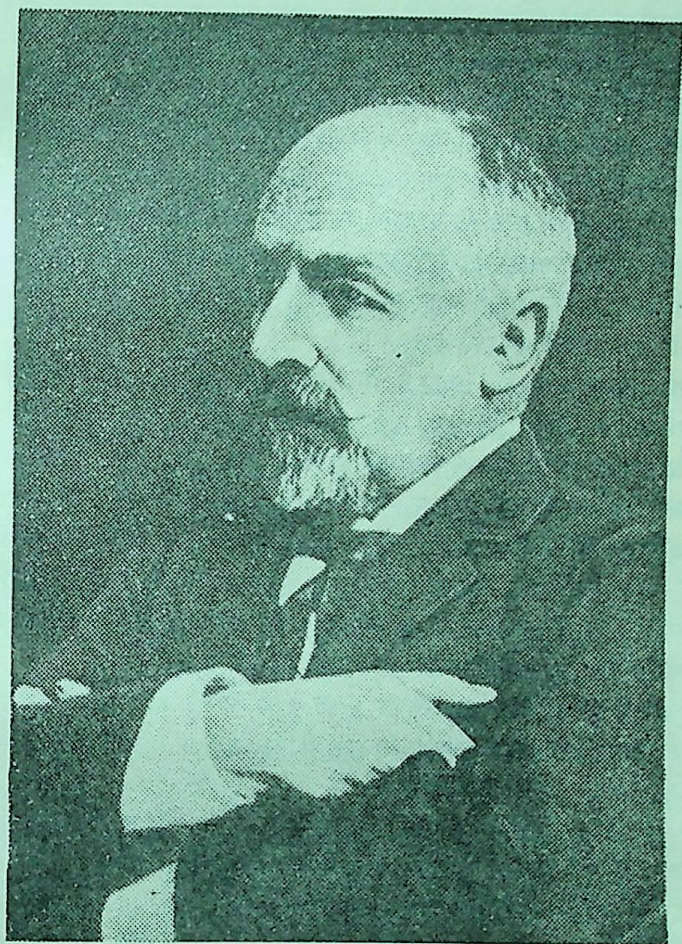
ग्यार्ग कांतोर (1845-1918 ई.)

ग्यार्ग फर्दिनांद लुडविग कांतोर का जन्म सेंट पीटर्सबर्ग (आधुनिक लेनिनग्राद) में 3 मार्च, 1845 को हुआ था । पिता ग्यार्ग वाल्देमार कांतोर डेनमार्क में पैदा हुए थे, मगर व्यापार के लिए सेंट पीटर्सबर्ग जाकर बस गए थे । व्यापार से उन्होंने काफी धन अर्जित कर लिया था ।

ग्यार्ग कांतोर के पिता यहूदी थे, मगर उन्होंने प्रोटेस्टेंट मत स्वीकार कर लिया था । मां मारिया बोहम रोमन कैथोलिक थीं । ग्यार्ग कांतोर जब 11 साल के थे, तब उनके पिता व्यापार छोड़कर जर्मनी के फ्रांकफुर्त नगर में आकर बस गए ।

बालक कांतोर की आरंभिक पढ़ाई सेंट पीटर्सबर्ग में हुई । फिर फ्रांकफुर्त के एक निजी स्कूल में पढ़ाई की । पंद्रह साल की आयु में कांतोर ने वाइसबाडेन के जिमनेशियम में प्रवेश लिया । ग्यार्ग बचपन में ही अपनी गणितीय प्रतिभा का परिचय दे चुके थे । गणित के अध्ययन में उनकी गहरी दिलचस्पी थी । मगर पिता चाहते थे कि उनका बेटा इंजीनियर बने । आज्ञाकारी बेटे ने पिता की बात मान ली, मगर इंजीनियरी में ग्यार्ग का मन नहीं रमा । अंत में पिता ने बेटे को गणित के अध्ययन की अनुमति दे दी ।

सत्रह साल की आयु में, 1862 ई. में, ग्यार्ग कांतोर जूरिख विश्वविद्यालय में दाखिल हुए । अगले वर्ष, पिता का देहांत होने पर, उन्होंने बर्लिन विश्वविद्यालय में दाखिला लिया । कांतोर के अध्ययन के विषय थे : गणित, दर्शनशास्त्र और भौतिकी । गणित और दर्शनशास्त्र उनके प्रिय विषय थे । भौतिकी में उन्हें ज्यादा दिलचस्पी नहीं थी । बर्लिन विश्वविद्यालय में कांतोर के गणित के अध्यापक थे : कुम्मेर, वायरस्ट्रास और क्रोनेखेर[4] । बाद में क्रोनेखेर कांतोर के कट्टर विरोधी बन गए थे । उस समय की प्रथा के अनुसार कांतोर ने एक सत्र का समय एक अन्य विश्वविद्यालय — गॉटिंगेन विश्वविद्यालय— में गुजारा ।

कांतोर ने बर्लिन विश्वविद्यालय से 1867 ई. में पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की । उनके प्रबंध का विषय संख्या-सिद्धांत से संबंधित था । उसके बाद कांतोर ने कुछ समय तक एक कन्या विद्यालय में पढ़ाया । चौबीस साल की आयु में, 1869 ई. में, कांतोर को हाल्ले विश्वविद्यालय में प्रिवातदोजेंत (निजी अध्यापक) का पद मिला । 1872 ई. में कांतोर उसी विश्वविद्यालय में सहायक प्राध्यापक और 1879 ई. में पूर्ण प्राध्यापक नियुक्त हुए । हाल्ले एक उदारपंथी विश्वविद्यालय था । मगर उस समय सर्वाधिक ख्याति बर्लिन और गॉटिंगेन विश्वविद्यालयों की थी । चाहने पर भी कांतोर को बर्लिन विश्वविद्यालय में प्राध्यापक का पद नहीं मिला । इसके लिए कांतोर ने क्रोनेखेर को जिम्मेदार माना था । कांतोर का शेष सारा जीवन हाल्ले में ही गुजरा ।

हाल्ले विश्वविद्यालय में स्थान प्राप्त करने पर कांतोर ने त्रिकोणमितीय श्रेणियों का गहन अध्ययन शुरू कर दिया । इसी अध्ययन के दौरान उन्होंने एक

सतत रेखा में विद्यमान बिंदुओं के बीच के संबंधों पर विचार किया । उन्होंने इस अभिगृहीत को स्वीकार कर लिया कि एक सतत रेखा का कोई भी बिंदु एक वास्तविक संख्या (रियल नंबर) का द्योतक होता है और प्रत्येक वास्तविक संख्या के लिए सतत रेखा में एक बिंदु अवश्य विद्यमान रहता है । कांतोर ने बिंदुओं के **सांतत्यक** (कंट्यून्यूअम) यानी वास्तविक संख्याओं का अन्वेषण आरंभ कर दिया । उसी समय रिचार्ड डेडेकिंड भी वास्तविक संख्याओं के अन्वेषण में जुटे हुए थे ।

हम जानते हैं कि वास्तविक संख्याओं में परिमेय तथा अपरिमेय, दोनों ही प्रकार की संख्याओं का समावेश होता है । हम यह भी जानते हैं कि किन्हीं भी दो परिमेय संख्याओं के बीच में अनंत परिमेय संख्याएं खोजी जा सकती हैं । परिमेय संख्याओं के ऐसे घनत्व के बावजूद सतत रेखा पर अपरिमेय बिंदुओं के लिए स्थान मौजूद रहते हैं । 1872 ई. में कांतोर और डेडेकिंड, दोनों ने ही यह स्पष्ट किया कि सांतत्यक या वास्तविक संख्याओं के अनंत समुच्चय में परिमेय संख्याओं के अनंत समुच्चय के अलावा अपरिमेय संख्याओं ($\sqrt{2}$, $\sqrt{3}$, आदि) के लिए भी पर्याप्त स्थान या 'छेद' मौजूद रहते हैं ।

मगर वास्तविक संख्याओं का अनंत समुच्चय परिमेय संख्याओं के अनंत समुच्चय से कितना अधिक घना है, इसका उत्तर डेडेकिंड नहीं दे पाए । इस सवाल का उत्तर पहली बार प्रस्तुत किया ग्यार्ग कांतोर ने, 1874 ई. में । उस साल **क्रेल्ले के जर्नल** में समुच्चय सिद्धांत के बारे में कांतोर का एक क्रांतिकारी शोध-निबंध प्रकाशित हुआ । उसी साल, उनतीस साल की आयु में, **वैली गुत्तमान** नामक तरुणी से कांतोर का विवाह हुआ । उनके दो पुत्र और चार पुत्रियां हुईं ।

कांतोर ने 1874 ई. के अपने क्रांतिकारी निबंध में दो अनंत समुच्चयों की तुलना करने के लिए एक विशिष्ट तरीके को अपनाया । यदि किसी अनंत समुच्चय के सदस्यों का धन पूर्णांकों के अनंत समुच्चय (1, 2, 3, 4,…) के साथ एक-एक का संबंध (एकैकी संबंध) स्थापित करना संभव हो, तो कांतोर ने उसे **गणनीय समुच्चय** माना ।

यह सहज ही सिद्ध किया जा सकता है कि पूर्णांकों के समुच्चय का सम अथवा विषम संख्याओं के समुच्चय के साथ या वर्ग-संख्याओं के समुच्चय के साथ एकैकी संबंध स्थापित किया जा सकता है । यथा —

1	4	9	16	25	36	49	…न^2…	(वर्ग संख्याएं)
↕	↕	↕	↕	↕	↕	↕	↕	
1	2	3	4	5	6	7	…न…	(पूर्णांक)
↕	↕	↕	↕	↕	↕	↕	↕	
2	4	6	8	10	12	14	…2न…	(सम संख्याएं)

ऊपर पूर्णांकों के समुच्चय (बीच में) का वर्ग-संख्याओं के समुच्चय (ऊपर) तथा सम-संख्याओं के समुच्चय (नीचे) के साथ एकैकी संबंध स्थापित किया गया है । मगर हम जानते हैं कि वर्ग-संख्याएं और सम या विषम संख्याएं पूर्णांकों के समुच्चय का ही एक हिस्सा हैं । अन्य शब्दों में, सिद्ध किया गया है कि **संपूर्ण इसके एक हिस्से के बराबर है ।**

यह बात हमारे सामान्य अनुभव के विपरीत है । परिमित (फाइनाइट) समुच्चयों में संपूर्ण उसके एक हिस्से के बराबर नहीं होता । मगर, जैसा कि हमने देखा है, अनंत समुच्चयों में संपूर्ण उसके एक हिस्से के बराबर होता है । इसी विशेषता को आधार मानकर कांतोर ने अनंत की नई परिभाषा प्रस्तुत की : **कोई समुच्चय तभी, और केवल तभी, अनंत होता है जब वह अपने ही किसी उप-समुच्चय के तुल्य या बराबर होता है ।**

यह पहले से ही ज्ञात था कि पूर्णांकों के समुच्चय का वर्ग-संख्याओं या सम-संख्याओं के समुच्चय के साथ एकैकी संबंध स्थापित किया जा सकता है, भले ही इस प्रकार के संबंध को स्वीकार न किया गया हो । कांतोर ने 1874 ई. के अपने शोध-निबंध में पहली बार सिद्ध किया कि पूर्णांकों के समुच्चय का परिमेय संख्याओं और बीजीय संख्याओं के समुच्चय के साथ एकैकी संबंध स्थापित किया जा सकता है, मगर एक रेखाखंड के समस्त बिंदुओं (सांतत्यक) या वास्तविक संख्याओं के समुच्चय के साथ पूर्णांकों का एकैकी संबंध स्थापित करना संभव नहीं है ।[5] इससे कांतोर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि परिमेय संख्याओं (बीजीय संख्याओं) का समुच्चय तो एक **गणनीय अनंत** समुच्चय है, मगर वास्तविक संख्याओं का या एक सतत रेखाखंड के समस्त बिंदुओं का समुच्चय गणनीय नहीं है ।

यह एक नई खोज थी, एक क्रांतिकारी खोज थी । कांतोर ने एक नए किस्म के अनंत की खोज की थी । उन्होंने पहचाना कि पूर्णांकों, परिमेय संख्याओं या बीजीय संख्याओं के अनंत समुच्चय एक ही कोटि के हैं, मगर वास्तविक संख्याओं का अनंत समुच्चय या एक सतत रेखाखंड में मौजूद अनंत बिंदुओं का समुच्चय नितांत भिन्न कोटि का है ।

इस तरह, कांतोर ने पहली बार दो किस्म या कोटि के अनंतों का अस्तित्व सिद्ध किया । एक, पूर्णांकों के समुच्चय का अनंत । दूसरे, वास्तविक संख्याओं या सतत रेखाखंड के बिंदुओं (सांतत्यक) का समुच्चय । कांतोर ने पहले किस्म के अनंत को हिब्रू वर्णमाला के प्रथम अक्षर $\aleph$ (आलेफ्) से व्यक्त किया । क्योंकि उन्होंने अनंतों की एक शृंखला खोजी, इसलिए प्रथम किस्म के इस अनंत के लिए उन्होंने आलेफ् के साथ पादचिह्न के रूप में शून्य जोड़ दिया, जिसे आलेफ्-नल($\aleph_0$)पढ़ा जाता है । 'नल' अर्थात् 'शून्य' ।

दूसरे किस्म के अनंत को उन्होंने C अक्षर से व्यक्त किया, जो **कंट्यून्यूअम** (सांतत्यक) शब्द का आरंभिक अक्षर है। कांतोर ने सिद्ध किया कि 0 और 1 के बीच अनंत वास्तविक संख्याएं हैं या एक छोटे-से-छोटे रेखाखंड में अनंत बिंदु हैं, और यह अनंत प्राकृतिक संख्याओं के अनंत समुच्चय से कहीं बड़ा है! फिर 1877 ई. में कांतोर ने यह भी प्रमाणित किया कि एक छोटे-से-छोटे रेखाखंड के बिंदुओं का समतल के किसी आयत के समस्त बिंदुओं के साथ या किसी घनाकृति के समस्त बिंदुओं के साथ एकैकी संबंध स्थापित किया जा सकता है। यहां तक कि, किसी भी विमिति वाले दिक् (स्पेस) के समस्त बिंदुओं का एक छोटे-से रेखाखंड के बिंदुओं के साथ एकैकी संबंध स्थापित किया जा सकता है।
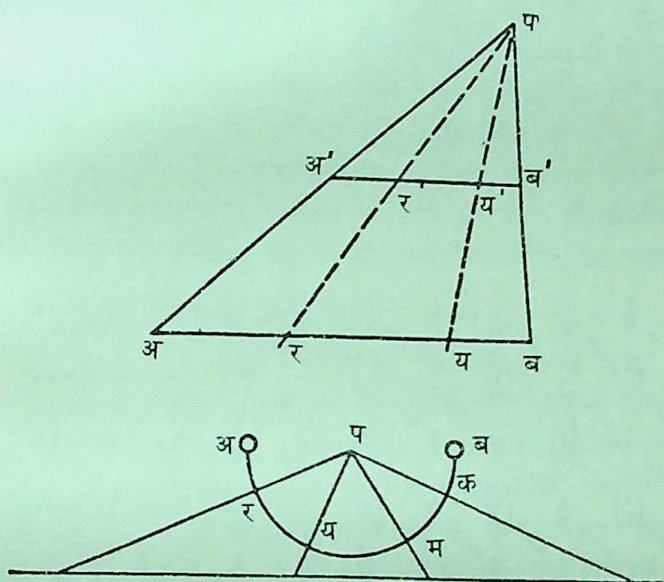
ऊपर की आकृति से स्पष्ट होता है कि छोटे रेखाखंड अ' ब' में उतने ही बिंदु हैं जितने कि बड़े रेखाखंड अ ब में हैं। क्योंकि अ' ब' रेखा के य', र' - जैसे बिंदुओं के लिए रेखा अ ब पर य, र - जैसे बिंदु मिल जाते हैं। जैसा कि दर्शाया गया है, प से रेखाएं खींचते जाकर दोनों रेखाओं के बिंदुओं के साथ हम एकैकी संबंध स्थापित करते जा सकते हैं।

इसी प्रकार, नीचे की आकृति प्रमाणित करती है कि एक अर्धवृत्त (अ और ब बिंदुओं को छोड़कर) में उतने ही बिंदु होते हैं जितने कि एक अनंत लंबाई की रेखा में हो सकते हैं।

यह एक चमत्कारिक परिणाम था। कौन सहसा यकीन करेगा कि समूचे ब्रह्मांड में उतने ही बिंदु हैं जितने कि एक छोटे-से रेखाखंड में हो सकते हैं?

आरंभ में कांतोर भी अपनी इस खोज को देखकर चकित रह गए थे । उन्होंने डेडेकिंड को लिखा : "मैं परिणाम को प्रत्यक्ष देख रहा हूं, मगर यकीन नहीं कर पा रहा हूं ।"

कांतोर ने अपनी इस खोज के बारे में 1877 ई. में एक शोध-निबंध तैयार किया और उसे **क्रेल्ले के जर्नल** में प्रकाशनार्थ भेज दिया । उस समय क्रोनेखेर इस प्रसिद्ध पत्रिका के एक संपादक थे । क्रोनेखेर उस पत्रिका में किसी भी लेख का प्रकाशन रोकने की स्थिति में थे । जब छह महीने तक कांतोर का निबंध प्रकाशित नहीं हुआ, तो वह बेचैन हो उठे । उन्हें लगा कि क्रोनेखेर ही इसके लिए जिम्मेवार हैं । डेडेकिंड ने उन्हें समझाया । अंततः 1878 ई. के खंड में कांतोर का वह शोध-निबंध प्रकाशित हुआ । मगर उस घटना के बाद कांतोर ने **क्रेल्ले के जर्नल** को कोई शोध-निबंध नहीं भेजा ।

कांतोर और क्रोनेखेर के संबंध व्यक्तिगत शत्रुता के स्तर पर पहुंच गए । मगर इस शत्रुता का बुनियादी कारण था गणित की आधारशिला के बारे में दोनों के भिन्न-भिन्न मत । क्रोनेखेर की प्रसिद्ध उक्ति है : "पूर्णांकों का सृजन ईश्वर ने किया है; बाकी सब आदमी ने खोजा है ।" क्रोनेखेर का मत था कि समूचे गणित का निर्माण पूर्णांकों से और इन पर आधारित परिमित अंकगणित

$\frac{1}{1}$	$\frac{1}{2}$	$\frac{1}{3}$	$\frac{1}{4}$	$\frac{1}{5}$	$\frac{1}{6}$	$\frac{1}{7}$	$\frac{1}{8}$	....
$\frac{2}{1}$	$\left(\frac{2}{2}\right)$	$\frac{2}{3}$	$\left(\frac{2}{4}\right)$	$\frac{2}{5}$	$\left(\frac{2}{6}\right)$	$\frac{2}{7}$	$\left(\frac{2}{8}\right)$	....
$\frac{3}{1}$	$\frac{3}{2}$	$\left(\frac{3}{3}\right)$	$\frac{3}{4}$	$\frac{3}{5}$	$\left(\frac{3}{6}\right)$	$\frac{3}{7}$	$\frac{3}{8}$	....
$\frac{4}{1}$	$\left(\frac{4}{2}\right)$	$\frac{4}{3}$	$\left(\frac{4}{4}\right)$	$\frac{4}{5}$	$\left(\frac{4}{6}\right)$	$\frac{4}{7}$	$\left(\frac{4}{8}\right)$	....
$\frac{5}{1}$	$\frac{5}{2}$	$\frac{5}{3}$	$\frac{5}{4}$	$\left(\frac{5}{5}\right)$	$\frac{5}{6}$	$\frac{5}{7}$	$\frac{5}{8}$	....
$\frac{6}{1}$	$\left(\frac{6}{2}\right)$	$\left(\frac{6}{3}\right)$	$\left(\frac{6}{4}\right)$	$\frac{6}{5}$	$\left(\frac{6}{6}\right)$	$\frac{6}{7}$	$\left(\frac{6}{8}\right)$	....
$\frac{7}{1}$	$\frac{7}{2}$	$\frac{7}{3}$	$\frac{7}{4}$	$\frac{7}{5}$	$\frac{7}{6}$	$\left(\frac{7}{7}\right)$	$\frac{7}{8}$	....
$\frac{8}{1}$	$\left(\frac{8}{2}\right)$	$\frac{8}{3}$	$\left(\frac{8}{4}\right)$	$\frac{8}{5}$	$\left(\frac{8}{6}\right)$	$\frac{8}{7}$	$\left(\frac{8}{8}\right)$	....
⋮	⋮	⋮	⋮	⋮	⋮	⋮	⋮	
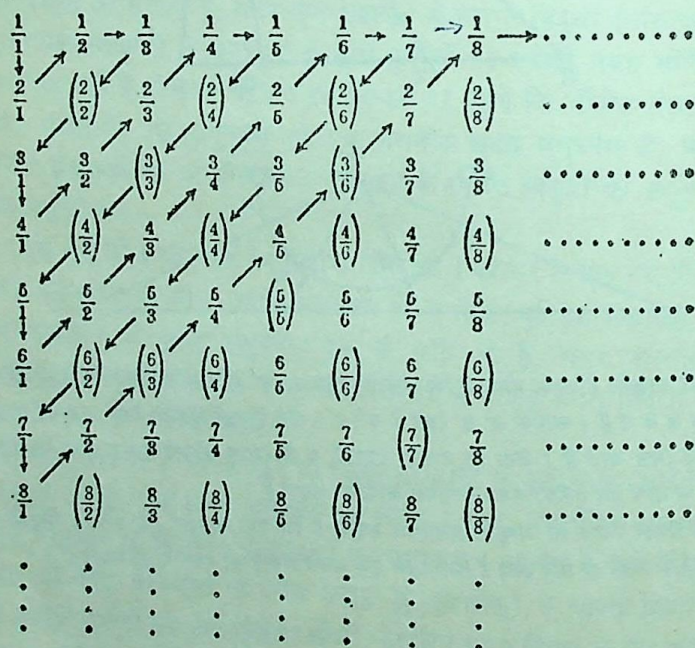
कांतोर का परिमेय संख्याओं का जाल

से होना चाहिए । क्रोनेखेर और कांतोर में, गुरु-शिष्य होने पर भी, टकराव होना स्वाभाविक था । कांतोर को इसके बड़े घातक परिणाम भुगतने पड़े ।

आरंभ में हमने बताया है कि किस प्रकार पूर्णांकों के समुच्चय का वर्ग-संख्याओं या सम-संख्याओं के साथ एकैकी संबंध स्थापित किया जा सकता है । इसी प्रकार, पूर्णांकों के समुच्चय का परिमेय (भिन्न) संख्याओं के समुच्चय के साथ एकैकी संबंध स्थापित किया जा सकता है । कांतोर ने इसके लिए एक विशिष्ट तरीका खोज निकाला । उन्होंने परिमेय संख्याओं को उस प्रकार से रखा, जैसाकि पिछले पृष्ठ पर दर्शाया गया है ।

इस व्यवस्था में कुछ परिमेय संख्याओं की पुनरावृत्ति अवश्य होती है, मगर कोई परिमेय संख्या छूटती नहीं । तब तीरों के क्रम में आगे बढ़ते हुए पूर्णांकों के समुच्चय का और परिमेय संख्याओं के समुच्चय का एकैकी संबंध स्थापित किया जा सकता है । यथा —

$$\begin{array}{cccccccccc} 1 & 2 & 3 & 4 & 5 & 6 & 7 & 8 & 9 & \cdots \\ \updownarrow & \updownarrow & \updownarrow & \updownarrow & \updownarrow & \updownarrow & \updownarrow & \updownarrow & \updownarrow & \cdots \\ \frac{1}{1} & \frac{2}{1} & \frac{1}{2} & \frac{1}{3} & \frac{2}{2} & \frac{3}{1} & \frac{4}{1} & \frac{3}{2} & \frac{2}{3} & \cdots \end{array}$$

इस व्यवस्था की महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें कोई भी परिमेय संख्या छूटती नहीं । इसी तरह, कांतोर ने सिद्ध किया कि बीजीय संख्याओं के समुच्चय का पूर्णांकों के समुच्चय के साथ एकैकी संबंध स्थापित किया जा सकता है । मगर यहां, विषय की थोड़ी कठिनाई के कारण, न तो हम बीजीय संख्याओं की विस्तृत व्याख्या कर पाएंगे, न ही यह बता पाएंगे कि कांतोर ने पूर्णांकों के साथ इनका एकैकी संबंध कैसे स्थापित किया । यहां इतना ही जानना पर्याप्त होगा कि परिमेय संख्याओं के समुच्चय से बीजीय संख्याओं का समुच्चय बड़ा होने पर भी पूर्णांकों के साथ इसका एकैकी संबंध संभव है ।

परंतु कांतोर की क्रांतिकारी खोज यह प्रमाणित करना था कि वास्तविक संख्याओं का अनंत समुच्चय पूर्णांकों के अनंत समुच्चय से बड़ा है । अन्य शब्दों में, वास्तविक संख्याओं का समुच्चय अथवा किसी भी रेखाखंड के समस्त बिंदुओं का समुच्चय एक उच्चतर कोटि के अनंत का द्योतक है । इसे सिद्ध करने के लिए कांतोर ने जो व्यवस्था प्रस्तुत की है वह बड़ी अनोखी है, मगर उसे भी हम

यहां प्रस्तुत नहीं कर पाएंगे । जैसा कि हम बता चुके हैं, कांतोर ने इस उच्चतर कोटि के अनंत को C (कंट्यून्यूअम) से व्यक्त किया ।

परिमित समुच्चयों के अंकगणित में संपूर्ण इसके एक हिस्से के बराबर नहीं होता । मगर हमने देखा है और कांतोर ने परिभाषा भी दी है — कोई समुच्चय केवल तभी अनंत कहलाता है जब उसी का कोई उप-समुच्चय उसके बराबर होता है । इस परिभाषा के आधार पर कांतोर ने अनंतों के एक नए अंकगणित को जन्म दिया । पहले $\aleph_0$ (आलेफ्-नल) को लीजिए :

$\aleph_0 + न = \aleph_0$, जहां **न** कोई भी परिमित संख्या है ।

$$\aleph_0 + \aleph_0 = \aleph_0$$
$$न \times \aleph_0 = \aleph_0$$
$$\aleph_0 \times \aleph_0 = \aleph_0$$
$$(\aleph_0)^{न} = \aleph_0$$

मगर $(\aleph_0)^{\aleph_0}$ एक नए किस्म के अनंत को जन्म देता है ।

अब वास्तविक संख्याओं के अनंत समुच्चय को दर्शाने वाले C पर विचार कीजिए । इस C का अंकगणित भी $\aleph_0$ की तरह ही है । देखिए —

$$C + \aleph_0 = C \qquad C - \aleph_0 = C$$
$$C \times \aleph_0 = C \qquad C \times C = C$$

मगर जिस तरह $(\aleph_0)^{\aleph_0}$ एक नए किस्म के अनंत का सृजन करता है, उसी तरह C^C भी एक नए किस्म या कोटि के अनंत को जन्म देता है ।

इस प्रकार, कांतोर ने अनंतों की एक श्रेणी को जन्म दिया । स्पष्ट हुआ कि अनंत केवल एक प्रकार का नहीं है, बल्कि अनगिनत प्रकार का है । कांतोर ने यह भी स्पष्ट किया कि एक किस्म के अनंत से दूसरे किस्म के अनंत तक किस प्रकार पहुंचा जा सकता है । उनके द्वारा प्रस्तुत अनंतों का क्रम होगा —

$$\aleph_0, \aleph_1, \aleph_2, \aleph_2 \cdots \aleph_{100} \cdots$$

यहां $\aleph_0$ पूर्णांकों के अनंत समुच्चय का द्योतक है । वास्तविक संख्याओं के अनंत समुच्चय को कांतोर ने C अक्षर से व्यक्त किया था । अब सवाल है : क्या $\aleph_1 = C$ है ?

यह सवाल कांतोर के सामने भी पैदा हुआ था । क्या $\aleph_0$ और C के बीच में कोई अन्य अनंत समुच्चय हो सकता है ? कांतोर ने इस सवाल पर खूब सोचा, मगर उन्हें ऐसा कोई अनंत समुच्चय नहीं मिला । अंततः वे इस परिणाम या अनुमान पर पहुंचे कि $C = \aleph_1$ । कांतोर का यह अनुमान **सांतत्यक अनुमान** (कंट्यून्यूअम हाइपोथेसिस) के नाम से जाना जाता है ।

जर्मन गणितज्ञ **डेविड हिल्बर्ट** (1862-1943 ई.) ने 1900 ई. में गणित के कुछ प्रमुख अनुत्तरित सवालों की एक सूची प्रस्तुत की थी । इस सूची में उन्होंने

कांतोर के सांतत्यक अनुमान को प्रथम स्थान में रखा था।

इस समस्या का समाधान अंततः 1963 ई. में प्राप्त हुआ। इस समाधान का विवेचन हम यहां नहीं कर पाएंगे। इतना बता देना पर्याप्त होगा कि इस समाधान के लिए कांतोर द्वारा दी गई अनंत की परिभाषा को ही बदलना पड़ा। जिस प्रकार, यूक्लिड की ज्यामिति के समांतर रेखाओं से संबंधित पांचवें अभिगृहीत को बदलकर या उसे अस्वीकार करके नए प्रकार की अ-यूक्लिडीय ज्यामितियों को जन्म दिया गया, उसी प्रकार कांतोर की अनंत की परिभाषा को बदलकर **अ-कांतोरी समुच्चय सिद्धांत** का सृजन करना संभव हुआ है।

बर्ट्राण्ड रसेल (1872-1970 ई.)

अनंत से संबंधित पहेलियां मानव मस्तिष्क को प्राचीन काल से ही चकित करती रही हैं। कांतोर द्वारा प्रतिपादित अनंत समुच्चयों के सिद्धांत में भी कई पहेलियां प्रकट हुईं। इतालवी गणितज्ञ **बुराली-फोर्ती** (1861-1931 ई.) और आंग्ल गणितज्ञ **बर्ट्राण्ड रसेल** (1872-1970 ई.) ने कांतोर के समुच्चय सिद्धांत में विरोधाभास खोजे।

स्वयं कांतोर के समय में चोटी के कई गणितज्ञों ने उनके समुच्चय सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया। क्रोनेखेर ने कांतोर का हर प्रकार से विरोध किया। हेनरी प्वाँकारे (1854-1912 ई.) ने भी कांतोर के सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया।

मगर आज, कतिपय विरोधाभासों के बावजूद, कांतोर का समुच्चय सिद्धांत प्रायः समूचे आधुनिक गणित के लिए आधारस्तंभ बन गया है।

कांतोर ने 'सांतत्यक अनुमान' के बारे में दीर्घकाल तक गहन चिंतन किया था। इससे उनके मानसिक संतुलन को बड़ा आघात पहुंचा। क्रोनेखेर के विरोध के कारण वे पहले ही काफी संतुलन खो चुके थे। 1884 ई. में उन्हें पहली बार पागलपन का दौरा पड़ा। उसके बाद पागलपन के दौरों का सिलसिला जारी रहा।

फिर कांतोर की गणित के अन्वेषण में कोई दिलचस्पी नहीं रही। उन्होंने आंग्ल इतिहास और अंग्रेजी साहित्य का गहन अध्ययन आरंभ कर दिया।

कांतोर ने 1899 ई. में हाल्ले विश्वविद्यालय में अपना पद त्याग दिया। उनके पागलपन के दौरे तीव्रतर होते गए। उन्हें 1899, 1902 और 1903 ई. में मानसिक चिकित्सालय में रखा गया। हालत बिगड़ती ही गई। अंत में

हृदय-गति रुक जाने से मानसिक चिकित्सालय में ही 73 साल की आयु में, 6 जनवरी, 1918 को ग्यार्ग कांतोर का देहांत हुआ।

कांतोर को पूरा यकीन था कि उनका सिद्धांत एक दिन अवश्य सर्वमान्य होगा। यह सही है कि उनके सिद्धांत ने कई विरोधाभासों को जन्म दिया है और आज भी कई गणितज्ञ समुच्चय सिद्धांत को आधारभूत नहीं मानते। मगर इस सिद्धांत ने समूचे गणित को एक नई शक्ति प्रदान की है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। अब समुच्चय सिद्धांत समूचे गणित में व्याप्त हो गया है।

सहायक ग्रंथ

1. जेम्स आर. न्यूमान — **द वर्ड आफ मैथेमेटिक्स** (चार भाग), न्यूयार्क 1956
2. मॉरिस क्लाइन — **मैथेमेटिकल थॉट फ्राम एंशियंट टु माडर्न टाइम्स**, न्यूयार्क 1972
3. होवार्ड इवेस — **एन इन्ट्रोडक्शन टु द हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स**, न्यूयार्क 1983
4. ई. टी. बेल — **मेन आफ मैथेमेटिक्स** (भाग 2), पेलिकन बुक, लंदन 1953
5. एडवर्ड वी. हंटिंगटन — **द कांटिन्यूअम**, डोवर प्रकाशन, न्यूयार्क 1955
6. बर्ट्राण्ड रसेल — **विज्डम आफ द वेस्ट**, प्रिमियर बुक, लंदन 1964
7. पॉल जे. कोहेन और रेडबेन हेर्श — **नॉन–कांतोरीयन सेट थ्योरी** (लेख), **साइंटिफिक अमेरिकन**, दिसंबर 1969
8. जोसेफ डब्ल्यू. दौबेन — **ग्यार्ग कांतोर एंड द ओरजिन्स आफ ट्रांसफाइनाइट सेट थ्योरी** (लेख), **साइंटिफिक अमेरिकन**, जून 1983
9. ब्रह्मदेव शर्मा — **गणित जगत की सैर**, थामसन प्रेस, नई दिल्ली 1971

संदर्भ और टिप्पणियां

1. जेनो का जन्म दक्षिण इटली के एलिया नगर में 490 ई. पू. के आसपास हुआ था। वह यूनानी दार्शनिक परमिनिदेस के शिष्य थे। परमिनिदेस की तरह जेनो भी आरंभ में पाइथेगोरस के मतानुयायी थे। प्लेटो ने सूचना दी है कि जेनो और परमिनिदेस एथेन्स जाकर सुकरात से मिले थे। बस, जेनो के जीवन के बारे में इससे अधिक जानकारी नहीं मिलती।

   जेनो कोई गणितज्ञ नहीं थे, मगर अपने आचार्य के मत की पुष्टि के लिए और पाइथेगोरवादियों का खंडन करने के लिए जेनो ने जो पहेलियां गढ़ीं, उन्होंने पिछले करीब ढाई हजार साल के गणितीय चिंतन को बड़ा प्रभावित किया है। जेनो की पहेलियां हैं —

   (क) **द्विभाजीकरण (डिकॉटॉमी)**: यदि किसी सीधे रेखाखंड को अनंत टुकड़ों में बांटा जा सकता है, तो गति असंभव है। क्योंकि पूरे रेखाखंड की यात्रा करने के पहले उसके मध्यबिंदु पर पहुंचना होगा; मध्यबिंदु पर पहुंचने के पहले एक-चौथाई दूरी के बिंदु पर पहुंचना होगा; उसके भी पहले

$\frac{1}{8}$ दूरी के बिंदु पर पहुंचना होगा…और यह क्रम अनंत तक जारी रहेगा। इसका यह भी परिणाम निकलता है कि वस्तुतः गति की शुरुआत नहीं होगी।

(ख) **तीर** : यदि काल अखंड अत्यणुओं का समूह है, तो गतिमान तीर हमेशा स्थिर रहेगा, क्योंकि किसी भी क्षण में तीर एक निश्चित स्थान पर रहता है। चूंकि हर क्षण के लिए यही स्थिति रहती है, इसलिए निष्कर्ष निकलता है कि तीर कभी भी गतिमान नहीं होगा।

(ग) **एचिलेस और कछुआ** : सबसे अधिक गतिवाला भी सबसे कम गतिवाले के आगे नहीं बढ़ सकता। क्योंकि तेज गतिवाले को पहले उस स्थान पर पहुंचना होता है जहां से धीमी गतिवाला आरंभ करता है। यह स्थिति सतत बनी रहती है। इसलिए, द्विभाजीकरण (डिकॉटॉमी) के तर्क को लागू करने पर निष्कर्ष निकलता है कि धीमी गतिवाला ही सदैव आगे रहेगा।

2. देखिए 'कार्ल वायरस्ट्रास' लेख की टिप्पणी सं. 4.

3. कानून के एक प्राध्यापक के पुत्र रिचार्ड डेडेकिंड का जन्म ब्रुन्सविक (जर्मनी) में 1831 ई. में हुआ था। कार्ल फ्रेडरिक गौस भी ब्रुन्सविक में ही पैदा हुए थे। डेडेकिंड की पढ़ाई गॉटिंगेन विश्वविद्यालय में हुई। उन्होंने कुछ समय तक गॉटिंगेन और ज़ूरिख में पढ़ाया। उसके बाद वे ब्रुन्सविक के टेकनिकल हाईस्कूल में लंबे समय तक अध्यापक रहे। डेडेकिंड आजन्म अविवाहित रहे और उनकी अविवाहित बहन जूली ने लंबे समय तक उनकी सेवा की। पचासी साल की दीर्घायु में 1916 ई. में डेडेकिंड का देहांत हुआ।

   डेडेकिंड का 1872 ई. में **सातत्य और अपरिमेय संख्याएं** ग्रंथ प्रकाशित हुआ, जिसमें उन्होंने अपरिमेय संख्याओं ($\sqrt{2}, \sqrt{4}, \sqrt{6}, e, \pi$) से संबंधित भ्रांतियों को दूर करके सातत्य के संदर्भ में इनकी स्थिति को सुस्पष्ट किया।

4. लिओपोल्ड क्रोनेखेर का जन्म ब्रेसलाउ के नजदीक के लिग्निट्ज स्थान पर 1823 ई. में हुआ था। ब्रेसलाउ के स्कूल में कुम्मेर (1810-93 ई.) क्रोनेखेर के अध्यापक थे। क्रोनेखेर बर्लिन विश्वविद्यालय में पढ़ने गए, तो वहां याकोबी, स्टाइनेर और डिरिख्ले उनके प्राध्यापक थे। बोन विश्वविद्यालय में पुनः कुम्मेर उनके प्राध्यापक थे।
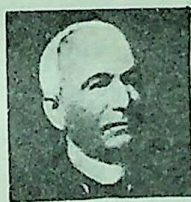
लिओपोल्ड क्रोनेखेर

   पढ़ाई पूरी करने के बाद क्रोनेखेर ने पूरे ग्यारह साल (1844-1855) तक व्यापार का धंधा किया और काफी निजी धन कमाया। उसके बाद वे बर्लिन में स्थायी हो गए और वहां विश्वविद्यालय में गणित पढ़ाने लगे। वहीं पर कांतोर ने गणित की त्रिमूर्ति—कुम्मेर, वायरस्ट्रास और क्रोनेखेर—से गणित की उच्च शिक्षा प्राप्त की थी।

   क्रोनेखेर, पाइथेगोरस की तरह, पूर्णांकों के पुजारी थे। प्लेटो ने कहा था — "ईश्वर एक ज्यामितिज्ञ है।" क्रोनेखेर का कहना था – "ईश्वर एक गणितज्ञ है।" क्रोनेखेर का दृढ़ विश्वास था कि समस्त गणित अंततोगत्वा अंकगणित पर आधारित है। उन्हें अपरिमेय संख्याओं का भी अस्तित्व स्वीकार नहीं था।

   क्रोनेखेर की गवेषणाएं दीर्घवृत्तीय फलन, समीकरण सिद्धांत, संख्या-सिद्धांत आदि से संबंधित हैं। उन्हें संगीत से भी बड़ा प्रेम था।

बर्लिन में 1891 ई. में क्रोनेखेर का देहांत हुआ।

5. वे सभी संख्याएं बीजीय (अल्जेब्राइक नंबर्स) कहलाती हैं जो निम्न प्रकार के सभी बीजीय समीकरणों का हल होती हैं —

$अ_0क्ष^न + अ_1क्ष^{न-1} + \cdots अ_न = 0,$

जहां $अ_0, अ_1 \cdots अ_न$ समीकरण के गुणांक हैं।

दीजीय संख्याओं में $\sqrt{2}$, $\sqrt{3}$, जैसी करणी (सर्ड) संख्याओं के अलावा और भी कुछ विशिष्ट प्रकार की संख्याओं का समावेश होता है।

संक्षेप में, बीजीय संख्याओं का अनंत परिवार इतना बड़ा है कि उसमें पूर्णांक संख्याओं के अनंत परिवार, भिन्न संख्याओं के अनंत परिवार और करणी संख्याओं के अनंत परिवार के अलावा और भी कुछ विशिष्ट प्रकार की संख्याओं का समावेश होता है।

फिर भी, वास्तविक संख्याओं का अनंत समूची बीजीय संख्याओं से बड़ा है। अन्य शब्दों में, एक रेखाखंड में विद्यमान सभी बिंदुओं का अनंत समुच्चय बीजीय संख्याओं के समुच्चय से भी बड़ा है।

डेविड हिल्बर्ट

सन् 1900 ई. का साल। उन्नीसवीं सदी का अवसान और बीसवीं सदी का उद्‌घाटन होने जा रहा था। उसी साल अगस्त में गणित की दूसरी अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस का पेरिस में आयोजन हो रहा था। कांग्रेस ने गॉटिंगेन (जर्मनी) के एक गणितज्ञ को विशेष रूप से आमंत्रित किया था। उन्हें गणितज्ञों की उस अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस में एक विशिष्ट भाषण प्रस्तुत करना था।

गॉटिंगेन के वह गणितज्ञ भाषण के विषय के बारे में कई महीनों तक सोचते रहे। अंततः कांग्रेस के केवल एक महीना पहले ही वे विषय के बारे में निर्णय करके अपना भाषण तैयार कर पाए।

जब नए साल या नए दशक या नई सदी का आरंभ होने को होता है, तो हम बीती कालावधि के कार्यों पर पुनर्विचार करते हैं, उपलब्धियों की समीक्षा करते हैं, और आगामी कालखंड में किए जाने वाले कार्यों की एक योजना तैयार करते हैं।

गॉटिंगेन के उस गणितज्ञ ने अपने भाषण में गणित के मामले में ठीक यही किया। उन्होंने उन्नीसवीं सदी की गणितीय गवेषणा की प्रमुख धाराओं का विवेचन प्रस्तुत किया और बीसवीं सदी में करणीय गणित-कार्य की रूपरेखा भी पेश कर दी। इतना ही नहीं, बीसवीं सदी के गणितज्ञों द्वारा हल किए जाने के लिए उन्होंने अपने भाषण में गणित के 23 महत्वपूर्ण सवाल भी प्रस्तुत किए।

बुधवार, 8 अगस्त, 1900 ई. की सुबह सोरबोन (पेरिस) विश्वविद्यालय के एक कक्ष में दुनियाभर के चोटी के करीब 250 गणितज्ञ एकत्र हुए—गॉटिंगेन के उस जर्मन गणितज्ञ का भाषण सुनने के लिए।

मंच पर उपस्थित हुए व्यक्ति की उम्र चालीस साल से कुछ कम ही थी। कद सामान्य, शरीर भी सामान्य। ऊंचा भाल, अधिकांश सिर गंजा। आंखों पर चश्मा। छोटी दाढ़ी और कुछ-कुछ नोंकदार मूंछ। चश्मे के भीतर चमकीली नीली आंखें। कुल मिलाकर एक प्रतिभाशाली व प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व।

वक्ता ने जर्मन भाषा में धीरे-धीरे और बड़ी सावधानी से अपना भाषण आरंभ किया। भाषणकर्ता थे, गॉटिंगेन विश्वविद्यालय में गणित के प्राध्यापक **डेविड हिल्बर्ट**।
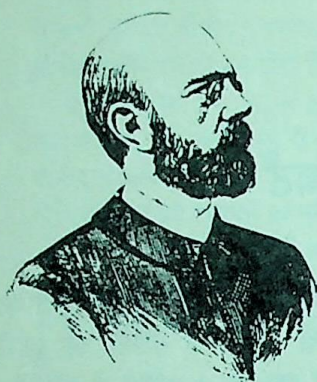
डेविड हिल्बर्ट (1862-1943 ई.)

उन्नीसवीं सदी के अंतिम दौर में बहुत-से पंडित यह कहने लगे थे कि जो कुछ खोजना था वह सारा आदमी ने खोज लिया है । यूरोप में बहुतों के मुंह से यह सुनने को मिलने लगा—**इग्नोरामुस् एत् इग्नोराबिमुस्**—हम अज्ञानी हैं और अज्ञानी ही बने रहेंगे ।

हिल्बर्ट इस मान्यता के विरोधी थे । उन्होंने अपने भाषण में प्रतिपादित किया कि हर सवाल का एक निर्णायक हल प्राप्त करना संभव है । उन्होंने बलपूर्वक कहा : "यह विश्वास कि गणित का हर सवाल हल हो सकता है, अनुसंधानकर्ता के लिए प्रेरणा का एक महान स्रोत है । हमारे भीतर निरंतर एक आवाज उठती रहती है : यह सवाल है । खोजो इसका हल । यह हल तुम विशुद्ध चिंतन से प्राप्त कर सकते हो, क्योंकि गणित में ऐसी कोई चीज नहीं जो हमेशा अज्ञेय बनी रहे ।"

उसके बाद हिल्बर्ट ने 20वीं सदी के गणितज्ञों द्वारा हल किए जाने के लिए 23 महत्वपूर्ण सवाल प्रस्तुत किए । वस्तुतः उस दिन हिल्बर्ट ने अपने लिखित भाषण के 23 सवालों में से केवल 10 ही प्रस्तुत किए थे । मगर बाद में वे सारे सवाल पूरी सूची में उनकी क्रमसंख्या से ही पहचाने जाने लगे ।

हिल्बर्ट ने 23 सवालों की अपनी सूची में पहला स्थान कांतोर के **सांतत्यक अनुमान** (कंट्यून्यूअम हाइपोथेसिस) को दिया । इसकी चर्चा हम पिछले लेख में कर चुके हैं । सवाल है—क्या प्राकृतिक संख्याओं के अनंत समुच्चय और वास्तविक संख्याओं के अनंत समुच्चय के बीच में कोई अन्य अनंत समुच्चय है? इस समस्या का समाधान अंततः 1963 ई. में प्राप्त हुआ ।[1]

हिल्बर्ट ने गणितीय विषयों की आधारशिला से संबंधित सवालों को सर्वाधिक महत्व दिया था । प्रत्येक विषय के लिए स्वयंसिद्ध अभिगृहीत (एक्सियम्स) निर्धारित करके उनके बीच संगति या अविरोध की स्थापना को प्रमाणित करना वे अत्यावश्यक समझते थे । ज्यामिति के लिए उन्होंने ऐसा सफल प्रयास भी किया था और इस विषय पर 1899 ई. में उनकी एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी— **ग्रुन्टलागेन डेर ग्यॉमिट्री** (ज्यामिति के आधारतत्व) ।

मान लिया गया था कि अंकगणित के लिए स्वीकार किए गए अभिगृहीतों में कोई असंगति या विरोध विद्यमान नहीं है । मगर हिल्बर्ट ने अपने दूसरे सवाल में कहा कि अंकगणितीय अभिगृहीतों की संगति की फिर से जांच होनी चाहिए ।

अपने छठे सवाल में हिल्बर्ट ने कहा कि भौतिक विज्ञान के जिन विषयों में गणित का व्यापक इस्तेमाल होता है उन्हें भी अभिगृहीतों की आधारशिला पर खड़ा करना आवश्यक है ।

आधारतत्वों से संबंधित सवालों के बाद हिल्बर्ट ने अंकगणित और बीजगणित के क्षेत्र के कुछ विशिष्ट सवालों को लिया । सातवां सवाल कुछ संख्याओं की अपरिमेयता या अबीजीयता प्रमाणित करने के बारे में था । आठवां सवाल रीमान की परिकल्पना (जीटा-फलन के मूलों) को प्रमाणित करने के बारे में था । सूची के अंतिम कुछ सवाल फलन सिद्धांत के क्षेत्र के थे ।

हिल्बर्ट के भाषण ने गणित के क्षेत्र में आशावाद की एक जबरदस्त लहर पैदा कर दी । हिल्बर्ट द्वारा प्रस्तुत सवाल बीसवीं सदी के गणितज्ञों के लिए चुनौती बन गए । इनमें से कई सवालों के हल मिल गए हैं और कई सवालों के पूर्ण हल प्राप्त करना अभी बाकी है । हिल्बर्ट के ही एक शिष्य मैक्स डेहन (1878-1925 ई.) ने एक साल के भीतर तीसरे सवाल का समाधान खोज लिया (एक सम-चतुष्फलक को काटकर उसे उतने ही आयतन के एक घन में पुनर्स्थापित करना संभव नहीं है) ।[2] मैक्स डेहन ने उन गणितज्ञों के 'गौरवशाली वर्ग' में प्रथम स्थान प्राप्त किया जिन्होंने बाद में हिल्बर्ट के सवालों को हल करने में योग दिया ।

डेविड हिल्बर्ट ने बीसवीं सदी में गणित के विकास के बारे में एक सपना देखा था, एक योजना बनाई थी । न केवल उनका सपना साकार हुआ, बल्कि गणित का इतना अधिक विकास हुआ कि हिल्बर्ट भी 1900 ई. में उसकी कल्पना नहीं कर सकते थे ।[3]

हिल्बर्ट 1900 ई. तक गणित के विविध क्षेत्रों में महत्वपूर्ण खोजकार्य कर चुके थे । 1900 ई. के बाद उन्होंने गणित के विभिन्न विषयों के लिए ठोस आधारतत्व प्रस्तुत करने का काम किया । 1943 ई. में उनका देहांत हुआ, तो तब तक आधुनिक गणित के अनेक विषयों के साथ उनका नाम अभिन्न रूप से जुड़ गया था : जैसे, **हिल्बर्ट समष्टि (दिक्), हिल्बर्ट असमिका, हिल्बर्ट का आधार प्रमेय, हिल्बर्ट-योसिदा प्रमेय, हिल्बर्ट निश्चर समाकल, हिल्बर्ट अभिगृहीत, हिल्बर्ट विमा, हिल्बर्ट समस्या, हिल्बर्ट उपसमूह**, इत्यादि ।

हिल्बर्ट के अनुसंधान-कार्य ने बीसवीं सदी के गणित के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया । उनकी मृत्यु के समय तक उनके विद्यार्थी, और विद्यार्थियों के विद्यार्थी, केवल यूरोप के छोटे देशों में ही नहीं बल्कि इंग्लैंड, रूस, जापान, अमरीका आदि अनेक देशों में फैल गए थे । हिल्बर्ट के समय में गॉटिंगेन को 'गणितज्ञों की काशी' समझा जाने लगा था । मगर दुर्भाग्य से हिल्बर्ट को अंततः वे दिन भी देखने पड़े जब हिटलर के शासनकाल में गॉटिंगेन का वैभव समाप्त
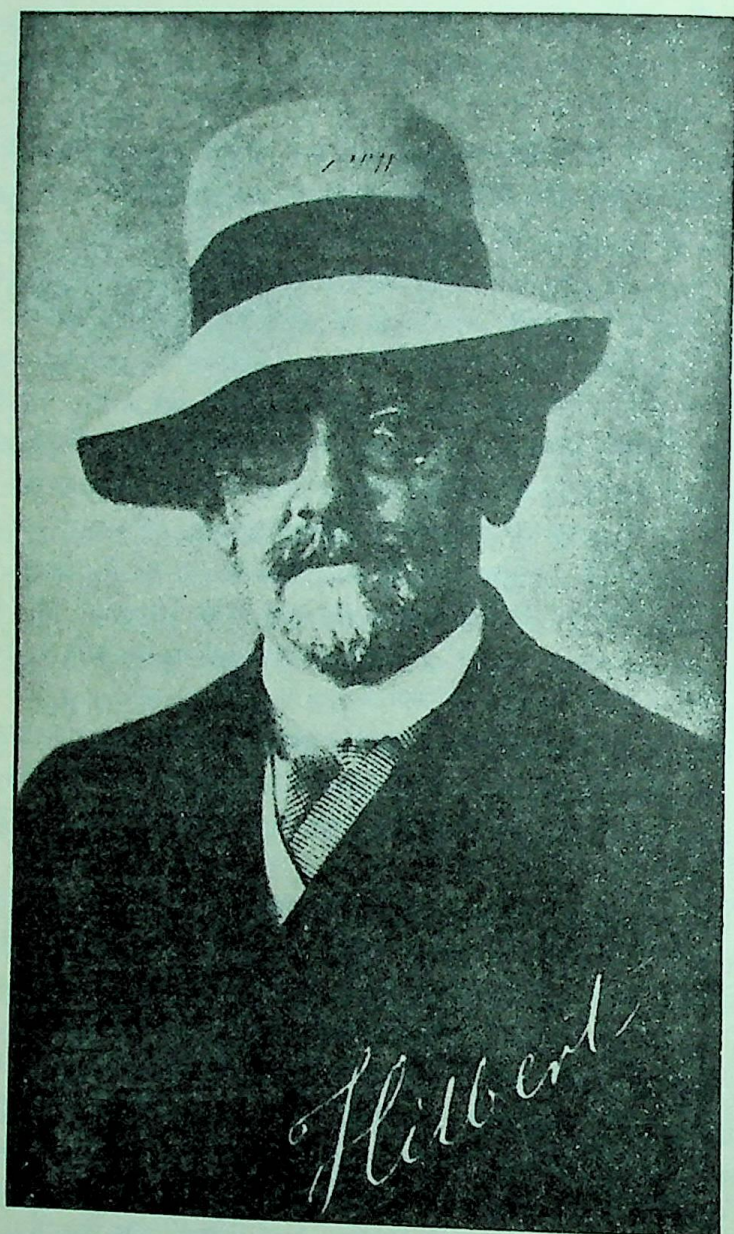
डेविड हिल्बर्ट, जिनका यह हस्ताक्षरित चित्र गॉटिंगेन में
स्मृतिचिह्न के रूप में बेचा-खरीदा जाता था !

हो गया ।

डेविड हिल्बर्ट का जन्म 23 जनवरी, 1862 को तत्कालीन पूर्वी प्रशिया की राजधानी कोनिग्सबर्ग के समीप के वेहलाउ स्थान पर हुआ था । प्रेगेल नदी के मुहाने के पास बसा हुआ कोनिग्सबर्ग नगर अब लिथुआनिया गणतंत्र में है और कालिनिनग्राद के नाम से जाना जाता है । कोनिग्सबर्ग में प्रेगेल पर बने हुए सात पुलों ने गणित की जिस समस्या को जन्म दिया था और जिसका हल **आयलर** (1707-1783 ई.) ने खोजा था वह बाद में जाकर **टॉपोलॉजी** जैसे महत्वपूर्ण विषय के लिए आधार बनी । महान दार्शनिक **इमान्यूअल कांट** (1724-1804 ई.) का सारा जीवन कोनिग्सबर्ग में ही गुजरा ।

जब डेविड का जन्म हुआ तब उसके पिता **ओटो हिल्बर्ट** कोनिग्सबर्ग क्षेत्र में न्यायाधीश थे । मां **मेरिया थेरेसे** की दर्शनशास्त्र, खगोल-विज्ञान और अभाज्य (रूढ़) संख्याओं में गहरी दिलचस्पी थी । डेविड को आकाश के तारामंडलों और अभाज्य संख्याओं की प्रारंभिक जानकारी अपनी मां से ही मिली होगी ।

डेविड अपने माता-पिता के अकेले पुत्र थे । वह जब छह साल के थे, तब उनकी बहन एलिसे का जन्म हुआ । आठ साल के डेविड को पहली बार कोनिग्सबर्ग के एक स्कूल में दाखिल किया गया ।

दस साल की आयु होने पर डेविड हिल्बर्ट कोनिग्सबर्ग के फ्रेडरिकस्कोलेग जिमनेशियम में दाखिल हुए । उसी समय **मिन्कोवस्की** नामक एक रूसी यहूदी परिवार कोनिग्सबर्ग में आकर बसा । थोड़े ही समय में मिन्कोवस्की परिवार के तीन बालकों — मैक्स, ओस्कर और हरमान — ने कोनिग्सबर्ग मे अपनी प्रतिभा की धाक जमा दी । इनमें **हरमान मिन्कोवस्की** (1864-1909 ई.) बाद में जाकर डेविड हिल्बर्ट के गहरे मित्र और एक अत्यंत प्रतिभाशाली गणितज्ञ हुए ।

हरमान मिन्कोवस्की डेविड हिल्बर्ट से दो साल छोटे थे और कोनिग्सबर्ग के आल्टस्टाड्ट जिमनेशियम में अध्ययन कर रहे थे । उन्होंने वहां का आठ साल का कोर्स साढ़े पांच साल में ही पूरा कर लिया और स्थानीय विश्वविद्यालय में दाखिल हो गए । डेविड हिल्बर्ट ने अंतिम वर्ष में विल्हेल्म जिमनेशियम में दाखिला लिया था । वहां की पढ़ाई पूरी करके उन्होंने भी कोनिग्सबर्ग विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया । उस समय हिल्बर्ट 18 साल के थे ।

कोनिग्सबर्ग विश्वविद्यालय की अपनी एक अलग पहचान और वैज्ञानिक परंपरा थी । कांट ने यहां दर्शन व गणित पढ़ाया था । गणितज्ञ **याकोबी** (1804-51 ई.) यहां गणित के प्राध्यापक थे । सर्वप्रथम इसी विश्वविद्यालय ने वायरस्ट्रास को 'डॉक्टर' की मानद उपाधि प्रदान की थी । हिल्बर्ट को विश्वविद्यालय का मुक्त वातावरण बेहद पसंद आया ।

उस समय जर्मनी में परंपरा थी कि विद्यार्थी एक से दूसरे विश्वविद्यालय में जाकर पढ़ाई करते रहते थे । कोनिग्सबर्ग में पहले सेमेस्टर की गणित की पढ़ाई पूरी करने के बाद हिल्बर्ट हाइडेलबर्ग विश्वविद्यालय में चले गए । वहां उन्होंने लाजारुस फुख्स (1833-1902 ई.) के लेक्चर सुने ।

हिल्बर्ट 1882 ई. में कोनिग्सबर्ग लौट आए । हरमान मिन्कोवस्की भी बर्लिन में तीन सेमेस्टरों की पढ़ाई पूरी करके कोनिग्सबर्ग लौट आए थे । उसी दौरान 18 साल के हरमान मिन्कोवस्की और इंग्लैंड के गणितज्ञ हेनरी स्मिथ (1826-1883 ई.) को सम्मिलित रूप से पेरिस अकादमी का गणित का **ग्राँ प्रि** पुरस्कार मिला । उस समय से हिल्बर्ट और मिन्कोवस्की में गहरी मित्रता स्थापित हो गई ।

उस समय कोनिग्सबर्ग विश्वविद्यालय में हेनरिख वेबर (1842-1913 ई.) गणित के प्राध्यापक थे । कुछ समय बाद उनका स्थान गणितज्ञ **फर्डिनांड लिंडेमान** (1852-1939 ई.) ने ले लिया । लिंडेमान ने 1882 ई. में प्रमाणित किया था कि π एक अबीजीय संख्या है और इसलिए 'वृत्त को वर्ग में बदलना' संभव नहीं है । लिंडेमान के प्रयास से ही एक तरुण गणितज्ञ एडोल्फ हुरविट्ज (1859-1919 ई.) कोनिग्सबर्ग में प्राध्यापक बनकर आए । उनसे हिल्बर्ट को बड़ी प्रेरणाएं मिलीं ।

विश्वविद्यालय में आठ सेमेस्टर की पढ़ाई पूरी करने के बाद हिल्बर्ट डाक्टरेट के लिए तैयारी करने में जुट गए । अनुसंधान-कार्य के लिए विषय चुना — बीजीय निश्चरों का सिद्धांत (थ्योरी आफ अल्जेब्राइक इन्वेरियंट्स) । 1885 ई. में हिल्बर्ट को 'डाक्टर' की डिग्री मिली ।

फेलिक्स क्लाइन
(1849-1925 ई.)

उन दिनों जर्मनी के विश्वविद्यालयों में प्रिवातदोजेन्त (निजी अध्यापक) का अवैतनिक पद भी प्राप्त करना काफी कठिन काम था । हुरविट्ज की सलाह पर हिल्बर्ट अध्ययन-यात्रा पर निकल पड़े । सर्वप्रथम वे लाइपजिग गए — **फेलिक्स क्लाइन** (1849-1925 ई.) के लेक्चर सुनने । उन दिनों गणित-जगत में क्लाइन की बड़ी ख्याति थी । केवल 23 साल की आयु में एरलांगेन विश्वविद्यालय में प्राध्यापक नियुक्त होने पर कलाइन ने जो उद्घाटन भाषण दिया था वह गणित के इतिहास में 'एरलांगेन प्रोग्राम' के नाम से मशहूर हो गया है । उस ऐतिहासिक भाषण में क्लाइन ने समूह (ग्रुप) की धारणा

का उपयोग करके तब तक खोजी गई सभी प्रकार की ज्यामितियों को एक सूत्र में बांधने का प्रस्ताव पेश किया था। क्लाइन ने गणित के कई क्षेत्रों में महत्वपूर्ण खोजकार्य किया था। हिल्बर्ट ने लाइपजिग में क्लाइन के लेक्चर सुने और एक सेमीनार में भी भाग लिया। क्लाइन भी हिल्बर्ट की प्रतिभा से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। क्लाइन ने हिल्बर्ट को पेरिस जाकर फ्रांसीसी गणितज्ञों से संपर्क स्थापित करने और वहां हो रहे गणितीय कार्य का अध्ययन करने की सलाह दी।

उसी समय फेलिक्स क्लाइन को गौस, डिरिख्ले और रीमान-जैसे महान गणितज्ञों के विश्वविद्यालय गॉटिंगेन में प्राध्यापक-पद स्वीकार करने का निमंत्रण मिला। क्लाइन ने वह पद स्वीकार कर लिया। हिल्बर्ट पेरिस के लिए रवाना हो गए।

हिल्बर्ट मार्च 1886 में पेरिस पहुंचे। वहां वे कई फ्रांसीसी गणितज्ञों से मिले। वयोवृद्ध गणितज्ञ हर्मिट (1822-1901 ई.) और तरुण गणितज्ञ हेनरी प्वाँकारे (1854-1912 ई.) से मिलकर उन्होंने गणित के कई विषयों पर उनके साथ चर्चा की। हर्मिट ने उन्हें 'गोर्डान समस्या' सुलझाने की सलाह दी।[4] पेरिस के निवासकाल में हिल्बर्ट लगातार पत्र लिखकर क्लाइन को अपने अध्ययन और अनुभव की जानकारी देते रहे।

वापसी यात्रा में हिल्बर्ट गॉटिंगेन में रुके और उन्होंने क्लाइन को अपनी पेरिस-यात्रा का विवरण सुनाया। इस पहली यात्रा में ही गॉटिंगेन ने हिल्बर्ट का मन मोह लिया। हिल्बर्ट बर्लिन में भी रुके, अन्य गणितज्ञों के अलावा वे लिओपोल्ड क्रोनेखेर (1823-1891 ई.) से भी मिले।

कोनिग्सबर्ग लौटने पर हिल्बर्ट अपने विश्वविद्यालय में निजी अध्यापक नियुक्त हुए। उस समय उनका प्रिय विषय था—निश्चर सिद्धांत। हिल्बर्ट अपने भाषणों के लिए हर बार नए-नए विषय चुनते थे। साथ ही, उन्होंने 'गोर्डान समस्या' पर गहन चिंतन आरंभ कर दिया।

इस बीच हरमान मिन्कोवस्की बोन विश्वविद्यालय में प्रिवातदोजेंत नियुक्त हुए। हिल्बर्ट और मिन्कोवस्की का पत्र-व्यवहार जारी रहा। 1888 ई. में हिल्बर्ट पुनः गणितीय यात्रा पर निकले। उन्होंने 21 प्रमुख गणितज्ञों से मिलने की योजना बनाई थी। सर्वप्रथम वे एरलांगेन गए और वहां पॉल गोर्डान (1837-1912 ई.) से मिले। गॉटिंगेन में क्लाइन और हरमान श्वार्ट्ज (1843-1921 ई.) से मिले। बर्लिन में फुख्स, हेल्महोल्ट्ज (1821-1894 ई.), वायरस्ट्रास और क्रोनेखेर से मिले। हिल्बर्ट कोनिग्सबर्ग लौट आए और जोर-शोर से खोजबीन में जुट गए। उन्होंने 'गोर्डान समस्या' का पूर्ण हल खोज लिया। हिल्बर्ट ने और भी कई शोध-निबंध प्रकाशित किए।

आगे के तीन-चार साल हिल्बर्ट के जीवन में बड़ी तेज रफ्तार के रहे। हिल्बर्ट को कोनिग्सबर्ग विश्वविद्यालय में सहायक प्राध्यापक का वैतनिक पद मिला। अक्तूबर 1892 में, तीस साल की आयु में, **कैथे येरोश** नामक तरुणी के साथ

पत्नी कैथे येरोश के साथ – डेविड हिल्बर्ट

हिल्बर्ट का विवाह हुआ। अगले वर्ष उनके पहले पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम रखा गया **फ्रांज**। उसी समय लिंडेमान म्यूनिख चले गए, तो हिल्बर्ट को कोनिग्सबर्ग में प्राध्यापक का पद मिला। हिल्बर्ट का अनुसंधान-कार्य जारी रहा। उस दौरान उन्होंने बीजीय संख्या-क्षेत्रों पर काम किया और जर्मन मैथेमेटिकल सोसायटी के लिए संख्या-सिद्धांत के क्षेत्र की गवेषणाओं को व्यवस्थित और सुदृढ़ आधार प्रदान करने की योजना (**जाह्रेस्बेरिख़्ट**) में जुट गए—मिन्कोवस्की के साथ मिलकर।

क्लाइन के प्रयास से हिल्बर्ट को गॉटिंगेन विश्वविद्यालय में प्राध्यापक का पद मिला। मार्च 1895 में हिल्बर्ट सपरिवार गॉटिंगेन चले आए और उन्होंने अपना शेष जीवन वहीं बिताया। कुछ समय बाद उन्होंने गॉटिंगेन में अपने लिए एक मकान भी बना लिया। हिल्बर्ट के जीवन का एक नया दौर शुरू हुआ। 'जाह्रेस्बेरिख़्ट' प्रकाशित हुई। मिन्कोवस्की जूरिख में प्राध्यापक नियुक्त हुए।

गॉटिंगेन में तीन साल गुजारने के बाद 1898-99 ई. के शीतकाल में हिल्बर्ट ने ज्यामिति के मूलतत्त्वों पर व्याख्यान देने की घोषणा की। यह एक नई चीज थी। हिल्बर्ट ने अपने व्याख्यानों में ज्यामिति के लिए नए सिरे से ठोस आधारतत्व प्रस्तुत किए और साथ ही एक पुस्तक भी तैयार कर ली—**ज्यामिति के आधारतत्व**। इस पुस्तक ने हिल्बर्ट को गणित-जगत में मशहूर बना दिया। इस पुस्तक का यूरोप की कई भाषाओं में अनुवाद हुआ।

'ज्यामिति के आधारतत्व' के प्रकाशन के बाद हिल्बर्ट 'डिरिख़्ले नियम' को

निखारने में जुट गए । उनके पहले बड़े-बड़े गणितज्ञों ने इस नियम पर काम किया था । हिल्बर्ट ने इस नियम के लिए तार्किक उपपत्ति प्रस्तुत कर दी । उसके बाद 1900 ई. का साल आया । उस साल पेरिस में आयोजित गणितज्ञों की अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस में हिल्बर्ट ने जिन 23 सवालों को प्रस्तुत किया, उनकी चर्चा हम पहले कर ही चुके हैं ।

नई शताब्दी की शुरुआत के साथ गॉटिंगेन में भी एक नए माहौल की शुरुआत हुई । 1902 ई. में हरमान मिन्कोवस्की गॉटिंगेन में प्राध्यापक बनकर आए तो हिल्बर्ट के जीवन में नया उत्साह पैदा हो गया । दूर-दूर से, अमरीका से भी, प्रतिभाशाली विद्यार्थी गॉटिंगेन पहुंचने लगे । 1903 ई. में अठारह साल के **हरमान वाइल** (1885-1955 ई.) गॉटिंगेन आए । उसी समय **मैक्स बोर्न** (1882-1970 ई.) भी गॉटिंगेन पहुंचे और कुछ समय बाद हिल्बर्ट के सहायक बन गए । फिर जल्दी ही ओटो ब्लूमेन्थाल (1876-1944 ई.) और अर्न्स्ट जेरमेलो (1871-1953 ई.) गॉटिंगेन में प्रिवातदोजेन्त नियुक्त हुए । उन दिनों हिल्बर्ट **अनंत चरों के सिद्धांत** पर काम कर रहे थे । बाद में उनका यह कार्य हिल्बर्ट समष्टि सिद्धांत के नाम से प्रसिद्ध हुआ । हिल्बर्ट ने 1908 ई. में पुराने **वारिंग अनुमान** (प्रमेय) के लिए उपपत्ति प्रस्तुत की ।[5]

उस समय मिन्कोवस्की विद्युत-गतिकी के क्षेत्र में खोजकार्य कर रहे थे । आइंस्टाइन जूरिख में मिन्कोवस्की के विद्यार्थी रह चुके थे । आइंस्टाइन ने अपने आपेक्षिकता के सिद्धांत की स्थापना में मिन्कोवस्की के गणितीय सिद्धांतों का उपयोग किया है । मिन्कोवस्की ने दिक् और काल को आपस में बांधकर तीन विमाओं वाली ज्यामिति को चार विमाओं वाली भौतिकी में रूपांतरित कर दिया था ।

सन् 1908 में मिन्कोवस्की 44 साल के थे और उनसे अभी बहुत-सी आशाएं थीं, मगर दुर्भाग्य कि वे ज्यादा दिनों तक जीवित नहीं रहे । जनवरी 1909 के एक दिन भोजन के उपरांत मिन्कोवस्की उण्डकपुच्छशोथ (अपेंडिसाइटिस्) के जबरदस्त हमले के शिकार हुए । आपरेशन हुआ, मगर कोई लाभ नहीं हुआ । 12 जनवरी, 1909 को अस्पताल में ही हरमान मिन्कोवस्की का देहांत हुआ । कक्षा में मिन्कोवस्की के देहांत का समाचार सुनाते

हरमान मिन्कोवस्की
(1864-1909 ई.)

समय हिल्बर्ट-जैसे ख्यातनाम प्राध्यापक की आंखों से आंसू टपकते देखना विद्यार्थियों के लिए एक नया अनुभव था। गॉटिंगेन में मिन्कोवस्की के रिक्त स्थान पर 32 साल के **एडमंड लान्दौ** (1877-1938 ई.) की नियुक्ति हुई। लान्दौ संख्या-सिद्धांत के क्षेत्र की अपनी गवेषणाओं के लिए प्रसिद्ध हैं।

पाठक फर्मा (1601-65 ई.) के 'अंतिम प्रमेय' से परिचित होंगे (यदि 'न' का मान 2 से अधिक हो, तो धन पूर्णांकों के लिए $य^न + र^न = ल^न$ संबंध संभव नहीं है)। फर्मा के इस अनुमान की परिपूर्ण उपपत्ति प्रस्तुत करने के लिए जर्मनी के एक गणितज्ञ प्रो. पॉल वोल्फस्केहल (1856-1906 ई.) ने गॉटिंगेन की विज्ञान परिषद के पास 1,00,000 मार्क की पुरस्कार-राशि जमा की थी। उस समय परिषद के अध्यक्ष हिल्बर्ट थे। बाद में मार्क की कीमत बेहद घट जाने के कारण उस पुरस्कार-राशि का कोई मूल्य नहीं रह गया। मगर उस समय उस पुरस्कार-राशि से मिलनेवाले ब्याज का बड़ा सदुपयोग हुआ। ब्याज का उपयोग करके हिल्बर्ट ने चोटी के कुछ गणितज्ञों को व्याख्यान देने के लिए गॉटिंगेन आमंत्रित किया। सन् 1909 में हेनरी प्वाँकारे (1854-1912 ई.) भाषण देने गॉटिंगेन आए।

सन् 1905 में हंगेरी की विज्ञान अकादमी का 10,000 स्वर्ण मुद्राओं का बोल्याई पुरस्कार हेनरी प्वाँकारे को मिला था। सन् 1910 में यही पुरस्कार हिल्बर्ट को मिला। इस बार पुरस्कार कमेटी के सचिव प्वाँकारे थे। हिल्बर्ट की गणितीय उपलब्धियों के बारे में प्वाँकारे ने जो विवरण प्रस्तुत किया था वह 1911 ई. में **आक्टा मैथेमेटिका** पत्रिका में प्रकाशित हुआ। बीसवीं सदी के प्रथम दशक में हिल्बर्ट ने **समाकल समीकरणों** के क्षेत्र में महत्वपूर्ण खोजकार्य किया था और इस विषय पर 1912 ई. में उनका एक ग्रंथ भी प्रकाशित हुआ। वर्तमान सदी के दूसरे दशक में हिल्बर्ट ने भौतिकी के क्षेत्र में अनुसंधान-कार्य किया।

इस दौरान हिल्बर्ट ने फर्मा के प्रमेय को पूर्णतः हल करने के लिए दी गई पुरस्कार-राशि का अच्छा उपयोग किया। उन्होंने हेन्द्रिक आन्तून लोरेन्ट्ज (1853-1928 ई.) और आर्नोल्ड सोमेरफेल्ड (1868-1951 ई.) को व्याख्यान देने के लिए गॉटिंगेन आमंत्रित किया; अर्न्स्ट जेरमेलो (1871-1953 ई.) को पुरस्कार प्रदान किया। जब कुछ व्यक्तियों ने हिल्बर्ट से कहा कि स्वयं आप ही क्यों नहीं फर्मा के अंतिम प्रमेय की उपपत्ति प्रस्तुत करते, तो उनका उत्तर था : ''उस मुर्गी का वध मैं क्यों करूँ जो सोने के अंडे दे रही है ?''

प्रथम महायुद्ध शुरू हुआ, तो जर्मनी के प्रख्यात विद्वानों और वैज्ञानिकों की ओर से कैसर के समर्थन में एक घोषणापत्र जारी किया गया। वाल्थेर नेर्न्स्ट, मैक्स प्लैंक और विल्हेल्म कोनराड रोएंटगेन-जैसे प्रख्यात वैज्ञानिकों ने उस पर हस्ताक्षर किए। मगर आइंस्टाइन और हिल्बर्ट ने हस्ताक्षर नहीं किए।

आइंस्टाइन की तरह हिल्बर्ट को भी युद्ध से घृणा थी ।

जब महायुद्ध आरंभ हुआ, तो हिल्बर्ट के पुत्र फ्रांज 21 साल के थे । फ्रांज जीवन में कुछ भी विशेष नहीं कर पाए थे । उन्हें कोई स्थायी काम भी नहीं मिल पाया । अंत में उनका मानसिक संतुलन भी बिगड़ गया । हिल्बर्ट दम्पति के लिए यह बहुत दुखदायी स्थिति थी, विशेषकर श्रीमती हिल्बर्ट के लिए ।

रिचार्ड कौरांट विद्यार्थी बनकर पहले ही गॉटिंगेन आ चुके थे और हिल्बर्ट के कृपापात्र बन गए थे । प्रथम महायुद्ध के दौरान **एमिली एम्मी नोएथेर** (1882-1935 ई.) गॉटिंगेन आईं । इस प्रतिभाशाली महिला-गणितज्ञ की विस्तृत चर्चा हम आगे के एक स्वतंत्र लेख में करेंगे ।

प्रथम महायुद्ध के बाद तीसरे दशक में (1922 से 1930 ई. तक) हिल्बर्ट ने अपनी शक्ति गणित के लिए ठोस आधारतत्वों का सृजन करने में लगा दी ।

जून 1925 में फेलिक्स क्लाइन का देहांत हुआ ।

उस समय जर्मन प्रोफेसर का 68 साल की आयु होने पर अवकाश ग्रहण करने का नियम था । जनवरी 1930 में हिल्बर्ट 68 साल के हुए । विद्यार्थियों और प्राध्यापकों के एक बड़े समूह ने निश्चरों के बारे में दिया गया हिल्बर्ट का 'विदाई भाषण' सुना । गॉटिंगेन की एक सड़क को 'हिल्बर्ट स्त्रास्से' का नाम दिया गया।

कुर्त गोडेल (1609-1978 ई.)

उसी साल (नवम्बर 1930 में) 25 साल के ऑस्ट्रियाई तर्कविज्ञानी **कुर्त गोडेल** (1609-1978 ई.) का एक क्रांतिकारी शोध-निबंध प्रकाशित हुआ । अत्यंत सरल शब्दों में कहें तो गोडेल ने सुदृढ़ तर्क के आधार पर यह प्रमाणित किया कि, ऐसे भी अनेकानेक कथन हैं जिनकी सत्यता, कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में, प्रमाणित कर पाना कतई संभव नहीं है ।

हिल्बर्ट की मान्यता थी कि किसी भी विषय के लिए सुदृढ़ आधार प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि पहले उसके लिए अभिगृहीतों को निर्धारित करके उनके बीच संगति स्थापित की जाए । स्वयं हिल्बर्ट ने ज्यामिति के लिए ऐसा ही किया था । वे चाहते थे कि अंकगणित के लिए भी ऐसा ही किया जाए । मगर कुर्त गोडेल ने उनके समूचे प्रोग्राम पर पानी फेर दिया । उन्होंने प्रमाणित

किया कि गणित की प्रत्येक तार्किक प्रणाली के अन्तर्गत कुछ ऐसे कथन होते हैं जिन्हें सत्य या असत्य सिद्ध नहीं किया जा सकता।

गोडेल के **अपूर्णता प्रमेय** ने न केवल गणित को, बल्कि समूचे मानव-चिंतन को एक जबरदस्त धक्का पहुंचाया है। फिर भी गोडेल ने स्वीकार किया कि गणित को अभिगृहीतों का आधार प्रदान करने का हिल्बर्ट का कार्यक्रम अत्यंत महत्व का है और जारी रहना चाहिए।

हिल्बर्ट अपने उपपत्ति सिद्धांत **(प्रूफ थ्योरी)** पर कार्य करते रहे। पॉल बेर्नेज (जन्म : 1888) के सहयोग से वे **गणित के आधारतत्व** (ग्रुन्टलागेन डेर मैथेमेटिक) ग्रंथ का सृजन करते रहे। बाद में यह ग्रंथ दो खंडों में प्रकाशित हुआ।
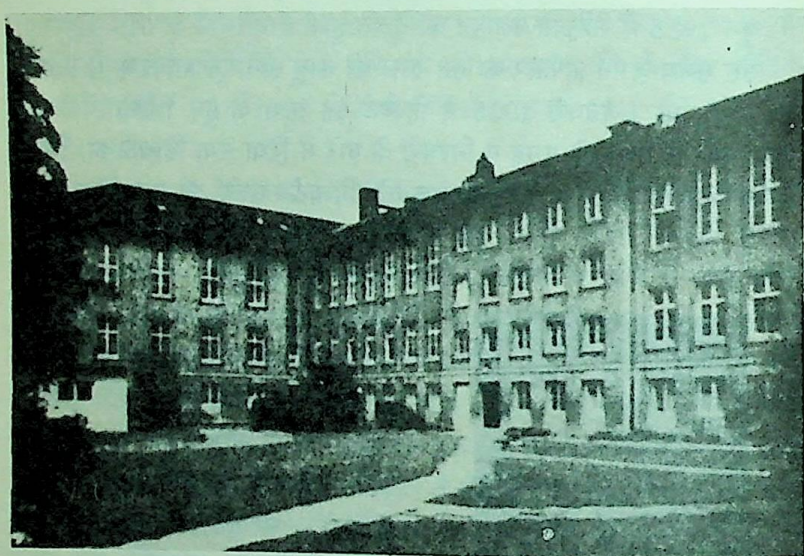
गॉटिंगेन का गणित संस्थान

जर्मनी में हिटलर का शासन शुरू हुआ। उसके साथ ही गॉटिंगेन में गणित के वैभवशाली युग का अवसान हो गया। कौरांट, लान्दौ, एम्मी नोएथेर, मैक्स बोर्न, हरमान वाइल, आदि अनेक वैज्ञानिकों को गॉटिंगेन छोड़ देना पड़ा। गॉटिंगेन में हिल्बर्ट लगभग अकेले रह गए। एक भोज में बगल में बैठे नए नाज़ी शिक्षा-मंत्री ने उनसे पूछा—"अब यहूदी प्रभाव हट गया है, तो गॉटिंगेन के गणित-संस्थान में गणित की स्थिति कैसी है ?" "गॉटिंगेन में गणित ?" हिल्बर्ट ने उत्तर दिया, "अब वहां गणित-जैसी कोई चीज नहीं रह गई है !"

हिल्बर्ट के लिए दूसरे महायुद्ध के दिन बड़े दुखदायी रहे। अंत में 14 फरवरी,

1943 को इस महान गणितज्ञ का गॉटिंगेन में देहांत हुआ । करीब दो साल बाद श्रीमती काथे हिल्बर्ट (1864-1945 ई.) का देहांत हुआ ।

डेविड हिल्बर्ट एक महान आशावादी गणितज्ञ थे । बीसवीं सदी के अधिकतर महान गणितज्ञ हिल्बर्ट के कृतित्व और विचारों से प्रभावित हुए हैं । गॉटिंगेन में हिल्बर्ट की समाधि-शिला पर वाक्य अंकित हैं—

विर मुस्सेन विस्सेन ।
विर वर्देन विस्सेन ।

— हमें अवश्य जानना चाहिए ।
— हम अवश्य जान लेंगे ।

सहायक ग्रंथ

1. कोन्स्टांस रीड — **हिल्बर्ट**, स्प्रिंगेर-वेरलाग, न्यूयार्क 1970
2. डेविड बेरगामिनी — **मैथेमेटिक्स**, टाइम-लाइफ बुक, हांगकांग 1980
3. वी. ए. उस्पेन्सकी — **गोडेल्ज इन्कंप्लीटनेस थ्योरम**, मीर प्रकाशन, मास्को 1989
4. मार्क कास और स्तानिस्लाव एम. उलाम — **मैथेमेटिक्स एंड लॉजिक**, पेंग्विन बुक, लंदन 1968
5. सी. स्टान्ले ओगिल्वी — **टुमारोज मैथ**, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क 1962
6. होवार्ड इवेस — **एन इन्ट्रोडक्शन टु द हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स**, न्यूयार्क 1983
7. एस. कोर्नेर — **द फिलासफी आफ मैथेमेटिक्स**, लंदन 1960
8. मॉरिस क्लाइन — **मैथेमेटिकल थॉट फ्राम एंशियंट टु माडर्न टाइम्स**, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क 1972
9. जेम्स आर. न्यूमान (संपादक) — **द वर्ड आफ मैथेमेटिक्स** (चार भाग), न्यूयार्क 1956

संदर्भ और टिप्पणियां

1. देखिए, इसके पहले का 'ग्यार्ग कांतोर' लेख ।
2. मैक्स डेहन ने 1900 ई. के साल में ही हिल्बर्ट के तीसरे सवाल का आंशिक हल प्रस्तुत कर दिया था । अगले वर्ष डेहन ने पूर्ण हल पेश कर दिया । उस समय मैक्स डेहन 22-23 साल के थे । बाद में, अन्य अनेक जर्मन गणितज्ञों की तरह, डेहन को भी अमरीका में शरण लेनी पड़ी ।
3. घटना 1950 ई. की है । अमेरिकन मैथेमेटिकल सोसायटी ने हरमान वाइल (1885-1955 ई.) से अर्ध-शताब्दी (1900 से 1950 तक) के गणित के इतिहास को संक्षेप में प्रस्तुत करने का अनुरोध किया । वाइल का उत्तर था — यदि हिल्बर्ट के 23 सवाल

गणित की तकनीकी शब्दावली में न होते, तो मैं एक तालिका तैयार करता और बताता कि उनमें से कितने सवाल पूर्ण रूप से हल हुए हैं और कितने आंशिक रूप से। वह तालिका पिछले पचास साल के गणित के विकास की परिचायक बन जाती।

4. 'गोर्डान समस्या' का संबंध निश्चरों के सिद्धांत से है। यह समस्या एरलांगेन विश्वविद्यालय के गणितज्ञ पॉल गोर्डान (1837-1912 ई.) के निश्चर-सिद्धांत के क्षेत्र के गवेषणा-कार्य से फलित हुई थी। गोर्डान को 'निश्चरों का महाराजा' कहा जाता था।

गोर्डान एरलांगेन में गणितज्ञ मैक्स नोएथेर के परिवार के मित्र थे। मैक्स नोएथेर की पुत्री एम्मी नोएथेर (1882-1935 ई.) ने गोर्डान के मार्गदर्शन में ही 'डाक्टर' की उपाधि प्राप्त की थी।

हिल्बर्ट ने 'गोर्डान समस्या' का जो नया समाधान प्रस्तुत किया वह अत्यंत सरल था। इतना सरल कि स्वयं गोर्डान के उद्‌गार थे : ''यह गणित नहीं है, यह तो धर्मशास्त्र है!'' जब पुनः विचार करने के बाद गोर्डान को हिल्बर्ट की उपपत्ति का महत्व समझ में आ गया, तब उन्हें कहना पड़ा था—''अब मेरी समझ में आ गया है कि धर्मशास्त्र भी उपयोग की चीज है।''

5. एडवर्ड वारिंग (1734-1798 ई.) इंग्लैंड के एक सामान्य गणितज्ञ थे। उन्होंने 1770 ई. में एक 'अनुमान' प्रस्तुत किया कि प्रत्येक पूर्ण संख्या चार वर्गों के योग, 9 घनों के योग, 19 चतुर्थ घातों के योग··· आदि के बराबर है।

इस अनुमान का आंशिक हल मिल गया था। हिल्बर्ट ने 1908 ई. में इस 'वारिंग अनुमान' के लिए एक तार्किक उपपत्ति प्रस्तुत कर दी।

आगे जाकर डा. हार्डी, रूसी गणितज्ञ विनोग्रादोव, भारतीय गणितज्ञ एस.एस. पिल्लई आदि ने 'वारिंग अनुमान' का पूर्ण समाधान प्रस्तुत करने में योग दिया।

श्रीनिवास रामानुजन्[1]

जिन वैज्ञानिकों के आविष्कार जल्दी ही उपयोगी बन जाते हैं और पाठ्य-पुस्तकों में भी स्थान पा लेते हैं, उनके बारे में विद्यार्थियों और जनसाधारण को भी कुछ जानकारी मिल जाती है । परंतु जिनका अनुसंधान-कार्य विशुद्ध विज्ञान के दायरे का होता है और जल्दी उपयोगी नहीं बनता, वे बहुतों के लिए अपरिचित रह जाते हैं और प्रायः आख्यान-पुरुष बनते हैं । आरंभ में महान आइंस्टाइन (1879-1955 ई.) के बारे में ऐसा ही हुआ था । महान भारतीय गणितज्ञ रामानुजन् के बारे में भी ऐसा ही हुआ है ।

यूरोप के विकसित विज्ञान के सम्पर्क में आने पर आधुनिक भारत ने जिन कई श्रेष्ठ वैज्ञानिकों को पैदा किया उनमें प्रफुल्लचंद्र राय, जगदीशचंद्र बसु, चन्द्रशेखर वेंकट रामन, मेघनाद साहा, होमी भाभा आदि की ही अधिक चर्चा होती है, तो इसका मुख्य कारण यह है कि इनके आविष्कार अधिक उपयोगी बने हैं, पाठ्य-पुस्तकों में सम्मिलित हुए हैं और इन वैज्ञानिकों ने भारतीय विज्ञान के संगठन में भी भरपूर सहयोग दिया है ।

रामानुजन् का गणितीय अनुसंधान उस कोटि का है, जिसे हम विशुद्ध गणित कहते हैं । इसका स्तर भी इतना ऊंचा है कि काफी लंबा अरसा गुजर जाने के बावजूद कालेज के गणित के पाठ्यक्रम में भी इसे रखना संभव नहीं हुआ है । आज भी देश-विदेश के कई गणितज्ञ रामानुजन् द्वारा खोजे गए सैकड़ों सूत्रों, प्रमेयों और अनुमानों पर अनुसंधान कर रहे हैं, इनकी उपपत्तियां खोज रहे हैं । रामानुजन् सचमुच ही 'गणितज्ञों के गणितज्ञ' थे ।

उपयोगी आविष्कार जल्दी ही लोकप्रियता के दायरे में पहुंच जाते हैं । भास्कराचार्य (1150 ई.) की 'लीलावती' का गणित व्यावहारिक था, इसलिए इस पुस्तक पर 30 से भी अधिक टीकाएं लिखी गईं । अभी पिछली पीढ़ी तक गांवों के बड़े-बूढ़ों के मुंह से भी लीलावती के कुछ रोचक सवाल सुनने को मिल जाते थे । दूसरी ओर, महान गणितज्ञ-ज्योतिषी आर्यभट (499 ई.) की पुस्तक 'आर्यभटीय' का गणित जटिल सूत्र-शैली में प्रस्तुत किया गया था और ज्योतिष संबंधी उनकी कई क्रांतिकारी मान्यताएं परंपरा-विरोधी थीं, इसलिए आधुनिक काल में आर्यभट का लगभग स्मृतिलोप ही हो गया था । 'आर्यभटीय' की

हस्तलिपियां बड़ी मुश्किल से ही उपलब्ध हुई हैं । आर्यभट का एक अन्य **ग्रंथ** 'आर्यभट-सिद्धांत' आज भी अप्राप्य है । भारत के पहले उपग्रह को 'आर्यभट' नाम दिया गया और 1976 ई. में व्यापक पैमाने पर आर्यभट की 1500वीं जयंती मनाई गई, तभी जाकर बहुतों को पहली बार प्राचीन भारत के इस महान वैज्ञानिक का कुछ परिचय मिला ।

रामानुजन् का अधिकांश कृतित्व गणित के उस विषय से संबंधित है जिसे संख्या-सिद्धांत (थ्योरी आफ नंबर्स) कहते हैं । इस विषय में विभिन्न प्रकार की संख्याओं के गुणधर्मों की खोज की जाती है । यह विषय है तो बहुत पुराना, परंतु अब यह एक अत्यंत जटिल विषय बन गया है । संख्या-सिद्धांत के सवाल लगते तो बहुत आसान हैं, पर इन्हें प्रमाणित कर पाना प्रायः बड़ा कठिन होता है । आगमन की तर्कविधि का सहारा लेकर संख्याओं के बारे में अनुमान (कंजेक्चर) प्रस्तुत करना कठिन बात नहीं है, पर इन अनुमानों को प्रमाणित करना बड़े-बड़े गणितज्ञों के लिए भी प्रायः असंभव हो जाता है ।

एक उदाहरण लीजिए । गणितज्ञ क्रिस्तियन गोल्डबाख (1690-1764 ई.) ने प्रसिद्ध गणितज्ञ आयलर को 1742 ई. में एक पत्र लिखकर अनुमान प्रस्तुत किया था—'2 से बड़ा प्रत्येक सम पूर्णांक दो अभाज्य संख्याओं का योग होता है ।' इस अनुमान की सत्यता के लिए कई उदाहरण सहज ही पेश किए जा सकते हैं; जैसे, $4 = 2+2$, $6 = 3+3$, $8 = 3+5, \cdots$ $30 = 13+17$, इत्यादि । रामानुजन् के मार्गदर्शक डा. हार्डी का प्रसिद्ध कथन भी है कि ऐसे अनुमान 'कोई भी मूर्ख' प्रस्तुत कर सकता है ।[2] परंतु पिछले करीब ढाई सौ वर्षों के अनेकानेक प्रयासों के बाद भी आज तक इस **गोल्डबाख अनुमान** को पूर्णतः प्रमाणित करना संभव नहीं हुआ है । वर्तमान सदी में हार्डी, लिटलवुड[3], विनोग्रादोव, सेलबर्ग आदि चोटी के कई गणितज्ञों ने इस दिशा में प्रयास किए, किंतु किसी को भी पूर्ण सफलता नहीं मिली ।

ऐसा विलक्षण है संख्या-सिद्धांत का विषय । संख्या-सिद्धांत के क्षेत्र के रामानुजन् के सूत्र, प्रमेय, सर्वसमिकाएं और अनुमान कहीं ज्यादा जटिल हैं । कहा जाता है कि पूर्णांकों के साथ उनकी एक प्रकार से गहरी दोस्ती स्थापित हो गई थी । वे चंद उदाहरणों पर विचार करने के बाद आगमन की तर्क-प्रणाली का सहारा लेकर अपनी अपूर्व अन्तःप्रज्ञा से सीधे निष्कर्ष पर पहुंच जाते थे **और** सूत्र खोज लेते थे । ऐसी स्थिति में स्वयं रामानुजन् के लिए भी यह बता पाना प्रायः कठिन होता था कि वे अंतिम परिणाम पर किस प्रकार पहुंचे हैं । यही कारण है कि रामानुजन् अपने ही खोजे हुए फार्मूलों के लिए उपपत्तियां प्रस्तुत करने में कठिनाई महसूस करते थे । पिछले करीब दो सौ वर्षों में यूरोप में उपपत्तियों के लिए जो उन्नत गणितीय तकनीकें विकसित हुई हैं उनसे भी वे

भलीभांति परिचित नहीं थे। इसलिए आज रामानुजन् के फार्मूलों को समझना, उनकी उपपत्तियां देना या उन्हें सिद्ध करना देश-विदेश के कई गणितज्ञों के लिए अनुसंधान-कार्य बन गया है।

तात्पर्य यह है कि रामानुजन् की गणितीय गवेषणाओं को सरल भाषा में समझाना लगभग एक असंभव कार्य है। उच्च गणित के विषयों और संख्या-सिद्धांत की आधुनिक तकनीकों से परिचित गणितज्ञ ही रामानुजन् के कृतित्व को ठीक से समझ सकते हैं।
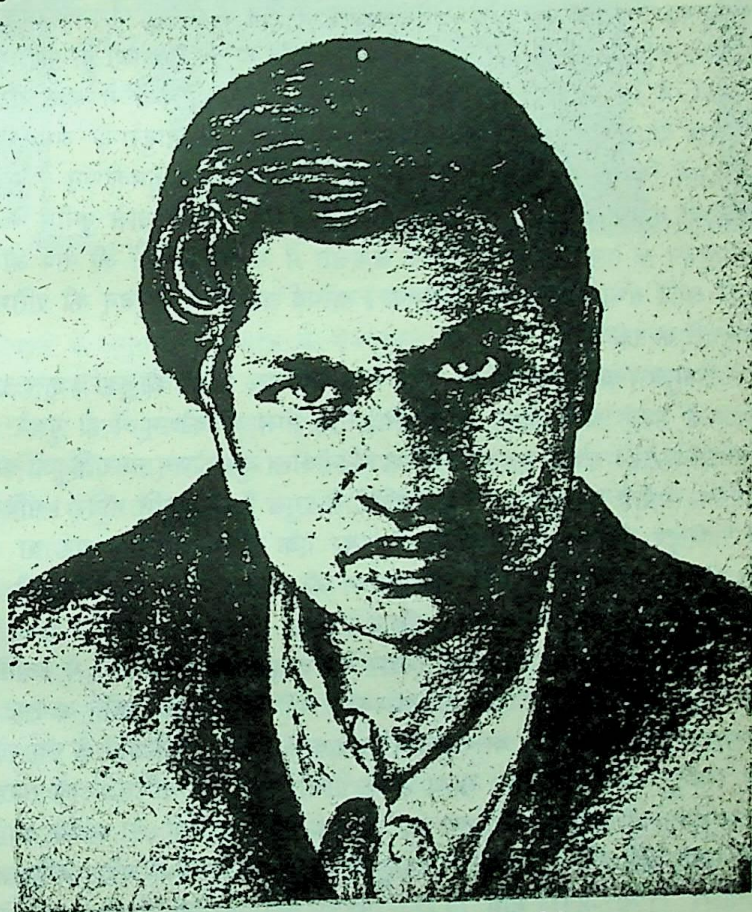
श्रीनिवास रामानुजन् (1887-1920 ई.)

रामानुजन् के कृतित्व के महत्व को समझने का एक सरल उपाय है। यदि हम उनके बाल्यकाल से ही उनके साथ हो लें और देखते चलें कि गणित के प्रति उनकी लगन किस प्रकार बढ़ती गई, गणित के स्वाध्याय को वे कैसे आगे बढ़ाते

गए और उन्होंने गणित के कौन-कौन-से ग्रंथ पढ़े, उन्होंने गणित के क्षेत्र में प्रमुखतः कौन-कौन-सी चीजें खोजीं, तो उनकी प्रतिभा और उनके कृतित्व का काफी खुलासा हो सकता है ।[4]

सर्वप्रथम यही जानने का प्रयास करें कि रामानुजन्-जैसी गणितीय प्रतिभा का उदय किन भारतीय परिस्थितियों में हुआ । संसार में ऐसे अनेक गणितज्ञ हुए हैं, जिनके माता-पिता, चाचा-मामा या दादा-नाना भी गणितज्ञ या गणित-प्रेमी थे । रामानुजन् ने अपना पहला शोध-निबंध[5] स्विट्जरलैंड के प्रसिद्ध गणितज्ञ याकूब (प्रथम) बर्नूली (1654-1705) के नाम से प्रसिद्ध बर्नूली संख्याओं के गुणधर्मों के बारे में लिखा था । उस बर्नूली-परिवार की तीन पीढ़ियों में आठ श्रेष्ठ गणितज्ञ पैदा हुए थे ।[6] प्रो. हार्डी के माता-पिता भी 'गणितानुरागी' अध्यापक थे। इसके विपरीत, रामानुजन् के पिता श्रीनिवास अय्यंगार कुंभकोणम् के एक गुजराती बनिए की कपड़े की दुकान पर प्रतिमाह 20 रु. पानेवाले मुनीम थे । रामानुजन् के नाना ईरोड की मुंसिफ अदालत में अमीन (जमीन की नाप और कुर्की आदि संभालनेवाले कर्मचारी) थे । तात्पर्य यह कि रामानुजन् की प्रतिभा आनुवंशिक नहीं थी ।

रामानुजन् का जन्म ननिहाल ईरोड में 22 दिसंबर, 1887 को हुआ । कुल 32 साल के उनके अल्प जीवन के आरंभिक 16 साल कुंभकोणम् में ही गुजरे । कावेरी के तट पर बसा हुआ अनेकानेक मंदिरोंवाला कुंभकोणम् नगर हिंदुओं का धार्मिक तीर्थ है । वहां के बहुत सारे मंदिरों में प्रमुख है शार्ङ्गपाणि मंदिर । मंदिर से नातिदूर ही रामानुजन् का खपरैल का एक छोटा-सा पैतृक घर था । कुंभकोणम् में संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन की परंपरा आज भी जीवित है । **महाभारत** का कुंभकोणम् संस्करण प्रसिद्ध है ।

रामानुजन् श्रीवैष्णव ब्राह्मण परिवार में पैदा हुए थे और बचपन में उन्होंने भी संस्कृत पढ़ी थी । पर ऐसी कोई जानकारी नहीं मिलती कि उन्होंने आर्यभट, ब्रह्मगुप्त, महावीराचार्य, भास्कराचार्य या बाद के केरलीय गणितज्ञों के ग्रंथ पढ़े हों । परंतु यह एक अद्भुत साम्य है कि प्राचीन भारतीय गणितज्ञों की तरह रामानुजन् भी सीधे सूत्र प्रस्तुत कर देते थे । उपपत्तियों में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं थी । डा. हार्डी ने रामानुजन् की तुलना यूरोप के महान गणितज्ञ आयलर (1707-83), गौस (1777-1855) और याकोबी (1804-51) के साथ की है । लेकिन यदि रामानुजन् की सृजन-प्रक्रिया पर विचार करें तो वे भारतीय परंपरा के ही गणितज्ञ प्रतीत होते हैं ।

सौभाग्य से कुंभकोणम् में एक हाईस्कूल था, एक कालेज भी था, जिनमें अंग्रेजी माध्यम से दी जानेवाली शिक्षा का अच्छा प्रबंध था । उस जमाने के
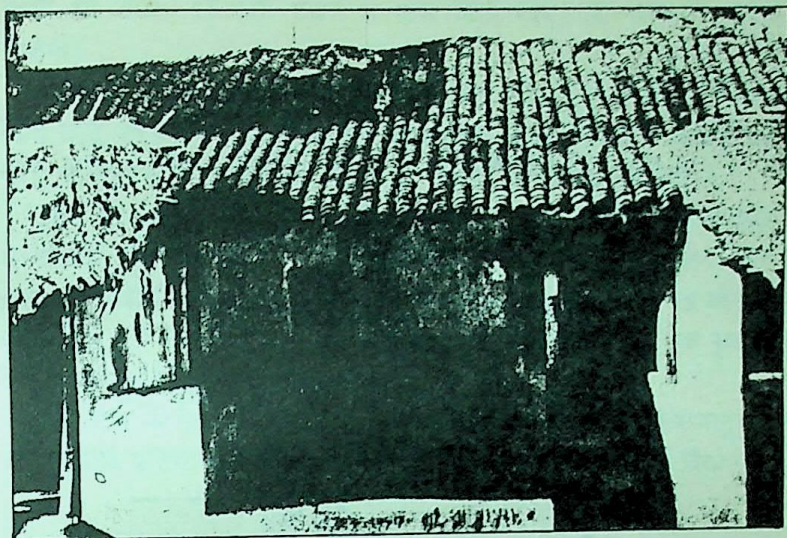
कुंभकोणम् में रामानुजन् का खपरैल का पैतृक घर

रिवाज के अनुसार पांच साल के रामानुजन् को एक निजी पाठशाला में भेजा गया, जहां उन्होंने तमिल अक्षरों और प्रारंभिक अंकगणित का ज्ञान प्राप्त किया। दो साल बाद शासकीय स्कूल में भर्ती होने पर दस साल के रामानुजन् ने अपनी विशिष्ट योग्यता का पहला परिचय यह दिया कि 1897 ई. में वह प्राइमरी परीक्षा में पूरे तंजावूर जिले के सफल विद्यार्थियों में सर्वप्रथम आए ।

रामानुजन् धार्मिक वृत्ति और शांत स्वभाव के एक चिंतनशील बालक थे । उनका खपरैल की छत का जो पैतृक घर था, उसके सामने के ऊंचे चबूतरे पर बैठकर रामानुजन् गणित के सवालों में खो जाते थे । जानकारी मिलती है कि जब वह दूसरे फार्म (छठी कक्षा) के विद्यार्थी थे, तो उनके मन में यह जानने की तीव्र उत्सुकता पैदा हुई कि गणित की कौन-सी चीज 'परम सत्य' हो सकती है। उन्होंने ऊंची कक्षाओं के कई छात्र-मित्रों से इस संबंध में पूछताछ की । कुछ ने 'पाइथेगोरस के प्रमेय' को परम सत्य बताया, तो कुछ ने 'स्टॉक और शेयर' के सवालों को । पहला उत्तर विशुद्ध गणित का मार्ग दिखाता है और दूसरा उत्तर उपयोगी गणित का । रामानुजन् ने विशुद्ध गणित की खोज को अपने जीवन का ध्येय बनाया । अगली घटना से यह बात स्पष्ट हो जाती है ।

तब रामानुजन् सातवीं कक्षा के विद्यार्थी थे । एक दिन गणित के अध्यापक ने विद्यार्थियों को कुछ इस प्रकार से समझाया— ''यदि तीन केले तीन आदमियों में बांटे जाएं, तो प्रत्येक को एक केला मिलेगा । यदि 1000 केले 1000 आदमियों में बांटे जाएं, तो भी प्रत्येक को एक ही केला मिलेगा । अतः सिद्ध होता है कि

GOVERNMENT OF MADRAS.

PRIMARY EXAMINATION.

This is to certify that

S. Ramanujam

son ~~daughter~~ of Srinivasa Iyengar

and a Pupil ~~Teacher~~ of the Kumbakonam Rangayan Pry. School, appeared at the Primary Examination held at Kumbakonam in November 1897, that he ~~she~~ passed in the following subjects :—

(1) COMPULSORY	(2) OPTIONAL
Tamil LANGUAGE.	(4) Geography
(1) READING, RECITATION AND GRAMMAR.	(5) English
(2) WRITING AND SPELLING.	
(3) ARITHMETIC.	(6)

and was placed in the first Class.

S. Ramanujam is hereby declared to have qualified for admission to the Public Service in accordance with the provisions of the Public Service Notification.

Station Tanjore

Date 9th August 1898

J. Daniel
Chairman, Board of Examiners,
Primary Examination.
Tanjore District.

रामानुजन् का प्राइमरी परीक्षा का प्रमाणपत्र

किसी भी संख्या को उसी संख्या से भाग दिया जाए, तो परिणाम 'एक' मिलेगा।''

रामानुजन् ने झट से खड़े होकर पूछा—''सर, यदि शून्य से शून्य को भाग दिया जाए, तो भी क्या परिणाम 'एक' ही मिलेगा ? क्या किसी भी आदमी को कोई भी केला न दिया जाए, तो भी क्या प्रत्येक को 'एक' केला मिलेगा ?''

इससे स्पष्ट होता है कि रामानुजन् ने संख्याओं के गुणधर्मों के बारे में गहराई से सोचना शुरू कर दिया था । उसी साल उन्होंने समांतर, गुणोत्तर और हरात्मक श्रेढ़ियों के गुणधर्मों पर भी अधिकार प्राप्त कर लिया । जब वह आठवीं कक्षा में थे, तो उन्होंने बी. ए. के एक विद्यार्थी से त्रिकोणमिति की एक पुस्तक लेकर उसके सारे सवाल हल कर डाले ।

उसी साल की एक और घटना है । दसवीं कक्षा के एक विद्यार्थी ने रामानुजन् की गगितीय प्रतिभा की चर्चा सुनने पर उन्हें एक सवाल हल करने को दिया —

यदि $\sqrt{x} + y = 7$

$\sqrt{y} + x = 11$

तो x और y के मान बताओ ।

रामानुजन् ने केवल आधे मिनट में सवाल का हल प्रस्तुत कर दिया —

$$x = 9, y = 4$$

रामानुजन् जब 15 साल के थे और दसवीं कक्षा में पढ़ रहे थे तो उन्होंने एक मित्र के जरिए स्थानीय कालेज के पुस्तकालय से उच्च गणित का एक अद्भुत ग्रंथ प्राप्त किया । लंदन से 1880 ई. और 1886 ई. में दो खंडों में प्रकाशित यह ग्रंथ था **सिनॉप्सिस आफ प्यूअर मैथेमेटिक्स** (विशुद्ध गणित का सार-संक्षेप), और इसके लेखक थे **जॉर्ज शूब्रिज कार** ।[7] बीजगणित, ज्यामिति, त्रिकोणमिति और कलन-गणित के 6165 फार्मूले इसमें दिए गए हैं, मगर इनकी जो अत्यंत संक्षिप्त उपपत्तियां दी गई हैं वे नाममात्र की ही हैं ।

रामानुजन् को यह ग्रंथ क्या मिल गया, मानो उच्च गणित का एक बहुत बड़ा खजाना मिल गया । वे पूरे मनोयोग से इस ग्रंथ के प्रत्येक फार्मूले को हल करने में जुट गए । चूंकि उनके पास उच्च गणित की कोई अन्य पुस्तक नहीं थी, इसलिए 'सिनॉप्सिस' के प्रत्येक फार्मूले को खुद ही सिद्ध करना उनके लिए एक प्रकार का गवेषणा-कार्य बन गया । पहले उन्होंने माया-वर्ग (मैजिक स्क्वायर) तैयार करने की कुछ विधियां खोज निकालीं । फिर उन्होंने ज्यामिति को लिया और वृत्तक्षेत्र को वर्गक्षेत्र में बदलने-जैसे पुराने सवालों को हल करने की दिशा में प्रयास किए ।[8] फिर बीजगणित को हाथ में लेकर कई नई श्रेणियों की खोज

A SYNOPSIS

OF

ELEMENTARY RESULTS

IN

PURE MATHEMATICS:

CONTAINING

PROPOSITIONS, FORMULÆ, AND METHODS OF ANALYSIS,

WITH

ABRIDGED DEMONSTRATIONS.

SUPPLEMENTED BY AN INDEX TO THE PAPERS ON PURE MATHEMATICS WHICH ARE TO BE FOUND IN THE PRINCIPAL JOURNALS AND TRANSACTIONS OF LEARNED SOCIETIES, BOTH ENGLISH AND FOREIGN, OF THE PRESENT CENTURY.

BY

G. S. CARR, M.A.

LONDON:
FRANCIS HODGSON, 89 FARRINGDON STREET, E.C.
CAMBRIDGE: MACMILLAN & BOWES.

1886.

जॉर्ज शूब्रिज कार के 'सिनॉप्सिस' का मुखपृष्ठ

की । कार ने अपने ग्रंथ में समाकलन गणित (इंटिग्रल कैल्कुलस) की अच्छी जानकारी दी थी । रामानुजन् ने उस पर भी अधिकार प्राप्त कर लिया ।

डॉ. हार्डी ने लिखा है—"कार के 'सिनॉप्सिस' ने ही रामानुजन् की पूर्ण क्षमता को जगाया । यह ग्रंथ एक उत्कृष्ट कृति नहीं है, परंतु रामानुजन् ने इसे प्रसिद्ध कर दिया है । इसमें संदेह नहीं कि इस ग्रंथ ने रामानुजन् को बेहद प्रभावित किया और इसके अध्ययन के बाद ही एक गणितज्ञ के रूप में रामानुजन् के जीवन का नया दौर शुरू हुआ । ...रामानुजन् की नोटबुकों के

अध्ययन से किसी को भी यह स्पष्ट हो जाएगा कि उन्होंने अपनी गवेषणाएं कार के 'सिनॉप्सिस' के आदर्श पर ही प्रस्तुत की हैं।'' **जेम्स आर. न्यूमान** लिखते हैं—''कार के ग्रंथ का गणित 1865 ई. के आसपास के आगे का नहीं है। लेकिन (1914 में) रामानुजन् जब इंग्लैंड पहुंचे तो अपनी पसंद के गणितीय विषयों का उनका ज्ञान तत्कालीन गणितीय ज्ञान से अधिक उन्नत था।''

पूछा जा सकता है कि रामानुजन् का गणित के प्रति इतना अधिक आकर्षण कैसे हुआ। रामानुजन् को गणित के अध्ययन की प्रेरणा न तो उनके परिवार के किसी सदस्य ने दी, न ही बाहर के किसी व्यक्ति ने। इसके विपरीत, निरंतर गणित के अध्ययन में ही डूबे रहने के लिए उन्हें माता-पिता और कुछ अध्यापकों ने प्रायः कोसा ही है। उच्च गणित के प्रति उनका लगाव शायद बी. ए. के उन दो विद्यार्थियों के कारण बढ़ा, जो उनके घर अंतेवासी (बोर्डर) के रूप में रहते थे। उन्होंने दस-बारह साल के रामानुजन् को गणित के कई विषयों की आरंभिक जानकारी दी और उन्हें कालेज के ग्रंथालय से उच्च गणित की पुस्तकें भी लाकर दीं। दूसरी बात यह है कि विशुद्ध गणित के अलावा अन्य विषयों में, यहां तक कि गणितीय भौतिकी और उपयोगी गणित के विषयों में भी, उनकी कोई दिलचस्पी नहीं थी!

आरंभ में गणित के प्रति उनके गहरे लगाव का कारण शायद यह रहा है कि वे गणित की खोज करने को ईश्वर की खोज करने के समान समझते थे। वे अक्सर कहा करते थे कि केवल गणित के जरिए ही ईश्वर का सही स्वरूप स्पष्ट हो सकता है। उदाहरणार्थ, वे कहते थे कि 2^n-1 व्यंजक सर्वशक्तिमान ईश्वर और कई देवी-देवताओं को व्यक्त करता है। इस व्यंजक में $n = 0$ हो तो 'कुछ नहीं' मिलता है। यदि $n = 1$ हो तो यही व्यंजक मान देता है 'एक', जो अनंत ईश्वर का द्योतक है। $n = 2$ हो तो व्यंजक का मान मिलता है 3, जो त्रिमूर्ति का परिचायक है। $n = 3$ हो तो परिणाम मिलता है 7, जो सप्तर्षि का द्योतक है, इत्यादि।

रामानुजन् अक्सर कहा करते थे कि सपनों में फार्मूले खोजने में नामगिरि देवी उन्हें सहयोग देती है। बिस्तर से उठकर वे अक्सर फार्मूले लिख लेते थे, परंतु उनकी उपपत्तियां पेश करना उनके लिए प्रायः कठिन होता था। निस्संदेह, यह निरंतर संख्याओं के गुणधर्मों के बारे में सोचते रहने और देवी-देवताओं की शक्ति में गहन आस्था होने का परिणाम था। उनकी स्मृति और गणना-शक्ति गजब की थी। संस्कृत के सभी आत्मनेपद और परस्मैपद धातुरूपों की सूची उन्हें कंठस्थ थी। वे $\sqrt{2}$, π, e आदि के मान हजारों दशमलव स्थानों तक प्रस्तुत कर देने में समर्थ थे।

कार के 'सिनॉप्सिस' के अध्ययन के बाद रामानुजन् ने अपनी स्वतंत्र

CHAPTER I.
MAGIC SQUARES

Let $\underline{a}$ be the average, $\underline{s}$ a row or a column, $\underline{m}$ middle row or rows or column or columns, $\underline{d}$ a diagonal, and $\underline{W}$ the whole sum.

When the Square contains 3 rows and 3 columns,

i. If $\underline{s}$ and $\underline{d}$ are equal, write $\underline{a}$ in the middle and supply the other figures.

Sol:— $d_1 + d_2 + m_1 + m_2 = W + 3x$ where x is the reqd. figure in the middle.

$\therefore 4.s = 3s + 3x. \therefore s = 3x$ or $x = a.$

Cor. The figures in $\underline{d}$ are in A.P.

Sol:— The sum of the numbers in $\underline{d}$ is s or $3a$ and 2nd = a. $\therefore$ 1st + 3rd = 2a = twice the second.

$\therefore$ They are in A.P. Similarly in $\underline{m}$ also.

Ex. 1. Fill up the Square when S = 15

6	1	8
7	5	3
2	9	4

2. When s = 27 and all numbers are odd.

15	1	11
5	9	13
7	17	3

ii. When s and d are unequal, write $\frac{d_1 + d_2 - \underline{s}}{3}$ in the middle.

Ex. 1. Show that the numbers in m are in A.P. here also

Sol. Proceed as in I 1. i Cor.

रामानुजन् की नोटबुक का एक पृष्ठ

गवेषणाओं को एक नोटबुक में उतारना शुरू कर दिया था । 1903 ई. में मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास करने के बाद उन्होंने स्थानीय कालेज की एफ. ए. की कक्षा में दाखिला लिया । पर गणित को ही सारा महत्व देने के कारण वे प्रथम वर्ष की परीक्षा पास नहीं कर पाए । फिर मद्रास के पच्चैयप्पा कालेज में कुछ महीने पढ़ने के बाद प्राइवेट विद्यार्थी के रूप में परीक्षा दी, पर उसमें भी सफल नहीं रहे। रामानुजन् ने गणित में तो लगभग सौ प्रतिशत अंक प्राप्त किए थे, पर अन्य विषयों में वे न्यूनतम अंक भी प्राप्त नहीं कर सके । गणित के कुछ विषयों का उनका ज्ञान एफ. ए. के विद्यार्थियों से भी ज्यादा था और तब तक उनके नोटबुक में ऐसे कई नए सूत्र नमूद हो चुके थे जिनके लिए उन्हें सहज ही 'डाक्टरेट' की उपाधि दी जा सकती थी । लेकिन शिक्षा-प्रणाली ऐसी थी कि रामानुजन् इंटर का प्रमाणपत्र भी हासिल नहीं कर पाए !

जानकी अम्मा (जन्म : 1900 ई.)

आर्थिक विपन्नता के कारण रामानुजन् को आगे कालेज की पढ़ाई का खयाल सदा के लिए छोड़ देना पड़ा। 1909 ई. में उनका विवाह 9 साल की जानकीअम्मा से हुआ । उसके बाद रामानुजन् नौकरी के लिए दौड़-धूप करते रहे और अनेक प्रभावशाली लोगों को अपनी गवेषणाएं समझाने का प्रयास करते रहे । अंत में, कुछ सरकारी अधिकारी उनकी गवेषणाओं से प्रभावित हुए और 1912 ई. में उन्हें मद्रास पोर्ट ट्रस्ट के कार्यालय में 30 रु. माह की नौकरी मिली ।

कुंभकोणम् छोड़ने के बाद रामानुजन् का जीवन अपार मानसिक कष्टों और घोर गरीबी में गुजरा । पर दारिद्र्य के उन्हीं दिनों में उनकी गणितीय प्रतिभा अधिकाधिक निखरती गई । गणित की उनकी साधना सतत जारी रही । उनकी नोटबुकों के पन्नों पर गणित के नए-नए फार्मूले नमूद होते गए—ऐसे विलक्षण फार्मूले जिनकी उपपत्तियां प्रस्तुत करने में आज देश-विदेश के दर्जनों गणितज्ञ जुटे हुए हैं और आगे भी अनेक सालों तक जुटे रहेंगे ।

अंततः रामानुजन् की प्रतिभा को पहचाना गया । उन्हें निश्चिंत होकर गवेषणा-कार्य करने के लिए पर्याप्त सुविधाएं भी मिलीं । वे 1914 ई. में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में डा. हार्डी के सान्निध्य में इंग्लैंड पहुंच गए । तब उनके जीवन का वह दौर शुरू हुआ जब गणित की दुनिया को उनकी अपूर्व अन्तःप्रज्ञा और असाधारण प्रतिभा का परिचय मिला ।

घटना 1913 ई. के जनवरी महीने के एक दिन की है । कैम्ब्रिज के ट्रिनिटी कालेज के गणित के प्राध्यापक डा. हार्डी को उस दिन डाक से एक लिफाफा मिला, जिस पर भारतीय टिकट लगे हुए थे । हार्डी ने लिफाफा खोलकर पत्र पढ़ा, जिसमें लेखक ने लिखा था कि वह मद्रास के पोर्ट ट्रस्ट आफिस में एक मामूली क्लर्क है और उसने कालेज की पढ़ाई पूरी नहीं की है । आगे लिखा कि, उसने गणित में कुछ खोजबीन की है और अपने खोजे हुए कुछ सूत्र और प्रमेय वह उनकी राय जानने के लिए भेज रहा है । नीचे हस्ताक्षर थे — एस. रामानुजन्।

हार्डी ने उन सूत्रों पर नजर दौड़ाई । उन्हें लगा कि कुछ सूत्र पहले से खोजे हुए हैं, कुछ गलत भी हैं । पर कई सूत्र ऐसे भी थे जिन्हें देखकर हार्डी चकित रह गए । उन्होंने उस रात अपने सहयोगी गणितज्ञ डा. लिटलवुड के साथ देर रात बैठकर रामानुजन् के उन सूत्रों पर विचार-विमर्श किया । दोनों गणितज्ञ अंततः इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि गणित की कोई विलक्षण प्रतिभा ही ऐसे सूत्रों का सृजन कर सकती है ।

हार्डी ने रामानुजन् को प्रेरणाप्रद पत्र लिखे । उन्हीं के प्रयासों से अंत में रामानुजन् अप्रैल 1914 में इंग्लैंड पहुंचे । फिर तो हार्डी ने रामानुजन् को जो स्नेह और सहयोग दिया, वह आधुनिक गणित के इतिहास का एक अनुकरणीय उदाहरण है ।

प्रतिष्ठित गणितज्ञों के हाथों तरुण गणितज्ञों के कृतित्व की, अनजाने में ही, उपेक्षा के गणित के इतिहास में दर्जनों उदाहरण मिलते हैं । नार्वे के 19-वर्षीय गणितज्ञ आबेल (1802-29) ने सिद्ध किया था कि पंचम् घात के समीकरण का बीजीय हल असंभव है । उनकी इस खोज का गणित के लिए बड़ा व्यापक महत्व था । आर्थिक विपन्नता के बावजूद आबेल ने अपने शोध-निबंध की प्रतियां छपवाई और एक प्रति जर्मन गणितज्ञ कार्ल फ्रेडरिक गौस (1777-1855 ई.) को भेजी । उनका खयाल था कि गौस यदि उनके निबंध के महत्व को समझ जाते हैं, तो सुविधा और उन्नति के दरवाजे उनके लिए खुल जाएंगे ।

लेकिन 'गणितज्ञों के राजकुमार' माने जाने वाले महान गौस ने ऐतिहासिक महत्व के उस निबंध को बिना जांचे ही रद्दी की टोकरी के हवाले कर दिया ।

आबेल को गहरा सदमा पहुंचा और घोर आर्थिक कष्टों में, केवल 27 साल की छोटी उम्र में, उस महान गणितज्ञ की मृत्यु हुई ।

सौभाग्य से डा. हार्डी ने रामानुजन् के साथ वैसा सलूक नहीं किया जैसा कि गौस ने आबेल के साथ किया था । यदि हार्डी के पहले रामानुजन् की गवेषणाओं का सही मूल्यांकन कर पाना बहुतों के लिए संभव नहीं हुआ, तो इसके कुछ सुस्पष्ट कारण थे । एक कारण सामाजिक था—रामानुजन् की दयनीय आर्थिक स्थिति और अधूरी पढ़ाई । दूसरा कारण था—उनकी गवेषणाएं गणित के अध्येताओं के लिए भी सहज सुगम नहीं थीं । नेल्लूर के गणित-प्रेमी कलेक्टर आर. रामचन्द्र राव से अपनी तीसरी मुलाकात में जब रामानुजन् ने उन्हें अपने कुछ आसान फार्मूले दिखाए, तब कहीं रामानुजन् में उनकी दिलचस्पी जगी थी । इंडियन मैथेमेटिकल सोसायटी के जर्नल के संपादक ने रामानुजन् के एक आरंभिक शोध-निबंध को, अंत में प्रकाशित करने के पहले, पूरे तीन बार वापस लौटा दिया था ! हार्डी को पत्र लिखने के पहले रामानुजन् ने अपने कुछ फार्मूले कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के ही दो नामी गणितज्ञों **बेकर** और **हॉब्सन** को भेजे थे और दोनों ने ही, बिना कोई राय दिए, वे फार्मूले वापस भेज दिए थे ! सर्वप्रथम यदि हार्डी ही रामानुजन् की गवेषणाओं का सही मूल्यांकन कर पाए, तो इसका मुख्य कारण यह था कि वे गणित के उसी विषय के अधिकारी विद्वान थे ।

हार्डी ने सच ही लिखा है कि गणित की दुनिया के लिए रामानुजन् की 'खोज' उन्होंने की है । हार्डी ने यह भी लिखा है कि इंग्लैंड पहुंचने के बाद पांच साल तक रामानुजन् ने जो गवेषणा-कार्य किया वह ज्यादातर नया था । बात काफी हद तक सही है, पर यह भी सही है कि इंग्लैंड जाकर किए गए कार्य का आधार 1903-14 ई. के दशक में उनकी नोटबुकों में नमूद हुई उनकी गवेषणाएं थीं । उनका एक दशक का यह कार्य एक महान प्रतिभा द्वारा केवल अपने सामर्थ्य से किसी गहरी खान से अनगढ़ रत्न खोद निकालने-जैसा काम था । इन रत्नों को गणित की नूतन तकनीकों से तराशने, ओप चढ़ाकर मूल्यवान और खूबसूरत बनाने का काम इंग्लैंड में प्रो. हार्डी के मार्गदर्शन में हुआ । दो-तीन सरल उदाहरणों से ही यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है ।

रामानुजन् का टैक्सी-नंबर वाला किस्सा काफी मशहूर है। इंग्लैंड के एक अस्पताल में रामानुजन् का इलाज हो रहा था । हार्डी टैक्सी लेकर उन्हें देखने गए थे । रामानुजन् की अवस्था देखकर द्रवित हुए हार्डी ने बातचीत की शुरुआत की—"मैं जिस टैक्सी में आया उसका नंबर 1729 था । बड़ा अप्रिय और अशुभ-सा नंबर है।" (इस संख्या में एक गुणन-खंड 13 है, जिसे यूरोप में, और अंधानुकरण पर अब हमारे देश में भी, प्रायः अशुभ माना जाता है ।)

लेटे-लेटे ही रामानुजन् ने झट उत्तर दिया—"नहीं हार्डी, यह तो एक

गॉडफ्रे हेरोल्ड हार्डी
(1877-1947 ई.)

अद्‌भुत संख्या है । यह वह सबसे छोटी संख्या है जिसे दो घन संख्याओं के योग के रूप में दो प्रकार से लिखा जा सकता है ।'' अर्थात्, $1729 = 10^3 + 9^3 = 12^3 + 1^3$ ।

हार्डी चकित रह गए । पूछा—''क्या चतुर्थ घात के लिए भी आप ऐसा कोई उदाहरण दे सकते हैं ?''

क्षणभर सोचने के बाद रामानुजन् ने जवाब दिया—''इस समय तो मैं कोई उदाहरण नहीं दे सकता, मगर चतुर्थ घात के लिए ऐसी संख्या बहुत बड़ी होनी चाहिए ।''

रामानुजन् ने ठीक ही कहा था । वस्तुतः आयलर (1707-83 ई.) ने यह संख्या काफी पहले ही प्रस्तुत कर दी थी—

$$635318657 = 59^4 + 158^4 = 133^4 + 134^4$$

परन्तु संख्या 1729 की इस विशेषता की खोज रामानुजन् उसी समय कर चुके थे जब वे शायद मैट्रिक या एफ. ए. के विद्यार्थी थे । उनकी एक नोटबुक में इस संख्या की यह विशेषता स्पष्ट नमूद है । नोटबुक में उन्होंने ऐसी और भी कुछ संख्याएं दी हैं ।

इसी प्रकार, भाज्य और अभाज्य संख्याओं के गुणधर्मों की खोज भी रामानुजन् ने भारत में ही शुरू कर दी थी । अभाज्य संख्याएं वे हैं जिन्हें 1 और स्वयं के अलावा अन्य किसी संख्या से भाग देना संभव न हो । भाज्य संख्याओं में भी **अतिभाज्य** (हाईली कम्पोजिट) संख्याएं उन्हें कहते हैं जिनके भाजक पहले की किसी भी संख्या के भाजकों से ज्यादा होते हैं । ऐसी अतिभाज्य संख्याएं हैं 2, 4, 6, 12, 24, 36, 48, 60, 120, इत्यादि ।

इंग्लैंड-निवास के दौरान रामानुजन् के जो शोध-निबंध प्रकाशित हुए, उनमें सबसे बड़ा (63 पृष्ठ) अतिभाज्य संख्याओं के बारे में है । लंदन की एक गणित-पत्रिका (प्रोसिडिंग्स आफ लंदन मैथेमेटिकल सोसायटी) में 1915 ई. में प्रकाशित इस निबंध के बारे में हार्डी की टिप्पणी है—'अतिभाज्यों का यह प्राथमिक विश्लेषण अतिविलक्षण है और असमिकाओं (इन्इक्वेलिटीज) के बीजगणित पर रामानुजन् के असामान्य अधिकार का परिचायक है ।''

रामानुजन् ने अपने इस निबंध में अतिभाज्य संख्याओं के अनेक नए गुणधर्म प्रस्तुत किए और ऐसी संख्याओं की एक लम्बी सूची भी जोड़ दी । इस सूची की सबसे बड़ी अंतिम अतिभाज्य संख्या है : $6746328388800 = 2^6.3^4.5^2.7^2.11.13.17.19.23$.

परंतु अतिभाज्य संख्याओं की खोजबीन का कार्य रामानुजन् ने भारत में ही आरंभ कर दिया था । उनकी एक नोटबुक में अतिभाज्य संख्याओं की एक सूची है और इस सूची की सबसे बड़ी संख्या है :

$146659312800 = 2^5.3^4.5^2.7^2.11.13.17.19.$

इंग्लैंड पहुंचने पर अतिभाज्य संख्याओं का रामानुजन् का कार्य अधिक विस्तृत हो गया, इनकी सूची भी अधिक लंबी हो गई । इस सूची में एक अतिभाज्य संख्या छूट गई थी । मद्रास में 1950 ई. में संस्थापित **रामानुजन् इंस्टीट्यूट आफ मैथेमेटिक्स** के प्रथम निदेशक नियुक्त हुए भारतीय गणितज्ञ डा. टी. विजयराघवन ने 1926 ई. में यह छूटी हुई अतिभाज्य संख्या भी खोज ली : $293318625600 = 2^6.3^4.5^2.7^2.11.13.17.19.$

विभाजन-सिद्धांत (पार्टिशन थ्योरी) के क्षेत्र में रामानुजन् के योगदान को सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है । इस क्षेत्र में उन्होंने अपनी खोजबीन भारत में ही शुरू कर दी थी, परंतु इंग्लैंड में डा. हार्डी के सान्निध्य में पहुंचने पर उनका यह कार्य खूब निखरा और अधिक व्यापक बना ।

विभाजन-सिद्धांत में यह जानने का प्रयास किया जाता है कि किसी भी पूर्णांक को छोटी संख्याओं के योग के रूप में कितने प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है । जैसे, 5 को छोटे पूर्णांकों में निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है — $4+1, 3+2, 3+1+1, 2+2+1, 2+1+1+1, 1+1+1+1+1.$

हम 5 को भी इस संख्या के एक विभाजन के रूप में स्वीकार कर लेते हैं । इस प्रकार 5 के कुल विभाजन होंगे : $5, 4+1, 3+2, 3+1+1, 2+2+1, 2+1+1+1, 1+1+1+1+1.$

यहां 5 के कुल विभाजनों की संख्या 7 है । इसी तरह 4 को 5 प्रकार से विभाजित किया जा सकता है : $4, 3+1, 2+2, 2+1+1, 1+1+1+1.$

इसी प्रकार, 3 को 3 प्रकार $(3, 2+1, 1+1+1)$ से, 2 को 2 प्रकार $(2, 1+1)$ से, और 1 को 1 प्रकार से विभाजित किया जा सकता है । शून्य (0) का विभाजन 1 मान लिया गया है ।

यदि फलन $P(n)$ पूर्णांक n के संपूर्ण विभाजनों की संख्या व्यक्त करता है, तो उपर्युक्त परिणामों को संकेतों में दर्शाया जाएगा :

$$P(1) = 1, P(2) = 2, P(3) = 3, P(4) = 5, P(5) = 7.$$

गणितज्ञों ने अनेक संख्याओं के विभाजनों की गणना की है । ऐसी एक तालिका नीचे दे रहे हैं :

P(0)	= 1	P(12)	= 77
P(1)	= 1	P(13)	= 101
P(2)	= 2	P(14)	= 135
P(3)	= 3	P(15)	= 176
P(4)	= 5	P(16)	= 231
P(5)	= 7	P(17)	= 297
P(6)	= 11	P(18)	= 385
P(7)	= 15	P(19)	= 490
P(8)	= 22	P(20)	= 627
P(9)	= 30	P(200)	= 3972999029388
P(10)	= 42	P(243)	= 133978259344888
P(11)	= 56		

स्पष्ट है कि जैसे-जैसे संख्या बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे उसके विभाजनों की संख्या भी बड़ी तेजी से बढ़ती जाती है । इसलिए विभाजनों की संख्या को जानना एक अत्यंत कठिन काम हो जाता है । प्रख्यात गणितज्ञ **आयलर** ने विभाजनों की संख्या जानने के लिए एक **उत्पादन फलन** (जनरेटिंग फंक्शन) प्रस्तुत किया था । इस फलन के जरिए P(n) का मान ज्ञात किया जा सकता है, बशर्ते कि n से कम के विभाजन ज्ञात हों ।

रामानुजन् ने विभाजन-सिद्धांत के क्षेत्र में बड़े महत्वपूर्ण अनुमान (कंजेक्चर) प्रस्तुत किए और बाद में इन्हें प्रमाणित किया । उनके ये अनुमान हैं:

$P(5n+4)$ — 5 का ठीक-ठीक गुणज है ।

$P(7n+5)$ — 7 का ठीक-ठीक गुणज है ।

$P(11n+6)$ — 11 का ठीक-ठीक गुणज है ।

जहां $n = 0, 1, 2, 3, \cdots$ इत्यादि ।

रामानुजन् ने P(n) के कई अद्‌भुत अंकगणितीय गुणधर्म प्रस्तुत किए ।[9] उनकी निम्नलिखित सर्वसमिका (आइडेंटिटी) को एक सर्वाधिक सुंदर सूत्र माना जाता है —

$$P(4)+P(9)x+P(14)x^2+\cdots = \frac{5[(1-x^5)(1-x^{10})\cdots]^5}{[(1-x)(1-x^2)\cdots]^6}$$

अंत में, रामानुजन् और हार्डी ने मिलकर बड़े n के विभाजनों की संख्या जानने के लिए एक ऐसा सूत्र खोज निकाला जिससे P (n) का लगभग सही मान मालूम हो जाता है । एक अनंतवर्ती श्रेणी (एसिम्पटोटिक सीरीज) के रूप में

प्रस्तुत किया गया यह सूत्र संख्या-सिद्धांत के क्षेत्र में एक महान उपलब्धि माना जाता है । हार्डी-रामानुजन् के इस सूत्र के जरिए 14031 के विभाजनों की संख्या ज्ञात की गई है :

P (14031) = 92 85303 04759 09931 69434 85156 67127
75089 29160 56358 46500 54568 28164
58081 50403 46756 75123 95895 59113
47418 88383 22063 43272 91699 91345
00745

यह 127 अंकों की एक विशाल संख्या है । रामानुजन् की यह भविष्यवाणी कि इस संख्या को 114 से भाग देना संभव होगा, सही साबित हुई !

यह समझना गलत होगा कि रामानुजन् का विभाजन-सिद्धांत के क्षेत्र का यह गणितीय अनुसंधान किसी उपयोग का नहीं है । उनका यह अनुसंधान-कार्य सांख्यिकीय यांत्रिकी में उपयोगी सिद्ध हुआ है और हाल के वर्षों में ब्रह्मांड की उत्पत्ति का एक नया सिद्धांत (सुपरस्ट्रिंग थ्योरी) रामानुजन् के विभाजन-सिद्धांत पर खड़ा किया जा रहा है ।

इसी प्रकार, ज्यादा से ज्यादा दशमलव स्थानों तक π के मान देनेवाले रामानुजन् के फार्मूले भी आजकल सुपरकंप्यूटरों की गणना के लिए बड़े उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं । रामानुजन् ने π के अधिक शुद्ध मान के लिए अनेक फार्मूले दिए हैं । यहां उनके दो फार्मूले प्रस्तुत हैं —

$$\pi = \frac{63}{25} \cdot \frac{17 + 15\sqrt{5}}{7 + 15\sqrt{5}}; \quad \frac{1}{2\pi\sqrt{2}} = \frac{1103}{99^2}$$

अपने पांच साल के इंग्लैंड-निवास के दौरान रामानुजन् ने यूरोप की पत्रिकाओं में 21 निबंध प्रकाशित कराए । इनमें से पांच प्रो. हार्डी के सहयोग से तैयार हुए और दोनों के नाम से छपे । वे कठिनाइयों से भरे प्रथम महायुद्ध के दिन नहीं होते, तो रामानुजन् के कुछ अधिक निबंध छप पाते । पर उनका इतना ही प्रकाशित गवेषणा-कार्य उन्हें कैम्ब्रिज के ट्रिनिटी कालेज और लंदन की प्रख्यात रॉयल सोसायटी का फैलो (1918 ई.) बनाने के लिए पर्याप्त माना गया।[10]

रामानुजन् 1914 ई. में इंग्लैंड गए तो अपने साथ तीनों नोटबुकें भी ले गए थे, पर उन नोटबुकों में नमूद गवेषणाओं पर उन्होंने वहां आगे कोई काम नहीं किया । इंग्लैंड में प्रो. हार्डी के सान्निध्य में रहकर उन्होंने जो गवेषणाएं कीं और जो करीब दो दर्जन शोध-निबंधों में प्रकाशित भी हुईं, वे काफी हद तक नई थीं।

रामानुजन् के देहांत के बाद उनके उन शोध-निबंधों का संकलन कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से 1927 ई. में ग्रंथाकार प्रकाशित हुआ ।

मई 1919 में भारत लौटते समय रामानुजन् अपनी पहली नोटबुक प्रो. हार्डी के पास ही छोड़ आए थे । प्रो. हार्डी ने इस नोटबुक के 12वें तथा 13वें प्रकरणों में **हाइपरज्यामेट्रिक** श्रेणियों के बारे में दिए गए महत्वपूर्ण परिणामों पर 1923 ई. में एक समीक्षा प्रकाशित की ।[11] उन्होंने रामानुजन् के जीवन और कृतित्व पर हार्वर्ड विश्वविद्यालय में जो 12 भाषण दिए थे, वे आगे चलकर 1940 ई. में ग्रंथाकार प्रकाशित हुए । अत्यंत उपयोगी और महत्वपूर्ण यह ग्रंथ रामानुजन् के विलक्षण कृतित्व के उस पक्ष पर विशेष प्रकाश डालता है जिसे हम **संख्या-सिद्धांत** कहते हैं ।

डा. हार्डी ने रामानुजन् की पहली नोटबुक बाद में मद्रास विश्वविद्यालय को लौटा दी थी । उनकी बड़ी इच्छा थी कि रामानुजन् की तीनों कापियां संपादित होकर गणितज्ञों के भावी अन्वेषण के लिए पुस्तकाकार उपलब्ध हों । उन्हीं की प्रेरणा से अंततः इंग्लैंड के दो प्रतिभाशाली गणितज्ञ — जी. एन. वाटसन और बी. एम. विल्सन — ने रामानुजन् की नोटबुकों को संपादित करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली । मद्रास विश्वविद्यालय ने इन नोटबुकों की प्रतिलिपियां तैयार करवाईं और उन्हें इंग्लैंड भेज दिया । वाटसन और विल्सन ने उन नोटबुकों पर काफी काम किया और रामानुजन् की कुछ गवेषणाओं पर शोध-निबंध भी प्रकाशित किए । किंतु दुर्भाग्य से, 1935 ई. में विल्सन की अचानक मृत्यु हुई और 1940 ई. के बाद, किन्हीं कारणों से, इस कार्य में वाटसन की दिलचस्पी भी नहीं रह गई । इस प्रकार, उन दोनों का कार्य अधूरा और अप्रकाशित ही रहा और तीन दशकों से भी अधिक समय तक रामानुजन् की तीनों नोटबुकें मद्रास विश्वविद्यालय के ग्रंथागार के एक संदूक में बंद पड़ी रहीं !

रामानुजन् के देहांत के 37 साल बाद, 1957 ई. में, टाटा इंस्टीट्यूट आफ फंडामेंटल रिसर्च, बंबई, ने तीनों नोटबुकों का फोटो-कापी संस्करण दो बड़ी जिल्दों में प्रकाशित किया । पहली जिल्द में पहली नोटबुक और दूसरी जिल्द में दूसरी तथा तीसरी नोटबुकें समाविष्ट हैं ।

इस प्रकार रामानुजन् की नोटबुकें जब अपने मूल रूप में प्रकाशित हो गईं, तब देश-विदेश के अनेक गणितज्ञों ने उनके प्रमेयों और सूत्रों पर खोजबीन शुरू कर दी । तीनों नोटबुकों में करीब 4,000 सूत्र और प्रमेय दर्ज हैं, जिन्हें रामानुजन् ने अपनी अद्वितीय प्रतिभा से खोज निकाला था ।

रामानुजन् के इन सूत्रों और प्रमेयों की जांच करने और उपपत्तियां खोजने की दिशा में अमरीका के इलिनाय विश्वविद्यालय के गणितज्ञ ब्रूस बर्न्ट ने

CHAPTER II

1. $\frac{1}{n+1}+\frac{1}{n+2}+\frac{1}{n+3}+\cdots\cdots+\frac{1}{2n}$

$= \frac{n}{2n+1}+\frac{1}{2^3-2}+\frac{1}{4^3-4}+\frac{1}{6^3-6}+\cdots\cdots+\frac{1}{(2n)^3-2n}.$

Sol:- $\frac{1}{(2n)^3-2n} = \frac{1}{2}\cdot\frac{1}{2n-1}-\frac{1}{2n}+\frac{1}{2(2n+1)}.$

$\therefore$ R.H.S $= \frac{1}{2}\left(1+\frac{1}{3}+\frac{1}{5}+\cdots+\frac{1}{2n-1}\right)-\left(\frac{1}{2}+\frac{1}{4}+\frac{1}{6}+\cdots\frac{1}{2n}\right)$

$+\frac{1}{2}\left(1+\frac{1}{3}+\frac{1}{5}+\cdots+\frac{1}{2n+1}\right)+\frac{n}{2n+1}-\frac{1}{2}.$

$= \left(1+\frac{1}{3}+\frac{1}{5}+\cdots+\frac{1}{2n-1}\right)-\left(\frac{1}{2}+\frac{1}{4}+\frac{1}{6}+\cdots+\frac{1}{2n}\right)$

$= \left(1+\frac{1}{2}+\frac{1}{3}+\frac{1}{4}+\cdots+\frac{1}{2n}\right)-\left(1+\frac{1}{2}+\frac{1}{3}+\cdots\frac{1}{n}\right)$

$= \frac{1}{n+1}+\frac{1}{n+2}+\frac{1}{n+3}+\cdots+\frac{1}{2n}.$

Cor. $2\log_e 2 = 1+\frac{2}{2^3-2}+\frac{2}{4^3-4}+\frac{2}{6^3-6}+\frac{2}{8^3-8}+\cdots$ ad inf.

Sol. R.H.S $= 2\left(\frac{1}{n+1}+\frac{1}{n+2}+\cdots+\frac{1}{2n}\right)$ when $n=\infty$

Let $n=\frac{1}{dx}$

then the given Series $= \frac{2dx}{1+dx}+\frac{2dx}{1+2dx}+\cdots+\frac{2dx}{1+1}$

$= 2\int_1^2 \frac{1}{x}\,dx = 2\log_e 2.$

or thus —

In the Solution of II 1. we get $\left(1+\frac{1}{3}+\frac{1}{5}+\cdots\frac{1}{2n-1}\right)-\left(\frac{1}{2}+\frac{1}{4}+\cdots\frac{1}{2n}\right)$. When $n=\infty$ this becomes $1-\frac{1}{2}+\frac{1}{3}-\frac{1}{4}+\frac{1}{5}-$ &c $=\log_e 2$. $\therefore$ The req^d Sum $=2\log_e 2$.

N.B. $\Sigma\frac{1}{n}$ means the sum of the reciprocals of n natural numbers. Therefore $\Sigma\frac{1}{an}=1+\frac{1}{2}+\frac{1}{3}+\cdots+\frac{1}{an}$ and $\neq \frac{1}{a}+\frac{1}{2a}+\frac{1}{3a}+\cdots+\frac{1}{na}$. $\Sigma\frac{1}{m/n}$ should not be written as $\Sigma\frac{n}{m}$ which has no meaning according to our convention.

Ex. Shew that $\frac{n-1}{n+1}+\frac{n-2}{n+2}+\frac{n-3}{n+3}+\cdots+\frac{n-n}{n+n}$

$= 2n\left\{\frac{1}{1\cdot2\cdot3}+\frac{1}{3\cdot4\cdot5}+\frac{1}{5\cdot6\cdot7}+\cdots+\frac{1}{(2n-1)(2n)(2n+1)}\right\}-\frac{n}{2n+1}$

रामानुजन् की नोटबुक का एक पृष्ठ

महत्वपूण कार्य किया है । पिछले करीब 15 वर्षों से वे रामानुजन् की नोटबुकों के संपादन में जुटे हैं तथा अपनी संपादन-विधि के बारे में बताते हैं : ''यदि कोई सूत्र या प्रमेय नया प्रतीत होता है तो मैं उसके लिए उपपत्ति खोजने का प्रयास करता हूं । यदि कोई सूत्र या प्रमेय पहले से ज्ञात प्रतीत होता है तो मैं उसके स्रोत खोजता हूं । परंतु मेरा अधिकांश समय नोटबुकों के उन परिणामों की उपपत्तियां खोजने में जाता है जो नए हैं और जिनकी उपपत्तियां अभी तक खोजी नहीं गई हैं ।'' उनके द्वारा सुसंपादित रामानुजन् की नोटबुकों का प्रथम खंड 1985 में प्रकाशित हुआ तथा शेष पर कार्य चल रहा है ।

भारत लौटने पर अपने जीवन के अंतिम वर्ष में रामानुजन् ने तपेदिक की भयंकर व्याधि की पीड़ा झेलते हुए भी अत्यंत महत्वपूर्ण गवेषणाएं की थीं । उनकी मृत्यु के बाद उनके उस दौर के **मॉक-थीटा फंक्शन** से संबंधित हस्तलेख पहले मद्रास विश्वविद्यालय में जमा हुए थे और बाद में प्रो. हार्डी के जरिए डा. वाटसन के पास पहुंचे । डा. वाटसन के देहांत के बाद रामानुजन् के वे हस्तलेख, कुल 130 पृष्ठ, ट्रिनिटी कालेज के ग्रंथालय में जमा हुए, जिन्हें पेंसलवेन्या स्टेट विश्वविद्यालय के डा. जार्ज ई. एन्ड्रूज ने 1976 ई. में पुनः 'खोज' निकाला ।

इस तथाकथित 'विलुप्त नोटबुक' में रामानुजन् ने कुछ विशिष्ट श्रेणियों के बारे में जल्दी-जल्दी में करीब 600 परिणाम प्रस्तुत किए हैं, पर उनकी उपपत्तियां नहीं दी हैं । विस्कांसिन विश्वविद्यालय के गणितज्ञ डा. रिचर्ड आस्की लिखते हैं, ''मृत्युशय्या पर लेटे-लेटे सालभर में किया गया रामानुजन् का यह कार्य किसी बहुत बड़े गणितज्ञ के पूरे जीवनभर के कार्य के बराबर है । सहसा यकीन नहीं होता कि उन्होंने अपनी उस दशा में यह सारा कार्य किया । यदि किसी उपन्यास में ऐसा विवरण प्रस्तुत किया जाता तो उस पर कोई भी विश्वास नहीं करता ।''

रामानुजन् की नोटबुकों की यह भव्य विरासत आगामी अनेक दशकों तक देश-विदेश के अनेक गणितज्ञों के लिए खोजबीन का विषय बनी रहेगी, और यह बिल्कुल ठीक ही है कि रामानुजन् को 'गणितज्ञों का गणितज्ञ' कहा जाता है ।

रामानुजन् इंग्लैंड की प्रतिकूल जलवायु में भी दक्षिण भारतीय पद्धति का अपना शाकाहारी भोजन स्वयं पकाते थे । रात-दिन अनुसंधान-कार्य में जुटे रहते थे । अंत में वे तपेदिक के मरीज बन गए । इंग्लैंड के अस्पतालों में उनका इलाज हुआ । कुछ स्वस्थ होने पर 1919 ई. में वे भारत लौटे । यहां एक साल तक उनका इलाज होता रहा, पर कोई लाभ नहीं हुआ । 26 अप्रैल, 1920 को मद्रास में, 32 साल की छोटी आयु में, गणित की इस महान भारतीय प्रतिभा ने अंतिम सांस ली ।

रामानुजन्: इंग्लैंड में

रामानुजन् और हार्डी का सहयोग आधुनिक गणित के इतिहास का एक अद्भुत अध्याय है। दोनों की शिक्षा-दीक्षा में जमीन-आसमान का अंतर था। हार्डी रामानुजन् से दस साल बड़े थे। उन्होंने विधिवत शिक्षा प्राप्त की थी। हार्डी आजन्म अविवाहित रहे। रामानुजन् आस्तिक थे, तो हार्डी घोर नास्तिक। रामानुजन् की मृत्यु के 27 साल बाद, दिसम्बर 1947 में, हार्डी का देहांत हुआ।

परंतु दोनों ही विशुद्ध गणित के आराधक थे। हार्डी का तो यहां तक कहना था कि वही गणित सुंदर और सर्वोत्तम है जो कभी उपयोगी न बने। लेकिन गणित के बारे में सबसे विलक्षण बात यह है कि सिर्फ तार्किक चिंतन से उपजा हुआ तथाकथित विशुद्ध गणित भी देर-सवेर उपयोगी बनता जाता है, भौतिक घटनाओं पर लागू होता है। हार्डी और रामानुजन् दोनों का गणित अब शनैः-शनैः उपयोगी बनता जा रहा है। विश्वोत्पत्ति के एक नए सिद्धांत (स्ट्रिंग थ्योरी) में विभाजन-सिद्धांत का उपयोग हुआ है। कुछ सांख्यिकीय विश्लेषणों में भी इन दोनों गणितज्ञों की गवेषणाएं उपयोगी सिद्ध हुई हैं। रामानुजन् ने वृत्त की परिधि और व्यास के अनुपात (पाई) के अधिकाधिक शुद्ध मान प्राप्त करने के लिए अनेक सूत्र प्रस्तुत किए हैं। ये सूत्र अब कम्प्यूटर के जरिए 'पाई' के लाखों दशमलव स्थानों तक शुद्ध मान ज्ञात करने के लिए कारगर 'अलगोरिथम' सिद्ध हो रहे हैं।[12] रामानुजन् की गवेषणाओं का महत्व दिनोंदिन बढ़ता ही जाएगा।

प्राचीन भारत में गणित के अध्ययन को सर्वोपरि महत्व दिया गया था। सभी वेदांग-शास्त्रों में गणित का स्थान सबसे ऊपर माना गया था—**गणितं मूर्धनि स्थितम्।**

जैन शास्त्रों ने भी लेखन-कला के बाद गणित को ही प्रधान माना है—**लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ।** नौवीं सदी के जैन गणितज्ञ **महावीराचार्य** ने तो यहां तक कहा है कि तीनों लोकों में जो समस्त चराचर वस्तुएं हैं उनका अस्तित्व गणित से पृथक नहीं है। सचमुच, गणित के बिना इस भौतिक जगत को ठीक से समझना और मानव-जीवन को समृद्ध बनाना कतई संभव नहीं है।

पुराणपंथी के कारण जब हमारे देश में शास्त्रों और शिल्पों में निरंतर सुधार करते चलने की परंपरा कुंठित हो गई, तो भास्कराचार्य (1150 ई.) के बाद से भारतीय गणित का विकास अवरुद्ध हो गया। यूरोप के आधुनिक उन्नत गणित के संपर्क में आने पर पहली बार जिस भारतीय गणितज्ञ ने अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाया वे थे — श्रीनिवास रामानुजन्। गणित के इतिहासकार **हर्बर्ट टर्नबुल** ने लिखा है —"रामानुजन् की गवेषणाओं से गणित में एक नए युग का सूत्रपात हुआ। भारत ने समय-समय पर महान प्रतिभा वाले गणितज्ञों को जन्म दिया है··· लेकिन यदि महानता के निरपेक्ष मानदंड से परखा जाए, तो पूर्व के देशों के सभी गणितज्ञों में रामानुजन् की प्रतिभा सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होती है।"

सहायक ग्रंथ

1. हार्डी, शेषू अय्यर और विल्सन — **कॉलेक्टेड पेपर्स आफ श्रीनिवास रामानुजन्**, चेल्सी पब्लिशिंग कंपनी, न्यूयार्क 1962, (सर्वप्रथम कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस से 1927 में प्रकाशित हुए।)
2. जी. एच. हार्डी — **रामानुजन् : ट्वेल्व लेक्चर्स**, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, नया चेल्सी संस्करण, न्यूयार्क
3. एस. आर. रंगनाथन् — **रामानुजन् : द मैन एंड द मैथेमेटिशियन**, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई 1967
4. सी. पी. स्नो — **वेरायटी आफ मेन में जी. एच. हार्डी** लेख
5. जेम्स आर. न्यूमान — **द वर्ड आफ मैथेमेटिक्स** (चार भाग), न्यूयार्क 1956
6. एस. दास गुप्ता — **π — एन अनएंडिंग स्टोरी इन मैथेमेटिक्स**, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली 1990
7. सुरेश राम — **श्रीनिवास रामानुजन्**, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली 1972
8. संपादित — **रामानुजन् : लेटर्स एंड रेमिनीसेंसेज**, रामानुजन् मेमोरियल नंबर, भाग 1 (1963)

   संपादित — **रामानुजन् : एन इंस्पिरेशन**, रामानुजन् मेमोरियल नंबर, भाग 2 (1967), दोनों भागों के प्रकाशक : द मुथियालपेट हाईस्कूल, मद्रास।

   रामानुजन् की जन्म-शताब्दी के अवसर पर, 1987 में **साइंस टुडे, साइंस रिपोर्टर, साइंस एज** आदि कई पत्रिकाओं में रामानुजन् के बारे में उपयोगी लेख प्रकाशित हुए।

   रामानुजन् की तीन नोटबुकों का फोटो-संस्करण, दो जिल्दों में, 1957 ई. में टाटा इंस्टीट्यूट आफ फंडामेंटल रिसर्च, बंबई से प्रकाशित हुआ, मगर मुश्किल से ही उपलब्ध है। मुझे ये दो जिल्दें भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी के ग्रंथालय में देखने को मिलीं।

   ताज़ी जानकारी के अनुसार रामानुजन् के जीवन और कृतित्व के बारे में एक नया ग्रंथ प्रकाशित हुआ है : रॉबर्ट कानिगेल — **द मैन हू न्यू इन्फिनिटी : ए लाइफ आफ द**

जीनियस रामानुजन्, चार्लेस स्क्राइबनेर्स सन्स, न्यूयार्क 1991, पृष्ठ संख्या 438. मैंने इस ग्रंथ की केवल समीक्षा देखी है (द हिन्दू, 29 सितंबर 1991) ।

संदर्भ और टिप्पणियां

1. रामानुजन् की जन्म-शताब्दी (दिसंबर 1987) के अवसर पर मैंने दो प्रमुख लेख लिखे थे — 'महान गणितज्ञ रामानुजन्' (नवभारत टाइम्स) और 'रामानुजन् का गणित' (विज्ञान प्रगति) । प्रस्तुत लेख में, विस्तृत टिप्पणियां देकर, उन दोनों लेखों का उपयोग किया गया है । इसलिए इसमें कुछ बातों की पुनरावृत्ति भी हो गई है । इसी ग्रंथ की पहले की भी एक-दो घटनाएं दोहराई गई हैं ।

    रामानुजन् का सही नाम नकारांत-हलंत है, न कि मकारांत ।

    श्रीनिवास (अय्यंगार), रामानुजन् के पिता का नाम है । दक्षिण भारत में पिता का नाम पहले लिखने की प्रथा है ।

2. गणित-जगत के लिए रामानुजन् की 'खोज' डा. हार्डी ने ही की थी । इंग्लैंड में वे रामानुजन् के मार्गदर्शक रहे । डा. हार्डी का थोड़ा-थोड़ा परिचय आगे भी मिलता जाएगा, टिप्पणियों में भी ।

    गॉडफ्रे हेरोल्ड हार्डी का जन्म सर्रे (इंग्लैंड) में फरवरी 1877 में हुआ । उनके माता-पिता अध्यापक थे और गणित में दिलचस्पी रखते थे । हार्डी की पढ़ाई विंचेस्टर और कैम्ब्रिज में हुई । बाद में लंबे समय तक कैम्ब्रिज में ही वे गणित के प्राध्यापक रहे। करीब एक दशक तक ऑक्सफोर्ड में भी प्राध्यापक रहे । उनके गणितीय अन्वेषण के मुख्य विषय थे — विश्लेषण और संख्या-सिद्धांत । डा. हार्डी के दो प्रसिद्ध ग्रंथ है : **ए कोर्स आफ प्यूअर मैथेमेटिक्स** और **रामानुजन्: ट्वेल्व लेक्चर्स** ।

    डा. हार्डी निरीश्वरवादी थे । गणितज्ञ टिट्शमार्श ने लिखा है कि हार्डी ईश्वर को अपना निजी शत्रु मानते थे । क्रिकेट, टेनिस आदि गेंद-खेलों में हार्डी की गहरी दिलचस्पी थी ।

    डा. हार्डी 1910 ई. में रॉयल सोसायटी के फैलो चुने गए थे । उनका निधन, रामानुजन् के निधन के 27 साल बाद, 1 दिसंबर, 1947 को हुआ । उसी दिन उन्हें रॉयल सोसायटी का सर्वोच्च सम्मान — **कोपले पदक** — दिया जाना था ।

    डा. हार्डी अपने जीवन की जिस चीज को सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानते थे वह थी लिटलवुड और रामानुजन् के साथ उनका सहयोग ।

    डा. हार्डी विशुद्ध गणित के आराधक थे । वे गणित के ऐसे किसी क्षेत्र में गवेषणा-कार्य करना नहीं चाहते थे जो उपयोगी हो । उन्होंने गणित संबंधी अपने दृष्टिकोण और कार्य को **ए मैथेमेटिशियन्स एपॉलाजी** (एक गणितज्ञ की क्षमायाचना) निबंध में व्यक्त किया है ।

    डा. हार्डी के बारे में अधिक जानकारी के लिए देखिए, सी. पी. स्नो की पुस्तक **वेरायटी आफ मेन** में 'जी. एच. हार्डी' लेख ।

3. डा. हार्डी के साथ **जे. इ. लिटलवुड** (जन्म : 1885) का सहयोग 1911 ई. में शुरू हुआ और पूरे 35 साल तक चला । दोनों ने मिलकर उच्च स्तर के करीब सौ शोध-निबंध

प्रकाशित किए । ये दोनों गणितज्ञ एक पूरी पीढ़ी की कालावधि तक विशुद्ध गणित के क्षेत्र में छाए रहे । हार्डी-लिटलवुड सहयोग गणित के इतिहास की एक अद्भुत घटना है।

हार्डी-रामानुजन् सहयोग की शुरुआत 1913 ई. में हुई । हार्डी को उस साल रामानुजन् का पहला पत्र (साथ में सूत्र) मिला, तो उन्होंने उनके बारे में सर्वप्रथम लिटलवुड की ही राय ली थी । काफी समय तक सोचने के बाद दोनों ही निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि रामानुजन् की प्रतिभा गौस और आयलर की कोटि की है ।

रामानुजन् को इंग्लैंड के निवासकाल में लिटलवुड का भी भरपूर सहयोग मिला । लिटलवुड ने रामानुजन् की सृजन-प्रक्रिया के बारे में काफी उपयोगी जानकारी दी है ।

4. यह न समझा जाए कि रामानुजन् के कृतित्व को अंग्रेजी में तो समझा जा सकता है, मगर हिंदी में समझाना कठिन है । जिन्होंने भी रामानुजन् की प्रकाशित नोटबुकें और शोध-निबंध देखे हैं वे भलीभांति जानते हैं कि उनमें भाषा की भूमिका गौण है । महत्व की चीज है संख्या-संकेत और जोड़, घटा, गुणन, भाग, वर्गमूल, समाकलन, संकलन आदि के लिए प्रयुक्त होने वाले सर्वमान्य गणितीय चिह्न । गणित के इन अंतर्राष्ट्रीय चिह्नों को कायम रखकर रामानुजन् के समूचे कृतित्व को हिंदी या तमिल में प्रस्तुत करने में कोई कठिनाई नहीं है । अंग्रेजी के 'प्राइम नंबर' शब्द को हिंदी में हम 'अभाज्य संख्या' लिखेंगे । आरंभ में 'प्राइम नंबर' शब्द को भी स्पष्ट करना होता है । तुलना में 'अभाज्य संख्या' शब्द ज्यादा स्पष्ट है । वस्तुतः रामानुजन् के कृतित्व के आकलन में कठिनाई विषय की है, भाषा की नहीं । रामानुजन् ने जर्मन या फ्रांसीसी भाषाएं नहीं सीखी थीं, पर इन भाषाओं में प्रकाशित अपने विषय के निबंधों को वे समझ लेते थे ।
5. रामानुजन् का यह पहला शोध-निबंध 1911 ई. में इंडियन मैथेमेटिकल सोसायटी के जर्नल में प्रकाशित हुआ था ।
6. देखिए लेख 'लिओन्हार्ड आयलर' में टिप्पणी संख्या 2.
7. कैम्ब्रिज के गणितज्ञ जॉर्ज शूब्रिज कार आरंभ में लंदन में एक प्राइवेट शिक्षक थे और करीब चालीस साल के होने पर ही कैम्ब्रिज आए थे । 'सिनॉप्सिस' ग्रंथ वस्तुतः कार के नोट्स पर आधारित है ।
8. रामानुजन् को पता नहीं था कि यह एक असंभव प्रयास है । लिंडेमान (1852-1939 ई.) ने 1882 ई. में प्रमाणित कर दिया था कि π (= परिधि/व्यास) एक अबीजीय संख्या है, इसलिए वृत्त को वर्ग में या वर्ग को वृत्त में बदलना संभव नहीं है ।
9. हार्डी ने लिखा है : "P(n) के अंकगणितीय गुणधर्मों के बारे में, जब n सम या विषम हो, तो बहुत कम जानकारी मिल पाई है । रामानुजन् पहले, और अब तक के एकमात्र, गणितज्ञ हैं जिन्होंने ऐसे गुणधर्म खोजे हैं । उन्होंने ये प्रमेय प्रथमतः महज अवलोकन करके प्राप्त किए हैं ।"
10. प्रायः बताया जाता है कि रामानुजन् रॉयल सोसायटी के पहले भारतीय फैलो थे । मगर वस्तुस्थिति यह है कि रॉयल सोसायटी के पहले भारतीय फैलो **सर अर्दशिर करसेटजी** (1808-1877 ई.) थे, जो 1841 ई. में फैलो चुने गए थे । वे इंजीनियर और जहाज-निर्माता थे ।

11. व्यापक रूप में हाइपरज्यॉमेट्रिक श्रेणी है :

$$1+\frac{ab}{c} x \frac{a(a+1)b(b+1)x^2}{c(c+1)1 \times 2}+$$

$$\frac{a(a+1)(a+2)b(b+1)(b+2)x^3}{c(c+1)(c+2) \quad 1 \times 2 \times 3}+\ldots$$

महान गौस (1777-1855 ई.) ने पता लगाया था कि इस श्रेणी के अभिसारी (कन्वर्जेंट) होने के लिए a, b, c और x पर कौन-से प्रतिबंध लगाने होंगे।

रामानुजन् ने, 1914 ई. में इंग्लैंड जाने के पहले ही, हाइपरज्यॉमेट्रिक श्रेणी पर अपने गवेषणा-कार्य को लगभग पूरा कर लिया था। डॉ. हार्डी ने रामानुजन् के इस कार्य के लिए उपपत्तियां प्रस्तुत कीं और टिप्पणियां देकर उसे 1923 ई. में प्रकाशित किया। उसके बाद, रामानुजन् के कार्य से प्रेरणा पाकर, कई गणितज्ञों ने हाइपरज्यॉमेट्रिक श्रेणी के बारे में अपने शोध-निबंध प्रकाशित किए।

12. रामानुजन् ने π के सन्निकट (आसन्न) मान के लिए कई सूत्र खोजे। यूरोप में उनका जो पहला शोध-निबंध प्रकाशित हुआ, उसका शीर्षक था— प्रतिरूपक समीकरण और π के सन्निकट मान (मॉड्यूलर इक्वेशन्स एंड एप्रॉक्सिमेशन्स टु π)।

π के सन्निकट मान के लिए रामानुजन् के तीन सूत्र :

$$\frac{\pi}{2}\log 2 = 1+\frac{1}{2}\bullet\frac{1}{3^2}+\frac{1.3}{2.4}\bullet\frac{1}{5^2}+\ldots$$

$$\frac{105}{\pi^4}=(1+\frac{1}{2^4})(1+\frac{1}{3^4})(1+\frac{1}{5^4})\ldots$$

$$\frac{1}{2\pi\sqrt{2}}=\frac{1103}{99^2}+\frac{27493}{99^6}\bullet\frac{1}{2}\bullet\frac{1.3}{4^2}+\frac{53883}{99^{10}}\bullet\frac{1.3}{2.4}\bullet\frac{1.3.5.7}{9^2.8^2}\ldots$$

पिछले करीब चार दशकों से π के मान-प्राप्त करने के लिए कंप्यूटरों का उपयोग हो रहा है। सन् 1988 में एक जापानी सुपरकंप्यूटर का उपयोग करके **यासुमासा कानादा** ने, करीब 15 घंटों में π का शुद्ध मान 20,13,26,000 दशमलव स्थानों तक प्राप्त करके एक नया कीर्तिमान स्थापित किया था।

नई सूचना के अनुसार 1989 में कोलंबिया विश्वविद्यालय के डेविड चुद्नोवस्की और उनके भाई ग्रेगोरी ने मिलकर π का मान 1,01,11,96,691 दशमलव स्थानों तक प्राप्त किया। इसके लिए उन्होंने एक विशिष्ट समीकरण का सृजन किया और प्रोग्राम तैयार करके सुपरकंप्यूटरों का उपयोग किया। (देखिए, 2001 **(सांइस टुडे)**, मार्च 1991, 66-69)

π का मान इतने अधिक स्थानों तक प्राप्त करने के कई प्रयोजन हैं। गणितज्ञ π के इन लंबे मानों में संख्याओं के विविध गुणधर्मों की खोज करते हैं। अब सुपरकंप्यूटरों की क्षमता प्रायः इस परीक्षण से आंकी जाती है कि वे π का मान कितने दशमलव स्थानों तक कितने समय में प्रस्तुत कर देते हैं।

गणितज्ञ महिलाएं

हाइपेशिया

मारिया जाएताना आन्याजी

मार्क्वी एमिली दु शातले

सोफी जेरमी

मेरी सोमेरविले

सोफिया कोवालेवस्काया

एम्मी नोएथेर

पुरातन काल में, जब अभी पितृसत्ता के युग का आरंभ नहीं हुआ था, नारी ने मानव-समाज के उन्नयन में और कई विज्ञानों की नींव रखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। बच्चों की परवरिश की जिम्मेदारी उसके ऊपर थी, इसलिए शिशु-रोगों के कई सारे परंपरागत उपचार उसी ने खोजे होंगे। पाककर्म उसी के जिम्मे था। उसने, न केवल तरह-तरह की खाद्य वस्तुओं का चयन किया, अपितु आरंभ में मिट्टी के अनगढ़ बर्तन और टोकरियां भी उसी ने बनाई होंगी। रसायनशास्त्र की नींव नारी ने ही डाली है। आधुनिक रसायन को जन्म देनेवाले मध्ययुग के कीमियागरों की साधना नारी (रससाधिका) के सहयोग के बिना अधूरी रह जाती थी। कृषिकर्म की जननी नारी ही है।

आरंभिक ऋग्वैदिक समाज को अपनी आदिम साम्यवादी कबीलाई व्यवस्था का स्मरण था, इसलिए नारी को अभी काफी आजादी थी। **ऋग्वेद** में घोषा, विश्ववारा, लोपामुद्रा आदि कई ऋषिकाओं के नाम देखने को मिलते हैं। इन महिलाओं ने ऋग्वेद के अनेक सूक्तों की रचना की है।

मगर बाद में भारतीय समाज में नारी की वह स्थिति नहीं रही। नारी जाति के लिए ज्ञान-विज्ञान के दरवाजे एक प्रकार से बंद हो गए। प्राचीन भारत में रानियां हुईं, वीरांगनाएं हुईं, संत-कवयित्रियां हुईं, महिलाओं ने शिल्पों व तकनीकों के विकास में भी खूब योग दिया, मगर प्राचीन भारत की किसी वैज्ञानिक महिला के बारे में कहीं कोई जानकारी नहीं मिलती।

नारी के मामले में पितृसत्ता-प्रधान प्राचीन यूनानी समाज की भी यही स्थिति थी। देमोक्रितस्, प्लेटो, अरस्तू, आर्किमीदीज, यूक्लिड आदि महान वैज्ञानिकों को जन्म देनेवाली वैभवयुगीन यूनानी संस्कृति ने किसी भी महिला वैज्ञानिक को पैदा नहीं किया। ईसा की चौथी सदी में जब यूनानी विज्ञान लगभग निष्प्राण हो चुका था, तब एक अंतिम धड़कन के रूप में हमें सिकंदरिया के यूनानी विद्याकेंद्र में एक महिला वैज्ञानिक के दर्शन होते हैं। वह महिला थी **हाइपेशिया**—एक वैज्ञानिक पिता की पुत्री, एक गणितज्ञा, सिकंदरिया के विद्यापीठ में दर्शन की प्राध्यापिका। उसके एक जीवनीकार जोन तोलांद ने उसे "एक सर्वाधिक सुंदर, सर्वाधिक सदाचारी और सर्वाधिक प्रतिभासंपन्न महिला" कहा है।[1]

हाइपेशिया

(लगभग 400 ई.)

हाइपेशिया को संसार की पहली महिला गणितज्ञ होने का गौरव प्राप्त है। गणित के इतिहासकार उसके जीवन और कृतित्व का उल्लेख करना नहीं भूलते। इसलिए भी नहीं भूलते कि उसकी जीवनकथा बड़ी कारुणिक है। सिकंदरिया के ईसाइयों ने हाइपेशिया की घोर नारकीय तरीके से हत्या कर दी थी। यह 415

ई. की घटना है । हाइपेशिया की हत्या के साथ ही प्राचीन युनानी ज्ञान-विज्ञान का अवसान हो गया ।

हाइपेशिया का जन्म 370 ई. के आसपास मिस्र देश के प्रख्यात नगर सिकंदरिया में हुआ था । उसके पिता, सिकंदरियावासी थिओन, एक उच्च कोटि के गणितज्ञ थे । थिओन ने यूक्लिड (लगभग 300 ई. पू.) के ग्रंथ **ज्यामिति के मूलतत्व** का संपादन करके उसका एक नया संस्करण तैयार किया था । उनके इस संस्करण की उपलब्ध हस्तलिपियों के आधार पर यूक्लिड के 'मूलतत्व' का प्रामाणिक पाठ तैयार करने में आधुनिक विद्वानों को बड़ी मदद मिली है । थिओन ने सिकंदरिया के प्रख्यात ज्योतिषी तालेमी (ईसा की दूसरी सदी का मध्यकाल) के ज्योतिष-ग्रंथ (अल्मजिस्ती) का भी संपादन किया था । उन्होंने कुछ मौलिक कृतियां भी लिखीं और षाष्ठिक भिन्नों की सहायता से वर्गमूल ज्ञात करने का तरीका खोज निकाला ।[2]

ऐसे गणितज्ञ पिता की पुत्री थी हाइपेशिया । उसने गणित की शिक्षा अपने पिता से ही प्राप्त की थी । इस संदर्भ में हमें प्रख्यात भारतीय गणितज्ञ भास्कराचार्य (1150 ई.) और उनकी **लीलावती** का सहज ही स्मरण हो आता है । भास्कराचार्य की अंकगणित की पुस्तक का नाम 'लीलावती' है । मगर लीलावती कौन थी और उसका गणितीय कृतित्व क्या रहा, इसके बारे में कहीं कोई जानकारी नहीं मिलती हैं ।[3]

बताया जाता है कि हाइपेशिया ने कुछ समय तक एथेन्स में रहकर दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया था । सिकंदरिया लौटने पर उसे वहां के विद्यापीठ में दर्शन व गणित की प्राध्यापिका का पद मिला था । उसके भाषण बड़े चाव से सुने जाते थे । वह अपनी वाक्पटुता और मधुर वाणी के लिए खूब प्रसिद्ध थी ।

हाइपेशिया को एक गणितज्ञा के रूप में ज्यादा प्रसिद्धि मिली । वह सिकंदरिया के विद्यापीठ में गणित और ज्योतिष भी पढ़ाती थी । उसने सिकंदरिया के अंतिम महान गणितज्ञ **डायोफैंटस** (लगभग 260 ई.) की एक कृति पर टीका लिखी थी । डायोफैंटस की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति है **अरिथमेटिका** । इसी कृति के साथ यूनानी जगत में बीजगणित के अध्ययन का आरंभ हुआ था । मगर डायोफैंटस के बाद सोलहवीं सदी तक यूरोप में इस विषय का विकास नहीं हुआ । डोयोफैंटस की यह कृति मूल ग्रीक और लैटिन अनुवाद के साथ 1621 ई. में उपलब्ध हुई । प्रसिद्ध फ्रांसीसी गणितज्ञ **फर्मा** (1601-65 ई.) ने डायोफैंटस की इसी कृति से संख्या-सिद्धांत का अपना अध्ययन आरंभ किया था । ग्रंथ के हाशिए पर ही वे अपनी टिप्पणियां लिखते थे । इसी ग्रंथ के हाशिए पर फर्मा ने अपनी प्रसिद्ध टिप्पणी लिखी थी : "यदि न का पूर्णांक मान 2

डायोफैंटस (लगभग 260 ई.) की यूनानी कृति 'अरिथमेटिका' का एक अंश (14 वीं सदी की एक हस्तलिपि से)। नीचे: उसी कृति से बीजगणित से संबंधित एक सवाल का हल।

से अधिक हो, तो य, र तथा ल के पूर्णांकीय मानों के लिए समीकरण $य^{न} + र^{न} = ल^{न}$ संभव नहीं है।'' यह 'फर्मा का प्रमेय' अभी तक पूर्णतः प्रमाणित नहीं हो पाया है।

जानकारी मिलती है कि हाइपेशिया ने पेरगा-निवासी यूनानी ज्यामितिकार **एपोलोनियस** (लगभग 225 ई.पू.) की शांकव-गणित से संबंधित कृति पर भी टीका लिखी थी। यदि एक शंकु को विभिन्न प्रकार से काटा जाए, तो हमें वृत्त, दीर्घवृत्त, परवलय तथा अतिपरवलय नामक वक्र मिलते हैं। एपोलोनियस ने इन्हीं वक्रों का गणित प्रस्तुत किया था। मगर यह महत्वपूर्ण गणित करीब डेढ़ हजार साल तक उपेक्षित पड़ा रहा। पहली बार केपलर (1571-1630 ई.) ने शांकव-गणित का उपयोग करके सिद्ध किया कि सौर-मंडल के सभी ग्रह-उपग्रह दीर्घवृत्तीय कक्षाओं में परिक्रमा करते हैं।

हाइपेशिया की एक ज्योतिष-कृति के बारे में भी जानकारी मिलती है। संभवतः उसकी यह कृति सिकंदरिया के प्रख्यात ज्योतिषी **तालेमी** (लगभग 150 ई.) की ज्योतिष-सारणी पर लिखी गई टीका थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हाइपेशिया ने यूनानी जगत के तीन महान वैज्ञानिकों—एपोलोनियस, तालेमी और डायोफैंटस—की कृतियों पर टीकाएं लिखी थीं। मगर आज हाइपेशिया का कृतित्व उपलब्ध नहीं है। हाइपेशिया ने महत्व के कुछ यांत्रिक आविष्कार भी किए थे। इनमें मुख्य हैं—पानी के आसवन के लिए उपकरण, द्रवों का आपेक्षिक घनत्व बतानेवाला यंत्र और एस्ट्रोलैब (वलय यंत्र)।

हाइपेशिया सिकंदरिया के नवप्लातोनी शिक्षाकेंद्र की प्राचार्या थी। थियोसोफी से मिलती-जुलती इस रहस्यवादी-चैतन्यवादी विचारधारा का उदय रोमन साम्राज्य के अवसानकाल में ईसा की तीसरी सदी में हुआ था, सर्वप्रथम सिकंदरिया में। यह विचारधारा उदीयमान ईसाई धर्म की जबरदस्त प्रतिद्वंद्वी थी। फिर भला ईसाई मतावलम्बी हाइपेशिया को कैसे सहन करते? मार्च 415 ई. में एक दिन ईसाइयों की एक भीड़ ने सिकंदरिया की इस विदुषी महिला की हत्या कर डाली। अपने प्रतिद्वंद्वियों को नारकीय यातनाएं देकर जिंदा मार डालने के कई सारे तरीके ईसाइयों ने खोज लिए थे। जानकारी मिलती है कि सिकंदरिया के धर्माधिराज सिरील के भड़काने पर ईसाई साधुओं की भीड़ ने हाइपेशिया को रथ से उतारा, नंगा किया और तेज धार वाली बड़ी-बड़ी सीपियों से उसके शरीर का मांस काट-काटकर अंत में उसके तड़फड़ाते शरीरांगों को आग के हवाले कर दिया!

हाइपेशिया ने निश्चय ही अनेक योग्य शिष्य पैदा किए होंगे। उनमें साइनेसियस् नामक उसके शिष्य ने सर्वाधिक ख्याति अर्जित की। उसके पत्रों से ही हाइपेशिया के बारे में सर्वाधिक जानकारी मिलती है। आधुनिक युग में हाइपेशिया पर यूरोप की भाषाओं में कई ग्रंथ लिखे गए हैं। आंग्ल साहित्यकार चार्लेस किंगस्ले ने हाइपेशिया पर एक पूरा उपन्यास (लंदन 1853 ई.) ही लिखा है।[4]

हाइपेशिया प्राचीन यूनानी विज्ञान की अंतिम दीप्ति थी। उसकी शहादत के साथ यूनानी विज्ञान का अवसान हो जाता है!

मारिया जाएताना आन्याजी

(1718 - 1799 ई.)

हाइपेशिया के बलिदान के साथ प्राचीन यूनानी विज्ञान की इतिश्री हुई थी। इसी तरह, कहा जा सकता है कि इतालवी विचारक ज्यार्दानो ब्रूनो (1547-1600 ई.) की शहादत के साथ यूरोप में आधुनिक विज्ञान का श्रीगणेश हुआ। यूरोप के

नगरों में घूम-घूमकर कोपर्निकस के सूर्यकेंद्रवादी सिद्धांत का प्रचार करनेवाले ब्रूनो को ईसाई धर्म-न्यायालय के आदेश से 1600 ई. में रोम में जिंदा जला दिया गया था !

यूरोप में बौद्धिक नवजागरण की नई लहर सर्वप्रथम इटली में ही उठी थी । सत्रहवीं-अठारहवीं सदी में इटली में कई ऐसी विदुषी महिलाएं हुईं जिनकी विज्ञान और गणित में गहरी दिलचस्पी थी । इनमें सबसे अधिक गौरव मिला महिला गणितज्ञा **मारिया जाएताना आन्याजी** को ।[5]

आन्याजी का जन्म इटली के मिलान नगर में 16 मार्च, 1718 को हुआ था । बचपन में ही उसने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया । पांच साल की होने पर वह फ्रांसीसी भाषा अच्छी तरह बोलने लग गई थी । छह साल की मारिया ग्रीक से लैटिन में अनुवाद करने लगी थी और नौ साल की होने पर वह नारी के अधिकार के बारे में लैटिन में तैयार किए गए भाषणों को अपने नगरवासियों के सन्मुख प्रस्तुत करने लगी थी । उसने जर्मन, स्पेनी तथा हिब्रू भाषाएं भी सीखीं ।

मगर मारिया आन्याजी को सर्वाधिक ख्याति उच्च गणित के क्षेत्र में उसके कार्य के लिए मिली । वह बीस साल की आयु में विश्लेषण-जैसे नए विषय पर एक बड़ा ग्रंथ लिखने में जुट गई थी । दो खंडों में प्रकाशित इस ग्रंथ का शीर्षक है : **इतालवी तरुणों के उपयोग के लिए विश्लेषण का पाठ्यक्रम** । रात-दिन लगातार परिश्रम करते रहने पर भी यह ग्रंथ तैयार करने में आन्याजी को पूरे दस साल लगे ।

मारिया आन्याजी निद्राचारिणी थी । दिनभर किसी कठिन गणितीय सवाल पर काम करने के बाद रात को जब वह गहरी नींद सो जाती, तब भी उसकी अंतःचेतना में वह सवाल मंडराता रहता था । अक्सर वह निद्रावस्था में ही बिस्तर से उठती, अपने अध्ययन-कक्ष में पहुंचती, सवाल के हल को कागज पर उतारती और तदनंतर शयनकक्ष में लौट आकर सो जाती । दूसरे दिन मेज पर हल किए गए उस सवाल को वह देखती, तो उसे स्वयं बड़ा आश्चर्य होता था ।

भारतीय गणितज्ञ रामानुजन् के साथ भी कुछ-कुछ ऐसा ही होता था । वे निद्राचारी तो नहीं थे, मगर उन्हें कई सवालों के हल स्वप्नावस्था में ही मिल जाते थे, जिन्हें वे सुबह उठने पर कागज पर उतार लेते थे । यह सब अंतःचेतना का 'चमत्कार' है । मगर रामानुजन् देवी-देवताओं के चमत्कारों में भी आस्था रखते थे, इसलिए कहते थे कि नामगिरि देवी सपनों में आकर सवाल हल करने में उनकी मदद करती है !

आन्याजी का गणितीय विश्लेषण का ग्रंथ दो खंडों में 1748 ई. में प्रकाशित हुआ । उसकी कीर्ति सारे यूरोप में फैल गई । फ्रांस की विज्ञान अकादमी ने आन्याजी के कृतित्व की भूरि-भूरि प्रशंसा की । महिलाओं को सदस्य न बनाने

का नियम न होता, तो अकादमी आन्याजी को सहज ही सदस्य चुने लेती ।

मारिया जाएताना आन्याजी
(1718-1799 ई.)

आन्याजी की गणितीय प्रतिभा की खूब स्तुति हुई । पोप बेनेडिक्ट-चतुर्दश ने आन्याजी को न केवल उपहार दिए, बल्कि बोलोना विश्वविद्यालय में उच्च गणित की प्राध्यापिका बनने के लिए उसके सामने स्वयं ही प्रस्ताव भी रखा । उस समय एक महिला के लिए यह एक बहुत बड़ा सम्मान था । यह पद स्वीकार करने के लिए बहुतों ने उससे आग्रह किया, अनुरोध किया । मगर अपनी प्रिय नगरी मिलान को छोड़ने के लिए वह तैयार नहीं हुई । इतना ही नहीं, उसका ग्रंथ प्रकाशित हो जाने के बाद उसने गणितीय अन्वेषण का कार्य एकदम छोड़ दिया और जीवन के शेष करीब पचास साल दीन-दुखियों और वयोवृद्धों की सेवा करने में गुजारे । 9 जनवरी, 1799 को, 81 साल की दीर्घायु में मारिया आन्याजी का देहांत हुआ ।

मारिया आन्याजी ने तीस साल की तरुणावस्था में गणित का अध्ययन भले ही छोड़ दिया हो, मगर वैश्लेषिक ज्यामिति से संबंधित उसकी अनुपम कृति यूरोप में ख्याति अर्जित करती रही । उसकी कृति के दूसरे खंड का 1775 ई. में फ्रांसीसी में अनुवाद प्रकाशित हुआ । इतना ही नहीं, आन्याजी की कृति इतनी महत्वपूर्ण थी कि उसके दोनों खंडों का 1801 ई. में अंग्रेजी में भी अनुवाद प्रकाशित हुआ । इटली में भी गणित के इस ग्रंथ का खूब गौरव हुआ । इसे एक क्लासिक कृति माना गया और इतालवी भाषा के बृहद् मानक कोश की तैयारी में इसका उपयोग किया गया ।

वैश्लेषिक ज्यामिति के अध्ययन में एक विशिष्ट वक्र के साथ आन्याजी का नाम सदा के लिए जुड़ गया है, मगर बड़े विचित्र रूप में । उस वक्र का नाम है — **आन्याजी की डाइन** (विच आफ आन्याजी) ! इस वक्र का समीकरण है : $क्ष^2 य + र^2 य - र^3 = 0$, जहां क्ष तथा य निर्देशांक हैं और र वक्र का निर्माण करनेवाले वृत्त का व्यास है ।

सर्वप्रथम गणितज्ञ फर्मा ने इस वक्र का समीकरण प्रस्तुत किया था । फिर इतालवी गणितज्ञ ग्रांदी ने 1718 ई. में इस वक्र के कई गुणधर्मों को स्पष्ट किया और इसे **वेर्सियेरा** नाम दिया । इतालवी में इस शब्द का अर्थ है **डाइन** (विच) ! आगे आन्याजी ने इस वक्र की रचना के लिए एक सरल विधि प्रस्तुत

की, तो उसका नाम इसके साथ जुड़ गया और तब से इसे 'आन्याजी की डाइन' के नाम से ही जाना जाता है। परंतु स्पष्ट है कि यह नाम न्यायोचित नहीं है।[6] इसी तरह एक अन्य वक्र का नाम है : शैतान का वक्र (डेविल्ज कर्व) !

जो भी हो, मारिया आन्याजी एक प्रतिभासम्पन्न महिला थी। यदि वह गणितीय अनुसंधान को सतत जारी रखती, तो गणित के इतिहास में अपने समकालीन बर्नूली-बंधु, आयलर, लाग्रांज, लापलास आदि गणिजज्ञों-जैसा उच्च स्थान प्राप्त करने में पूर्णतः समर्थ थी।

मार्क्वी एमिली दु शातले

(1706-1749 ई.)

जिस साल मारिया आन्याजी की कृति प्रकाशित हुई, उसी साल (1748 ई. में) फ्रांस की एक महिला-गणितज्ञा न्यूटन (1642-1727 ई.) की महान कृति **प्रिंसिपिया** का लैटिन से फ्रांसीसी में टिप्पणियों-सहित अनुवाद करने में जुटी हुई थी। अगले वर्ष, 43 साल की आयु में, सितंबर 1749 में उसकी मृत्यु हुई। मगर मृत्यु के कुछ दिन पहले उसने 'प्रिंसिपिया' के अनुवाद का कार्य पूरा कर लिया था। उस महिला-गणितज्ञा का नाम है : **एमिली दु शातले**।

एमिली का जन्म फ्रांस के एक धनाढ्य कुल में 17 दिसंबर, 1706 को हुआ था। उसने अपने पिता बैरन दे ब्रेतेयू से लैटिन, ग्रीक और इतालवी भाषाएं सीखीं। बाद में उसने गणित और भौतिकी का भी गहन अध्ययन किया। उसने यूक्लिड और न्यूटन की कृतियों को पढ़ा। उसने क्लाइरो[7], मौपेर्त्यू[8], कोएनिंग और योहान (ज्यां) बर्नूली-जैसे समकालीन श्रेष्ठ गणितज्ञों से उच्च गणित का ज्ञान प्राप्त किया था। उसमें गजब की गणना-शक्ति थी। नौ-नौ अंकों की दो संख्याओं का गुणन वह दिमाग में ही कर लेती थी। प्रख्यात भौतिकीविद **आंद्रे मेरी एम्पियर** (1775-1836 ई.) ने एमिली को 'ज्यामिति की प्रतिभा' कहा था। एमिली केवल प्रतिभा की ही नहीं, मोहक सौंदर्य की भी धनी थी।

उन्नीस साल की आयु में एमिली का मार्क्वी दु शातले-लोमां के साथ विवाह हुआ। फिर भी फ्रांस के विख्यात व्यंग्यकार-विचारक **वाल्तेयर** (1694-1778 ई.) के साथ कोमल संबंध स्थापित करने और उसे अपना सर्वस्व समर्पित कर देने में उसे कोई कठिनाई नहीं हुई। एमिली के एक भव्य प्रासाद में दोनों चौदह साल तक साथ-साथ रहे। दोनों ने मिलकर अध्ययन किया, लेखन-कार्य किया, प्यार किया, और दोनों में झगड़े भी हुए। मगर इन संबंधों का विज्ञान व गणित को महती लाभ हुआ। वाल्तेयर ने उन्हीं दिनों **न्यूटनीय दर्शन का सारतत्व** नामक ग्रंथ लिखा और न्यूटन के सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार किया। और, एमिली न्यूटन

मार्क्वी एमिली दु शातले (1706-1749 ई.)

वाल्तेयर (1694-1778 ई.)

की महान कृति 'प्रिंसिपिया' का फ्रांसीसी में अनुवाद करने में जुट गई।

वाल्तेयर वैज्ञानिक नहीं था, फिर भी गणित के इतिहास में उसका नाम न्यूटन के साथ सदैव जुड़ा रहेगा। न्यूटन की अन्त्येष्टि (20 मार्च, 1727) के दिन वाल्तेयर लंदन में ही था । वह न्यूटनीय सिद्धांतों से बड़ा प्रभावित हुआ था । यूरोप में न्यूटन के दर्शन का प्रचार करने में वाल्तेयर ने सर्वाधिक महत्व की भूमिका अदा की । बर्ट्रांण्ड रसेल ने लिखा है : ''वाल्तेयर की कृति 'दार्शनिक पत्रावली' के प्रकाशन के बाद ही न्यूटन लोकप्रिय हुए, उनकी लोकप्रियता चरम सीमा पर पहुंच गई ।'' विज्ञान के प्रख्यात इतिहासकार **चार्ल्स सिंगेर** ने भी लिखा है : ''वाल्तेयर के मनमोहक और सुस्पष्ट विवेचन के कारण ही न्यूटनीय दर्शन को वास्तविक विजय मिली, और अरस्तू के दर्शन को अंतिम रूप से दफ़ना देना संभव हुआ।''

मगर इस कार्य में वाल्तेयर अकेला नहीं था । इस कार्य में उसे एमिली दु शातले का भी सहयोग मिला । एमिली ने न्यूटन की 'प्रिंसिपिया' का लैटिन से फ्रांसीसी में अनुवाद किया और साथ में अपनी ओर से टिप्पणियां भी जोड़ीं । वाल्तेयर से मनमुटाव हो जाने पर भी एमिली ने अनुवाद का कार्य जारी रखा और मृत्यु के कुछ दिन पहले इस जटिल कार्य को पूरा कर डाला । एमिली का किया हुआ 'प्रिंसिपिया' का यह अनुवाद उसकी मृत्यु (1749 ई.) के दस साल बाद 1759 ई. में पेरिस से प्रकाशित हुआ । एमिली ने

भौतिक विज्ञान के बारे में भी एक पुस्तक लिखी ।

यह सही है कि एमिली भोग-विलास का जीवन पसंद करती थी, मगर योहान (ज्यां) बर्नूली ने ठीक ही कहा था कि उसे एक अच्छे गणितज्ञ का दिमाग मिला था । लैटिन में लिखी गई 'प्रिंसिपिया' जैसी जटिल कृति को समझना और उसका अपनी भाषा में अनुवाद करना एक श्रेष्ठ गणितज्ञ के लिए ही संभव था ।

एमिली दु शातले एक अत्यंत साहसी और स्वाभिमानी महिला थी । एक बार उसने प्रशिया के सम्राट फ्रेडरिक महान (1712-1786 ई.) को लिखा था : "मुझे केवल मेरी अपनी योग्यता या अयोग्यता के आधार पर ही परखो । मुझे किसी महान सेनापति या किसी प्रख्यात विद्वान या किसी ख्यातिप्राप्त लेखक या फ्रांस के राजदरबार के किसी चमकीले सितारे की पिछलगी मत समझो । मैं स्वयं में एक परिपूर्ण व्यक्ति हूं। मैं जो हूं, जो कहती हूं, जो करती हूं, उन सबके लिए मैं अकेली ही जिम्मेवार हूं। इस दुनिया में मुझसे भी अधिक ज्ञानी दार्शनिक-चिंतक हो सकते हैं, हालांकि अभी तक उनसे मेरी मुलाकात नहीं हुई है । वे भी कमजोर व्यक्ति हैं और उनमें भी दोष हैं । अतः जब मैं अपने गुणों को जोड़कर देखती हूं, तो दावे के साथ कह सकती हूं कि मैं किसी से भी घटिया नहीं हूं ।"

सोफी जेरमी

(1776-1831 ई.)

महान गणितज्ञ कार्ल फ्रेडरिक गौस (1777-1855 ई.) क्वचित् ही किसी की स्तुति करते थे । अतः जब हम देखते हैं कि गौस ने एक गणितज्ञ की खूब प्रशंसा की, उसके साथ सालों तक पत्र-व्यवहार किया और उसे अपने गॉटिंगेन विश्वविद्यालय से 'डाक्टर' की उपाधि दिलाने की भी कोशिश की, तो स्पष्ट है कि वह निश्चय ही एक श्रेष्ठ गणितज्ञ रहा होगा ।

मगर गौस को लंबे समय तक यह पता नहीं चला कि वह गणितज्ञ वस्तुतः एक महिला है । दोनों एक-दूसरे से कभी नहीं मिले । वह गणितज्ञ-महिला **ले ब्लां'** के छद्म नाम से गौस को पत्र लिखती थी । गौस को काफी बाद में जाकर ही पता चला कि 'श्रीमान ले ब्लां' वस्तुतः एक महिला है और उसका असली नाम है—**सोफी जेरमी** ।

वह जमाना ही दूसरा था । यदि कोई महिला विज्ञान और गणित के अध्ययन में दिलचस्पी दिखाती तो प्रायः उसका मखौल उड़ाया जाता था । आमतौर पर यही समझा जाता था कि विज्ञान का अध्ययन महिलाओं के बस की बात नहीं है । इसलिए आरंभ में सोफी जेरमी ने पुरुष के छद्म नाम से ही गौस, लेजंद्र और लाग्रांज-जैसे समकालीन दिग्गज गणितज्ञों के साथ पत्र-व्यवहार किया था ।

सोफी जेरमी एक अत्यंत प्रतिभाशाली महिला-गणितज्ञ थी । उसने ध्वनि-विज्ञान, प्रत्यास्थता (इलेस्टिसिटी) के गणितीय सिद्धांत तथा संख्या-सिद्धांत के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण खोजकार्य किया । उसकी गणना आधुनिक गणित-भौतिकी के संस्थापकों में की जाती है ।

गणित का अध्ययन जारी रखने में और इस क्षेत्र में सफलताएं प्राप्त करने में सोफी को शुरू से ही अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । सर्वप्रथम, गणित की उसकी पढ़ाई में उसके माता-पिता ही बाधक बने । वे कहते : ''एक लड़की के लिए ज्यामिति पढ़ने का क्या लाभ ?'' मगर सोफी ने अपने ही बल पर गणित का अध्ययन जारी रखा । वह रात-दिन गणित में ही खोई रहती थी । माता-पिता को उसके स्वास्थ्य की चिंता हुई । वे प्रायः उसके कमरे में से रोशनी और आग तापने के साधन हटा लेते थे, ताकि वह रात को बिस्तर से उठकर गणित न पढ़ने लग जाए । यहां तक कि रात को उसके लेट जाने पर उसके कपड़े भी वहां से हटा लिए जाते थे ! मगर उसने हिम्मत नहीं छोड़ी । जब सब लोग सो जाते, तब वह उठती और रजाई-कंबल से अपने को लपेटकर अपने प्रिय विषय के अध्ययन में जुट जाती । अंततः उसके माता-पिता ने हार मान ली और उसे गणित के अध्ययन की छूट दे दी । आगे जाकर सोफी ने लाग्राँज (1736-1813 ई.) की देखरेख में गणित का गहन अध्ययन किया ।

नेपोलियन के आदेश से फ्रांस की विज्ञान अकादमी ने एक समस्या का हल प्रस्तुत करने के लिए पुरस्कार की घोषणा की थी । समस्या थी : ''प्रत्यास्थ (इलेस्टिक) सतहों के कंपन का गणितीय सिद्धांत प्रस्तुत करना और प्रयोगदत्त परिणामों से उसकी तुलना करना ।'' लाग्राँज ने कहा कि इस समस्या का हल फिलहाल संभव नहीं है, क्योंकि इसके लिए आवश्यक गणित उपलब्ध नहीं है । नतीजा यह रहा कि, सिवाय एक गणितज्ञा के, किसी ने भी इस समस्या को हल करने का प्रयास नहीं किया । वह गणितज्ञा थी — सोफी जेरमी ।

यूरोप के वैज्ञानिकों को जब पता चला कि फ्रांस की विज्ञान अकादमी का **ग्राँ प्रि** पुरस्कार एक महिला को मिला, तो वे चकित रह गए । यूरोप के अनेक गणितज्ञों ने सोफी को बधाई-संदेश भेजे । उसके बाद देलांबर, फूरिए, कोशी, एम्पियर आदि दिग्गजों के साथ उसके वैज्ञानिक संबंध स्थापित हुए । सोफी जेरमी का कंपायमान सतहों से संबंधित प्रबंध 1816 ई. में प्रकाशित हुआ, तो यूरोप के एक चोटी के गणितज्ञ के रूप में उसकी गणना होने लगी ।

मगर सोफी जेरमी को एक पुरुष-गणितज्ञ के समकक्ष सम्मान नहीं ही मिला । फ्रांस की विज्ञान अकादमी एक महिला को अपना सदस्य नहीं बना सकती थी । सोफी के सरकारी मृत्यु-प्रमाणपत्र में उसे ''छोटी वार्षिक आयवाली महिला'' कहा गया, न कि एक गणितज्ञा । पेरिस में आइफेल टॉवर खड़ा किया गया, तो

उसमें प्रयुक्त सामग्री की प्रत्यास्थता (इलेस्टिसिटी) पर विशेष ध्यान दिया गया था। इसलिए इस स्मारक पर 72 इंजीनियर-वैज्ञानिकों के नाम उत्कीर्ण कर दिए गए। मगर सोफी जेरमी के प्रत्यास्थता सिद्धांत का भरपूर उपयोग किए जाने पर भी आइफेल टॉवर की उसी सूची में उसका नाम शामिल नहीं किया गया।

गणितज्ञों के जीवन में निश्चय ही कुछ विशेषताएं होती हैं, कुछ ऐसी बातें होती हैं जो अन्य विषयों के विचारकों में प्रायः कम ही देखने को मिलती हैं। जैसे, अधिकांश गणितज्ञ 30-35 साल की उम्र तक अपना प्रमुख खोजकार्य कर चुके होते हैं। और, जब कोई महिला गणित के क्षेत्र में काम करती है तो वह, न केवल प्रखर प्रतिभा का, बल्कि घोर संघर्ष करने की अपनी अपूर्व क्षमता का भी परिचय देती है। आधुनिक युग की ऐसी ही कुछ प्रतिभाशाली महिलाओं ने प्रमाणित कर दिया है कि गणित केवल एक 'पुरुषोचित' विज्ञान नहीं है।

मेरी सोमेरविले

(1780-1872 ई.)

न्यूटन ने विश्व की यांत्रिकी को अपने 'प्रिंसिपिया' ग्रंथ में नए सिद्धांतों के साथ प्रस्तुत किया था। इस महान कृति में सिद्धांत तो नए थे, क्रांतिकारी थे, मगर इसे न्यूटन ने ज्यामिति के पुराने गणितीय ढांचे में ही प्रस्तुत किया था। न्यूटन ने कलन-गणित का भी सृजन किया था, मगर 'प्रिंसिपिया' में उन्होंने उसका इस्तेमाल नहीं किया। अतः 'प्रिंसिपिया' को एक काफी कठिन ग्रंथ माना जाता था। न्यूटन के सिद्धांतों का उपयोग करके विश्व-यांत्रिकी को नए कलन (वैश्लेषिक) गणित के ढांचे में प्रस्तुत करना आवश्यक था।

यह काम किया फ्रांस के महान गणितज्ञ लापलास (1749-1827 ई.) ने। लापलास ने वैश्लेषिक गणित का उपयोग करके 'विश्व-यांत्रिकी' के नाम से पांच खंडों में एक ग्रंथ लिखा। मगर यह ग्रंथ भी आसान नहीं है। लापलास का गणितीय विवेचन अत्यंत संक्षिप्त है। वे प्रायः ''यह स्पष्ट है कि...'' कहकर आगे बढ़ जाते हैं। इस ग्रंथ के अंग्रेजी अनुवादक नेथेइल बौडिच ने लिखा है : ''लापलास के ग्रंथ में जब भी 'यह स्पष्ट है कि...' से मेरा सामना होता है, तो मैं समझ जाता हूं कि विषय को स्पष्ट करने के लिए आगे कई घंटों तक माथापच्ची करनी होगी।''[10]

ऐसी जटिल कृति का अंग्रेजी में प्रामाणिक सार-संक्षेप प्रस्तुत किया एक महिला ने, **मेरी सोमेरविले** ने। फ्रांस की महिला गणितज्ञ मार्क्वी एमिली दु शातले ने न्यूटन की 'प्रिंसिपिया' का फ्रांसीसी में अनुवाद किया था। मेरी सोमेरविले ने लापलास की कृति 'विश्व-यांत्रिकी' का अंग्रेजी में सार-संक्षेप

प्रस्तुत किया । मेरी की यह पुस्तक इतनी अच्छी मानी गई कि इसे कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में पाठ्य-पुस्तक का स्थान मिला ।

मेरी सोमेरविले का जन्म 26 दिसंबर, 1780 को जेडबर्ग (स्कॉटलैंड) में उसके मामा और भावी ससुर थॉमस सोमेरविले की हवेली में हुआ था । उसके पिता सर विलियम फेयरफैक्स नौसेना में एडमिरल थे । ऐसी पारिवारिक पृष्ठभूमि के बावजूद मेरी को स्कूल की अच्छी शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला । उसे अपने ही प्रयास से ज्ञान अर्जित करना पड़ा ।

मेरी का पहली बार गणित से सामना तब हुआ, जब वह पंद्रह साल की थी । उसने फैशन की एक पत्रिका के एक पृष्ठ के अंत में गणित का एक सवाल देखा, जो उसे अंकगणित का प्रतीत हुआ । मगर पन्ना पलटने पर उसने देखा कि सवाल को कुछ विचित्र-सी रेखाओं और x और y जैसे अक्षरों में प्रस्तुत किया गया है । ''यह सब क्या है?'' मेरी ने किसी से पूछा । उसे बताया गया कि यह अल्जेब्रा (बीजगणित) है ।

तब से मेरी के मन में गणित के प्रति दिलचस्पी बढ़ी । उसने गणित पढ़ने का दृढ़ निश्चय कर लिया । मगर परिवार में ऐसा कोई नहीं था जो उसे गणित की पढ़ाई में मदद दे सके । उसने किसी तरह यूक्लिड की ज्यामिति और बीजगणित की एक पुस्तक प्राप्त की और स्वयं ही गहराई से उनका अध्ययन करने में जुट गई । मेरी की गणित की यह पढ़ाई उसके माता-पिता को पसंद नहीं थी, क्योंकि उनके मतानुसार यह पुरुषों के अध्ययन का विषय था ।

प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद मेरी ने अपना अध्ययन जारी रखा और बाद में अपने मामा की मदद से ग्रीक व लैटिन भाषाएं सीखीं।

चौबीस साल की आयु में, 1804 ई. में, लंदन के कैप्टन क्रेइग नामक एक रिश्तेदार से मेरी का विवाह हुआ । मगर दो साल बाद कैप्टन का देहांत हो गया, तब विधवा मेरी स्कॉटलैंड लौट आई और पुनः गणित व विज्ञान के अध्ययन में जुट गई । सन् 1812 में पुनः एक अन्य रिश्तेदार डा. विलियम सोमेरविले से उसका विवाह हुआ । तब पहली बार मेरी के लिए गणित की पुस्तकों का एक छोटा संग्रह उपलब्ध हुआ । तब वह नए उत्साह से गणित के अध्ययन में जुट गई । चार साल बाद, 1816 ई. में, मेरी अपने पति के साथ लंदन चली गई ।

लंदन में एक गणितज्ञ महिला के रूप में मेरी सोमेरविले की ख्याति फैलती गई । मार्च 1827 में मेरी को लार्ड ब्राउघम का एक पत्र मिला, जिसमें उससे अनुरोध किया गया था कि वह लापलास की कृति 'विश्व-यांत्रिकी' का अंग्रेजी पाठकों के लिए सार-संक्षेप प्रस्तुत कर दे । मेरी चकित रह गई । उसे लगा कि उसका स्वयं अर्जित ज्ञान इतना परिपूर्ण नहीं है कि वह लापलास की कृति को

अंग्रजी में प्रस्तुत कर सके । मगर जब उस पर इस कार्य के लिए अधिक जोर डाला गया, तब उसने इस शर्त पर काम करना स्वीकार किया कि पुस्तक यदि स्तरीय नहीं होगी तो पांडुलिपि को आग के हवाले कर दिया जाएगा ।

मेरी सोमेरविले ने एक साल के भीतर अपना ग्रंथ, जिसे **खगोल की यांत्रिकी** (सैलेस्टियल मैकेनिज्म आफ द हैवन्स : 1830 ई.) का नाम दिया गया, तैयार कर लिया । यह ग्रंथ महज एक अनुवाद नहीं था, बल्कि लगभग एक स्वतंत्र कृति थी । ग्रंथ के प्रकाशित होते ही सोमेरविले की कीर्ति तेजी से फैलती गई । **कैरोलिन हर्शेल**[11] के साथ मेरी सोमेरविले को भी रॉयल एस्ट्रोनॉमिकल सोसायटी का सम्मानित सदस्य चुना गया । कैरोलिन प्रख्यात खगोलविद **विलियम हर्शेल** (1738-1822 ई.) की बहन थी । उसने अपने भाई के खगोलीय अनुसंधानों में सहयोग दिया था और स्वयं भी कई धूमकेतुओं, नीहारिकाओं तथा तारा-गुच्छों की खोज की थी ।

मेरी सोमेरविले को यूरोप व अमरीका की कई वैज्ञानिक संस्थाओं ने अपना सदस्य चुना । शासन ने उसे 300 पौंड वार्षिक पेंशन देना तय किया । उसकी पुस्तक का अध्ययन उन विद्यार्थियों के लिए आवश्यक माना गया जो परीक्षा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करना चाहते हैं।

मेरी सोमेरविले ने बाद में और भी कई ग्रंथ लिखे; जैसे, **भौतिक विज्ञानों के संबंध** और **भौतिकीय भूगोल** । उसने वक्रों और सतहों के बारे में 246 पृष्ठों का एक गणितीय प्रबंध भी लिखा । अस्सी साल की आयु होने के बाद मेरी सोमेरविले ने एक और ग्रंथ लिखा । कई साल तक काम करते रहने के बाद तैयार हुआ यह ग्रंथ है—**आणविक और अ़तिसूक्ष्म का विज्ञान** । वह जीवन के अंतिम दिनों तक अध्ययन करती रही, लिखती रही । उसने अपना आत्म-चरित्र भी लिखा, जो उसकी मृत्यु के करीब एक साल बाद प्रकाशित हुआ (1873 ई.)।

मेरी सोमेरविले ने अपने जीवन के अंतिम दिन इटली में गुजारे । वहीं पर, 92 साल की सुदीर्घ आयु में, नेपल्स में 29 नवंबर, 1872 को उसका देहांत हुआ।

मेरी सोमेरविले ने सिद्ध कर दिया कि एक महिला स्वयं अपने बल पर गणित-जैसे जटिल विषय का अध्ययन कर सकती है, गृहस्थी संभाल सकती है और सुदीर्घ आयु भी प्राप्त कर सकती है ।

सोफिया कोवालेवस्काया

(1850-1891 ई.)

घटना 1888 ई. की है । फ्रांस की विज्ञान अकादमी ने वैज्ञानिकों के हल के लिए

एक समस्या प्रस्तुत की थी और उसके लिए **प्रि बोर्दी** नामक एक पुरस्कार की घोषणा की थी । समस्या थी : ''किसी ठोस पिंड का एक स्थिर बिंदु के चतुर्दिक् परिभ्रमण करने का सिद्धांत'' ।

सोफिया कोवालेवस्काया
(1850-1891 ई.)

इस पुरस्कार के लिए 15 प्रबंध प्राप्त हुए । प्रतियोगिता के नियम के अनुसार इन प्रबंधों पर लेखकों के नाम नहीं लिखे गए थे । प्रत्येक प्रबंध के साथ एक सीलबंद लिफाफा था, जिसमें एक कागज पर लेखक का नाम दर्ज था । प्रत्येक प्रबंध पर एक आदर्श-वाक्य लिखा गया था, और वही आदर्श-वाक्य संलग्न लिफाफे पर भी लिखा गया था । यह व्यवस्था इसलिए थी कि प्रबंध का मूल्यांकन करते समय निर्णायक-मंडल के सदस्य यह जान न पाएं कि उस प्रबंध का लेखक कौन है ।

अंततः, 15 प्रबंधों में से नं. 2 के प्रबंध को सर्वोत्तम हल के रूप में चुना गया। उस प्रबंध पर और उसके साथ के लिफाफे पर आदर्श-वाक्य लिखा हुआ था : **जो जानते हो, उसे कहो; जो करना चाहते हो, उसे करो; फिर जो भी होगा, देखा जाएगा ।**

सीलबंद लिफाफा खोला गया । भीतर प्रबंध के लेखक (लेखिका) का नाम था—सोफिया कोवालेवस्काया ।

प्रबंध उच्च स्तर का था, विशेष महत्व का था, इसलिए निर्णायक-मंडल के सुझाव पर पुरस्कार की राशि तीन हजार फ्रांक से बढ़ाकर पांच हजार फ्रांक कर दी गई । सोफिया कोवालेवस्काया ने एक ऐसे सवाल का नया हल प्रस्तुत किया था जिस पर पहले आयलर और लाग्रॉंज-जैसे महान गणितज्ञ काम कर चुके थे ।

बोर्दी पुरस्कार के लिए चुने गए सवाल का गणित और भौतिकी के क्षेत्रों में बड़ा महत्व है । एक स्थिर बिंदु के इर्द-गिर्द किसी ठोस पिंड की परिभ्रमण-गति को हम एक लट्टू की गति के रूप में आसानी से समझ सकते हैं । गाइरोस्कोप या गाइरो-कंपास के प्रयोग में भी इसी प्रकार की गति व्यक्त होती है । जहाज, हवाई जहाज और अब अंतरिक्षयानों की यात्राओं में भी गाइरोस्कोप का बहुत बड़ा महत्व है । दरअसल, बोर्दी पुरस्कार के लिए दी गई समस्या का पूर्ण हल अभी भी प्राप्त नहीं हुआ है । आज से करीब सौ साल पहले सोफिया

कोवालेवस्काया ने इस समस्या का अपने समय का सर्वोत्तम हल प्रस्तुत कर दिया था।

उस समय सोफिया स्टॉकहोम विश्वविद्यालय में गणित की प्राध्यापिका थी,

Institut de France.

Académie des Sciences.

Paris le 18 decembre 1888

Les Secrétaires perpétuels de l'Académie

à Madame Sophie de Kowalevsky à Stockholm

Madame,

Nous avons l'honneur de vous informer que l'Académie des Sciences vous a décerné le Prix Bordin (Perfectionner en un point important la théorie du mouvement d'un corps solide.)

Nous vous invitons Madame, à assister à la séance publique qui aura lieu le lundi 24 décembre courant à une heure précise, pour y entendre proclamer le résultat des concours, nous saisissons avec empressement cette occasion de vous offrir nos félicitations personnelles et de vous témoigner l'intérêt que l'Académie prend à vos travaux et à vos succès.

Veuillez agréer, Madame, l'assurance de notre considération la plus distinguée

L. Pasteur J. Bertrand

सोफिया कोवालेवस्काया को मिले 'प्रि बोर्दी' पुरस्कार का घोषणा-पत्र

और रूस की सर्वश्रेष्ठ महिला-गणितज्ञ के रूप में उसकी ख्याति यूरोपभर में फैल चुकी थी । फ्रांस की विज्ञान अकादमी की ओर से पुरस्कार की घोषणा का सोफिया को जो पत्र मिला उस पर **लुई पाश्चर** (1822-95 ई.) और **जोसफ बेर्त्रां** के हस्ताक्षर थे । पुरस्कार प्राप्त करने के लिए सोफिया पेरिस पहुंची । एक विशिष्ट समारोह में उसने पुरस्कार प्राप्त किया । अकादमी के अध्यक्ष पियरे जान्सें (1824-1907 ई.) ने समारोह में उपस्थित वैज्ञानिकों को संबोधित किया: "जो पुरस्कार-सम्मान आज हम प्रदान कर रहे हैं उनमें सर्वाधिक कठिनाई से प्राप्त किया गया एक सर्वाधिक गौरवशाली सम्मान एक महिला को प्राप्त हुआ है। निर्णायक-मंडल के सदस्यों का मत है कि उनका कृतित्व, न केवल उनके गहन-गंभीर ज्ञान, बल्कि उनकी महान प्रतिभा का भी परिचायक है।"

गणित के क्षेत्र में इतना ऊंचा सम्मान प्राप्त करने पर और रूस की महान महिला-गणितज्ञ के रूप में सारे यूरोप में ख्याति अर्जित करने पर भी सोफिया के लिए यह संभव नहीं था कि वह अपने देश के किसी विश्वविद्यालय में प्राध्यापिका का पद पा सके । सोफिया को विवश होकर पुनः स्टॉकहोम लौटना पड़ा ।

सोफिया (सोंजा) का जन्म रूस के एक खानदानी परिवार में 15 जनवरी, 1850 को, मास्को में हुआ था । पिता वासिली कुक्रोवस्की सुशिक्षित थे, सैनिक अफसर थे, धनाढ्य थे, इसलिए सोफिया को बचपन में किसी चीज का अभाव नहीं था । उसकी एक बड़ी बहन थी, एक छोटा भाई था । सोफिया असाधारण सुंदरी थी, उसकी बड़ी-बड़ी आंखों में अद्भुत आकर्षण था ।

चौदह साल की आयु तक, निजी अध्यापकों की देखरेख में, सोफिया ने गणित का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था । साहित्य में भी उसकी गहरी दिलचस्पी थी । सत्रह साल की होने पर उसने सेंट पीटर्सबर्ग (आधुनिक लेनिनग्राद) जाकर नौसेना के स्कूल के एक अध्यापक से कलन-गणित सीखा । स्पष्ट हुआ कि सोफिया में प्रतिभा है, गणित के प्रति गहरी दिलचस्पी है, मगर उस समय रूस के विश्वविद्यालयों में लड़कियों के लिए प्रवेश वर्जित था । अंत में तय हुआ कि सोफिया और उसकी बहन उच्च अध्ययन के लिए विदेश जाएंगी ।

उस समय कुछ ऐसी सामाजिक व्यवस्था थी कि जीवन के कुछ क्षेत्रों में आगे बढ़ने के लिए तरुणियों का अपने पिता के संरक्षण से मुक्त होकर 'पत्नी' बनना आवश्यक था । सोफिया को भी ऐसा ही करना पड़ा । उसने 1868 ई. में व्लादिमीर कोवालेवस्की नामक एक तरुण से 'विवाह' कर लिया । मगर उनका वास्तविक वैवाहिक जीवन पांच साल बाद ही शुरू हुआ ।

सोफिया ने विज्ञान के अध्ययन के लिए जर्मनी के हाइडेलबर्ग विश्वविद्यालय को पसंद किया । उस समय हेल्महोल्ट्ज (1821-94 ई.), किर्होफ (1824-87

ई.) और बुन्सेन (1811-99 ई.) जैसे प्रख्यात वैज्ञानिक इस विश्वविद्यालय में प्राध्यापक थे । सोफिया के गणित के एक प्राध्यापक थे दु बॉय रेमाँ (1831-89 ई.) और दूसरे थे कोनिग्सबर्गेर, जो बर्लिन विश्वविद्यालय के गणितज्ञ कार्ल वायरस्ट्रास (1815-1897 ई.) के शिष्य रह चुके थे । शिष्य से गुरु की प्रशंसा सुनी, तो सोफिया ने बर्लिन जाने का फैसला किया ।

उस समय बर्लिन विश्वविद्यालय में छात्राओं को प्रवेश नहीं मिलता था । मगर कोनिग्सबर्गेर की सिफारिश पर और सोफिया की प्रतिभा को पहचानकर वायरस्ट्रास ने सोफिया की गणित की पढ़ाई की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली । कक्षा में दिए गए लेक्चरों को वे सोफिया के लिए पुनः दोहराते थे । सोफिया 20 साल की तरुणी थी । उसने वायरस्ट्रास को यह भी नहीं बताया था कि उसका 'विवाह' हुआ है । वायरस्ट्रास उससे 35 साल बड़े थे, अविवाहित थे, और उस समय फलन-सिद्धांत के महान आचार्य के रूप में सारे यूरोप में उनकी कीर्ति फैली हुई थी । सोफिया ने वायरस्ट्रास के सान्निध्य में चार साल (1870-74 ई.) तक उच्च गणित का गहन अध्ययन किया । दोनों में गहरे कोमल संबंध भी स्थापित हुए, और दोनों में लंबे समय तक पत्र-व्यवहार चला । सोफिया के बारे में वायरस्ट्रास ने लिखा है : ''उसकी-जैसी प्रतिभा, क्षमता और लगन वाले विद्यार्थी मुझे बहुत कम मिले हैं ।''

बर्लिन-निवास के चार सालों में सोफिया ने, न केवल गणित का पाठ्यक्रम पूरा किया, बल्कि तीन गणितीय प्रबंध भी प्रस्तुत किए । पहले प्रबंध में उसने फ्रांसीसी गणितज्ञ कोशी (1789-1853 ई.) के एक अवकल समीकरण को अधिक व्यापक बनाया । दूसरे प्रबंध में आबेलीय फलनों को विकसित किया और तीसरे प्रबंध में शनि ग्रह के वलयों की रचना का विवेचन किया । ग्रहों के वलयों का विषय आज भी बड़े महत्व का है । इधर के वर्षों में बृहस्पति, यूरेनस और नेपच्यून के इर्द-गिर्द भी वलय खोजे गए हैं ।

सोफिया के इन प्रबंधों के महत्व को पहचानकर गॉटिंगेन विश्वविद्यालय ने, उसकी अनुपस्थिति में ही, उसे 'डाक्टरेट' की उपाधि प्रदान की (1874 ई.) । उसके कृतित्व के महत्व के कारण उसकी मौखिक परीक्षा भी नहीं ली गई !

सोफिया स्वदेश लौटी । उसने सांस्कृतिक, साहित्यिक और शैक्षणिक गतिविधियों में भाग लेना शुरू कर दिया । इसी बीच उसके पिता की मृत्यु हुई, तो वसीयत के अनुसार उसे काफी धनराशि मिली । उसके पति व्लादिमीर कोवालेवस्की मास्को में जीवाश्म-विज्ञान के प्राध्यापक थे, मगर उनका व्यवसाय घाटे में चल रहा था । सोफिया को पिता से मिला पैसा भी जल्दी ही खत्म हो गया । उन्हें कष्टों का सामना करना पड़ा । इसी बीच उनकी एक पुत्री हुई ।

कठिनाइयों के बावजूद सोफिया ने गणित का अपना अन्वेषण जारी रखा ।

सन् 1880 में वह बर्लिन गई । आगे के तीन साल तक यूरोप के विभिन्न नगरों में रहकर उसने गणितीय अनुसंधान के कार्य को जारी रखा । अप्रैल 1883 में पेरिस में उसे समाचार मिला कि उसके पति ने आत्महत्या कर ली है । लगातार चार दिन तक वह कमरे में बंद रही । होश आया, तो वह पुनः गणितीय अन्वेषण में डूब गई !

अब काम-धंधे के बारे में सोचना उसके लिए आवश्यक हो गया था । रूस के किसी विश्वविद्यालय में पद मिलने की कोई उम्मीद नहीं थी । इसी बीच वायरस्ट्रास के गणितज्ञ-शिष्य **गोस्टा मिताग-लेफलेर** (1846-1927 ई.) ने सोफिया को स्टॉकहोम विश्वविद्यालय में प्राध्यापिका का पद ग्रहण करने के लिए आमंत्रित किया । नवंबर 1883 में सोफिया स्टॉकहोम पहुंची । वहां उसका बड़ा स्वागत हुआ । एक समाचारपत्र ने लिखा : "आज हम अपने नगर में किसी मनचले-मूर्ख राजकुमार का नहीं, बल्कि विज्ञान की राजकुमारी मैडम कोवालेवस्काया का स्वागत कर रहे हैं । पूरे स्वीडेन में वह पहली महिला प्राध्यापिका होगी ।"

आरंभ में सोफिया को अवैतनिक प्राध्यापिका के रूप में पढ़ाना पड़ा । मगर बाद में वह स्थायी हो गई । उसी दौरान उसने बोर्दी पुरस्कार के लिए प्रबंध तैयार किया था । वह स्वीडेन से प्रकाशित होनेवाली गणित की प्रसिद्ध शोध-पत्रिका **आक्टा मैथेमेटिका** की एक संपादक भी नियुक्त हुई ।

सोफिया अत्यंत साहसी महिला थी । वह अपने नाशवादी (निहिलिस्ट) विचारों के लिए प्रसिद्ध थी । उसकी साहित्यिक प्रतिभा भी उच्च कोटि की थी । उसने बचपन की अपनी स्मृतियों को एक पुस्तक में प्रस्तुत किया है ।

स्वदेश में कोई पद न मिलने के कारण सोफिया को स्टॉकहोम में ही रहना पड़ा । वहीं पर न्यूमोनिया की शिकार होने के बाद 10 फरवरी, 1891 को, केवल 41 साल की आयु में, सोफिया कोवालेवस्काया का देहांत हुआ । उस समय वह अपनी सृजन-शक्ति के शिखर पर थी ।[12]

एम्मी नोएथेर

(1882-1935 ई.)

महिलाओं के मामले में गॉटिंगेन विश्वविद्यालय काफी उदार था । महान गौस गॉटिंगेन से सोफी जेरमी को 'डाक्टर' की उपाधि दिलाना चाहते थे । सोफिया कोवालेवस्काया को गॉटिंगेन में दाखिला नहीं मिला था । मगर गॉटिंगेन पहला जर्मन विश्वविद्यालय था जिसने एक महिला—सोफिया कोवालेवस्काया—को 'डाक्टर' की उपाधि दी थी ।

मगर यही विश्वविद्यालय, बीसवीं सदी के दूसरे दशक में भी, डाक्टरेट-प्राप्त एक श्रेष्ठ महिला-गणितज्ञ को, डेविड हिल्बर्ट (1862-1943 ई.) और फेलिक्स क्लाइन (1849-1925 ई.) जैसे प्रभावशाली गणितज्ञों की जबरदस्त सिफारिश के बावजूद, आरंभ में प्रिवातदोजेंत (निजी अध्यापक) जैसा अवैतनिक पद भी दे नहीं पाया था। सीनेट के कुछ सदस्यों का कहना था : "एक महिला प्रिवातदोजेंत कैसे हो सकती है ? प्रिवातदोजेंत होकर एक दिन वह प्रोफेसर बनेगी और फिर सीनेट की सदस्या। क्या एक महिला को सीनेट में आने दिया जा सकता है ?"

हिल्बर्ट ने करारा उत्तर दिया : "किसी उम्मीदवार का लिंग उसके प्रिवातदोजेंत बनने में बाधक नहीं हो सकता। सीनेट कोई गुसलखाना नहीं है।"

हिल्बर्ट द्वारा लगातार तीन साल तक प्रयत्न करते रहने पर ही अंत में, 1919 ई. में, उस महिला को गॉटिंगेन में प्रिवातदोजेंत का पद मिला। बाद में उसे प्राध्यापक का भी पद मिला। आज उस महिला को आधुनिक बीजगणित की एक जन्मदाता के रूप में स्मरण किया जाता है।

उस महिला गणितज्ञ का नाम है — **एम्मी नोएथेर**।

एम्मी नोएथेर
(1882-1935 ई.)

एम्मी का जन्म एरलांगेन (जर्मनी) में 23 मार्च, 1882 को हुआ था। उसके पिता मैक्स नोएथेर (1844-1921 ई.) एरलांगेन विश्वविद्यालय में गणित के प्राध्यापक थे। इसी विश्वविद्यालय में फेलिक्स क्लाइन ने सभी ज्यामितियों के एकीकरण के लिए एक योजना (एरलांगेन प्रोग्राम) प्रस्तुत की थी (1872 ई.)। एम्मी के पिता ने एक बीजगणितज्ञ के रूप में ख्याति अर्जित की थी। उस समय बीजगणितज्ञ पॉल गोर्डोन (1837-1912 ई.) भी उसी विश्वविद्यालय में प्राध्यापक थे और नोएथेर परिवार के घनिष्ठ मित्र थे। एम्मी ने उसी विश्वविद्यालय में अध्ययन किया और वह भी बीजगणितज्ञ बनी। गोर्डोन की देखरेख में खोजकार्य करके उसने 1907 ई. में 'डाक्टर' की उपाधि प्राप्त की। गोर्डोन ने अवकाश ग्रहण किया, तो उनका स्थान गणितज्ञ अर्न्स्ट फिशर ने ग्रहण किया। वे भी बीजगणितज्ञ थे और **निश्चरों** (इन्वेरियंट्स) के सिद्धांत में उनकी विशेष दिलचस्पी थी। एम्मी की भी इस विषय में दिलचस्पी बढ़ी। उसके कई शोध-निबंध प्रकाशित हुए। पिता अस्वस्थ रहते तो वह विश्वविद्यालय में उनकी

कक्षाएं भी लेती थी । एम्मी के भाई फ्रिट्ज ने भी गॉटिंगेन में गणित की पढ़ाई की थी ।

पिता ने अवकाश ग्रहण किया, मां की मृत्यु हो गई और भाई सेना में भर्ती हो गया, तो प्रथम महायुद्ध के दौरान, 1916 ई. में एम्मी गॉटिंगेन चली आई । हिल्बर्ट के खूब प्रयास करने के बाद ही 1919 ई. में एम्मी को प्रिवातदोजेंत का पद मिला । एम्मी की कुछ आय हो, इसलिए हिल्बर्ट अपनी कुछ कक्षाएं उसे सौंप देते थे । वह 1922 ई. में विश्वविद्यालय में विशिष्ट प्राध्यापक नियुक्त हुई । यह अवैतनिक पद था, इसलिए विश्वविद्यालय ने एक बीजगणितज्ञ के नाते उसके गुजारे के लिए अलग से कुछ नियमित वेतन की व्यवस्था कर दी थी । एम्मी नोएथेर 1933 ई. तक उसी पद पर काम करती रही ।

एम्मी एक प्रभावशाली अध्यापिका नहीं थी । नाक-नक्शे में वह पुरुष-जैसी लगती थी । उसके विद्यार्थियों ने उसे 'डेर नोएथेर' का नाम दे रखा था (जर्मन भाषा में पुल्लिंग संज्ञाओं के पहले **डेर** शब्द लगता है) । मगर एम्मी ने बहुत ही कोमल हृदय और प्रखर मस्तिष्क पाया था । उसे प्रायः विदेशी विद्यार्थियों को ही पढ़ाना पड़ता था । हॉलैंड के प्रख्यात गतिणतज्ञ **वान डेर वाएर्डेन** और सोवियत गणितज्ञ **पॉल अलेक्सांद्रोफ** गॉटिंगेन में एम्मी नोएथेर के विद्यार्थी थे ।

हिटलर के शासन में आने के बाद अन्य अनेक यहूदियों की तरह एम्मी नोएथेर को भी अपना पद त्यागना पड़ा । जर्मनी छोड़कर उसने पेन्सिलवेनिया (अमरीका) के ब्राइन मात्र कालेज में प्राध्यापिका का पद स्वीकार कर लिया । वह प्रिंसटन की 'इंस्टीट्यूट फार एडवांस्ड स्टडी' की भी सदस्या बनी । आगे के करीब दो साल तक एम्मी नोएथेर ने बीजगणित के क्षेत्र में अत्यंत महत्व का कार्य किया । 'एब्स्ट्रैक्ट रिंग्स' और 'आइडियल थ्योरी' से संबंधित उसका गवेषणा-कार्य आधुनिक बीजगणित के विकास में बड़ा महत्वपूर्ण साबित हुआ है।

एक बार किसी ने एम्मी का परिचय 'मैक्स नोएथेर की पुत्री' कहकर दिया । तब गॉटिंगेन के उसके सहकर्मी-गणितज्ञ एडमंड लांदौ (1877-1938 ई.) ने जबाव दिया था : ''मैक्स नोएथेर एम्मी नोएथेर के पिता थे । नोएथेर परिवार में एम्मी निर्देश-मूल-बिंदु है ।''

अप्रैल 1935 में एम्मी नोएथेर के नासूर का आपरेशन हुआ । पहले लगा कि उसे स्वास्थ्य-लाभ हो रहा है; मगर अचानक कुछ जटिलताएं पैदा हो गईं, और 26 अप्रैल, 1935 को एम्मी नोएथेर का देहांत हुआ । उसकी मृत्यु के बाद अल्बर्ट आइंस्टाइन (1879-1955 ई.) सहित अनेक वैज्ञानिकों ने उसे श्रद्धांजलि अर्पित की । एम्मी के अनेक वर्षों के सहकर्मी **हरमान वाइल** (1885-1955 ई.) ने कहा : ''वह एक महान गणितज्ञ थी । मैं समझता हूं, वह अब तक की दुनिया की सबसे बड़ी महिला-गणितज्ञ थी । वह एक श्रेष्ठ महिला थी ।''

सहायक ग्रंथ

1. जेम्स आर. न्यूमान (संपादक)—**द वर्ड आफ मैथेमेटिक्स** (चार भाग), न्यूयार्क 1956
2. डेविड यूजेन स्मिथ—**हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स** (दो भाग), डोवर संस्करण, न्यूयार्क 1958
3. एम. व्यगोद्स्की—**मैथेमेटिकल हैंडबुक : हाइयर मैथेमेटिक्स**, मीर प्रकाशन, मास्को 1971
4. होवार्ड इवेस—**एन इन्ट्रोडक्शन टु द हिस्ट्री आफ मैथेमेटिक्स**, पांचवां संस्करण, न्यूयार्क 1983
5. पी. पोलुबारिनोवा-कोचिना—**सोफिया वासिलियेवना कोवालेवस्काया : हर लाइफ एंड वर्क**, विदेशी भाषा प्रकाशनगृह, मास्को 1957
6. पेलागेया कोचिना—**लव एंड मैथेमेटिक्स : सोफ्या कोवालेवस्काया**, मीर प्रकाशन, मास्को 1985
7. कोन्स्टांस राइड—**हिल्बर्ट**, स्प्रिंगेर-वेरलाग, न्यूयार्क 1970
8. ई.टी. बेल—**मेन आफ मैथेमेटिक्स** (दो भाग), पेलिकन बुक, लंदन 1953
9. विलियम गेड्डी और जे. लिड्डेल्ल गेड्डी (संपादक) —**चैम्बर्स बायोग्राफिकल डिक्शनरी**, लंदन 1953
10. गुणाकर मुले—**महान वैज्ञानिक महिलाएं** (अपूर्ण पांडुलिपि) ।
11. मार्गरिट एलिस—**हाइपेशिया'ज हेरिटेज**, द वूमेन्स प्रेस, लंदन ।
    इस पुस्तक की मैंने केवल समीक्षा ही देखी है (इंडियन एक्सप्रेस, 23 नवंबर, 1986)
12. एच. जे. मोजान्स —**वूमन इन साइंस**, द एमआईटी प्रेस संस्करण, कैम्ब्रिज (अमरीका) 1974

संदर्भ और टिप्पणियां

1. यह उद्धरण आंग्ल लेखक जोन तोलांद (1687-1722 ई.) द्वारा हाइपेशिया के बारे में लिखी गई पुस्तक का लंबा उप-शीर्षक है ।
2. सिकंदरिया के गणितज्ञ-ज्योतिषी षाष्ठिक (सेक्साजेसिमल) भिन्नों का प्रयोग करते थे । जैसे, 3 घंटे, 45 मिनट और 15 सेकंड को वे

$$\left\{3 + \frac{45}{60} + \frac{15}{3600}\right\}$$

   घंटे के रूप में लिखते थे । वस्तुतः षाष्ठिक भिन्नों का चलन बेबीलोन में शुरू हुआ था, क्योंकि उनकी अंक-पद्धति में 60 के आधार की महत्वपूर्ण भूमिका थी ।
3. देखिए इसी ग्रंथ का 'भास्कराचार्य' लेख ।

4. 'क्रिश्चियन सोशलिस्ट' अंग्रेज साहित्यकार चार्लेस किंगस्ले (1838-1875 ई.) ने हाइपेशिया के बारे में जो उपन्यास लिखा, उसका शीर्षक है : **हाइपेशिया, ऑर न्यू फोज विथ एन ओल्ड फेंस** (न्यूयार्क 1907) ।
5. डेविड यूजेन स्मिथ, भाग 1, पृ. 510, ने इतालवी नामोच्चारण **आन्याजी** बताया है; अन्यथा, अंग्रेजी अक्षरों के अनुसार उच्चारण हो सकता है 'आग्नेसी' ।
6. देखिए, एम. व्यगोद्स्की, पृ. 763-65.
7. **अलेक्सी क्लाउद क्लाइरो** का जन्म पेरिस में 1713 ई. में हुआ था और वहीं पर 1765 ई. में उनका देहांत हुआ । अलेक्सी एक अद्भुत बाल-प्रतिभा थे । दस साल की आयु में वह उच्चतर गणित के ग्रंथ पढ़ने में समर्थ हो गए थे। तेरह साल की आयु में उन्होंने फ्रांस की विज्ञान अकादमी के सन्मुख ज्यामिति विषय के बारे में अपना पहला शोध-निबंध पढ़ा था । अठारह साल की उम्र में वह अकादमी के सदस्य बन गए थे और वक्रों से संबंधित उनका एक ग्रंथ भी प्रकाशित हुआ था । तेईस साल के क्लाइरो को उस अभियान-दल का सदस्य बनाया गया था जो पृथ्वी के एक देशांतर पर एक डिग्री की दूरी मापने के लिए लापलैंड गया था ।

अलेक्सी क्लाउद क्लाइरो
(1713-1765 ई.)

लापलैंड से लौटने के बाद क्लाइरो ने **पृथ्वी के आकार का सिद्धांत** ग्रंथ प्रकाशित किया । फिर उन्होंने **चांद्र-सिद्धांत** ग्रंथ लिखा, जिसमें उन्होंने चंद्र की गतियों का गणितीय अध्ययन प्रस्तुत किया । पाठ्य-पुस्तकों में आज भी एक अवकल समीकरण **क्लाइरो समीकरण** के नाम से जाना जाता है । क्लाइरो ने एमिली दु शातले को 'प्रिंसिपिया' के अनुवाद में मदद की थी । बर्नूली परिवार की तरह क्लाइरो परिवार भी गणितज्ञों का परिवार था । अलेक्सी क्लाइरो के पिता ज्याँ बाप्तिस्त क्लाइरो गणित के अध्यापक, बर्लिन अकादमी के सदस्य और ज्यामिति के प्रबंधों के लेखक थे । उनके बीस बच्चों में से एक को छोड़कर बाकी सबका निधन उनके निधन के पहले हुआ । अलेक्सी के निधन (1765 ई.) के कुछ ही समय के बाद उनके पिता का निधन हुआ ।

अलेक्सी का, उनसे तीन साल छोटा एक भाई था, जिसको गणित के इतिहास में **अनुज क्लाइरो** (ल क्लादे क्लाइरो : 1716-32 ई.) के नाम से ही जाना जाता है । उसने चौदह

पियरे लुई मोरियू द मौपेर्त्यू
(1698-1757 ई.)

साल की आयु में फ्रेंच अकादमी के सन्मुख ज्यामिति के बारे में एक शोध-निबंध पढ़ा था और पंद्रह साल की आयु में ज्यामितीय विषय के बारे में एक पुस्तक प्रकाशित की थी ।

8. फ्रांसीसी गणितज्ञ **पियरे लुई मोरियू द मौपेर्त्यू** (1698-1759 ई.) अपनी तरुणाई में सैनिक अफसर रहे । बाद में अवकाश प्राप्त करके उन्होंने अपना जीवन गणितीय अन्वेषण को अर्पित कर दिया । उन्होंने एक डिग्री दूरी मापन करने के लिए लापलैंड गए अभियान-दल का नेतृत्व किया । मौपेर्त्यू का मुख्य कृतित्व भूगणित और खगोल-विज्ञान से संबंधित है, मगर उन्होंने गणित व भौतिकी के कुछ अन्य क्षेत्रों में भी कार्य किया ।

मौपेर्त्यू ने एमिली दु शातले को गणित पढ़ाया, फिर भी एमिली के मित्र वाल्तेयर ने अपनी एक पुस्तक में मौपेर्त्यू का मखौल उड़ाया । स्विट्जरलैंड के गणितज्ञ **सैम्युअल कोएनिंग** (मृत्यु : 1757 ई.) और मौपेर्त्यू के बीच जो वाद-विवाद चला उसमें वाल्तेयर ने पहले गणितज्ञ का पक्ष लिया । मगर दोनों ही गणितज्ञ एमिली के शिक्षक रहे ।

9. फ्रांसीसी शब्द **ब्लाँ** का अर्थ है — साफ, शुभ्र ।
10. देखिए इस ग्रंथ का 'लाग्राँज और लापलास' लेख ।
11. महान खगोलविद विलियम हर्शेल की बहन **कैरोलिन ल्यूक्रेतिया** का जन्म जर्मनी में 1750 ई. में हुआ था (विलियम हर्शेल भी मूलतः जर्मन ही थे) । बाईस साल की आयु में कैरोलिन इंग्लैंड आई और उसने अपने भाई के वेधकार्य में भरपूर मदद की । इतना ही नहीं, स्वतंत्र वेधकार्य करके उसने 8 धूमकेतु और कई नीहारिकाएं व तारागुच्छ खोजे । उसने तारों की सारणी प्रकाशित की (1798 ई.) । सन् 1822 में वह जर्मनी लौटी और वहीं पर 1848 ई. में उसका निधन हुआ ।

कैरोलिन ल्यूक्रेतिया हर्शेल (1750-1848 ई.)

12. अभी कुछ दिन पहले, जुलाई 1991 में नई दिल्ली से प्रसारित टी.वी. के राष्ट्रीय कार्यक्रम में सोफिया कोवालेवस्काया के जीवन पर एक फिल्म दिखाई गई, जो स्वीडेन में तैयार हुई थी ।

परिशिष्ट : 1

गणित के विकास की कालानुक्रमिक तालिका

इस तालिका में कांस्य युग से लेकर बीसवीं सदी के अंतिम चरण तक के संसारभर के प्रमुख गणितज्ञों और गणितीय उपलब्धियों का उल्लेख है । ईसा पूर्व के वर्षों को ऋण चिह्न (–) से दर्शाया गया है । हर स्थिति में ठीक-ठीक काल-निर्धारण संभव नहीं था । तालिका में गणितीय उपलब्धियों के साथ-साथ ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व की कुछ अन्य घटनाओं का भी उल्लेख है । मेरा प्रयास रहा है कि यहां एशिया की गणितीय उपलब्धियों को उचित प्रतिनिधित्व मिले ।

– 4000 (लगभग) धातु (तांबे) की खोज ।

– 3500 लेखन का प्रचलन ।

– 3102 कलियुग संवत् (सैद्धांतिक) का प्रारंभ ।

– 2700 हड़प्पा-पूर्व संस्कृति : कृषि में हल का प्रयोग, पत्थर व तांबे के औजार, लेखन का प्रारंभ ।

– 2500 गिज़ा (मिस्र) का महान पीरामीड; पंचांग, लिपि और अंक-संकेतों का अस्तित्व ।

– 2400 उर (मेसोपोटामिया) से प्राप्त हिसाब से संबंधित कीलाक्षर-फलक; षाष्ठिक और दशाधारी अंक-पद्धति ।

– 2350 हड़प्पा संस्कृति के वैभव-युग का प्रारंभ । तांबे और कांसे के औजारों का उपयोग । लिपि और अंक-संकेतों का प्रचलन; लिपि और भाषा आज भी अज्ञात । पकाई गई निश्चित आकार की ईंटों का उपयोग । मापपट्टी, तराजू और निश्चित तौल के बाटों का इस्तेमाल । नौ-परिवहन, लोथल की गोदी, मेसोपोटामिया से व्यापार । क्षेत्रमिति के ज्ञान का नगर-निर्माण और भवन-निर्माण में उपयोग ।

– 2200 निप्पुर (मेसोपोटा़मिया) से प्राप्त गणित संबंधी कीलाक्षर-फलक ।

– 1850 *मास्को पेपीरस*, जिसमें प्राचीन मिस्र के गणित से संबंधित 25 प्रश्न हैं ।

– 1750 हड़प्पा संस्कृति का अवसान । भारत में आर्यभाषियों का आगमन आरंभ ।

बेबीलोन का शासक हम्मुराबी (1792-50 ई. पू.), जो अपनी 'विधि-संहिता' के लिए प्रसिद्ध है ।

– 1650 *रिंड या आःमोस पेपीरस* । इसमें आःमोस नामक लिपिक द्वारा प्राचीन मिस्र की हिराटिक लिपि में लिखे गए व्यावहारिक गणित के 85 सवाल हैं । ए. हेनरी रिंड ने यह पेपीरस-पुस्तक मिस्र से 1858 ई. में प्राप्त की थी ।

– 1500 (लगभग) वैदिक साहित्य का प्रारंभ । ऋग्वेद में सबसे बड़ी इकाई अयुत (10,000) का उल्लेख । अंक-पद्धति दशाधारी । *यजुर्वेद* में परार्ध (10^{12}) तक की दशगुणोत्तर संख्या-संज्ञाओं का उल्लेख ।

– 1100 (लगभग) भारत में लौहयुग का प्रारंभ ।

– 800 (लगभग) महात्मा लगध का *वेदांग-ज्योतिष* (ऋक् और यजुष्): पांच साल का युग, नक्षत्र-सूची, त्रैराशिक का नियम ।

– 700 (लगभग) ब्राह्मी लिपि की सृजन ।

– 600 (लगभग) चीन से उपलब्ध गणित के प्राचीनतम ग्रंथ : *झोउ बी सुआन् जिङ्* (गोल व वृत्तीय पथों का गणित) और *जियू झाङ् सुआन् शू* (गणितशास्त्र पर नौ प्रकरण) । इन कृतियों में 'पाइथेगोरस का प्रमेय' भी है । दंड-संकेतों का प्रयोग । मायावर्ग ।

थेलस् : निरूपणात्मक ज्यामिति का प्रारंभ ।

(लगभग) *शुल्व-सूत्र* (बौधायन, आपस्तंब आदि), जिनमें वेदियों की रचना के लिए ज्यामिति के नियम दिए गए हैं । शुल्व-सूत्रों में तथाकथित 'पाइथेगोरस का प्रमेय' भी है । द्विकरणी ($\sqrt{2}$) का मान 1.4142156... है ।

– 540 पाइथेगोरस : ज्यामिति, अंकगणित, संख्या-सिद्धांत ।

गौतम बुद्ध (563-483 ई.पू.) ।

– 450 जेनो की गति से संबंधित पहेलियां ।

पाणिनि की *अष्टाध्यायी* ।

तक्षशिला के गुरुकुल ।

− 380	अफलातून (प्लेटो) की एकादमी : गणित के लिए तार्किक आधार ।
− 370	यूदोक्सु : अनुपात सिद्धांत, निश्शेष विधि ।
− 340	अरस्तू : निगमनात्मक तर्कशास्त्र ।
− 332	सिकंदरिया की स्थापना । मिस्र पर तालेमी-सोतेर् का शासनारंभ ।
− 327	सिकंदर का भारत पर हमला; बेबीलोन में 323 ई. पू. में उसकी मृत्यु ।
− 305	चंद्रगुप्त मौर्य का शासन । सेल्यूकस् निकेटर का भारतीय अभियान। यूनानी दूत मेगास्थनीज का पाटलिपुत्र में निवास । पंचमार्क सिक्कों का प्रचलन ।
− 300	यूक्लिड : ज्यामिति के *मूलतत्व* ।
− 280	अरिस्टार्कस : सूर्यकेंद्रवादी सिद्धांत ।
− 250	अशोक का शासन : ब्राह्मी लिपि के स्तंभलेख-शिलालेख, खरोष्ठी लेख । अभिलेखों में ब्राह्मी अंकों में संख्या 256 (पुरानी पद्धति में) ।
− 230	इराटोस्थनीज : सिकंदरिया में ग्रंथपाल, अभाज्य संख्याओं की 'छलनी', पृथ्वी का आकार ।
− 225	एपोलोनियस् : शांकव-गणित ।
	आर्किमीदीज : वृत्त व गोल का मापन, $\pi = 3.14$, आर्किमीदीज का सर्पिल, यांत्रिकी, द्रवस्थिति विज्ञान, आर्किमीदीज का स्क्रू ।
− 175	आचार्य पिंगल के *छंदःसूत्र* में मेरुप्रस्तार (पास्कल का त्रिभुज) और 'शून्य' का प्रयोग ।
− 140	हिप्पार्कस : खगोल विज्ञान, त्रिकोणमिति, अयन-चलन की खोज, तारा-सूची ।
− 58	विक्रम-संवत् का प्रारंभ ।
+ 78	शक-सवंत् का प्रारंभ । पंजाब में कुषाण वंश के शासन का आरंभ । ईसा की प्रथम सदी : शून्ययुक्त दाशमिक स्थानमान अंक-पद्धति की खोज; आविष्कारक अज्ञात ।

150 तालेमी : सिकंदरिया के मिस्री-यूनानी ज्योतिषी, *सिन्टैक्सिस्* (अलमजिस्ती) ग्रंथ, त्रिकोणमिति, तारा-सूची ।

200 (लगभग) ज्योतिष के प्राचीन पांच सिद्धांत : *सौर, पैतामह, वासिष्ठ, रोमक* और *पौलिश,* जिनकी जानकारी बाद में वराहमिहिर ने अपनी *पंचसिद्धांतिका* में दी ।

250 (लगभग) डायोफैंटस् : संख्या-सिद्धांत, बीजगणित ।

263 लिउ हुई : चीनी ज्यामितिकार, $\pi = 3.1416$.

300 पाप्पुस् : ज्यामिति, टीकाएं ।

भारत में गुप्त वंश के शासन का आरंभ ।

410 हाइपेशिया : सिकंदरिया की गणितज्ञा, हत्या : 415 ई. में ।

सिकंदरिया के विद्याकेंद्र का अवसान । फाहियान की भारत-यात्रा (405-411 ई.) ।

470 झु छोङ् झी : चीनी गणितज्ञ, $\pi = \frac{355}{113}$, नया पंचांग, कृति : *झुई शु ।*

499 आर्यभट (जन्म 476 ई.) द्वारा 23 साल की आयु में *आर्यभटीय* की रचना । वर्णांक पद्धति, $\pi = 3.1416$, ज्या-सारणी, प्रथम घात का अनिर्धार्य समीकरण, क्षेत्रफल, भूभ्रमण का सिद्धांत, ग्रहणों की सही व्याख्या ।

510 (लगभग) वराहमिहिर : *पंचसिद्धांतिका* (505 ई.), *बृहत्संहिता, बृहज्जातक* आदि ।

बोएथियस : रोमन नागरिक, ज्यामिति और अंकगणित की पाठ्य-पुस्तकें ।

594 एक गुर्जर राजा के ताम्रपत्र में पहली बार दाशमिक स्थानमान अंक-पद्धति का अभिलेख-प्रमाण (कलचुरि संवत् 346) ।

600 (लगभग) भास्कर (प्रथम) की कृतियां : *महाभास्करीय, लघुभास्करीय, आर्यभटीय-टीका* ।

622 हिजरी सन् का प्रारंभ । उत्तर भारत में हर्षवर्धन का शासन ।

628 ब्रह्मगुप्त (जन्म: 598 ई.) द्वारा 30 साल की आयु में

	ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत की रचना । अनिर्धार्य वर्ग-समीकरण के हल के लिए प्रमिकाएं, चक्रीय चतुर्भुज का क्षेत्रफल, वेधकर्ता; करण ग्रंथ : *खंड-खाद्यक* ।
629	युवान् च्वाङ् की भारत-यात्रा का प्रारंभ, नालंदा विद्यापीठ में अध्ययन, 645 ई. में चीन वापसी ।
662	सेवेरस सेबोख्त (सीरियाई बिशप) द्वारा भारतीय अंक-पद्धति की स्तुति ।
700	(लगभग) आधुनिक *सूर्य-सिद्धांत* ।
762	राजधानी बगदाद की स्थापना—अल्-मंसूर द्वारा ।
772-73	बगदाद में ब्रह्मगुप्त के ग्रंथों का अरबी में अनुवाद ।
819	अल्-मामू 36 साल के अल्-ख्वारिज्मी को मध्य एशिया से अपने साथ बगदाद ले गए । अल्-ख्वारिज्मी के ग्रंथ : *हिसाब अल्-हिंद, अल्-जब्र व अल्-मुकाबिल:* समीकरणों का विवेचन, ज्योतिष-सारणी ।
850	महावीराचार्य : जैन गणितज्ञ, ग्रंथ : *गणितसार-संग्रह*—अंकगणित, बीजगणित (कुट्टाकार) और क्षेत्रव्यवहार का पाठ्य-ग्रंथ ।
900	(लगभग) *भक्षाली हस्तलिपि* : एक अधिक प्राचीन मूल कृति की प्रतिलिपि, कुल 70 खंडित भोजपत्र, शारदा लिपि, अशुद्ध संस्कृत, विषय : अंकगणित, बीजगणित, शून्ययुक्त दाशमिक स्थानमान पद्धति के अंक-संकेतों का प्रयोग ।
991	(लगभग) श्रीधराचार्य की कृतियां—*पाटीगणित* और *त्रिशतिका*, गुणन की कपाट-संधि विधि, वर्ग-समीकरण के हल की नई विधि । श्रीपति (लगभग 1000 ई.) की कृति *गणित-तिलक* ।
1040	अल्बेरूनी (973-1048 ई.) के *भारत* में भारतीय गणित और ज्योतिष की जानकारी ।
	चीनी गणितज्ञ जिया खियान द्वारा तथाकथित 'पास्कल के त्रिभुज' का प्रयोग ।
1100	उमर खय्याम : घन समीकरणों का ज्यामितीय हल, पंचांग-सुधार, रुबाइयां ।
1130	(लगभग) बाथ-निवासी एदेलार्ड और चेस्टर-निवासी रॉबर्ट द्वारा

	अल्-ख्वारिज्मी की कृतियों का लैटिन में अनुवाद ।
1150	भास्कराचार्य (जन्म 1114 ई.) द्वारा 36 साल की आयु में *सिद्धांत-शिरोमणि (लीलावती, बीजगणित, ग्रहगणित* व *गोलाध्याय)* की रचना । द्वितीय घात के अनिर्धार्य समीकरण के हल की चक्रवाल विधि । शून्य और अनंत की व्याख्या । तात्कालिक गति की धारणा में आधुनिक अवकल गणित का बीजारोपण ।
	उनहत्तर साल की आयु में *करणकुतूहल* की रचना ।
	(लगभग) क्रेमोना-निवासी गेरार्डो द्वारा अरबी ग्रंथों का लैटिन में अनुवाद ।
1202	लियोनार्दो 'फिबोनकी' द्वारा भारतीय अंकगणित से संबंधित *लिबेर एबेकी* ग्रंथ की रचना । फिबोनकी-अनुक्रम ।
1250-1300	चीनी गणितज्ञ किन् जुईशाओ : अनिर्धार्य समीकरणों के संख्यात्मक हल, चीनी शेषफल प्रमेय ।
	लिये : समीकरणों के गुणांकों के लिए एक प्रकार के मैट्रिक्स की रचना, ज्यामितिय सवालों के हल के लिए बीजगणित का उपयोग ।
	याङ् हुइ : दशमलव भिन्न, 'पास्कल के त्रिभुज' का उपयोग । झु शिजी : गणित की पाठ्य-पुस्तक, समीकरणों के संख्यात्मक हल, 'पास्कल के त्रिभुज' का उपयोग ।
1350	(लगभग) नारायण पंडित की कृतियां : *गणित-कौमुदी* और *बीजगणितावतंश* ।
1435	उलूग बेग : समरकंद में वेधशाला, ज्योतिष-सारणी ।
1500	(लगभग) केरलीय गणित-ग्रंथ : *करण-पद्धति, गणितयुक्तिभाषा, सद्रत्नमाला* और *तंत्रसंग्रह* (लेखक : नीलकंठ सोमसुत्वन्), जिनमें पहली बार त्रिकोणमितीय ज्या, कोटिज्या, स्पर्शज्या तथा π-श्रेणियों का विवेचन किया गया है, इनके लिए नियम दिए गए हैं ।
1525	(लगभग) गणेश दैवज्ञ : ज्योतिष-ग्रंथ *ग्रहलाघव* और *लीलावती* पर *बुद्धिविलास* नामक टीका ।
	सूर्यदेव : *गणितामृत-कूपिका* (*लीलावती* पर टीका), भास्कर के

बीजगणित पर भी टीका।

1530 कोपर्निकस का सूर्यकेंद्रवादी सिद्धांत (प्रकाशन : 1543 ई.)।

1545 फेरारी : चतुर्थ घात का समीकरण।

तार्तागिलया : घन समीकरण।

कार्दानो : घन समीकरण।

1585 फ्रांसीसी गणितज्ञ फ्रांकोई वीए (वीएटा) : बीजगणित, समीकरण-सिद्धांत, त्रिकोणमिति, π का नौ दशमलव स्थानों तक शुद्ध मान और $\frac{2}{\pi}$ का अनंत गुणनफल।

जर्मन गणितज्ञ क्रिस्तोफेर क्लावियूस : अंकगणित व बीजगणित की पाठ्य-पुस्तकें, यूक्लिड के *मूलतत्व* की टीका, पंचांग-सुधार।

1587 कवि फैजी द्वारा *लीलावती* का फारसी में अनुवाद।

1593 सिमोन स्टेविन : दशमलव भिन्न, द्रवस्थिति विज्ञान, सैनिक इंजीनियरी।

1600 ज्योर्दानो ब्रूनो (सूर्यकेंद्रवाद के प्रचारक) को रोम में जिंदा जला दिया गया।

गैलीलियो : पेंडुलम, खगोल विज्ञान, यांत्रिकी, दूरबीन (1609 ई.)।

लंदन में ईस्ट इंडिया कंपनी को अधिकार -पत्र।

1610 केपलर : ग्रहों की गतियों के नियम।

1614 नेपियर : लॉगरिथ्म्स, गणना-दंड।

हेनरी ब्रिग्स : लॉगरिथम-सारणियां (1615 ई.)।

रंगनाथ : *सूर्य-सिद्धांत* पर टीका (1603 ई.)।

1630 मेरसेन : संख्या-सिद्धांत, मेरसेन संख्याएं, गणितीय पत्र-व्यवहार।

औघट्रेड : स्लाइड रूल की खोज, लॉगरिथ्म्स।

माइदोर्ग : ज्यामिति।

1635 फर्मा : संख्या सिद्धांत, प्रायिकता सिद्धांत, उच्चिष्ठ व अल्पिष्ठ, वैश्लेषिक ज्यामिति, फर्मा का 'अंतिम प्रमेय'।

1637 दकार्त : वैश्लेषिक ज्यामिति, नए चिह्न।

1640 देसार्ग्यू : प्रक्षेपीय ज्यामिति ।

1650 पास्कल : ज्यामिति, प्रायिकता, संख्या-त्रिभुज, गणक-यंत्र ।

जोन वालिस : बीजगणित, श्रेणियां, समाकलन ।

जोन पेल : बीजगणित, तथाकथित 'पेल समीकरण' ।

(लगभग) ज्योतिषी रंगनाथ के पुत्र मुनीश्वर (जन्म : 1603 ई.) : *लीलावती* पर *निसृष्टार्थदूती* नामक टीका, अंकगणित की स्वरचित पुस्तक *पाटीसार* ।

कमलाकर (जन्म 1608 ई.) : *सिद्धांततत्वविवेक* (1658 ई.), इस्लामी गणित-ज्योतिष से परिचित ।

1662 रॉयल सोसायटी (लंदन) की स्थापना ।

1666 फ्रांसीसी विज्ञान अकादमी की स्थापना ।

1670 आइजेक बारौ : स्पर्शज्याएं, कलन-गणित, यूनानी ग्रंथों का संपादन ।

जेम्स ग्रेगोरी : द्विपद प्रमेय, श्रेणियां ।

हाइगेन्स : पेंडुलम घड़ियां, भौतिकी, प्रायिकता, खगोल-विज्ञान।

क्रिस्टफर रेन : स्थापत्य, खगोल-विज्ञान, भौतिकी ।

1680 सेकी कोवा, जापानी गणितज्ञ : कलन गणित, सारणिक (डिटर्मिनेंट) का उपयोग ।

आइजेक न्यूटन : कलन गणित, गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत, श्रेणियां, परावर्ती दूरबीन, *प्रिंसिपिया, प्रकाशिकी* ।

रॉबर्ट हूक : भौतिकीविद, यंत्रविद, माइक्रोस्कोप ।

1682 लाइबनिट्ज : कलन गणित, सारणिक, प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र, नए चिह्न, गणक-यंत्र ।

1690 एडमंड हेली : खगोल-विज्ञान, तारा-सूची, *प्रिंसिपिया* का प्रकाशन (1786 ई.), हेली का धूमकेतु ।

कलकत्ता की स्थापना ।

याकोब बर्नूली : प्रायिकता, वक्र ।

1700 योहान बर्नूली : कलन गणित ।

1706 विलियम जोन्स : वृत्त की परिधि और व्यास के अनुपात के लिए पहली बार π का उपयोग ।

1720 ब्रूक टेलर : श्रेणी ।

दे मॉव्र : प्रायिकता, बीमा-गणित, सम्मिश्र संख्याएं ।

1723-27 सवाई जयसिंह द्वितीय (1686-1743 ई.) द्वारा जयपुर, दिल्ली, मथुरा, वाराणसी और उज्जैन में वेधशालाओं (जंतर-मंतरों) का निर्माण ।

जयसिंह के दरबार के गणितज्ञ-ज्योतिषी पंडित जगन्नाथ (जन्म 1652 ई.) ने तालेमी के *अल्मजिस्ती* का *सम्राट-सिद्धांत* के नाम से और यूक्लिड के *मूलतत्व* का *रेखागणित* के नाम से अरबी से संस्कृत में अनुवाद किया ।

1733 साच्चेरी : अयूक्लिडीय ज्यामिति की स्थापना ।

1740 मेक्लौरिन : बीजगणित, श्रेणियां, शांकव गणित ।

फ्रेडरिख महान : प्रशिया का सम्राट ।

1745 वाल्तेयर : न्यूटन के सिद्धांतों का प्रचार ।

एमिली दु शातले : *प्रिंसिपिया* का फ्रांसीसी में अनुवाद ।

1750 आयलर : $e^{i\pi}+1=0$, बहुफलक, नए चिह्न, कोनिग्सबर्ग के पुलों का हल, टॉपोलॉजी की शुरुआत, संख्या-सिद्धांत, फलन सिद्धांत ।

डेनियल बर्नूली : गणित-भौतिकी ।

1760 देलांबर : अवकल समीकरण, खगोल-विज्ञान, भौतिकी, विश्वकोश ।

1770 लैम्बर्ट : अयूक्लिडीय ज्यामिति, हाइपरबोलिक फलन, π की अपरिमेयता ।

मारिया जाएताना आन्याजी : ज्यामिति ।

1780 लाग्राँज : विचरण कलन, अवकल गणित, यांत्रिकी, संख्या-सिद्धांत ।

1784 कलकत्ता में एशियाटिक सोसायटी की स्थापना ।

1789 फ्रांसीसी क्रांति ।

1799	फ्रांस ने माप-तौल की मीट्रिक प्रणाली को अपनाया ।
	चौथा मैसूर युद्ध, टीपू की मृत्यु ।
1800	गौस : संख्या-सिद्धांत, अवकल ज्यामिति, अयूक्लिडीय ज्यामिति, बीजगणित का आधार प्रमेय, खगोल-विज्ञान ।
	त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण विभाग (मद्रास) की स्थापना ।
1805	लापलास : खगोल यांत्रिकी, प्रायिकता, अवकल समीकरण ।
	लेजंद्र : ज्यामिति का ग्रंथ, संख्या-सिद्धांत, दीर्घवृत्तीय फलन ।
1806	आरगाँ : सम्मिश्र संख्याओं का ज्यामितीय निरूपण ।
1822	फूरिए : ऊष्मा का सिद्धांत, फूरिए श्रेणी ।
	सोफी जेरमी : प्रत्यास्थ तल ।
	पांसले : प्रक्षेपीय ज्यामिति ।
	बोल्जानो : श्रेणियां, *अनंत की पहेलियां* (1851 ई.) ।
1826	*क्रेल्ले का जर्नल*
	आबेल : चतुर्थ घात के समीकरण, दीर्घवृत्तीय फलन, द्विपद प्रमेय, अभिसरण परीक्षण ।
1827	कोशी : विश्लेषण, सम्मिश्र चर के फलन, अनंत श्रेणी, सारणिक ।
1829	लोबाचेवस्की : अयूक्लिडीय ज्यामिति ।
1830	चार्लेस बैबेज : संगणक ।
	याकोबी : दीर्घवृत्तीय फलन, सारणिक ।
	प्वासों : प्रायिकता, गणितीय भौतिकी ।
	मेरी सोमेरविले : खगोल-यांत्रिकी ।
1832	बोल्याई : अयूक्लिडीय ज्यामिति ।
	गाल्वा : ग्रूप सिद्धांत, समीकरण सिद्धांत ।
1834	स्टाइनेर : उच्च ज्यामिति ।
1837	ब्राह्मी लिपि का उद्‌घाटन ।

1843	विलियम रोवेन हैमिल्टन : चतुष्टयी (क्वाटर्‌निओन) ।
1844	ग्रासमान : विस्तार-कलन, जर्मन काव्य में *ऋग्वेद* का अनुवाद (1876-77), *ऋग्वेद-शब्दकोश*, ग्रासमान महाप्राण नियम (1863) ।
1849	डिरिख्ले : संख्या-सिद्धांत, श्रेणी ।
	कुम्मेर : 'आइडियल' सिद्धांत ।
1854	जार्ज बूल : *चिंतन के नियम* ।
	दे मोर्गेन : ताकिर्क गणित, गणित का इतिहास ।
	रीमान : विश्लेषण, अयूक्लिडीय ज्यामिति, रीमान ज्यामिति ।
1857	केली : आव्यूह (मैट्रिक्स) बीजगणित, उच्च ज्यामिति ।
	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम; कलकत्ता, बम्बई व मद्रास में विश्वविद्यालयों की स्थापना ।
1872	फेलिक्स क्लाइन का *एरलांगेन प्रोग्राम* ।
	डेडेकिंड : अपरिमेय संख्याएं ।
1873	हर्मिट : e अबीजीय संख्या है ।
1874	कांतोर : समुच्चय सिद्धांत, अपरिमेय संख्याएं, अबीजीय संख्याएं, परिमितातीत संख्याएं ।
1876	महेंद्रलाल सरकार द्वारा कलकत्ता में 'इंडियन एसोसिएशन फार द कल्टिवेशन आफ साइंस' की स्थापना ।
1877	सिल्वेस्टर : बीजगणित, निश्चर सिद्धांत ।
1881	गिब्स : सदिश (वेक्टर) विश्लेषण ।
1882	लिंडेमान : π अबीजीय संख्या है, अतः वृत्त को वर्ग में बदलना असंभव है ।
1889	पिएनो : अंकगणित के लिए अभिगृहीत ।
	सोफिया कोवालेवस्काया : अवकल समीकरण, आबेलीय फलन, शनि के वलय ।
1890	वायरस्ट्रास : विश्लेषण का अंकगणितीकरण ।

1891 पं. सुधाकर द्विवेदी (1860-1922 ई.) : *गणक-तरंगिणी*, गणित-ज्योतिष के भारतीय ग्रंथों का संपादन ।

1895 प्वाँकारे : टॉपोलॉजी, खगोल यांत्रिकी, फुख्सीय फलन, प्रायिकता ।

1899 हादामार और दे ला वाली पूसीं द्वारा अभाज्य-संख्या प्रमेय की उपपत्ति ।

1900 डेविड हिल्बर्ट : पेरिस में आयोजित अंतरराष्ट्रीय गणित कांग्रेस में हल के लिए 23 सवालों की प्रस्तुति, *ज्यामिति के आधारतत्व* (1899), *जाह्रेस्वेरिख्ट* (1892), निश्चर समाकल, *गणित के आधारतत्व* ।

मिन्कोवस्की : चार विमाओं वाली भौतिकी ।

1903 लेबेग अवकलन ।

1906 फ्रेचे : अमूर्त समष्टियां ।

1910 व्हाइटहेड और रसेल : *प्रिंसिपिया मैथेमेटिका* ।

1914 हाउसडोर्फ : सेट टॉपोलॉजी, अमूर्त समष्टियां ।

1916 आइंस्टाइन : आपेक्षिकता का व्यापक सिद्धांत ।

1917 हार्डी और रामानुजन् (जन्म 1887) : वैश्लेषिक संख्या-सिद्धांत ।

रूसी क्रांति ।

1923 बानाख़ समष्टियां । .

1924-28 क्वांटम यांत्रिकी का विकास । रामन-प्रभाव (1928 ई.)

1931 गोडेल : अपूर्णता प्रमेय ।

1933 जर्मनी में हिटलर की सत्ता । प्रिंसटन में 'उच्च अध्ययन संस्थान' की स्थापना । जर्मनी से वैज्ञानिकों का पलायन आरंभ ।

एम्मी नोएथेर : उच्च बीजगणित ।

कोल्मोगोरोव : प्रायिकता सिद्धांत के आधारतत्व ।

1938 सुब्रहमण्यम् चंद्रशेखर : *तारों की संरचना*, 'चंद्रशेखर सीमा', नोबेल पुरस्कार (1983 ई.) ।

1944 जोहन फोन न्यूमान : खेल सिद्धांत (गेम्स थ्योरी), कंप्यूटर सिद्धांत।

1949 . शान्नोन और वीवर : संचार का गणितीय सिद्धांत।

1957 (4 अक्तूबर) : पहले कृत्रिम उपग्रह सूतनिक-1 की अंतरिक्ष-यात्रा।

1963 कोहेन : सांतत्यक अनुमान का समाधान।

1969 नील आर्मस्ट्रांग और एल्ड्रिन अपोलो-11 यान से 21 जुलाई को चंद्रतल पर उतरें।

1976 केन्नेथ एप्पेल और वूल्फगांग हाकेल ने कंप्यूटर का उपयोग करके सिद्ध किया कि मानचित्रों के लिए 4 रंग पर्याप्त हैं।

1989 चुद्नोवस्की-बंधुओं ने सुपरकंप्यूटर का उपयोग करके π का मान 1,01,11,96,691 दशमलव स्थानों तक प्राप्त किया !

परिशिष्ट : 2

सहायक ग्रंथ-सूची

संस्कृत

1. **आर्यभटीय**—आर्यभट कृत (भास्कर प्रथम और सोमेश्वर की टीका सहित); संपादक : कृपाशंकर शुक्ल, इंडियन नेशनल सायंस एकैडेमी, नई दिल्ली 1976.
2. **आर्यभटीय**—आर्यभट कृत; संपादन और अंग्रेजी अनुवाद : कृपाशंकर शुक्ल और के.वी. शर्मा, इंडियन नेशनल सायंस एकैडेमी, नई दिल्ली 1976.
3. **आर्यभटीय**—आर्यभट कृत (सूर्यदेव यज्वन् की टीका सहित); संपादक : के.वी. शर्मा, इंडियन नेशनल सायंस एकैडेमी, नई दिल्ली 1976.
4. **आर्यभटीय**—आर्यभट कृत; हिन्दी अनुवाद : रामनिवास राय, इंडियन नेशनल सायंस एकैडेमी, नई दिल्ली 1976.
5. **आर्यभटीय**—आर्यभट कृत; संस्कृत व्याख्या और हिन्दी अनुवाद : बलदेव मिश्र, बिहार रिसर्च सोसायटी, पटना 1966.
6. **गणकतरङ्गिणी**—सुधाकर द्विवेदी (1891 ई. में रचित); संपादक : पद्माकर द्विवेदी, बनारस 1933.
7. **गणितसार-संग्रह**—महावीराचार्य कृत; हिन्दी अनुवाद : लक्ष्मीचंद्र जैन, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर 1963.
8. **गोलाध्याय (सिद्धांत-शिरोमणि)**—भास्कराचार्य कृत (वासनाभाष्य सहित), संपादक : बापूदेव शास्त्री, काशी 1913.
9. **गणिताध्याय (सिद्धांत-शिरोमणि)**—भास्कराचार्य कृत (वासनाभाष्य सहित); संपादक : बापूदेव शास्त्री, काशी 1913.
10. **छंदसूत्रम्**—पिङ्गलाचार्य कृत (हलायुध वृत्ति सहित), बंगला व हिंदी अनुवाद : सीतानाथ भट्टाचार्य, छात्र पुस्तकालय, कलकत्ता 1931.
11. **बीजगणित**—भास्कराचार्य कृत; संस्कृत टीका : पं. राधावल्लभ, कलकत्ता 1917.
12. **ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत**—(ध्यानग्रहोपदेशाध्याय सहित) ब्रह्मगुप्त कृत; व्याख्या एवं संपादन : पं. सुधाकर द्विवेदी, बनारस 1902.
13. **भक्षाली हस्तलिपि**—मूल, विस्तृत अंग्रेजी भूमिका: स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती और डा. उषा ज्योतिष्मती, डा. रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान, इलाहाबाद 1979.
14. **लीलावती**—भास्कराचार्य कृत; संस्कृत टीका : पं. राधावल्लभ, कलकत्ता 1913.
15. **लीलावती**—भास्कराचार्य कृत; संपादन और टिप्पणियां : पं. सुधाकर द्विवेदी, बनारस 1912.

16. **लीलावती**—भास्कराचार्य कृत, कोलबुक के अंग्रेजी अनुवाद सहित, टिप्पणियां: हारानचंद्र बनर्जी, द बुक कंपनी लि., द्वितीय संस्करण, कलकत्ता 1927.
17. **वेदाङ्ग-ज्योतिष** (आर्च व यजुष्)—लगध कृत; भूमिका और अंग्रेजी अनुवाद: प्रो.टी.एस. कुप्पण्ण शास्त्री, संपादन : के.वी. शर्मा, इंडियन नेशनल सायंस एकैडेमी, नई दिल्ली 1985.
18. **शुल्वसूत्रम्**—कात्यायन कृत; वृत्ति : विद्याधर शर्मा, अच्युत ग्रंथमाला कार्यालय, काशी 1927.
19. **शुल्वसूत्र**—बौधायन, आपस्तंब, कात्यायन और मानव कृत; विस्तृत अंग्रेजी भूमिका और संपादन : स्वामी सत्यप्रकाश और डा. उषा ज्योतिष्मती, डा. रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान, इलाहाबाद 1979.
20. **सूर्य-सिद्धांत**—हिंदी में विज्ञान भाष्य : महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, दो खंड, विज्ञान परिषद भवन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 1983.

मराठी

21. श्याम मराठे—**भारतीय गणितींची चरित्रे**, साहित्य प्रसार केंद्र, नागपूर, द्वितीय आवृत्ति 1989.
22. श्रीधर व्यंकटेश केतकर—**विज्ञानेतिहास** (महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश), महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश मंडळ, नागपूर 1922.

हिंदी

23. गुणाकर मुले—**भारतीय विज्ञान की कहानी** (तृतीय संस्करण), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1990.
24. —**भारतीय अंक-पद्धति की कहानी** (चतुर्थ संस्करण), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1990.
25. —**ज्यामिति की कहानी** (द्वितीय संस्करण), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1990.
26. —**भास्कराचार्य**, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1990.
27. —**आर्यभट**, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1990.
28. —**आर्किमीदीज** (द्वितीय संस्करण), पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 1980.
29. —**पास्कल** (द्वितीय संस्करण), पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 1979.
30. —**केपलर** (द्वितीय संस्करण), पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 1979.
31. —**एशिया के महान वैज्ञानिक** (प्रकाश्य).
32. —**संसार की महान वैज्ञानिक महिलाएं** (अपूर्ण पांडुलिपि)
33. —**प्राचीन भारत के महान वैज्ञानिक** (द्वितीय संस्करण), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1990.

34. —**आकाश दर्शन**, राजकमल प्रकाशन, (प्रेस में).
35. गोरख प्रसाद—**भारतीय ज्योतिष का इतिहास**, प्रकाशन ब्यूरो, उत्तरं प्रदेश सरकार, लखनऊ 1956.
36. गौरीशंकर हीराचंद ओझा—**भारतीय प्राचीन लिपिमाला** (द्वितीय संस्करण), अजमेर 1918.
37. ब्रज मोहन—**गणित का इतिहास**, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ 1965.
38. ब. ल. उपाध्याय—**प्राचीन भारतीय गणित**, विज्ञान भारती, नई दिल्ली 1971.
39. ब्रह्मदेव शर्मा—**गणित जगत की सैर : अंकगणित**, थामसन प्रेस (इंडिया) लि. प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली 1971.
40. विभूतिभूषण दत्त और अवधेश नारायण सिंह, अनुवाद : कृपाशंकर शुक्ल—**हिन्दू गणित-शास्त्र का इतिहास**, भाग 1 (अंक-संकेत और अंकगणित), प्रकाशन ब्यूरो, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ 1956.
41. स्वामी सत्यप्रकाश—**वैज्ञानिक विकास की भारतीय परंपरा**, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना 1954.
42. —**भारतीय विज्ञान के कर्णधार**, रिसर्च इन्स्टीट्यूट आफ एन्शेंट साइण्टीफिक स्टडीज, नई दिल्ली 1967.
43. शंकर बालकृष्ण दीक्षित (अनुवादक : शिवनाथ झारखंडी)—**भारतीय ज्योतिष**, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, द्वितीय संस्करण 1963.

अंग्रेजी

44. Al-Daffa', Ali Abdullah : **The Muslim Contribution to Mathematics**, Humanities Press, Atlantic Highlands, N.J., 1978.
45. Bell, E.T. : **The Development of Mathematics**, McGraw-Hill Book Company, Inc., New York, 1945.
46. Bell, E.T. : **Men of Mathematics** (2 vols.), Penguin Books, London, 1953.
47. Bergamini, David : **Mathematics** (Second Edition), Time-Life Books, Hong Kong, 1980.
48. Bernal, J.D. : **Science in History** (4 vols.), Penguin Books, 1969.
49. Bose, D.M., Sen, S.N. and Subbarayappa, B.V. : **A Concise History of Science in India**, Indian National Science Academy, New Delhi, 1971.
50. Boyer, Carl B. : **A History of Mathematics**, John Wiley & Sons, Inc., New York, 1968.
51. Boyer, Carl B. : **The History of the Calculus and Its Conceptual Development**, Dover Publications, New York, 1959.

52. Bühler, W.K. : **Gauss** (A Biographical Study), Springer-Verlag, New York, 1981.
53. Clagett, Marshall : **Greek Science in Antiquity**, Abelard-Schuman Ltd., London, 1957.
54. Cohen, I. Bernard : **Introduction to Newton's 'Principia'**, Cambridge University Press, 1971.
55. Crombie, A.C. : **Augustine to Galileo** (The History of Science : A.D. 400-1650), William Heinemann Ltd., London, 1957.
56. Crowther, J.G. : **Seven Great Men,** ELBS and Hamish Hamilton, London, 1964.
57. Court, Nathan Altshiller : **Mathematics in Fun and in Earnest**, Signet Science Library Books, New York, 1964.
58. Dass Gupta, S. : π : **An Unending Story in Mathematics**, NCERT, New Delhi, 1990.
59. Datta, Bibhutibhusan and Singh, Avadhesh Narayan : **History of Hindu Mathematics** (2 parts), Asia Publishing House, Bombay, 1962.
60. Datta, Bibhutibhus **The Science of the Sulba,** University of Calcutta. 1932.
61. DeLacy, Estelle A. : **Euclid and Geometry,** Chatto & Windus, London, 1965.
62. Dharmarajan, T. and Srinivasan, P.K. : **An Introduction to Creativity of Ramanujan,** The Association of Mathematics Teachers of India, Madras, 1987.
63. Efimov, N.V. : **Higher Geometry,** Mir Publishers, Moscow, 1980.
64. Eves, Howard : **An Introduction to the History of Mathematics** (Fifth Edition), Saunders College Publishing, New York, 1983.
65. Farrington, Benjamin : **Greek Science,** Penguin Books, London, 1953.
66. Félix, Lucienne : **The Modern Aspect of Mathematics** (Translated from French, Julius and Fancille H. Hlavaty), Science Editions, Inc., New York, 1961.
67. Forbes, R.J. and Dijksterhuis, E.J. : **A History of Science and Technology** (2 vols.), Penguin Books, 1963.
68. Gardner, Martin : **Mathematical Puzzles and Diversions** (1965), : **More Mathematical Puzzles and Diversions** (1961), Pelican Books.
69. Hadamard, Jacques : **An Essay on the Psychology of Invension in the Mathematical Field,** Dover Publications, New York, 1954.

70. Hardy, G.H. : **Ramanujan** (Twelve Lectures), Cambridge University Press (Originally), New Chelsea Edition, New York.
71. Hardy, Sheshu Aiyar and Wilson : **Collected Papers of Srinivas Ramanujan,** Originally from Cambridge 1927, New Chelsea Edition, New York, 1962.
72. Heath, Sir Thomas : **A History of Greek Mathematics** (2 vols.), Oxford University Press, 1921.
73. Hogben, Lancelot : **Mathematics in the Making,** Macdonald, London, 1960.
: **Mathematics for the Millions** (Second Edition), George Allen & Unwin Ltd., London, 1945.
74. Hooper, Alfred : **Makers of Mathematics,** Random House, New York, 1948.
75. Huntington, Edward : **The Continuum** (Second Edition), Dover Publications, New York, 1955.
76. Kac, Mark and Ulam, Stanislaw M. : **Mathematics and Logic** (Retrospect and Prospects), Penguin Books, 1968.
77. Kagan, V. : **N. Lobachevsky and His Contribution to Science,** Foreign Language Publishing House, Moscow, 1957.
78. Kasner, Edward and Newman, James : **Mathematics and the Imagination,** Simon and Schuster, New York, 1947.
79. Khurgin, Ya : **Did You Say Mathematics?,** Mir Publishers, Moscow, 1974.
80. King, Amy C. and Read, Cicil B. : **Pathways to Probability** (History of Mathematics of Certainty and Chance), Hold, Rinehart and Winston, Inc., New York, 1963.
81. Kline, Morris : **Mathematics in the Western Culture,** George Allen and Unwin Ltd., London, 1954.
82. Kline, Morris : **Mathematical Thought from Ancient to Modern Times,** Oxford University Press, New York, 1972.
83. Kochina, Pelageya : **Love and Mathematics : Sofya Kovalevskaya,** Mir Publishers, Moscow, 1985.
84. Körner, Stephan : **The Philosophy of Mathematics,** Hutchinson University Library, London, 1960.
85. Kurosh, A. : **Higher Algebra,** Mir Publishers, Moscow, 1972.
86. Markushevich, A.I. : **Series** (Fundamental Concepts with Historical Expositions), Hindustan Publishing Corporation, Delhi, 1967.
87. Moritz, Robert Edouard : **On Mathematics and Mathematicians,** Dover Publications, New York, 1958.

88. Mozans, H.J. : **Woman in Science,** The MIT Press, Cambridge, 1974.
89. Myskis, A.D. : **Introductory Mathematics for Engineers** (Lectures in Higher Mathematics), Mir Publishers, Moscow, 1972.
90. Neugebauer, O. : **The Exact Sciences in Antiquity,** Harper Torchbooks, New York, 1957.
91. Newman, James R. (ed.) : **The World of Mathematics** (4 vols.), Simon and Schuster, New York, 1956.
92. Northrop, Eugene P. : **Riddles in Mathematics** (A Book of Paradoxes), Penguin Books, 1960.
93. Ogilvy, C. Stanley : **Tomorrow's Mathematics,** Oxford University Press, New York, 1962.
94. Pedoe, Dan : **The Gentle Art of Mathematics,** Penguin Books, 1963.
95. Pledge, H.T. : **Science Since 1500,** Harper Torchbooks, New York, 1959.
96. Polubarinova-Kochina, P. : **Sophia Vasilyevna Kovalevskaya : Her Life and Work,** Foreign Language Publishing House, Moscow, 1957.
97. Rangnathan, S.R. : **Ramanujan : The Man and the Mathematician,** Asia Publishing House, Bombay.
98. Reid, Constance : **Hilbert,** Springer-Verlag, New York, 1978.
99. Rosenthal, Evelyn B. : **Understanding the New Mathematics,** Fawcett Publications, Inc., New York, 1965.
100. Rouse Ball, W.W. : **A Short Account of the History of Mathematics,** Dover Publications, New York, 1960.
101. Sarton, George : **A History of Science** (2 vols.), Science Editions, John Wiley & Sons, Inc., New York, 1964-65.
102. Satya Prakash, Svami (Dr.) : **A Critical Study of Brahmagupta and His Works,** Govindram Hasanand, Nai Sarak, Delhi, 1986.
103. Sawyer, W.W. : **Mathematician's Delight,** Penguin Books, 1957.
104. Schaaf, William L. : **Our Mathematical Heritage,** Collier Books, New York, 1963.
105. Scott, J.F. : **A History of Mathematics,** Taylor & Francis Ltd., London, 1969.
106. Shashkin, Yu. A. : **The Euler Characteristics,** Mir Publishers, Moscow, 1989.
107. Singer, Charles : **A Short History of Scientific Ideas to 1900,** The English Language Book Society, Oxford University Press, 1959.

108. Smilga, V. : **In the Search for Beauty,** Mir Publishers, Moscow, 1970.

109. Smith, David Eugene : **A Source Book in Mathematics** (2 vols.), Dover Publications, New York, 1959.

: **History of Mathematics,** (2 vols.). Dover Publications New York, 1958.

110. Smogorzhevsky, A.S. : **Method of Coordinates,** Mir Publishers, Moscow, 1980.

111. Smogorzhevsky, A.S. : **Lobachevskian Geometry,** Mir Publishers, Moscow, 1976.

112. Snow, C.P. : **Variety of Men,** (Article : *G.H. Hardy*)

113. Srinivasiengar, C.N. : **The History of Indian Mathematics,** The World Press Private Ltd.. Calcutta, 1967.

114. Steen, Lynn Arthur (ed.) : **Mathematics Today : Twelve Informal Essays,** Springer-Verlag. New York, 1978.

115. Struik, Dirk J. : **A Concise History of Mathematics,** G.Bell and Sons Ltd., London, 1959.

116. Suresh Ram : **Srinivasa Ramanujan,** National Book Trust, New Delhi, 1972.

117. Sutton, O.G. : **Mathematics in Action,** ELBS and G. Bell and Sons Ltd., London, 1962.

118. Taton, René : **History of Science : Ancient and Medieval Science** (From the Biginnings to 1450), Translated by A.J. Pomerans, Thames and Hudson, London, 1963.

119. Todhunter, Isaac (ed.) : **Euclid's Elements** (Books I-VI and XII), J.M. Dent & Sons Ltd., London, 1960.

120. Tuge, Hidcomi : **Historical Development of Science and Technology in Japan,** Kokusai Bunka Shinkokai, Tokyo, 1961.

121. Uspensky, J.V. and Heaslet, M.A. : **Elementary Number Theory,** McGraw-Hill Book Company. Inc., New York, 1939.

122. Uspensky, V.A. : **Pascal's Triangle,** Mir Publishers, Moscow. 1976.

123. Uspensky, V.A. : **Gödel's Incompleteness Theorem,** Mir Publishers, Moscow, 1987.

124. Vygodsky, M. : **Mathematical Handbook** (Elementary Mathematics),

: **Mathematical Handbook** (Higher Mathematics), Mir Publishers, Moscow, 1971-72.

125. Waismann, Friedrich : **Introduction to Mathematical Thinking**

(The Formation of Concepts in Modern Mathematics), Harper Torchbooks, New York, 1959.

126. Weber Heinrich (ed.) : **The Collected Works of Bernhard Reimann,** Dover Publications, New York, 1953.

127. Whitehead, A.N. : **An Introduction to Mathematics,** Oxford University Press, London, 1953.

128. Whittaker, Sir Edmund : **From Euclid to Eddington,** Dover Publications, New York, 1958.

129. Wolf, A. : **A History of Science, Technology in the 16th & 17th Centuries** (1935).

: **A History of Science, Technology, and Philosophy in the 18th Century** (1938), George Allen & Unwin Ltd., London.

130. Yaglom, I.M. : **An Unusual Algebra,** Mir Publishers, Moscow, 1978.

131. **—Ancient China's Technology and Science,** Foreign Language Press, Beijing, 1983.

132. **Lives in Science** (A Scientific American Book), Simon and Schuster, New York, 1957.

133. **Notebooks of Ramanujan** (2 vols.), Tata Institute of Fundamental Research, Bombay, 1957.

134. **Ramanujan : Letters and Reminiscences,**

Ramanujan : An Inspiration, The Muthialpet High School, Madras, 1963, 1967.

कोश और पत्रिकाएं

138. Daintith, J., Mitchell, S., Tootill, E. : **A Biographical Encyclopedia of Scientists** (2 vols.), Facts on File, Inc., New York, 1981.

139. **अखिल भारतीय शब्दावली : गणित और बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह, विज्ञान, खंड I व II ,** वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली, 1973.

140. ब्रज मोहन : **गणितीय कोष** (गणितीय परिभाषा और शब्दावली), चौखंबा-संस्कृत-सीरीज, बनारस, 1954.

141. Geddie, W.M. & Geddie, J. Liddell (ed.) : **Chambers' Biographical Dictionary,** London, 1957.

Indian Journal of History of Science.

Scientific American.

Science Today.

परिशिष्ट : 3

हिंदी-अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दावली

अंक	digit
अंकगणित	arithmetic
अंतःप्रज्ञा	intuition
अंश	numerator
अंश, डिग्री	degree
अकादमी, एकाडेमी	Academy
अक्ष, धुरी	axis
अनिर्धार्य समीकरण	indeterminate equation
अतिपरवलय	hyperbola
अतिपरवलयज	hyperboloid
अतिभाज्य	highly composite
अत्यणु, परमाल्प	infinitesimal
अदिश	scalar
अधिकतम, उच्चतम, महत्तम	maximum
अनंत, अनंतता	infinity
अनंत श्रेणी	infinite series
अनंत समुच्चय	infinite set
अनुपात	ratio
अनुपात, समानुपात	proportion
अनुमान	inference, conjecture
अपरिमेय	irrational
अपसरण	divergence
अपूर्णता प्रमेय	Incompleteness theorem
अबीजीय संख्या	Non-algebraic number, Transcendental number
अभाज्य, रूढ	prime
अभिगृहीत	axiom, postulate
अभिसरण	convergence
अभिसरण परीक्षण	convengence test
अमूर्त	abstract
अमूर्त समष्टियां	Abstract spaces
अयन चलन	precession of equinoxes
अयूक्लिडीय ज्यामिति	Non-Euclidean geometry
अर्धज्या, अर्ध-जीवा	half-chord
अलगोरिथम, कलन-विधि	algorithm
अवकल	differential
अवकल गणित	Differentiation, Differential Calculus
अवकलज	derivative
अवकलांक	differential coefficient
आइडियल सिद्धांत	Ideal Theory
आगमन	induction

आधार प्रमेय	Fundamental Theorem
आबेलीय फलन	Abelian Function
अभिगृहीत, गृहीत	Postulate
आपेक्षिकता, सापेक्षता	Relativity
आयत	rectangle
आयतन, घनफल	volume
आरेख	diagram
आलेख	graph
आवर्तकाल	period
आवर्त फलन	Periodic Function
आव्यूह	Matrix
इकाई	unit
इराटोस्थनीज की छलनी	sieve of Eratosthenes
उच्चिष्ठ व अल्पिष्ठ	Maxima and Minima
उत्केंद्रता	eccentricity
उत्तोलक, लीवर	lever
उपपत्ति	proof
उपपत्ति सिद्धांत	Proof Theory
उपसमुच्चय	subset
ऊर्ध्वाधर	vertical
ऋण	minus
ऋणात्मक	negative
ऋण घात	negative power
एकघात समीकरण	equation of first degree, linear equation
एकांश भिन्न	unit fraction
एकैकी संगति, एकैकी संबंध	one-to-one correspondence
कंप्यूटर	computer
कक्षा	orbit
करणी	radical, surd
कर्ण	hypotenus
कलन, कलन-गणित	Calculus
कल्पित, अधिकल्पित	imaginary
कॉख़ वक्र	Koch curve
कीलाक्षार फलक	Cuneoform tablets
कुट्टक	pulveriser
कुट्टक गणित, कुट्टाकार	indeterminate analysis
कोटि	ordinate
कोटिज्या	cosine
क्रमगुणित	factorial
क्रमचय	permutation
क्रमचय और संचय	permutations and combinations
क्रमविनिमेय	commutative
क्रिया, परिकर्म, संक्रिया	operation
क्वांटम यांत्रिकी	Quantum Mechanics
क्षेत्र	field
क्षेत्रफल	area
खंड	segment
खगोल भौतिकी	Astrophysics
खगोल यांत्रिकी	Celestial Mechanics
खगोल विज्ञान	Astronomy
खेल सिद्धांत	Game Theory
गणनात्मक संख्या	cardinal number
गणनीय अनंत	denumerable infinity
गणितीय भौतिकी	mathematical physics

गतिविज्ञान, गतिकी	dynamics
गिनतारा	abacus
गुणक	factor
गुणधर्म	properties
गुणन	multiplication
गुणोत्तर श्रेढी	geometrical progression
गुरुत्वाकर्षण	gravitation
गोला, गोलक	sphere
ग्रुप	Group(s)
घन	cube
घनमूल	cube root
घात श्रेणी	Power series
घातांक	exponent, index
घूर्णन	rotation
चक्रज	cycloid
चक्रवाल विधि	cyclic method
चक्रीय चतुर्भुज	cyclic quadri-lateral
चतुर्घाती	quartic
चतुष्टय	quaternion
चर्मपट	parchment
चाप	arc
चीनी शेष प्रमेय	Chinese Remainder Theorerm
छंदशास्त्र	Prosody
जालक	lattice
जीटा फलन	Zeta Function
जीवा, ज्या	chord
ज्या	sine
ज्यामिति, रेखागणित, क्षेत्रमिति	geometry
तरंग सिद्धांत	Wave Theory
तल, पृष्ठ	surface
तार्किक गणित	Symbolic Logic
तृतीय घात (घन) समीकरण	cubic equation
त्रिकोणमिति	Trigonometry
त्रिज्या, अर्धव्यास	radius
त्रिभुजीय संख्या	triangular number
त्रैराशिक	Rule of Three
दशमलव	decimal
दशमिक, दाशमिक	decimal
दीर्घवृत्त	ellipse
दीर्घवृत्तज	ellipsoid
दीर्घवृत्तीय फलन	Elliptic Functions
दूरबीन	Telescope
द्रवगतिकी	Hydrodynamic
द्रव्यमान	mass
द्विआक्षारी, द्वयी	binary
द्विपद	binomial
द्विपद प्रमेय	Binomial Theorem
धारणा, संकल्पना	concept
ध्रुव	pole
ध्रुवी, ध्रुवीय	polar
नियम, सिद्धांत	principle, law
निर्देशांक	coordinates
निश्चर	invariant
निश्चर सिद्धांत	Invariant Theory
नेपियर के दंड	Napier's rods or bones
न्यास	statement
न्यूनतम, निम्नतम, लधुत्तम	minimum
टॉपोलॉजी	Topology
ठोस ज्यामिति	Solid Geometry
पंचांग, कैलेंडर	calender

पद	term
परवलय	parabola
परवलयज	paraboloid
परिमित, सांत	finite
परिमेय	rational
परिधि	circumference
परिमेय संख्या	rational number
परिकल्पना	hypothesis
परिमाण	magnitude
पहेली, विरोधाभास	paradox
पूर्णांक	integer
प्रक्षेपीय ज्यामिति	Projective Geometry
प्रतिलोम, व्यस्त, व्युत्क्रम	inverse
प्रतीक, चिह्न	symbol
प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र	Symbolic Logic
प्रत्यास्थता	elasticity
प्रदिश, टेन्सर	tensor
प्रमेय	theorem
प्रमेयिका	lemma
प्राकृतिक संख्याएं	natural numbers
प्रायिकता, संभाविता	probability
प्रायिकता सिद्धांत	Theory of Probability
फलक	face
फलन	function
फलन सिद्धांत	Theory of Functions
फलित ज्योतिष	Astrology
फुख्सीय फलन	Fuchsian functions
फूरिए श्रेणी	Fourier series
बहुपद	polynomial
बहुफलक	polyhedron
बहुभुज	polygon
बिंदुपथ	locus
बीजगणित	algebra
बीजीय संख्याएं	Algebraic numbers
बीमाविज्ञ	actuary
बीमा गणित	Actuarial Science
बूलीय बीजगणित	Boolean Algebra
भाग, विभाजन	division
भाजक	divisor
भिन्न	fraction
भुज	abscissa
भुजा, पक्ष	side
भूमिति	geodesy, geometry
भौतिकी	physics
भौतिकीविद	physicist
मात्रा, राशि	quantity
माध्य, औसत, सरासरी	average
माया वर्ग	magic square
मूल	root
मेरसेन संख्या	Mersenne number
याम्योत्तर	meridean
युगपत् समीकरण	simultaneous equation
रचना	construction
राशि	quantity
रूढ़ संख्या, अभाज्य संख्या	prime number
लंब	perpendicular
लघुगणक	logarithm
लघुगणकीय सर्पिल	logarithmic spiral
लेबेग अवकलन	Lebesgue Integration

वक्र	curve
वर्ग	class
वर्ग	square
वर्गमूल	square root
वर्ग, द्विघात	quadratic
वर्ग समीकरण	Quadratic Equation
वलय	ring
वास्तविक संख्या	real number
विकर्ण	hypotenus
विचरण कलन	Calculus of Variations
वितत भिन्न	continued fraction
विमा	dimention
विभाज्य	composite
विमिति, आयाम	dimention
विरोधाभास	paradox
विशुद्ध' गणित	'Pure' Mathematics
विश्लेषण	Analysis
विस्तार कलन	Calculus of Extension
विषम संख्या	odd number
वृत्त	circle
वेग	velocity
वेधशाला	Observatory
वैश्लेषिक	analytic
वैश्लेषिक फलन	analytic function
व्यंजक	expression
व्यवकलन	subtraction
व्यास	diameter
व्युत्क्रम	reciprocal
शब्दांक	word-number
शंकु	cone
शांकव, शांकव गणित	conic sections
शीर्ष	vertex
शुद्ध गणित	Pure Mathematics
शून्य	zero
श्रेढी	progression
श्रेणी	series
षाष्टिक पद्धति	sexagesimal system
संकलन	summation
संख्या	number
संख्यांक	numeral
संख्या संकेत	number signs
संख्या सिद्धांत	Theory of Numbers
संगति	consistency
संगति	correspondence
संचार सिद्धांत	Communication Theory
सन्निकट	approximate
संभाव्यता सिद्धांत, संभाविता सिद्धांत	Theory of Probability
संस्थिति विज्ञान, टॉपोलॉजी	Topology
समाकल	integral
सतत	continued
सदिश विश्लेषण	vector analysis
समांतर अभिगृहीत	Parallel Postulate
समांतर श्रेढी	arithmetical progression
समानुपात सिद्धांत	Theory of Proportion
समीकरण	equation

सतत, संतत	continuous
सदिश	vector
समकोण	right angle
सममिति	symmetry
समष्टि, दिक्	space
समांतर	parallel
समांतर चतुर्भुज	parallelogram
समाकलन गणित, चलराशि कलन	Integral Calculus
समीकरण	equation
समुच्चय	set
सम्मिश्र	complex
सम्मिश्र संख्या	complex number
समूह, ग्रुप	group
सर्पिल	spiral
सर्वसमिका	identity
सांख्यिकी	Statistics
सातत्य, सांतत्य	continuity
सांतत्यक अनुमान	Continuum Hypothesis
सातत्यक, सांतत्यक	continuum
सारणिक	determinant
सारणी	table
सार्विक	general
साहचर्य	association
साहचर्य नियम	Law of Association
सिलिंडर, बेलन	cylinder
सिद्धांत	theory
सीमा	limit
सूत्र	formula
स्तंभ	column
स्थानमान	place value
स्पर्शज्या	tangent
स्थिरांक, अचर	constant
हर, छेद	denominator
हरात्मक श्रेढी	harmonic progression
हाइपरबोलिक फलन	hyperbolic function

परिशिष्ट : 4

नामानुक्रमणिका

इस अनुक्रमणिका में प्रमुख रूप से गणितज्ञों, वैज्ञानिकों और गणित के ग्रंथों का ही समावेश किया गया है। जो कतिपय भूलें पता चलीं उन्हें ठीक कर दिया गया है, इसलिए **यहां प्रस्तुत नामों और तिथियों को ही अब प्रामाणिक माना जाए।** सुविधा के लिए विदेशी गणितज्ञों और गणित-ग्रंथों के नाम रोमन में भी दिए गए हैं। गणितज्ञों के बारे में विशिष्ट जानकारी देनेवाले पृष्ठों की संख्याएं बोल्ड टाइप में हैं।

विषयानुक्रमणिका

183834

राजकमल से प्रकाशित
गुणाकर मुले की पुस्तकें

आकाश दर्शन
संसार के महान गणितज्ञ
भारतीय विज्ञान की कहानी
भारतीय अंकपद्धति की कहानी
भारतीय लिपियों की कहानी
नक्षत्रलोक
अंतरिक्ष-यात्रा
सौरमंडल
सूर्य
गणित की पहेलियाँ
महान वैज्ञानिक
प्राचीन भारत के वैज्ञानिक
आधुनिक भारत के वैज्ञानिक
ज्यामिति की कहानी
अंकों की कहानी
अक्षरों की कहानी
भास्कराचार्य
आर्यभट्ट

ISBN : 81-7178-229-9